इकाई एकः सामंतवाद का पतन और पूंजीवाद का प्रारंभ

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्यः

1.3 सांमतवाद का पतन

1.4 सामंतवाद के पतन के कारण

1.4.1 सांमतों के मध्य अविराम युद्धों की श्रृंख्ला

1.4.2 नये हथियारों का अविष्कार

1.4.3 किसान विद्रोह

1.4.4 व्यापार की भूमिका

1.4.5 मुद्रा–व्यवस्था का उदय

1.4.6. प्रौद्योगिकी और भूमि तथा श्रम की उत्पादकता

1.4.7. जनसंख्या में वृद्धि

1.4.8. पुनर्जागरण और धर्मसुधार

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.8 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

'फ्युडल' (सामंती) शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द फियाडेलिस (Feodalis) से हुई है परंतु मध्ययुगीन यूरोप में इस शब्द का प्रयोग कानूनी अर्थ में किया जाता था। 'सामंतवाद' शब्द का प्रचार मुख्यतया 18वीं शताब्दी के फ्रांसीसी दार्शनिक बूलैंवीयै (Boulaiuvilliers) और मौन्टेसक्यू (Montesquieu) के द्वारा किया गया। इस शब्द का प्रयोग मध्ययुग के दौरान छोटे–छोटे राजकुमारों और अधिपतियों की संप्रभुता में साझेदारी को व्याख्यायित करने के लिए कर रहे थे। कुल मिलाकर सामंतवाद एक राजनीतिक ढॉचा या सामाजिक स्वरूप है जो 9वीं शताब्दी और 13वीं शताब्दी के बीच पश्चिमी और मध्य यूरोप में एक महत्त्वपूर्ण प्रणाली के रूप में मौजूद थी।

जिस प्रकार से सामंतवाद के विकास का एक लंबा एवं जटिल इतिहास रहा है उसी प्रकार इसका पतन भी एक लंबी प्रक्रिया के तहत हुआ। सांमतवाद का पतन इतिहासकारों के बीच एक विवाद का प्रश्न रहा है। विद्वानों का मानना है कि 14वीं शताब्दी में सामंतवाद का धीरे–धीरे पतन होने लगा और कुछ समय बाद यूरोप से यह व्यवस्था समाप्त हो गई। कुछ विद्वानों का मानना है कि व्यापार के फिर से उभरने और विकसित होने तथा फलस्वरूप नगरों का विकास सामंतवाद के पतन का मुख्य कारण था। अन्य विद्वानों का प्रौधोगिकी का स्तर, कृषि में उत्पादकता, जनसंख्या संबधी बदलाव और ग्रामीण परिदृश्य में परिवर्तन जैसे अन्य मुद्दे सामंतवाद के पतन के लिए जिम्मेदार थे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- यूरोप में सांमतवाद के पतन की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- इसमें व्यापार की भूमिका को समझ सकेगें।
- पुनर्जागरण एवं पूँजीवाद का उत्थान कैसे सांमती ढॉचा को नष्ट किया।

1.3 सांमतवाद का पतन

13वीं शताब्दी यूरोप में मध्यकाल का चरमोरकर्ष माना जाता है, किंतु इसी शताब्दी के अंतिम वर्षो में कुछ ऐसी नवीन प्रगतिशील शक्तियों का उदय हो रहा था जो मध्यकालीन व्यवस्था के पतन और नये युग के आगमन का संकेत दे रही थी। 14वीं एवं 15वीं शताब्दी में प्रायः उन सारी शक्तियों का विघटन हुआ जो मध्यकालीन व्यवस्था की मुख्य विशेषताएॅ थी। ये विशेषताएॅ थी – राजनीतिक सत्ता का विखंडीकरण, निजी लोगों के हाथों में सार्वजनिक शक्ति एवं एक ऐसी सैन्य व्यवस्था जिसमें सैन्य शक्ति निजी हाथों में ठेके पर दे दी गई है, इत्यादि। मध्यकालीन संस्थाओं के विघटन के साथ–साथ नए आदर्शो और संस्थाओं का उदय हो रहा था। ये दो सदियॉ अंशतः मध्यकालीन और अशंतः आधुनिक साबित हुई। इन दोनों शताब्दियों में कुछ विशिष्ट मध्यकालीन संस्थाओ जैसे बड़े–बड़े साम्राज्य, विश्वव्यापी धर्म, गिल्डों के अधिकार, मैनोरियल व्यवस्था और रूढ़िवाद के पतन के गर्त में गिरते देखते हैं। लगभग हर स्थिति में मध्यकालीन संस्थाएॅ नवजागृत प्रगतिशील शक्तियों को नियंत्रित करने या रोकने में सक्षम रही। मध्यकालीन व्यवस्था के केन्द्र में सामंतवादी व्यवस्था थी और इसका पतन संपूर्ण मध्यकालीन व्यवस्था के पतन की व्याख्या करता है।

1.4 सामंतवाद के पतन के कारण

1.4.1 सांमतों के मध्य अविराम युद्धों की श्रृंख्ला

सामंत प्रथा की एक बड़ी कमजोरी यह थी कि सांमत बराबर आपस में लड़ते रहते थे। इनके कारण धन–जन की काफी क्षति होते गया। 200 वर्षों के धर्मयुद्ध में बहुत सारे सामंत मारे गये। इस युद्ध का अंत होते–होते इंग्लैड़ और फ्रांस के सामंतों के बीच लड़ाई छिड़ गई जो लगभग 100 वर्षो तक चली। इसमें अनेक सांमत मारे गए। फिर 15वीं सदी में इंग्लैड के गुलाबों के युद्ध से भी वहॉ के सामंतवर्ग को बड़ी क्षति पहुॅची। यह बड़ा भीषण युद्ध था, क्योंकि इसके द्वारा प्रतिद्वन्द्वी सांमतों के दल इंग्लैंड के शासनतंत्र को अपनी–अपनी मुट्ठी में लाना चाहते थे। एक ओर इन्होंने आपस में लड़कर अपनी शक्ति बर्बाद की तो दूसरी ओर इन्होंने राजाओ को सामंती मामलो में हस्तक्षेप करने का मौका दिया। इन सामंती युद्धों के कारण यूरोप में हिंसा, अव्यवस्था और उपद्रव का वातावरण पैदा हुआ। फलतः सामान्य लोगों में सांमतों के प्रति घृणा और उब की भावना पैदा हुई। इसी परिवेश में कानून–व्यवस्था के स्थानापन्न के रूप में शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। फलतः राष्ट्रीय–राज्यों के उदय का मार्ग प्रशस्त होने लगा। अगर इंग्लैंड में यार्क और लंकाशायर वंश के सांमत आपस में नही लड़ते तो वहॉ ट्यूडर निरकुंशतंत्र का उदय नहीं होता।

1.4.2 नये हथियारों का अविष्कार

एक ओर तो लगातार हो रहे युद्धों के कारण सामंतों की संख्या घटती जा रही थी और दूसरी ओर नए हथिआरों के आविष्कार के कारण उनका सामाजिक एवं सामरिक महत्त्व भी घट रहा था। घुड़सवार सामंत अपने भाले, बर्छे और तलवारों से लड़ते थे और इस कारण वे युद्ध में कुशल समझे जाते थे। अब लंबे धनुष का प्रचलन आरंभ हुआ। इससे तीरंदाज किसान भी घुड़सवार सामंत का मुकाबला करने लगा और सामाजिक दृष्टि से अब नाइट की पुरानी प्रधानता जाती रही।

इन सामंतों की सामरिक प्रधानता का दूसरा कारण था कि वे अपने दुर्भेध किलों में रहकर अपनी सुरक्षा आसानी से करते थे, किंतु मंगोल यूरोप में सबसे पहले बारूद लाये और अरब युद्ध में बारूद के गोलों का व्यवहार होने लगा। गोला–बारूद द्वारा सामंती किलों पर दखल जमाना आसान हो गया, इसलिए अब सामंती किले की दुर्भेधता जाती रही।

मध्य युग के अंत में बंदुकों का व्यवहार होने लगा। पहले इसका व्यवहार जर्मनी में हुआ और गुलाबों की लड़ाई में इंग्लैंड में एडवर्ड चतुर्थ (IV) के भाड़े के सिपाहियों ने इसका प्रयोग किया। बंदुकों के कारण पैदल सेना प्रमुख सेना बन गई और पुराने ढंग की घुड़सवार सेना का महत्त्व जाता रहा। सामंतो को दबाने के लिए राजा पैदल सेना का संगठन करने लगा और उनके लिए बंदुक और बारूद जुटाने लगा। इसके लिए पैसे की आवश्यकता थी और पैसे शहरी व्यापारियों के पास थे। सामंतो के विरोधी व्यापारी ने पैसे से राजा का हाथ मजबूत किया जिससे सामंती व्यवस्था को धक्का लगा।

1.4.3 किसान विद्रोह

सामंतों के पतन का एक प्रमुख कारण था किसानों का विद्रोह। कृषि अधिशेष का सामंतो के द्वारा अधिक दोहन का बुरा असर किसानों पर पड़ा। छोटे एवं मध्यम किसान भी इससे प्रभावित हुए क्योंकि अधिशेष दोहन के दर में वृद्धि से उनके पास मुश्किल से कुछ बचता था। एम.एम. पोस्टन के अनुसार सामंती कुलीन वर्ग के द्वारा आश्रित किसानों से कुल उपज का आधा भाग ले लिया जाता था। इसके साथ–साथ लगातार कृषि के कारण भूमि की उर्वरकता भी कम होती जा रही थी क्योंकि उर्वरकता हासिल करने के लिए किसान जमीनों को बहुत दिनों तक परती नहीं छोड़ सकते थे। साथ ही किसानो की सीमित आय के कारण उन्नत बीज, उर्वरक और

तकनीक पर खर्च नहीं करते सकते थे। परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में गिरावट दर्ज हुआ और खाद्य पदार्थो के असमान वितरण और आबादी में लगातार वृद्धि के कारण संकट को जन्म दिया। साथ ही साथ सामंती वर्ग के द्वारा कृषि के क्षेत्र में कोई रूचि का न लेना तथा भोग विलास में ज्यादा खर्च करना भी महत्तवपूर्ण भूमिका निभा रहा था। रोडनी हिल्टन ने अनुमान लगाया कि सामंतो के द्वारा कुल आय का मात्र पॉच प्रतिशत उत्पादन में निवेश किया जाता था बाकि गैर उत्पादक मदों में।

उपरोक्त वर्णित परिस्थितियों के कारण 14वीं सदी के शुरू में पूरे यूरोप में कृषि मूल्यों में काफी बढ़ोती हुई। इससे ग्रामीण तथा शहरी वर्ग दोनों प्रभावित हुआ। खाद्य पदार्थो में हो रहे लगातार वृद्धि के कारण 14वीं सदी के पूर्वार्द्ध में अकाल पड़ने लगे थे। 1315–16 का अकाल काफी भयंकर था। अकालों के कारण आबादी में गिरावट हुआ। इसके अलावा, 1347 में पूर्वी यूरोप में प्लेग की महामारी फैल गई और 1348 तक पश्चिमी यूरोप में फैल गया। महामारी का यह श्रृंखला 1350–51 तक चला। इसे यूरोप में 'काली मौत' के नाम से जाना जाता है। इसमें यूरोप की एक चौथाई आबादी नष्ट हो गई। 14वीं सदी के अंत तक यूरोप की आबादी में 40% तक गिरावट दर्ज हुआ।

पश्चिम में आश्रित किसानों ने 14वीं सदी के इस संकट का मुकाबला सामंती करों के बढ़ते बोझ के खिलाफ प्रतिरोध करके किया। अधिकांश किसानों के विद्रोह स्वतःस्फूर्त और व्यक्तिगत थे। किसान शुल्क अदा करने से मना करके दूसरी जगह भाग जाते। आगे चलकर बड़ी संख्या में यह विद्रोह संगठित किसान विद्रह हुए जिससे सामंतो का अधिकार भूदासों पर कमजोर हुआ। 1320 के दशक में फ्रांस, बल्जियम, इंग्लैंड आदि क्षेत्रों में अनेक किसान विद्रोह हुए। सर्वाधिक महत्वपूर्ण विद्रोह 1358 में फ्रांस में हुआ जिसे ग्रैंड जैकरी के नाम से जाना जाता है।

1.4.4 व्यापार की भूमिका

बेल्जियम इतिहासकार हेनरी पिरेन ने सामंतवाद के पतन के लिए व्यापार के प्रसार एवं शहरी केन्द्रों के उदय को जिम्मेदार माना है। इन्होने अपनी पुस्तक, 'मेडिवल सिटीजः देयर ऑरिजिन ऐंड रिवाइवल ऑफ ट्रेड' में सामंतवाद के पतन में व्यापार की भूमिका को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना हैं। पिरेन के अनुसार लंबी दूरी का व्यापार जिसे वे ''ग्रैंड ट्रेड'' कहते थे, की फिर से पुनरूत्थान हुआ और शहरी केन्द्र उभर आए। इससे लोगों के निजी जिंदगी में परिवर्तन हुआ और व्यक्ति स्वतंत्रता का जीवन को मूल मानने लगा। जर्मनी में यह कहावत प्रचलित हुई कि 'शहर की हवा लोगों का आजाद बनाती है।' वास्तव में व्यापार का वातावरण स्वतंत्रता का वातावरण था और सामंती प्रथा का वातावरण असंतोष और संकीर्णता का। इसलिए दोनों में संघर्ष हाने लगा। शहर के लोगों को भी सामंती सेवाएँ करनी पड़ती थी जिससे वे मुक्त होना चाहते थे। उदाहरण के लिए उन्हें अपनी जमीन बेचने की स्वतंत्रता नहीं थी, जिससे वे अपनी पूँजी को करोबार में लगा सकें। उनके व्यापार संबधी मुकदमों का फैसला भी मैनर की सामंती कचहरियों में होता था। इसके अतिरिक्त इन्हें अपने उद्योग एवं धन्धें और व्यापार में मजदूरों की आवश्यकता थी, किंतु सामंती व्यवस्था दासता के कारण मजदूर जमीन से बॅधे हुए थे। इन कारणों से भी व्यापारियों और सामंतो के बीच संघर्ष हुआ और व्यापारियों के द्वारा किसान विद्रोही को समर्थन भी मिला।

13वीं–15वीं शताब्दी तक सौदागरों के द्वारा अपना संगठन बनाया गया और राजा की सहायता से अपनी मॉगों को मनवाया भी गया। इससे समंतवाद को बड़ा धक्का लगा। व्यापार में तेजी के पीछे धर्मयुद्ध का भी बड़ा योगदान माना जाता है। इससे भूमध्यसागर का रास्ता मुस्लिमों से निकलकर यूरोपीयों के हाथों में चला गया। परिणामस्वरूप उत्तरी यूरोप और पुरब के बीच व्यापार में तेजी आया। पुराने शहर पुनः उन्नति करने लगे और

साथ ही नए शहरों का उदय होने लगा। 15वीं शताब्दी में पेरिस की आबादी तीन लाख, वेनिस की एक लाख, नब्बे हजार, प्राग एवं ब्रुसेल्स की एक लाख और लंदन की आबादी 35000 थी।

पिरेन की सामंतवाद और व्यापार के बीच आधारभूत द्विभाजन संबंध को सबसे गंभीर चुनौति मार्क्सवादी इतिहासकार मॉरिस डॉब ने दी। 1946 में उन्होने अपनी पुस्तक 'स्टडीज इन द डेवेलवपेंट ऑफ कैपिटलिज्म' में सामंतवाद के पतन में व्यापार की भूमिका को उठाया। उनके अनुसार अपने आप में व्यापार किसी भी आर्थिक व्यवस्था को नहीं बदल सकता है क्योंकि व्यापार के साथ–साथ दास प्रथा, सामंतवाद, पूँजीवाद इत्यादि कायम रह सकता है। उन्होने यह भी तर्क दिया कि 17वीं–18वीं शताबदी में पूर्वी यूरोप में व्यापार के पुनरूत्थान से सामंतवादी व्यवस्था का अंत होने के बजाए वहॉ 'दूसरी कृषि दास' व्यवस्था का जन्म हुआ। इनके अनुसार कृषि दास प्रथा सामंतवाद का प्रमुख लक्षण है।

मार्क्सवादी विश्लेषण के तहत डॉब ने कहा कि पश्चिमी यूरोप में सामंतवाद के पतन का कारण 'अंदरूनी संकट' था। इस अंदरूनी संकट को डॉब ने सामंती वर्गा एवं किसान वर्ग के बीच के संघर्ष के रूप में व्याख्यायित करते है। डॉब शहरों के उदय को भी सामंतवाद के पतन के लिए एक प्रमुख कारण मानते है। परंतु जहॉ एक ओर पिरेन इस परिघटना को व्यापार के साथ जोड़कर देखते हैं वहीं दूसरी ओर डॉब व्यापार से इसका कोई संबंध नहीं मानते है।

अमेरिकी विद्वान पॉल स्वीजी ने भी पिरेन की अवधारणा और व्यापार/सामंतवाद के बीच असंगति का समर्थन किया। उनका तर्क है कि सामंतवाद का पतन वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था के विस्तार के कारण हुआ। जापान के इतिहासकार कोचरू ताकाहाशी ने यह कहकर बहस को एक नया मोड़ दे दिया कि पूँजीवाद का जन्म केवल बुर्जुआ वर्ग के उदय के जरिए सामंतवाद के खंडहरों के ऊपर नहीं हुआ बल्कि यह राज्य समर्थित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का परिणाम था। जापान के संदर्भ में तेजी पुनर्स्थापना के बाद पूँजीपति वर्ग ने नहीं बल्कि राज्य ने वहॉ पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के उदय में निर्णायक भूमिका अदा की।

यदि डॉब ने व्यापार और सामंतवाद की संगति के संबंध में विचार रखे तो दूसरे फ्रांसीसी इतिहासकार गी बुआ आगे बढ़कर दोनों का सीधा संबंध को स्थापित किया। डॉब के अनुसार सामंतवाद का पतन उत्पादन की सांमतवादी पद्धति के भीतर के अन्तर्विरोधों का परिणाम था। गि बुआ ने अपने लेख में फ्रांस के एक गॉव लूर्नांद (Lournand) का परीक्षण संक्रमण के काल में किया और यह बताया कि व्यापार के विकास से अधिपतियों और किसानों का सांमती गठजोड़ कमजोर होने के बजाए और मजबूत हो गया। पिरेन का यह मानना था कि मध्यकालीन यूरोप में प्रौद्योगिकी का स्थान निम्न था और भूमि तथा श्रम की उत्पादकता काफी कम थी, से डॉब, रोडनी हिल्टन आदि सहमति दर्ज करते हैं।

1.4.5 मुद्रा–व्यवस्था का उदय

जैसे–जैसे व्यापार की वृद्धि हुई मुद्रा–व्यवस्था का प्रचलन हुआ। सामंती व्यवस्था के आर्थिक आधार में मुद्रा की प्रधानता नहीं थी। किसान वर्ग काम करके एवं सामंतशाह उनसे सेवाएँ लेकर अपनी जरूरतों को पूरा करते थे। परंतु सिक्कों के प्रचलन से परिस्थितियॉ बदल गयी। मुद्रा अर्थव्यवस्था में सामंतो ने भूमि को व्यावस्था के रूप में देखना शुरू किया। वे अब अपनी जागीर से अधिक से अधिक मुनाफा चाहने लगे। अतः उन्होने अपनी जमीन की घेराबंदी शुरू की और उस घिरे हुए प्लाट में खेती के नये तरीके अपनाये। उन्होंने महसूस किया किया कि अब खेती में उतने लोगों की आवश्यकता नहीं है, जितने लोग पहले लगाए जाते थे। अतः उन्होने अपनी

जागीर (Manor) में संलग्न किसानों को बाहर करना शुरू किया। इस प्रकार से एक ओर मैनोरियल व्यवस्था का अंत हुआ और दूसरी ओर कृषि के व्यावसायीकरण से सामंती मूल्य एवं दृष्टिकोण विखड़ने लगा। मैनर व्यवस्था से मुक्त किसान नए व्यवस्था की खोज में शहर की ओर पलायन करने लगे। इस कारण से मुद्रा–प्रधान अर्थव्यवस्था के कारण ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में एक नई लहर पैदा हुई जो सामंतवाद के विरूद्ध थे। अब गतिहीन, कृषि प्रधान और सामूहिक सामंती व्यवस्था के स्थान पर एक गतिशील, शहरी, प्रतियोगी और मुनाफा व्यावस्था अर्थव्यवस्था अर्थात् पूँजीवाद का उदय हुआ। ऐसी स्थिति में सामंतवाद जीर्ण–शीर्ण और अनुपयोगी साबित होने लगा। धीरे–धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि उदयीमान आर्थिक एवं सामाजिक शक्तियों का विकास शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के द्वारा ही हो सकता है। किसान व्यापारी, उद्योगपति, मजदूर, सभी राजा को ही अपना हितचिंतक मानने लगे और उन्होंने व्यापार, उद्योग, खेती तथा सामाजिक संरचना पर केन्द्रीय सरकार के अधिकाधिक नियंत्रण की मॉग की। इंग्लैंड एवं फ्रांस जैसे देश के राजाओं ने इस चुनौति का स्वीकारा और उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को नियंत्रित किया। सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification), आर्थिक स्थानीयवाद (economic localization) और निहित स्वार्थो के विभिन्न घटकों पर आधारित सामंतवाद के पतन का संकेत राष्ट्रीय–राज्यों के उदय से मिल रहा था।

परिणाम यह हुआ कि पश्चिमी यूरोप के देशों में राजा और व्यापारिक वर्ग (थर्ड स्टेट) के बीच अन्योन्याश्रित संबंध कायम हुआ। पारस्परिक समझौते के द्वारा दोनों सामंतों की रही–सही शक्ति को तोड़ने लगे। अपने देश में एक मजबूत केन्द्रीय (राष्ट्रीय) शक्ति की स्थापना की चेष्टा करने लगे। उदाहरण के लिए, 1389 ई0 में इंग्लैड की सरकार ने यह कानून पास किया कि समूचे इंग्लैंड में एक समान माप–तौल चलेगी और जो इसका उल्लंघन करेगा उसे छः महीने की सजा मिलेगी । उसी प्रकार 1439 ई0 में फ्रांस के राजा ने एक कानून पास किया कि व्यापारियों को सामंतो के द्वारा ज्यादा लुटने से बचाया जाए। उसी साल फ्रांस में राष्ट्रीय कर जिसे टैली कहते है पहले पहल लगाया गया जो नियमित रूप से सबको पैसे के रूप में देना पड़ता था। अब राजा नियमित रूप से वेतनधारी सेना रखने लगा और राजकर्मचारियों को भी बहाल करने लगा। वह मध्यमवर्ग से जज, मंत्री और नागरिक अधिकारिक को भी भर्ती करने लगा। 15 वीं शताब्दी में फ्रांस के जाकी कोर नामक लियोन शहर का बैंकर अपने समय का बहुत धनी व्यक्ति राजा का मंत्री बना। इस तरह 15वीं शताब्दी का अंत होते–होते इंग्लैड, फ्रांस, बैल्जियम और स्पेन में पूरे के पूरे राज्य एक आर्थिक इकाई बन गए और राजा की प्रधानता कायम हो गयी। स्थानीयता पर आधारित सामंतवाद धाराशायी होने लगा।

1.4.6. प्रौद्योगिकी और भूमि तथा श्रम की उत्पादकता

मध्ययुगीन यूरोप में प्रौद्योगिकी के निम्न स्तर की बात को हेनरी पिरेन तथा मॉरिस डॉब दोनों ने ही समर्थन किया परन्तु इस बात पर उन्होंने कुछ नहीं कहा कि इस लंबे अंतराल में प्रौद्योगिकी में काफी परिवर्तन दर्ज हुआ। पॉचवीं से आठवीं या नवीं शताब्दी के मध्य दक्षिणी यूरोप और भूमध्यसागर के आसपास मे क्षेत्रों में बीजःउपज का अनुपात लगभग 1:1.6 या अधिक से अधिक 1:2.5 था। अर्थ है 10 किलो बीज बोने पर अधिकतम सिर्फ 25 किलो अन्न का उत्पादन। इस समय उपलब्ध प्रौद्योगिकी अतिसाधारण थी। इस समय हल के रूप में खुरचने वाला हल का इस्तेमाल होता था जिससे जमीन की गहरी खुदाई नहीं हो पाती थी। इससे जमीन की उर्वरकता का अधिकतम दोहन नहीं हो पाता था। फलस्वरूप बड़े–बड़े खेतों में फसल लगाना पड़ता था और श्रम भी ज्यादा लगता था। श्रमिकों के अधिक मॉग के कारण सामाजिक स्तर पर भी तनाव बना रहता था।

परंतु मध्य काल में कृषि प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास हुआ। कृषि के क्षेत्र में भारी हल का प्रयोग, दो–खेत व्यवस्था के स्थान पर तीन–खेती व्यवस्था, बारी–बारी से फसल उगाना (crop rotation) नई फसलें जैसे मटर, बीन्स आदि का उपजाने की शुरूआत हुई। भारी हल खींचने के लिए बैल तथा बाद में घोड़े का प्रयोग किया गया। इससे 12वीं शताब्दी में श्रम और भूमि की उत्पादकता में वृद्धि हुई। अब बीजःफसल का अनुपात 1:4 हो गया यानि अधिशेष की मात्रा तिगुनी हो गई थी। इसके अलावा पनचक्की एवं पवनचक्की के प्रयोग के कारण मानव श्रम की आवश्यकता भी कम हो गई। परिणामस्वरूप कृषि के लिए अतिरिक्त मानव संसाधन उपलब्ध थे। परंतु इस तरह की प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल हेतु अधिक पूँजी की जरूरत होती थी जिसके कारण किसानों के बीच पहले से मौजूद मतभेद को और अधिक विस्तरित कर दिया। अब छोटे किसान भी कृषि में अधिक पूँजी निवेश करने लगा और बाजार में उत्पाद को बेचने लगा। परंतु कृषि के वाणिज्यिकरण के कारण और असमय फसल के नष्ट होने के चलते उसे भूमिहीन मजदूर बनने को बाध्य होना पड़ता था। इस प्रकार मजदूर, भूमि और उपज तीनों बाजार के द्वारा निर्धारित होने लगे इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप किसानों के बीच भेद और तीव्र हो गया जो सामंतवाद के पतन के लिए जिम्मेदार साबित हुआ।

1.4.7. जनसंख्या में वृद्धि

1960–70 के दशक में नव–माल्थसवादियों ने भी सामंतवाद के पतन की व्याख्या अपने तरीके से की। इनका मानना है कि जनसंख्या के पैटर्न में आए बदलाव के कारण सामंती अर्थव्यवस्था का पतन हुआ। ये आगे कहते हैं कि आर्थिक ढॉचे में दीर्घकालीक परिवर्तन में जनसंख्या की बड़ी भूमिका थी। इमैनुएल लि रॉय लादूरी (Emmanuel Le Roy Ladurie) ने यह तर्क दिया कि मध्ययुगीन यूरोप में बढ़ी हुई आबादी का बोझ सहन करने में कृषि अपने को असमर्थ पा रही थी। जनसंख्या में वृद्धि के साथ–साथ उत्पादकता में गिरावट, जोतों का विखंडन, मजदूरी मे गिरावट और लगान में वृद्धि के कारण कृषि संकट पैदा हो गया। इसलिए 1314–15 ई0 में अकाल और 1348–51 में प्लेग ने ऐसा कहर बरपाया कि यूरोप की एक चौथाई जनसख्या समाप्त हो गई। इससे मध्ययुगीन यूरोप का संपूर्ण संतुलन बिगड़ गया और पूँजीवाद की और संक्रमण हुआ।

1.4.8. पुनर्जागरण और धर्मसुधार

पुनर्जागरण एवं धर्मसुधार आंदोलन भी सामंतवाद के पतन में अपना योगदान दिया। पुनर्जागरण ने मानवतावाद और राष्ट्रीय–राज्यों के उदय का मार्गा प्रशस्त किया। इसके साथ ही साथ तर्क और विवेक पर आधारित एक ऐसी विचारधारा का जन्म हुआ जो सामंती विचारधारा से मेल नहीं खाती थी। धर्मसुधार आंदोलन में उस चर्च की महत्ता पर कुठाराघात किया जो सामंती व्यावस्था का एक मुख्य आधार था। मठो की जमीन जब्त कर ली गयीः पादरियों के विशेषाधिकार छिन लिये गये और रूढ़िवादी विचारधारा पर प्रहार हुए। दूसरे शब्दों में सामंतवाद के आधार स्तंभों को हिला दिया गया।

1.4.9 पूंजीवाद का विकास

यूरोप में पूंजीवाद के विकास को तीन चरणों– प्रारंभिक पूंजीवाद(1200 ई.–1750 ई.), पूर्ण पूंजीवाद(1750 ई.–1914 ई.) और आधुनिक पूंजीवाद(1914 ई.–वर्तमान) में देखा जा सकता है। पूंजीवाद का विकास सबसे पहले उन देशों में प्रारंभ हुआ जिनका शासन अपेक्षाकृत अधिक उदार था। पूंजीवाद के उदय के कारणों पर यदि दृष्टि डाली जाये तो यह स्पष्ट होता है कि लोहे के अधिकाधिक दोहन ने उत्पादन की प्रक्रिया में तेजी ला दी। अब कृषि एवं उद्योगों का त्वरित विकास होने लगा एवं खनन की तकनीकों में भी महत्वपूर्ण सुधार हुए, बहुमूल्य धातुओं का उत्पादन भी बढ़ने लगा। अमेरिका से भी भारी मात्रा में सोना, चांदी लायी गयी। मौद्रिक अर्थव्यवस्था में तेजी से वस्तु विनिमय की प्रणाली समाप्त होने लगी।

सामुद्रिक–परिवहन में भी कुतुबनुमा और नयी प्रकार के पालों से क्रांतिकारी परिवर्तन हुए एवं अनेक देशों की खोज की गयी और उपनिवेश स्थापना का दौर प्रारंभ हुआ, इसने व्यापार के विस्तार को बढ़ावा दिया जिससे पूंजी में आशातीत वृद्धि हुई। इन सबके परिणामस्वरूप मध्ययुगीन श्रेणियां(शिल्पी संघ)कमजोर होते गये और व्यावसायिक वर्ग शक्तिशाली होता गया। उन्नत किस्म के उपकरणों के निर्माण एवं उनके प्रयोग ने पूंजीवाद को प्रारंभ में बहुत योगदान दिया था, इससे जहां समय की बचत हुई, निर्माण में तेजी आयी वहीं निर्मित वस्तुओं की गुणवत्ता में भी सुधार हुआ।

जैसे ही व्यवसाय की मात्रा बड़ी वैसे ही बैंकिंग व्यवस्था भी शुरू हो गयी और सर्वप्रथम फ्लोरेंस के मेडिसी परिवार ने पहली बैंकिंग प्रणाली की आधारशिला रखी, और शीघ्र ही यूरोप के प्रायः सभी प्रमुख नगरों में इस बैंक की शाखाऐं स्थापित हो गयीं। बैंकिंग व्यवस्था की साख प्रणाली से व्यापार को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। शीघ्र ही व्यापार एवं वाणिज्य को वैश्विक स्तर में चलाने के लिए संयुक्त पूंजी कम्पनियों की स्थापना होने लगी। इंग्लैण्ड ने सर्वप्रथम 1550 ई. के दसक में रूस और गुयाना में व्यापारिक गतिविधियों के लिए एक संयुक्त कंपनी बनायी थी, शीघ्र ही और संयुक्त कंपनियां बनने लगीं और 1600 ई. में इंग्लैण्ड में लगभग 12 संयुक्त पूंजी कंपनियां कार्यरत थीं, जिनमें से एक ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी थी। आधुनिक पूंजीवादी चरण में हम बीमा कंपनियों का विकास भी देखेते हैं जो व्यापार में जोखिम को कम करने के उद्देश्य से निर्मित हुईं थीं।

1.4.10 पूंजीवाद एवं सामन्ती व्यवस्था में अंतर

पूंजीवादी व्यवस्था में एक पूंजीपति अपने धन को जमा करके नहीं रखता है वरन् इसके विपरीत वह लाभ कमाने के उद्देश्य से उसका निवेश करता है। वस्तुओं का उत्पादन भी बाजार में बेचकर मुनाफा कमाने के लिए किया जाता है, इस व्यवस्था में बाजार प्रणाली सक्रिय रहती है। इसके विपरीत सामंती व्यवस्था में लाभ कमाने के लिए धन का निवेश नहीं किया जाता है और वस्तुओं का उत्पादन भी स्थानीय उपभोग के लिए ही होता है एवं बाजार प्रायः जड़वत् बना रहता है।

1.4.11 पूंजीवाद के प्रमुख लक्षण

पूंजीवादी व्यवस्था में निजी सम्पत्ति का अत्यधिक महत्व है और सामान्यतः इस व्यवस्था में सरकार ऐसे प्रावधान करती है जिससे निजी सम्पत्ति सुरक्षित रह सके, व्यक्ति अपनी सम्पत्ति की वसीयत कर उसे अपनी मृत्यु के बाद अपने उत्तराधिकारियों को देने का अधिकार रखता है। इस व्यवस्था में व्यक्ति को व्यवसाय चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है और पूरी अर्थव्यवस्था लाभ कमाने के उद्देश्य से ही काम करती है।प्रतिस्पर्धा इस व्यवस्था का एक अन्य आवश्यक अंग है।सभी खरीददार एवं सभी विक्रेता मिलकर ही साधनों एवं वस्तुओं के दाम निर्धारित करते है, अकेले खरीददार या अकेले विक्रेता के कार्यों से कीमतें प्रभावित नहीं की जा सकती हैं। यदि प्रतिस्पर्धा स्वस्थ है तो उत्पादन में कार्यकुशलता की वृद्धि होती है।

1.5 सारांश

कुल मिलाकर इतिहासकार जनसंख्या में परिवर्तन और व्यापार की भूमिका को सामंती अर्थव्यवस्था के रूपान्तरण के लिए जिम्मेदार मानते है। आर्थिक इतिहासकार एम.एम. पोस्टन एवं ई.ले. राय लादूरी जनसंख्या के विस्तार एंव संकुचन के संदर्भ में सामंती व्यवस्था के पतन हेतु व्याख्यायित करते है। दूसरी तरफ हेनरी पिरेन और ई0 वैलरस्टीन जैसे इतिहासकार व्यापार की भूमिका पर बल देते है। एक अन्य इतिहासकार राबर्ट ब्रेनर ने 1976 में अपने लेख 'एग्रेरियन क्लास स्ट्रक्चर एंड इकानोमिक डेवलपमेंट इन प्री–इंडस्ट्रियल यूरोप' में यह दलील दी है कि 'जनसंख्या मॉडल' एवं 'व्यापार मॉडल' एवं व्यापार मॉडल सामंती व्यवस्था के भीतर के परिवर्तन को स्पष्ट करने में असमर्थ है। इन्होने इन परिवर्तनों के पीछे मध्यकाल में हो रहे वर्ग–संघर्ष को वास्तविक कारण मानते है। इस वर्ग संघर्ष के दो मुख्य समूह थे किसान और सामंती समुदाय। ब्रेनर की भॉति पेरी एंडरसन भी सामंतवाद से

पूॅजीवाद की संक्रांति में राजनीतिक कारकों की भूमिका मानते है। वह शहरों और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्व को आंशिक रूप से मानते है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामंतवाद का पतन उन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक व धार्मिक तथा बौद्धिक वातावरण में हुआ, जिनका उदय एंव विकास बड़ी तेजी से 13वीं शताब्दी में होने लगा। धर्मयुद्ध, वाणिज्यिक कांति, पूॅजीवाद की ओर संक्रमण, राष्ट्रीय–राज्यों का उदय, जनसंख्या में परिवर्तन, कृषि अर्थव्यवस्थां में बदलाव, अकाल, महामारी आदि ऐतिहासिक घटनाक्रमों ने एक साथ मिलकर सामंतवाद के पतन में अपना योगदान दिया। सामंतवाद का पतन उन देशों में पहले हुआ जहॉ उपयुक्त आधुनिक शक्तियों का झौंका पहले आया। पश्चिमी यूरोपीय देशों सामंतवाद का पतन पहले हुआ और मध्य एवं पूर्वी यूरोपीय देशों में बाद में।

सत्य/असत्य बताऍः

- सामंतवाद की मुख्य विशेषताऍ थी– राजनीतिक सत्ता का विखंडीकरण एवं निजी लोगों के हाथों में सैन्य शक्ति का संकेन्द्रण।
- सामंतवाद के पतन हेतु सामंतों के बीच अनवरत युद्ध ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- इंग्लैंड में गुलाबों की लड़ाई के दौरान राजा एडवर्ड पंचम था।

रिक्त स्थानों की पूर्ति करेः

- 1358 में ग्रैंड जैकारी नामक विद्रोह .... में हुआ था।
- मेडिवल सिटीजः देअर ओरिजन एण्ड रिवाइवल ऑफ ट्रेड के लेखक .... है।
- किसानों के बीच विभेदीकरण किस प्रकार सामंतवाद के पतन को आगे बढ़ाया ?
- सामंतवाद के पतन के लिए आंतरिक संघट किस प्रकार अपनी भूमिका निभाई ?

1.6 शब्दावली

सामंतवाद – 9वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी के मध्य पश्चिमी और मध्य यूरोप में एक राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्रणाली थी जिसमें अधिपतियों की संप्रभुता के साथ–साथ राजनीतिक विखंडीकरण प्रमुख विशेषता थी।

बूलैंवीयै (Boulainvillers) : अठारहवीं शताब्दी का एक फ्रांसीसी दार्शनिक

मौन्टेसक्यू : फ्रांसिसी दार्शनिक (1689–1755)। 'द स्पिरिट ऑफ लॉस' इनकी प्रसिद्ध कृति है।

मैनोर : सामंती व्यवस्था में आर्थिक उत्पादन एवं सामाजिक जीवन का एक आधारभूत इकाई। इसमें कई छोटे–छोटे आश्रित खेत होते थे जिस पर अधिपति का सीधा अधिकार होता था और कृषि दासों और इससे बंधे किसानो से खेती कराई जाती थी।

गुलाबों की लड़ाई (1455–85) : 15वीं शताब्दी में इंग्लैंड में सामंतो के लड़ाई में एडवर्ड चतुर्थ के द्वारा बंदूक का प्रयोग किया गया था जिसमें सामंतो कां बहुत क्षति पहुॅची।

जैकरी विद्रोह : 14 वीं सदी के पूर्वार्ध में पश्चिमी यूरोप में सामंती आहरण के बढ़ते बोझ के खिलाफ किसानों के द्वारा प्रतिरोध खड़ा किया गया था। इसी विद्रोह के कम में 1358 में फ्रांस में जो किसान विद्रोह हुआ था, ग्रैंड जैकरी के नाम से जाना जाता है।

कैरोलिंजी (Carolingian) : सातवीं शताब्दी में यह फ्रैकिश शासकीय वंश सत्ता में आया। शार्लमान्य के नेतृत्व में उसने पश्चिम में रोपन साम्राज्य के पहले के अधिकांश क्षेत्रों को अपने अधीन कर लिया। नवीं शताब्दी के अंत में इस साम्राज्य का पतन हो गया।

शार्लमान्य : फ्रैंक्स का महान राजा चार्ल्स (771–814) जिसने पश्चिम में रोमन क्षेत्रों को समेटकर एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया।

धर्मयुद्धः 11वीं और 13वीं शताब्दी के बीच ईसाइयों की प्रतिरक्षा में मुसलमानों के विरूद्ध लड़ा जाने वाला युद्ध।

काली मौत (Black death) : यूरोप में 14वीं शताब्दी के मध्य में प्लेग महामारी के रूप में फैली थी और अनुमानतः इसमें यूरोप की आबादी का एक तिहाई से एक चौथाई के बीच लोगों की मृत्यु हो गई थी।

मैनर : सामंती व्यावस्था में आर्थिक उत्पादन के साथ–साथ सामाजिक जीवन का भी एक आधारभूत इकाई थी जिस पर कई छोटे–छोटे आश्रित खेत शामिल होते थे। इस पर अधिपति का कृषि दासों पर सीधा अधिकार होता था।

1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

- हेनरी पिरेन, मेडिवल सिटिज : देयर आरिजिन ऐंड द रिवाइवल ऑफ ट्रेड, प्रिंसटन, 1926
- मॉरिश डॉब, स्टडीज इन द डेवलमेंट ऑफ कैपिटलिज्म, लंदन, राउटलेज, 1963
- रोडनी हिल्टन, (संपा) दि ट्रांजिशन फ्राम फयूडलिज्म टू कैपिटलिज्म, लंदन, वर्सो 1984
- मार्क ब्लाक, फ्यूडल सोसाइटी, 2 खंड, शिकागो, 1961
- हरबंस मुखिया, ''मॉरिस डॉबस एक्सप्लेनेशन ऑफ दि डिकलाइन ऑफ फयूडलिज्म इन वेस्टर्न यूरोप ए क्रिटीक,'' आई.एच.आर. खंड 6, नं. 1–2, जुलाई 1979– जनवरी 1980 पृ0 154–184.
- अरविंद सिन्हा,: संक्रातिकालीन यूरोप, दिल्ली, मनोहर 2010.

1.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. हेनरी पिरेन ने सामंतवाद के पतन हेतु व्यापार के उत्थान एवं शहरी केन्द्रों के उदय का किस प्रकार जिम्मेदार माना है ?

इकाई दोः पुनर्जागरण

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 पुनर्जागरण
2.3.1 पुनर्जागरण के तत्व
2.3.2 पुनर्जागरण के कारणः
2.3.3 पुनर्जागरण और धर्मयुद्ध
2.3.4 अरब संपर्क
2.3.5 कुबलाई खॉ का दरबार
2.4. पुनर्जागरण की विशेषताऍं
2.4.1 तर्क पर बल
2.4.2 प्रयोग पर बल
2.4.3 मानवतावाद का समर्थन
2.5 पुनर्जागरण का स्वरूप
2.6 पुनर्जागरण की अभिव्यक्ति
2.6.1 साहित्य के क्षेत्र में
2.6.2 कला के क्षेत्र में
2.6.3 स्थापत्य एवं मूर्तिकला
2.6.4 दर्शन
2.6.5 विज्ञान
2.6.6 भौगोलिक खोंजें
2.6.7 अर्थजगत पर प्रभाव
2.6.8 सामाजिक जीवन पर
2.7 पुनर्जागरण का महत्व एवं परिणाम
2.7.1 भौतिकवादी दृष्टिकोण का विकास
2.7.2 बुद्धिजीवी दृष्टिकोण का विकास
2.7.3 पुरातन के प्रति मोह जगाना
2.7.4 अभिव्यक्ति की प्रतिष्ठा
2.7.5 राज्य एवं धर्म का पृथक्करण एवं राष्ट्रीयता का विकास
2.8 निष्कर्ष
2.9 शब्दावली
2.10 ग्रंथ सूची
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

युरोपः आधुनिकता की ओर खण्ड के अन्तर्गत यह दूसरी इकाई है जिसमें हम पुनर्जागरण से संबंधित विभिन्न पहलुओं को समझने की कोशिश करेंगे। पुनर्जागरण का शब्दिक अर्थ होता हैः पुनर्जिवित होना, पुनर्जागृत होना इत्यादि। इस रूप में पुनर्जागरण शब्द का अर्थ, महत्तव और प्रयोग मध्यकाल से आधुनिक काल के बीच संक्रमण के दौरान व्यक्त होने वाला बौद्धिक, कलात्मक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। इसने यूरोप के इतिहास में महत्वपूर्ण और खासकर मानव–जीवन से संबंधित समस्याओं के संबंध में लोगों के दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन लाया । इसके साथ–साथ इसकी अभिव्यक्ति केवल कला, साहित्य, दर्शन, विज्ञान के क्षेत्र में ही नहीं हुई परंतु राजनीतिक, अर्थिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में भी हुई। इसे वृहत तौर पर मध्ययुग की विराधी विचारधारा माना गया है और विशेषतः इटली के संदर्भ में पुनर्जागरण चेतना को मानववाद से जोड़ दिया गया है। सही अर्थो में पुनर्जागरण विश्व और मानव की खोज था। इसने आधुनिक सभ्यता का आधार निर्मित किया जिसकी अभिव्यक्ति गणतंत्रवादी स्वतंत्रता के रूप में हुई। यह अध्ययन की एक प्रणली ही नहीं वरन् एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति भी था।

2.2 उद्वेश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- बता सकेंगे कि पुनर्जागरण का अर्थ क्या होता है।
- समझा सकेंगे कि मध्यकाल से आधुनिक काल के संक्रमण में पुनर्जागरण का क्या महत्तव रहा।
- समझ सकेंगे कि पुनर्जागरण के उदय होने के क्या कारण थे ?
- बता पायेंगे कि पुनर्जागरण की विशेषताओं, स्वरुप और महत्व क्या थे।

2.3 पुनर्जागरण

'रिनांसा' (पुनर्जागरण) शब्द की उत्पत्ति एक इतावली कला सिद्धांतकार जोर्जिया वसारी (1511–1574) के लेखनों से हुई। उन्होंने पिछली दो सदियों का वर्णन करने के लिए रिनस्सिटा शब्द का प्रयोग किया। उसी समय फ्रांसीसी विद्वान पीयर बेकोन (1518–1564) ने 'रिनांसा' शब्द का प्रयोग किया, जिसका अभिप्राय नए भाव में पुराशास्त्रीय प्राचीनता से था। इस आंदोलन की शुरूआत चौदहवीं सदी के आरंभ में हुई।

पुनर्जागरण एक आंदोलन नहीं बल्कि एक मनोदशा, जिसमें वर्तमान की मनोदशा, अतीत की मनोदशा, बुद्धिजीवी की मनोदशा सम्मिलित था। पुनर्जागरण ने अपनी बुद्धि, तर्क के आधार पर अपने युग के सारे परंपरागत व्यवस्थाओं पर प्रश्न खड़ा किया तथा एक वैकल्पिक एवं आधुनिक व्यवस्था के कार्यक्रम की शुरुआत की। इसके परिणामस्वरुप मध्यकाल की आस्थावादी मनोदशा, तर्कवादी आधुनिक काल की मनोदशा में रुपान्तरित हो गया। इसके साथ ही साथ सांस्कृतिक एवं वैचारिक भावनाओं को मूर्त्त रुप देने में पुनर्जागरण एक सर्वाधिक सशक्त आधार बना। पुनर्जागरण मनुष्य की बौद्धिक और कलात्मक ऊर्जाओं की एक ऐसी अभिव्यक्ति थी जिसके द्वारा यूरोप ने मध्यकाल से निकल कर आधुनिक काल में प्रवेश किया इसने जीवन के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पक्षों में भी व्यापक परिवर्तन लाया।

पुनर्जागरणकालीन साहित्य मनुष्य और मनुष्य से संबंध सभी अवयवों से जुडा था और इसकी रचना जनसामान्य की भाषाओं मे हुई थी। इस दृष्टि से पुनर्जागरण कालीन साहित्य मध्ययुगीय साहित्य से भिन्न था जिसमें धर्म की बहुलता थी और जिसकी रचना लैटिन भाषा में हुई थी। इसके अलावा, कला भी धार्मिक बंधनों से मुक्त होकर अधिक यथार्थवादी हो गयी। कला अब जीवन्त एवं आकर्षक हो गयी। लियोनार्दो द विंची (विंचि), माइकल ऐंजलों एवं राफेल आदि इस युग के प्रसिद्व कलाकार थे। इस युग में मूर्तिकला स्थापत्य कला की अधीनता से मुक्त होकर एक स्वतंत्र कला के रुप में स्थापित हुई और साथ ही एक धर्मनिरपेक्ष उद्वेश्य से भी प्रेरित होने लगी। पुनर्जागरण चेतना के प्रभाव में गोथिक स्थापत्य का अवसान हो गया।

पुनर्जागरण शब्दावली से उन सभी बौद्धिक परिवर्तन का बोध होता है जो मध्ययुग के अन्त में दृष्टिगोचर हो रहे थे। परिवर्तन से तात्पर्य सामान्तवाद की अवनति, प्राचीन साहित्य का अध्ययन, राष्ट्रीय राज्यों का उत्थान, आधुनिक विज्ञान का प्रारंभ, नये व्यापारिक मार्गो की खोज, प्रारंभिक पूँजीवाद की शुरुआत इत्यादि। इतिहासकार डेविस के शब्दों में पुनर्जागरण शब्द "मानव स्वातन्त्रय प्रिय साहसी विचारों को जो मध्ययुग में धर्माधिकारियों द्वारा जकड़े एवं बंदी बना लिए गये थे, व्यक्त करता है।" फ्रांस के प्रसिद्ध इतिहासकार मूल्स मिशिलेट ने पुनर्जागरण की व्याख्या करते हुए दो ऐसे व्यापक आयामों की ओर संकेत दिया है जिनमें पुनर्जागरण सुधारवादी समग्र प्रयत्न आ जाते है। ये दो आयाम है – "दुनिया की खोज" और "मनुष्य की खोज।" दुनिया की खोज से तात्पर्य था – 15वीं–16वीं शताब्दी की उन भौगोलिक उपलब्धियों से है जिसने अटलांटिक, प्रशांत और हिंद महासागर को व्यापार के लिए खोल। और पुरानी दुनिया के लोगों को अमेरिका की नई दुनिया, दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया का परिचय कराया। "मनुष्य के खोज" के अन्तर्गत मानव शक्ति के उस पक्ष को लिया गया, जिसके द्वारा उसने मध्यकालीन पोपशाही को अस्वीकार किया तथा विकसीत एवं स्वतंत्र दृष्टि से अवलंवन किया।

2.3.1 पुनर्जागरण के तत्व

- उत्सुकता एवं जिज्ञासा और खोजी दृष्टि का उदय। (Curiosity and spirit of enquity)
- साहसिक मनोभावों का उदय। (Spirit of adventure)
- व्यक्तिवाद (Individualism)– आत्मतुष्टि और अपनी उपलब्धियों से गौरव की अनुभूति व्यक्तिवाद का सार है।
- धर्मनिरपेक्षता– इसका अभिप्राय है (क) सांसारिक कार्यो में अधिक अभिरुचि लेना तथा (ख) वैसे पादरियों की आलोचना जो आत्मत्याग की बात करते है परंतु उनका पालन नहीं करते।
- मनवतावाद– इसका अर्थ हैं मनुष्य की विशिष्ट गरिमा को पहचानना। इस समय मनुष्य को सभी प्राणियों से सर्वश्रेष्ठ माना गया तथा उसकी प्रतिभा का सम्मान किया जाने लगा।
- ऐतिहासिक आत्मचेतना (Historical Self consciousness)– यह इतिहास के प्रति बदलती हुई दृष्टि का परिचायक था।

बोध प्रश्नः

1 पुनर्जागरण का क्या अर्थ है ?

2 पुनर्जागरणकालीन कला एवं सहित्य की क्या विशेषताएँ थी ?

3 व्यक्तिवाद और मानववाद के विकास में पुनर्जागरण क्या भूमिका निभायी ?

2.3.2 पुनर्जागरण के कारण

पीटरबर्क के अनुसार, प्रबुद्धवादी लेखकों ने इस घटना के दो कारण बताए–स्वतंत्रता और इटलीवासियों की संपन्नता। शाफ़्रट्सबरी मानते थे कि चित्रकला का पुनर्जीवन वेनिस, जेनोआ और फ्रलोरेंस जैसे स्वतंत्र राज्यों में नागरिक स्वतंत्रता के कारण हुआ। सिसमोंडी पुनर्जागरण के विकास में इतावली शहरों की आर्थिक सम्पन्नता तथा स्वतंत्रता का होना के महत्त्व पर बल देते थे। प्रबुद्धवादियों का मानना था कि स्वतंत्रता वाणिज्य को प्रोत्साहित करती है।

पुनर्जागरण का एक प्रमुख कारण आर्थिक तथा व्यापारिक समृद्धि थी। धर्मयुद्धों के क्रम में यूरोप के पूर्वी देशों के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित हुए। व्यापारियों का जमघट जेरूसलम तथा एशिया माइनर के तटों पर होने लगा था। परिणामस्वरूप व्यापार में वृद्धि हुई। व्यापारिक समृद्धि के कारण यूरोपीय व्यापारियों का विभिन्न देशों से संपर्क हुआ जहाॅं वे नये विचारों और प्रगतिशील तत्वों से अवगत हुए। व्यापारिक वृद्धि के कारण नये नगरों का जन्म हुआ। उदाहरण हेतु वेनिस, मिलान, फलोरेंस, न्यूरेमबर्ग आदि का संपर्क विभिन्न क्षेत्रों से स्थापित हुआ। इसके कारण विचारों का भी आदान प्रदान संभव हुआ तथा ज्ञान के विकास में सहायता मिली। व्यापारिक विकास से व्यापारिंयों के पास धन का संकेद्रण बढा। नवोदित व्यापारी वर्ग अब विधार्जन का लाभ उठाया। मध्ययुग में केवल पादरियों को यह अवसर प्राप्त था। अब जनसाधारण भी सहजता से ज्ञान अर्जित कर सकता था।

13वीं –14वीं शताब्दियों में व्यापारिक नगर शक्तिशाली नगर–राज्य बन गए और वे आस–पास के ग्रमीण इलाकों के राजनीतिक और आर्थिक जीवन पर अपना प्रभुत्व जमाने लगे। इस प्रकार शहरी केद्रों में रहने से इटली का अभिजातवर्ग सार्वजनिक मामलों में हिस्सा लेने लगा। नये धनाढय समुदायों ने अभिजातवर्ग का दर्जा हासिल करने की कोशिश की। इसके अलावा इटली में कुलीन वर्ग की स्थिति भी यूरोप के लोगों के कुलीन वर्ग से अलग थी। इटली के व्यवसायिक वर्ग के द्वारा नये विचारों, साहित्य कला को प्रोत्साहन दिया गया। इस प्रकार इटली में नयी विचारधारा के उद्‌भव के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार हुई।

इसके अतिरिक्त इटली का भौगोलिक अवस्थिति इसे पूर्व और पश्चिम के बीच का प्रकृतिक द्वारा बना दिया था। वेनिस, फलोरेंस, जेनोआ अदि नगरों का एशियाई देशों के साथ निर्बाध रूप के व्यापार चलता था।

2.3.3 पुनर्जागरण और धर्मयुद्ध

पुनर्जागरण की स्थापना में धर्मयुद्ध का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन धर्मयुद्धों के परिणामस्वरूप यूरापवासियों का पूरब के लोगों के साथ संपर्क हुआ, जो ज्ञान के प्रकाश से आलोकित थे। धर्मयुद्धों ने भौगोलिक खोजों को प्रोत्साहन दिया। परिणामस्वरूप यूरोपीय लोगों द्वारा लंबी यात्राएँ किया जाने लगा और बौद्धिक विकास को बढ़ावा मिला। अरस्तु के वैचारिक ग्रंथ, अरबी अंकगणित, बीजगणित, दिशासूचक यंत्र, कागज आदि का यूरोपीय लोगों से संपर्क हुआ।

1453 में पूर्वी रोमन साम्राज्य के पतन के बाद बाइजेंटाइन साम्राज्य की राजधानी कुस्तुनतुनिया पर उस्मानी तुर्की ने अपना आधिपत्य कायम किया। कुस्तुनतुनिया यूनानी, ज्ञान, दर्शन, विज्ञान, स्थापत्य कला एवं संस्कृति का मुख्य केन्द्र थी। परंतु तुर्को के उपेक्षापूर्ण नीति के कारण विद्वानों, कलाकारों, दर्शनिको और स्थापत्यकारों को कुस्तुनतुनिया छोड़ने के लिए मजबूर किया। यहाॅं के बुद्धिजीवी, कलाकार, कारीगर इटली, फ्रॉस, इंग्लैण्ड आदि पश्चिमी यूरोप के देशों में जाकर बस गए। पुनः इनके द्वारा क्लासिकल साहित्य एवं कला के विकास को बढ़ावा

दिया गया। कुछ लोग 1453 की इस घटना को इतना महत्वपूर्ण मानते हैं कि पुनर्जागरण का प्रारंभ इसी समय से मानने लगे।

2.3.4 अरब संपर्क

मध्यकाल में अरबों के संपर्क से यूरोपीयों ने कागज बनाने की कला सीख ली। फिर जर्मनी के जॉन गुटेनबर्ग ने 15वीं शताब्दी के मध्यकाल में टाईप मशीन का अविष्कार किया। प्रारंभिक मुद्रण यंत्र के विकास ने बौद्धिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया। धीरे–धीरे छापाखाना का प्रसार इंग्लैंड, जर्मनी, स्पेन, फ्रांस आदि देशों में भी हो गया। कागज और मुद्रण यंत्र के अविष्कार ने प्रकाशन तंत्र को विकसित किया। पुस्तक–मुद्रण के आविष्कार के बाद अधिकाधिक लोगों के लिए यह जानना सम्भव हो गया कि दुनिया में क्या हो रहा है। ज्ञान अब मठों और विश्वविद्यालयों के दीवारों के पीछे ही सीमित न रह कर पढ़े–लिखे लोगों के कहीं अधिक व्यापक दायरे में फैलने लगा। अब राजनीतिक और दार्शनिक विचार ज्यादा से ज्यादा लोगों के पास पहुॅचने लगा परिणामस्वरूप रुढ़िवादिता और अंधविशवास को ठेस पहुॅचा।

2.3.5 कुबलाई खॉ का दरबार

नवीन चेतना के प्रचार एवं प्रसार में मंगोल शासक कुबलाई खॉ के दरबार का भी महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। इनका दरबार विद्वानों, धर्म प्रचारकों, व्यापारियों का केन्द्र बन गया था। मंगोल राज्यसभा पोप के दूतों, भारत के बौद्ध भिक्षुओं, पेरिस, इटली के विद्वानो तथा चीन के दस्तकारों, भारत के गणितज्ञों एवं ज्यातिषचार्यो आदि सभी से सुशोभित था। अतः इस युग में पूर्व एवं पश्चिम का वास्तिवक संपर्क हुआ जिसका यूरोप के लोगों पर काफी प्रभाव पड़ा।

बोध प्रश्नः

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1 पुनर्जागरण के उदय के प्रमुख कारण क्या थे ?

लघुउत्तरीय प्रश्न

2 धर्मयुद्ध से आप क्या समझते है ?

3 कुस्तुनितिनिया के पतन के क्या कारण थे ?

रिक्त स्थान भरिए

क टाइपमशीन के आविष्कारक .... है।

ख पूर्वी रोमन साम्राज्य का पतन .... ई0 में हुआ था।

2.4 पुनर्जागरण की विशेषताऍ

2.4.1 तर्क पर बल

पुनर्जागरण ने मध्ययुगीन धर्म और परंपराओं से नियंत्रित चिंतन को मुक्त कर तर्क को बढ़ावा दिया। इस युग के प्रारंभ में अरस्तु के तर्क का गहरा प्रभाव पड़ा। पेरिस, आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज आदि विश्वविद्यालय ने तर्क के सर्वोच्चता को स्थापित किया।

2.4.2 प्रयोग पर बल

रोजर बेकन प्रयोगात्मक खोज प्रणाली का अगदूत था। प्रयोग के आधार पर ही गैलिलियों ने कॉपरनिकस के सिद्धांत को अकाट्य साबित किया।

2.4.3 मानवतावाद का समर्थन

मानवतावाद का अर्थ है– मानव जीवन में रुचि लेना, मानव की समस्याओं का अध्ययन करना, मानव का आदर करना। 15वीं शताब्दी के मानवतावादी आंदोलन के महत्व में तीन बातें उल्लेखनीय हैं– क. इटली के मानवतावादियों ने मानव के बौद्धिक विकास और सतत् चिंतन मे सहयोग किया। ख. मानवतावादियों द्वारा की गई ग्रीक साहित्य की पुनः स्थापना ने चर्च के लेखों और साहित्य का स्थान ले लिया। ग. आलोचनावाद का शुरूआत हुआ।

2.5 पुनर्जागरण का स्वरूप

इस आंदोलन की प्रकृति तथा महत्ता बदलते दृष्टिकोणों एवं व्याख्या के साथ बदलती रही है। इसे एक सर्वमान्य तथा सर्वग्राही अर्थ देना काफी कठिन है। पुनर्जागरण के लौकिक दृष्टिकोण का सबसे महत्वपूर्ण आधार था मानवतावाद। मानवतावाद ने न सिर्फ मानव का बल्कि एक व्यक्ति के महत्व को भी स्थापित किया। अतः व्याक्तिवाद पुनर्जागरण की सांसारिक भावना का दूसरा महत्वपूर्ण स्वरूप है। सांसारिक पुनर्जागरणकालीन सभ्यता शहरी थी। यह मध्यकालीन देहाती सभ्यता से भिन्न प्राचीन यूनानी और रोमन साम्राज्य से मिलती जुलती थी। पुनर्जागरण आंदोलन का मुख्य स्वरूप मध्यवर्गीय था। यह जनसाधारण का आंदोलन नहीं बल्कि मध्यमवर्गीय धनी लोगों के संरक्षण में चलने वाला आंदोलन था। धनी मध्यवर्ग ने समाज में अपने प्रभुत्व की स्थापना हेतु चर्च, पोप और सामंतों की तरह साहित्य और सत्ता को संरक्षण प्रदान किया। इसके अतिरिक्त पुनर्जागरण का स्वरुप तर्कप्रधान इसाईविरोधी तथा सामंतविरोधी था।

यूरोप के देशों में पुनर्जागरण आंदोलन का स्वरूप थोड़ा भिन्न था। इटली की तुलना में यूरोप के उत्तरी देशों में चित्रकारी, मूर्तिकला और स्थापत्य में कम महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके विपरीत मानवतावादी दर्शन और साहित्य ने अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बरगंडी के दरबार में कला और पुनर्जागरण संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र विकसित हुआ। फ्रांस में पुनर्जागरण की अपनी एक अलग विशेषता थी। पुनर्जागरण काल के दौरान बागवानी पर ध्यान दिया गया था। संगीत के विकास में भी उत्तरी यूरोप ने एक नया मानक स्थापित किया।

कार्ल मार्क्स और एंगेल्स ने पुनर्जागरण को कला और अर्थव्यवस्था के बीच संबंध के परिप्रेक्ष्य में रखा अर्थात् सांस्कृतिक एवं भौतिक उत्पादन के बीच संबंध के संदर्भ में। इन्होंने आधार संरचना (base sturcture) के रूप में आर्थिक आधार तथा (super structure) सांस्कृतिक अधिसंरचना (super structure) का निर्माण करता है। अल्फ्रेड वॉन मार्टिन ने भी पुनर्जागरण को व्यक्तिवाद और आधुनिकता की उत्पत्ति का श्रेय देते हुए पुनर्जागरण को 'बुर्जुआ क्रांति' कहकर इसके आर्थिक आधार पर बल दिया।

कुछ अन्य विद्वानों जैसे गारिन अंताल, माइकेल बेक्सेंडल, हांस नैरोन आदि के द्वारा पुनर्जागरण की सामाजिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी। अंताल ने तर्क दिया कि फ्रलोरेंस जैसे शहर को उद्योग तथा व्यापार के कारण बुर्जुआ वर्ग मिला जो कला को संरक्षण प्रदान करता था। बेक्सेंडल ने चित्रकला को संरक्षक तथा कलाकार के बीच सामाजिक संबंध का द्योतक माना है।

बोध प्रश्न–

1 पुनर्जागरण के स्वरुप पर चर्चा करें।
2 क्या पुनर्जागरण एक मानवतावादी आंदोलन था ?
सत्य/असत्य बताइए–
क. रोजर बेकन प्रयोगात्मक खोज प्रणाली का अग्रदूत था।
ख. पुनर्जागरण मानववाद को स्थापित किया।

2.6 पुनर्जागरण की अभिव्यक्ति

पुनर्जागरण काल में पुराने से सामंजस्य का नवीन के निर्माण की शुरूआत हुई। इसने न केवल साहित्य, कला, दर्शन एवं विज्ञान को अपितु मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया।

2.6.1 साहित्य के क्षेत्र में

पुनर्जागरण काल में निज साहित्य की रचना हुई। उसका विशिष्ट महत्व है। इससे पूर्व सहित्य का सृजन केवल लैटिन भाषाओं में होता आ रहा था किंतु पुनर्जागरण काल में इनका अध्ययन अध्ययापन यूरोपीय भाषाओं में किया जाने लगा। विभिन्न देशों के लोग अपनी–अपनी मातृभाषाओं में सहित्य का सृजन करने लगे जिससे इटालियन, फ्रेंच, स्पेनिश, पुर्तगाली, जर्मन, अंग्रेजी, डच, स्वीडीश, आदि भाषाओं का विकास हुआ। पेट्रार्क को इतावली पुनर्जागरण साहित्य का पिता कहा जाता है। पेट्रार्क की कविताओं में नवीनता दृष्टिगोचर होती है। पेट्रार्क ने समूचे यूरोप में मानवतावादी विचारधारा को प्रोत्साहित किया। बोकाचियो गद्य साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। दॉते को इतावली कविता का पिता कहा जाता है। दॉते की प्रसिद्ध कृति डिवाइन कामेड़ी है जिसमें एक काल्पनिक जगत की यात्रा का वर्णन है। दॉते की अन्य प्रसिद्ध रचना है द मोनालिसा। लेखकों की दिलचस्पी अब जीते–जागते लोगों में, उनकी खुशियों और गमों में थी। उन्होंने अपने समय की तूफानी जिंदगी के बारे में लिखा, अपनी कविताओं लोगों की सशक्त भावनाओं को व्यक्त किया।

पुनर्जागरण काल के साहित्य की दूसरी प्रमुख विशेषता विषय वस्तु की थी। मध्यकालीन साहित्य का मुख्य विषय धर्म था परंतु इस युग के साहित्य में धार्मिक विषय के स्थान पर मनुष्य के जीवन और इस युग के साहित्यकारों के विचार मध्ययुगीन धर्मसंबधी वाद–विवाद एवं मान्यताओं से मुक्त थे। अब साहित्य आलोचना प्रधान, मानवतावादी और व्यक्तिवादी हो गया स्पेन के लेखक सर्वातेस ने 'डॉन क्विजोट' में सामंतवादी मूल्यों की खिल्ली उड़ाई हैं। लोक साहित्य से उन्होनें मठवासियों और सामंतों की ओर लक्षित व्यंग्य और उपहास को ग्रहण किया।

फ्रॉसीसी साहित्य के क्षेत्र में रेवेलास और मॉन्टेन इसी युग की देन है। रेवेलास ने धार्मिक कट्टरता एवं पुरातनंपथियों के विरोध में आवाज उठायी। उसने अधिकतम संपन्न लोगों, धार्मिक कट्टरता एवं अंधविश्वास पर व्यंगय किये। अंग्रेजी साहित्यकारों में टोमस मूर ने पुनर्जागरण के कार्य को आगे बढ़ाया। इनकी प्रमुख रचना यूटोपिया है। इसमें इग्लैंड के जनजीवन में सामाजिक बुराईयों और आर्थिक दोषों का निरुपण किया। फ्रांसिस बेकन इस युग का सर्वोत्तम निबंधकार थे। इसने तर्क, अनुभव और प्रमाण पर जोर दिया। शेक्सपीयर द्वारा अपनी कृतियों में मानव के सभी संभव भावों और उनकी क्षमताओं तथा दुर्बालताओं का विवेचन किया है। शेक्सपीयर ने मनुष्य के चरित्र को उत्तम दर्शाने के लिए वही कार्य किया जो माइकल एंजेलो ने फ्रांस में किया।

2.6.2 कला के क्षेत्र में

मोना लीसा

चित्रकला पुनर्जागरण काल में सबसे अधिक विकास चित्रकला के क्षेत्र में हुआ। 15वीं शताब्दी तक चित्रकला न केवल धार्मिक विषयों पर सीमित थी परंतु रंगों और विषयों का चयन भी सीमित था। उस काल के चित्रों में उदासी एवं एकरसता झलकती है। परंतु पुनर्जागरण काल में कालाकार की अपनी स्वतंत्र पहचान हो गई। इस समय तक आर्थिक समृद्धि एवं धर्मनिरपेक्ष भाव की आंशिक विजय के कारण कला बहुत हद तक धर्म की सेवा से मुक्त हो गई। पुनर्जागरण काल के कलाकारों ने कला कों जीवन का रूप समझा । उन्होने प्रकाशिकी और ज्यामिति का अध्ययन किया और चित्रों में प्रक्षेपों का उपयोग प्रारंभ किया। मानव के हाव भावों की आंतरिक व्यवस्था को समझने के लिए शरीर–रचना विज्ञान के अध्ययन पर जोड़ दिया गया। इंद्रिय सुख प्राप्त करना कला का न्यायोचित उद्वेश्य हो गया। पुनर्जागरण कला के प्रारंभिक चित्रकारों में जिऐटो महत्वपूर्ण है। इन्होनें पंरपरागत शैली से हटकर मानव एवं प्रकृति पर अनेक चित्र चित्रित किए। जियेटों को चित्रकला का जन्मदाता कहा जाता है। इस काल में लियोनार्दो द विंची (द लास्त सपर, मोनालिसा,) माइकल एंजेलो (लास्ट जजमेंट) और राफेल के चित्रों मे पुनर्जागरण चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई।

लियोनार्डो द विंची (1452–1516) – फ्लोरेंस का रहने वाला लियोनार्डो द विंची इतावली पुनर्जागरण की महानतम हस्तियों में से एक था। वह एक महान चित्रकार और वैज्ञानिक, इंजीनियर और आविष्कारक, वास्तुविद और मूर्तिकार, संगीतज्ञ और कवि था। लियोनार्डो द विंची चित्रकला को कला का मुख्या रुप मानता था। वह मानता था कि उनकी सहायता से मनुष्य संसार का परिचय प्राप्त करता है। सारा संसार उसके चित्र 'मोनालिसा' से परिचित है, जो एक युवा नगरवासिनी का रुपचित्र है। चित्रकार इसमें न केवल बाहरी सादृश्य को ही, बल्कि युवती के आंतरिक व्यक्तित्व, चरित्र और मिजाज को भी पूरी सार्थकता और सटीकता के साथ प्रेषित कर सका है।

2.6.3 स्थापत्य एवं मूर्तिकला

डेविड

पुनर्जागरण चेतना के विकास के साथ कला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास हुआ। इस काल में स्थापत्य एवं मूर्तिकला एक दूसरे से स्वतंत्र होकर अलग–अलग विधा के रूप में स्थापित हुई। पुनर्जागरण चेतना के प्रभाव में गोथिक स्थापात्य का अवसान हो गया। स्थापात्य की नई शैलियों का विकास पहले इटली मे और बाद में यूरोप के अन्य भागों में हुआ। इस युग का प्रमुख मूर्तिकार डोनाटेलों तथा गिबर्ती था।

2.6.4 दर्शन

बुद्धिवादी विकास ने व्यापारियों और दर्शनिकों को प्रोत्साहित किया। इटली के दार्शनिकों ने विश्व को यथार्थ से जोड़ा और प्रकृति को सुव्यवस्थित दैविक नियमों से नियंत्रित बताया। पुनर्जागरण काल के मानववादियों ने

अरस्तु की जगह सिसरो को अपना आदर्श माना और नैतिक दर्शन पर बल दिया। आगे बहुत से दार्शनिक प्लेटोवादी हो गए और फलोरेंस मे प्लेटोनिक सोसाइटी की स्थापना हुई। मैकियावेली एक यथार्थवादी राजनीतिक दार्शनिक था जिसने अपनी पुस्तक 'द प्रिंस' और 'डिसकोर्सेज' में अपने विचार व्यक्त किए हैं। उसने मध्ययुग की आधारभूत राजनीतिक अवधारणा पर चोट की। उसने राज्य की अवधारणा आधुनिक रुप में प्रस्तुत की । उत्तरी यूरोप में इरासमस एवं बेकन महत्वपूर्ण विचारक हुए। इरासमस ने चर्च के धार्मिक आडम्बर पर चोट की और बेकन ने आगमनात्मक दर्शन पर जोर दिया।

2.6.5 विज्ञान

पुनर्जागरण के काल में विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। इस वैज्ञानिक विकास के प्रमुख कारण थे–

1. प्रोटेस्टेंट धर्म ने मनुष्य को धार्मिक नियंत्रण से मुक्त कर स्वतंत्र रुप से विचार करने का अवसर प्रदान किया ।

2. इस युग के विचारकों का मानना था कि ज्ञान प्राप्त करने का सबसे अच्छा तरीका अन्वेषण, अध्ययन–अध्ययापन है न कि महज चिंतन करना फ्रांसिस बेकन ने कहा था ज्ञान की प्राप्ति केवल प्रयोग करने से ही हो सकती है। बेकन के अनुसार जो व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, उसे स्वयं से प्रश्न करना चाहिए। खगोल विज्ञान के क्षेत्र में कॉपरनिकस ने एक क्रांति ला दी जब उसने घोषणा की कि पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है और वह सूर्य की परिक्रमा करती है। जर्मन वैज्ञानिक केपलर द्वारा गणित की सहायता से ग्रह द्वारा सूर्य की परिक्रमा करने की क्रिया की पुष्टि की गई। आइजेक न्यूटेन ने यह साबित किया कि सभी खगोलीय पिंड गुरूत्वाकर्षण के अन्तर्गत यात्रा करते है। मानव शरीर और रक्त–संचारण के बारे में भी कई अविष्कार हुए। इस प्रकार वैज्ञानिक मनोवृति ने दीर्धकाल से स्वीकृत विचारों और प्रथाओं की आलोचनात्मक परीक्षा की और मनुष्य को कला, व्यवसाय, शिक्षा और जीवन के अनेक क्षेत्रों से नये विचारो के संबध में परीक्षण करने के लिए प्रेरित किया।

2.6.6 भौगोलिक खोंजें

सामुद्रिक व्यापार का एकमात्र मार्ग भूमध्य सागर था। लेकिन, अब लोग व्यापार के दूसरे सामुद्रिक मार्गों की खोज में लग गए। कोलम्बस के द्वारा 1492 में दुनिया (New World) का पता लगाया गया। उसने इसे भारत समझकर इसका नाम वेस्टइंडीज रखा परंतु, यह अमेरिका था। पुर्तगाली नाविक डियाज और वास्कोडिगामा के नाम भी भौगोलिक खोजों में महत्त्वपूर्ण है। डियाज ने उत्तमाशा अंतरीप (Cape of Good Hope) का पता लगाया। 1519 ई. में मैगलेन ने संपूर्ण विश्व की परिक्रमा की। इस तरह भौगोलिक खोजों की वजह से सागरीय व्यापार (Thalasic trade) महासागरीय व्यापार (Oceanic trade) में परिवर्तित हो गया।

2.6.7 अर्थजगत पर प्रभाव

अर्थव्यवस्था का समाज की धुरी बन जाना पुनर्जागरण की एक अन्यतम उपलब्धि रही है। पुनर्जागरण से पूर्व तक उत्पादन प्रक्रिया की दृष्टि से 'कृषि' तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से धार्मिक संस्थाओं को सर्वोच्चता प्राप्त थी। कृषि से इतर गतिविधियाँ गौण महत्त्व रखती थी। मध्यकाल में कामगारों के लिए गिल्ड व्यवस्था प्रचलित थी जिसमें लम्बी समयावधि के दौरान अनेक दोष समाहित हो गये थे पुनर्जागरण के पश्चात् इन 'गिल्ड' संस्थाओं का स्थान कारखाना पद्धति लेने लगी जिसकी ढाँचे में आमूलचूल परिवर्तन आये। इन परिवर्तनों के प्रति राजव्यवस्था का समर्थनकारी रुख और धार्मिक जंजीरों के ढीले पड़ने से पूंजीवादी व्यवस्था के विकास को गति प्राप्त हुई। नगरीय जीवन, बैंकिंग व्यवस्था, स्टॉक कम्पनियों और मध्यवर्गीय जीवन शैली के विकास और श्रम के बिकाऊ बन जाने से

सामाजिक जीवन में अर्थजगत की प्रतिष्ठा स्थापित हुई और यहीं से अर्थव्यवस्था समाज और राजनीति की अनुवर्ती होने के स्थान पर समाज और राजनीति के निर्धारक की भूमिका का निर्वहन करने लगीं।

2.6.8 सामाजिक जीवन पर

पुनर्जागरण से 'विशिष्ट जन केन्द्रित' समाज व्यवस्था 'सामान्य जन केन्द्रित' व्यवस्था की ओर उन्मुख हुई। समाज संरचना के अनुक्रम में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह रहा कि पादरी व सामंती वर्ग जो कि अनुत्पादक तथा विलासी हो गया था। उसके स्थान पर मध्यवर्ग वरीय स्थान पर आ गया। इस दौरान शक्ति समीकरण यह रहा कि मध्यवर्ग तथा केन्द्रीय सत्ता एक पक्ष, वहीं सामंत व पादरी वर्ग दूसरे पक्ष के रूप में प्रतिस्पर्द्धी बनकर उभरे। धर्म केन्द्रित तथा समाज केन्द्रित चिंतन शैली के स्थान पर व्यक्तिवादी चिंतन को अपेक्षित महत्त्व मिला। धर्म के प्रभाव में कमी आने से अंधविश्वास, भाग्यवादी और पारलौकिक चिंतन में समाज का विश्वास कम होता गया। इन सभी घटनाओं व प्रवृत्तियों से मध्यकालीन समाज का ढाँचा चरमराने लगा और आधुनिक समाज की नींव तैयार हुई।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. पुनर्जागरण साहित्य ने किस प्रकार नई चेतना का विकास किया।

बहुविकलपीय प्रश्न

क. इतावली पुनर्जागरण साहित्य के पिता कौन थे ?

1 पेट्रार्क 2 अरस्तु 3 दॉते 4 इरासमस

ख. डिवाइन कॉमेडी के रचनाकार कौन है ?

1 बुकासियो 2 टॉमस मूर 3 दॉते 4 शेक्सपीयर

ग. यूटोपिया के लेखक कौन है ?

1 सर्वातेस 2 टॉमस मूर 3 दॉते 4 शेक्सपीयर

सत्य/असत्य बताइए

1. लियोनार्डो द विंची को चित्रकला का जन्मदाता कहा जाता है।
2. लास्ट जजमेंट माइकल एंजेलों की कृति है।

रिक्त स्थानों को भरें

1. प्लेटोनिक सोसाइटी की स्थापना .... में हुई थी।
2. 'द प्रिंस' के रचनाकार .... हैं।

2.7 पुनर्जागरण का महत्व एवं परिणाम

हम समग्र रूप से पुनर्जागरण का विश्लेषण करे तो कुछ बातें स्पष्ट हो जाती है। पुनर्जागरण ने प्राचीन प्रेरणाओं पर आधारित एक ऐसा प्रयोग आंरभ किया जो उस युग की परिस्थितियों से सांमजस्य कर सका। साथ ही नितांत मौलिक एवं प्रगतिशील दिशाएँ भी तलाश सका।

2.7.1 भौतिकवादी दृष्टिकोण का विकास

पुनर्जागरण ने मनुष्या को उसकी महत्ता से अवगत कराया। यह कहा जा सकता है कि पुनर्जागरण मूलतः मध्यकाल के ईश्वर केन्द्रित सभ्यता से आधुनिक युग के मानव केन्द्रित सभ्यता की ओर एक परिवर्तन था। पुनर्जागरण चेतना से उत्पन्न व्यक्तिवाद ने यूरोपीय मानस को आंदोलित कर दिया। आर्थिक क्षेत्र में व्यक्तिवाद

पूँजीवादी चेतना से जुड़ गया। पुनर्जागरण के अधिकांश विद्वानों ने मानव संसार को अधिक सुंदर एवं समृद्ध बनाने की शिक्षा दी जिससे भौतिकवादी दृष्टिकोण का विकास हुआ।

2.7.2 बुद्धिजीवी दृष्टिकोण का विकास

पुनर्जागरण ने तर्क और वितर्क को प्रतिष्ठित किया तथा पुरानी धार्मिक विचारधारा और पंरपराओ को झकझोर कर उन पर कठोर आघात किया। विचार, स्वतंत्रता को पुनर्जागरण का आधार स्तंभ माना जाता है। पुनर्जागरण काल की नई खोजों, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तार्किक विवेचना ने धर्मग्रथों के अनेकों सिद्धांतों और विश्वासों को हिला दिया। उसने वैज्ञानिक और बौद्धिक आंदोलन का मार्ग प्रशस्त किया।

2.7.3 पुरातन के प्रति मोह जगाना

पुनर्जागरण से पूर्व लोगों को पुरातन ज्ञान में कोई अभिरूचि नहीं थी। इटलीवासी अपने प्राचीन स्मारकों को विस्मृत कर चुके थे, परंतु इस आंदोलन ने उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया।

2.7.4 अभिव्यक्ति की प्रतिष्ठा

पुनर्जागरण ने अभिव्यक्ति की भावना को प्रतिष्ठित किया। इसका अर्थ है कि अब केवल लोगों को निःस्तब्ध भाव से बातों को सुनते जाना ही संतुष्टि प्रदान कर सकता था।

2.7.5 राज्य एवं धर्म का पृथ्क्करण एवं राष्ट्रीयता का विकास

पुनर्जागरण काल में चर्च और राज्य के बीच पृथक्कता की कल्पना की गई। पुनर्जागरण के बाद ना केवल कैथोलिक चर्च का एकाधिकार टूटा और सरल संप्रदायों का जन्म हुआ बल्कि निकट भविष्य में राज्य और धर्म के बीच एक स्पष्ट विभाजक रेखा अंकित हुई। धर्म और पोप की सत्ता के प्रभाव में कमी आने से लोगों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। पुनर्जागरण चेतना ने बहुत सी आधुनिक संस्थाओं के आधार निर्मित किए जिनमें एक है– आधुनिक राष्ट्रीय–राज्य।

2.8 निष्कर्ष

हम कह सकते है कि पुनर्जागरण ने यूरोप के लोगों में एक नई ज्ञानपिपासा पैदा की, तर्क को प्रतिष्ठित किया। मानवतावाद को विश्व के पटल पर स्थापित किया। विचार और स्वतंत्रता के मूल्यों को आगे बढ़ाया और भौतिकवाद का मार्ग प्रशस्त किया। पुनर्जागरणकालीन विचारधारा ने भविष्य में धर्मसुधार आंदोलन, वैज्ञानिक क्रांति, बौद्धिक क्रांति, राष्ट्रीय–राज्यों के उदय और पूँजीवाद तथा मध्यवर्ग के उदय का मार्ग प्रशस्त किया।

2.9 शब्दावली

अंधकार युग– जर्मन आक्रमणकारियों से त्रस्त पूर्वी रोमन साम्राज्य का 5वीं शताब्दी में अवसान हो गया और यही वह समय था जब यूरोप में मध्यकाल का प्रारंभ हुआ तथा सामतंवादी प्रवृत्ति विकसित हुई। मध्यकाल में मुख्य मापदंड थे– राजनीतिक सत्ता के रूप में राजतंत्र का पतन एवं सामंतवाद का उद्‌भव और विकास, धार्मिक सत्ता

तथा सामंत में बेहतर तालमेल एवं उपभोग वर्ग के रूप में उसकी स्थिति, व्यापार–वाणिज्य का पतन तथा समस्त यूरोप में विकास के नाम पर गतिरोध उत्पन्न होना। आमतौर पर इसे अंधकार युग के नाम से जाना जाता है।

गोथिक स्थापत्य – जिसमें कमानीदार छतें, नुकीले मेहराव और टेकें मुख्य विशेषताएँ हो।

व्यक्तिवाद – अपनी उपलब्धियों से आत्मतुष्टि और गौरव की अनुभूति।

धर्मनिरपेक्षता – धार्मिक कार्यो की अपेक्षा संसारिक कार्यो में रुचि लेना तथा धर्म के क्षेत्र में सभी मतों का समान आदर।

पोपशाही – मध्यकालीन यूरोप में जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में पोप की सर्वोच्चता।

मानवतावाद – मनुष्य की सर्वोच्चता को स्थापित करना। जीवन के लक्ष्य को मानव की भलाई के लिए काम करना था।

धर्मयुद्ध – 11वीं–12वीं शताब्दी में इसाई धर्म के प्रमुख स्थल येरुशलम को लेकर मुस्लिम और इसाई के बीच युद्ध।

2.10 ग्रंथ सूची

पीटर, बंक. – द यूरोपियन रेनसॉ : सेन्टर एण्ड पेरिफरी, ब्लैकवेल, 1992.

जे0 आर0 हैल – रेनासॉ यूरोप, फौनटाना प्रेस, 1968.

लाल बहादुर वर्मा – यूरोप का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1998.

जे0 एच0 पलम्ब – द पेंग्विन बुक ऑफ रेनासॉ, इंग्लैंड, 1964.

पार्थ सारथी गुप्ता (सं) – आधुनिक पश्चिम का यूरोप, नई दिल्ली, 1983.

जी0 एन0 क्लार्क – अर्ली मॉडर्न यूरोप, ऑक्सफोर्ड, 1976.

देवेश विजय (सं) – प्रारंभिक आधुनिक यूरोप मे सांस्कृति परिवर्तन, दिल्ली 2006.

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. पुनर्जागरण पर एक विस्तृत निबंध लिखिये।

इकाई तीन – भौगोलिक खोजें , औपनिवेशीकरण और दास–व्यापार

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भौगोलिक खोजें

3.3.1 भौगोलिक खोजों की तत्कालीन आवश्यकता एवं उनके लिए अनुकूल परिस्थितियां

3.3.2 भौगोलिक खोजों के परिणाम

3.4 प्रारम्भिक औपनिवेशिक साम्राज्य

3.4.1 यूरोपीय देशों की औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने के महत्वाकांक्षा

3.4.2 पुर्तगाल का औपनिवेशिक साम्राज्य

3.4.3 स्पेन का औपनिवेशिक साम्राज्य

3.4.4 डच तथा फ्रांसीसी औपनिवेशिक साम्राज्य

3.4.5 ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य

3.4.6 जर्मन, बेल्जियन तथा इटालियन औपनिवेशिक साम्राज्य

3.4.7 औपनिवेशिक शासन के सामान्य लक्षण

3.4.8.1 विजित जाति का दमन

3.4.8.2 औपनिवेशिक शासकों द्वारा अपने सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं प्रशासनिक मूल्यों की स्थापना

3.5 यूरोप में पूंजीवाद, वाणिज्यवाद का उदय और परवर्ती काल में औद्योगिक क्रान्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियां

3.6 दास–व्यापार एवं दास प्रथा

3.6.1 अटलांटिक दास–व्यापार

3.6.2 नयी दुनिया में दासों की सेवाओं की आवश्यकता

3.7 सारांश

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

3.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

महान भौगोलिक खोजों के युग ने पृथ्वी के आकार और उसके स्वरुप से सम्बंधित अधूरी और दोषपूर्ण जानकारी में आवश्यक संशोधन किए. अब सभी महाद्वीपों तथा विभिन्न देशों के विषय में नयी जानकारी प्राप्त हुई और भौगोलिक अध्ययन को भी एक वैज्ञानिक पद्धति प्राप्त हुई. पृथ्वी की उत्पत्ति विषयक अवधारणा तथा मानव–प्रकृति सम्बन्ध के सिद्धांतों में भी परिवर्तन हुआ. मानचित्र कला का विकास यूरोपीय शक्तियों के राजनीतिक एवं आर्थिक प्रसार में बहुत सहायक सिद्ध हुआ.

इतिहास को गति, दिशा एवं अर्थ प्रदान करने में भौगोलिक उपकरणों तथा भौगोलिक खोजों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है. नवीन भौगोलिक खोजें आने वाले परिवर्तनों का वाहक बनीं. यूरोपीय देशों में पुर्तगाल ने भौगोलिक खोजों के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाई थी. आगे चलकर स्पेन, नीदरलैण्ड, फ्रांस और इंग्लैण्ड ने भी नई खोजें करने में अपना योगदान दिया था. 1453 में तुर्कों द्वारा कांस्टेन्टिनोपल पर अधिकार करने के बाद पश्चिमी यूरोपीय देशों के लिए यूरोप और पूर्व के मध्य एशिया माइनर और सीरिया से होकर जाने वाला भू–क्षेत्रीय मार्ग अवरुद्ध हो चुका था. बार्तालोम्यू डियाज, कोलम्बस, वास्कोडिगामा, वोराज़ानो, जे0 कार्तियर, जॉन स्मिथ आदि ने अफ्रीका, एशिया तथा अमेरिका में अज्ञात क्षेत्रों की खोज की.

भौगोलिक खोजों से यूरोपीय देशों को अफ्रीका, एशिया तथा अमेरिका में सैनिक दृष्टि से कमज़ोर किन्तु प्राकृतिक संसाधनों में समृद्ध क्षेत्रों पर अपना अधिकार करने का अवसर मिला. इन क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर यूरोपीय देशों ने अपने–अपने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित किए. प्रारम्भ में पूर्वी गोलार्ध में पुर्तगाल और पश्चिमी गोलार्ध में स्पेन के औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित हुए किन्तु बाद में इस दौड़ में नीदरलैण्ड, फ्रांस तथा इंग्लैण्ड भी शामिल हो गए. प्रारम्भिक औपनिवेशिक साम्राज्यों के काल को हम औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व तक का काल मान सकते है. अपने–अपने उपनिवेशों का विभिन्न शासक राज्यों ने जिस प्रकार बहु–आयामी दोहन किया वह नैतिक दृष्टि से निन्दनीय है और उपनिवेशों में ईसाई धर्म का व्यापक प्रचार भी उनकी धार्मिक, जातीय एवं सांस्कृतिक श्रेष्ठता की अहंकारी भावना का ही परिचायक है. उपनिवेशवाद ने यूरोपीय राज्यों के संसाधनों में अपार वृद्धि की. राजनीतिक दृष्टि से इसने शासकों को अधिक साधन–सम्पन्न बनाकर यूरोप में निरंकुश राजतन्त्र को सुदृढ़ बनाया. उपनिवेशों से अपार धन–सम्पदा आ जाने से यूरोपीय जन–जीवन स्तर में सुधार आया तथा कला का सर्वतोमुखी विकास हुआ. पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क में आने से औपनिवेशिक प्रजा को भी भौतिक प्रगति का महत्व समझ में आने लगा और धीरे–धीरे उपनिवेशों में सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक चेतना का विकास होने लगा. यूरोपीय सन्दर्भ में उपनिवेशवाद ने विभिन्न राष्ट्रों में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया। धीरे–धीरे वाणिज्य का केंद्र 'भूमि' से हटकर 'समुद्र' में स्थापित हो गया.

यूरोप में वाणिज्यिक क्रान्ति का सूत्रपात भौगोलिक खोजों के दौर से पहले ही हो चुका था किन्तु भौगोलिक खोजों ने वाणिज्यिक क्रान्ति को और सशक्त व व्यापक बना दिया था. 16 वीं एवं 17 वाणिज्यिक क्रान्ति के दौर में व्यापक स्तर पर व्यापार–वाणिज्य का संगठन विकसित हुआ. यह वाणिज्यिक क्रान्ति, सामान्य व्यावसायिक गतिविधियों में, तथा वित्तीय सेवाओं (बैंकिंग, बीमा, निवेश आदि) की वृद्धि में परिलक्षित हुई. अब यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा था कि जो राष्ट्र जितना धनी होगा, वह उतना ही शक्तिशाली होगा. वाणिज्यवाद ने उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया. यह सिद्धान्त कि – उपनिवेश का अस्तित्व शासक राज्य के लाभ के लिए है' उपनिवेशों के दोहन का मूल मन्त्र बन गया. वाणिज्यिक क्रान्ति के प्रमुख परिणामों में सामन्तवाद का पतन, पूंजीवाद का उदय, यूरोपीय सभ्यता का प्रसार, दास–प्रथा का पुनर्प्रचलन थे किन्तु इसका सबसे प्रमुख परिणाम औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार करना था.

वास्तव में भौगोलिक खोजों, औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना तथा दास–व्यापार का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है. इन सबने मिलकर मनुष्य के संकुचित दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में तथा विश्व इतिहास को मध्य युग से आगे बढ़ाकर आधुनिक युग में प्रविष्ट कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी.

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको मध्यकाल के उत्तरार्ध व पुनर्जागरण काल के दौरान यूरोपीय देशों द्वारा की गयी भौगोलिक खोजों के विभिन्न क्षेत्रों में हुए लाभ, औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना, तथा दास–व्यापार से परिचित कराना है. इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे–

1– पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के दौरान हुई भौगोलिक खोजों के कारणों तथा उनके परिणामों के विषय में.

2. यूरोपीय देशों द्वारा सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक एशिया, अफ्रीका, अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया में औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना तथा उसके परिणामों के विषय में भौगोलिक खोजों व उपनिवेशवाद से उसके घनिष्ठ सम्बन्ध के विषय में.

3–दास–व्यापार से यूरोपीय देशों को होने वाले आर्थिक एवं राजनीतिक लाभ, दास–व्यापार के औचित्य व अनौचित्य तथा अमेरिका में औपनिवेशिक साम्राज्य के विस्तार में दासों की भूमिका के विषय में.

3.3 भौगोलिक खोजें

3.3.1 भौगोलिक खोजों की तत्कालीन आवश्यकता एवं उनके लिए अनुकूल परिस्थितियां

यूरोप के विभिन्न देशों से विभिन्न जल–मार्गों पर नौ–सैनिक अभियानों को भेजने की आम वजह यह थी कि कि यूरोप के देशों में उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि हो गयी थी और उन्हें खपाने के लिए नए बाज़ारों की आवश्यकता थी. बहुमूल्य धातुओं (सोना और चांदी) की कमी को पूरा करना, और नए–नए क्षेत्रों को जीतने की अदम्य अभिलाषा भी इन अभियानों को भेजने के मुख्य कारणों में गिने जा सकते हैं. इन अभियानों की सफलता से यह आशा की जाती थी कि यूरोप में भरपूर सोना, चांदी, मसाले, हाथी दांत, फ़र (लोम) वालरस खांग (टस्क) आदि प्राप्त होंगे. यूरोप से भारत और पूर्वी एशिया के लिए जल–मार्गों की खोज करना भी इन अभियानों के उद्देश्यों में सम्मिलित था. अब तक यूरोप और एशिया के बीच व्यापार के लिए अरब, तुर्क मध्यस्थों की भूमिका महत्वपूर्ण होती थी किन्तु अब यूरोपीय देश एशिया–व्यापार में इन मध्यस्थों की भूमिका को समाप्त कर सीधे ही यूरोप–एशिया व्यापार के स्वप्न को साकार करना चाहते थे.

लार्ड एक्टन ने इतिहास में नई दुनिया की खोज को, विश्व को मध्यकाल से आधुनिक काल में प्रविष्ट कराने की दिशा में एक निर्णायक कारण माना है. अब यूरोपीय अपनी आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक महत्वाकांक्षाओं को साकार कर सकते थे. यूरोप में मध्य युग तक पृथ्वी को चपटी माना जाता था किन्तु बाद में अनुसन्धानों से उसके गोलाकार होने का पता चला. 13 वीं शताब्दी के अन्त में दिशासूचक यन्त्र 'कुतुबनुमा' तथा बाद में एस्ट्रोलोव (अक्षांश जानने का यन्त्र) के आविष्कार, उन्नत मानचित्रों के निर्माण, पाल वाले और चप्पू से चलने वाले जहाजों के निर्माण से अब यह सम्भव हो गया कि लम्बी समुद्र यात्रा द्वारा पश्चिम से पूर्व की ओर पहुंचा जाए. इस विचार ने –कि पृथ्वी वृत्ताकार है और पश्चिमी यूरोप से अटलान्टिक महासागर होते हुए भारत के लिए समुद्री मार्ग खोजा जा सकता है, भौगोलिक खोजों के लिए किए जाने वाले साहसिक प्रयासों को और अधिक बढ़ावा दिया. भौगोलिक ज्ञान तथा नौ–संचालन में पूर्वी देशवासियों की उपलब्धियों ने महान भौगोलिक खोजों को सम्भव बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था. वाइकिंग्स तथा वेनीशियन व्यापारी मार्कोपोलो के अनुभवों ने पन्द्रहवीं व सोलहवीं शताब्दी में यूरोपीयों को नई भौगोलिक खोजों के लिए प्रेरित किया था.

यूरोपीय देशों में पुर्तगाल ने भौगोलिक खोजों के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाई थी. 1415 में अफ्रीका के समुद्री तट स्यूटा पर पुर्तगाल का अधिकार हो जाने के बाद भौगोलिक खोजों के लिए अनुकूल वातावरण विकसित हो गया था. 'हेनरी दि नेवीगेटर' के नाम से प्रसिद्ध पुर्तगाल के राजकुमार हेनरी (1399–1460) ने सैग्रेस के तट पर एक

अनुसन्धान केन्द्र की स्थापना की और वहां से खगोलशास्त्रियों, पोत निर्माताओं, मानचित्र विशेषज्ञों आदि की सहायता से नाविक अभियान भेजने प्रारम्भ किए. उसके प्रयासों का सुपरिणाम अज़ोर और मडेरिया द्वीपों की खोज के रूप में दिखाई पड़ा. राजकुमार हेनरी के इन अभियानों का उद्देश्य धर्म–प्रचार, वैज्ञानिक खोज और देश की प्रतिष्ठा व उसके अधीन भू–क्षेत्रों की वृद्धि करना था.

पूर्वी यूरोप में तुर्कों की प्रगति एवं प्रभुत्व की स्थापना के कारण पूर्वी देशों के साथ यूरोपीय व्यापार में गतिरोध आ गया था और यूरोपीयों को पूर्वी देशों से प्राप्त होने वाले सामान मिलना बन्द हो गए. इससे भूमध्य सागर का व्यापारिक महत्व समाप्त हो गया था अतः विकल्प के रूप में अटलान्टिक महासागर की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ और यूरोपीय नाविकों ने शासकों की प्रेरणा से व उनके संरक्षण में नए सामुद्रिक मार्गों की खोज प्रारम्भ की.

पूर्वी यूरोप के एक भाग पर मुस्लिम आधिपत्य स्थापित होने और यूरोप से पूर्व की ओर जाने वाला मार्ग पश्चिमी यूरोप के देशों के लिए अवरुद्ध हो जाने के बाद ईसाइयों के लिए पूर्व में अपने धर्म का प्रचार कर पाना असम्भव हो गया था इसलिए अपने धर्म का प्रचार–प्रसार करने के लिए उन्हें नए क्षेत्रों और पूर्व के लिए एक नए मार्ग की तलाश थी. भौगोलिक खोजों के लिए ईसाई धर्म के प्रसार–प्रचार के नए क्षेत्रों तथा नए जल–मार्गों की तलाश को भी हम एक प्रमुख कारण मान सकते हैं.

यूरोपीय देशों में माल के उत्पादन में वृद्धि, सोने और चाँदी जैसी बहुमूल्य धातुओं की कमी, सोने, चाँदी, मसाले, मछली, लकड़ी, सूती एवं रेशमी वस्त्र, हाथी दाँत, कालीन, फ़र (लोम), विलासिता की सामग्री आदि मिलने की आशा में नए भू–क्षेत्रों की तलाश और यूरोप से भारत तथा पूर्वी एशिया के लिए नए समुद्री मार्गों खोजने की आकांक्षा (1453 में तुर्कों द्वारा कांस्टेन्टिनोपल पर अधिकार करने के बाद पश्चिमी यूरोपीय देशों के लिए यूरोप और पूर्व के मध्य एशिया माइनर और सीरिया से होकर जाने वाला भू–क्षेत्रीय मार्ग अवरुद्ध हो चुका था) ने पश्चिमी यूरोप के प्रतिस्पर्धी व्यापारियों को व्यापार–बिचौलियों के शोषण से बचने के लिए और एशिया के देशों से खुद सीधे सम्पर्क स्थापित करने के उद्देश्य, नाविक अभियानों के भेजे जाने के प्रमुख कारण थे.

सन् 1488 में पुर्तगाली नाविक बार्तालोम्यू डियाज़ ने केप ऑफ़ गुड होप की खोज की थी. डियाज़, डी कैम आदि ने इसी वर्ष में अफ्रीकी महाद्वीप के समूचे पश्चिमी और दक्षिणी तटीय क्षेत्र की खोज कर ली थी. 'मैनुअल दि फोर्च्यूनेट' के संरक्षण में 1498 में पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा ने अरब मार्गदर्शकों की सहायता से दक्षिण अफ्रीका होते हुए पश्चिमी यूरोप से भारत के लिए समुद्री मार्ग की खोज की थी. कालीकट के समुद्री तट पर पहुँचकर उसने भारत में औपनिवेशिक शासन की नींव का पहला पत्थर रखा. वास्कोडिगामा ने कहा था कि वह मसालों की प्राप्ति और ईसाई धर्म के प्रसार हेतु भारत पहुंचा है. वास्कोडिगामा द्वारा भारत के लिए समुद्री मार्ग की खोज से उत्साहित होकर पुर्तगाली 16 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में श्री लंका व सुदूर पूर्व में जावा व सुमात्रा तक पहुँच गए. 1517 में उन्होंने चीन के कैंटन में अपनी स्थायी बस्ती स्थापित की और 1542 तक वह जापान भी पहुँच गए.

1492 और 1494 के मध्य स्पेनिश नाविक कोलम्बस ने बहामाज़ तथा ग्रेटर एन्टिलेस (क्यूबा, पीट्रो रिको, हेटी, डोमिनिकन रिपब्लिक, केमैन आदि उपद्वीप) व लैसर एन्टिलेस (उत्तरी लीवार्ड उपद्वीप, दक्षिण–पूर्वी विन्डवार्ड उपद्वीप, लीवार्ड एन्टिलेस तथा लुकायन द्वीपसमूह) की खोज की थी. 1492 में कोलम्बस ने अमेरिका की खोज की थी. 1498 से 1502 के मध्य कोलम्बस, ए ओजेडा, ए वैस्पुसी आदि स्पेनिश व पुर्तगाली नाविकों ने दक्षिणी अमेरिका के समूचे उत्तरीय समुद्री तट, ब्राज़ील और मध्य अमेरिका के कैरीबियन समुद्र तट की खोज की थी. सोलहवीं शताब्दी में स्पेनिश नाविकों ने मध्य अमेरिका व दक्षिण अमेरिका में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था. फ्रांसीसी नाविकों – वोराज़ानो तथा जे0 कार्तियर ने उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट तथा सेंट लारेन्स नदी की खोज की थी.

1606 में पहली बार यूरोपीय नाविकों ने ऑस्ट्रेलिया में प्रवेश किया था. ऑस्ट्रेलिया में पहले यूरोपीय बेड़े का नायक डच नागरिक विलेम जेंसजून था. सबसे पहले डच ईस्ट इंडीज़ कंपनी तथा एबल तस्मान के व्यापारिक जहाज ऑस्ट्रेलिया पहुंचे. 1770 में जेम्स कुक के नेतृत्व में इंग्लैंड भी ऑस्ट्रेलिया की इस व्यापारिक प्रतिस्पर्धा में सम्मिलित हो गया. कप्तान आर्थर फ़िलिप ने पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया में प्रथम ब्रिटिश उपनिवेश स्थापित किया. जॉर्ज वेनकोवर ने ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य का विस्तार किया. ऑस्ट्रेलिया भेजे जाने वालों में अधिकांश सज़ायाफ्ता लोग थे. ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासियों के प्रति निर्ममता का व्यवहार कर अंग्रेजों ने अपना औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित किया. न्यूज़ीलैंड में भी ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना हुई.

3.3.2 भौगोलिक खोजों के परिणाम

1. यूरोपीय खोजों ने पूर्व पर पश्चिम की श्रेष्ठता स्थापित कर दी.
2. .व्यापारिक गतिविधियों के साथ यूरोपीय देशों ने नए खोजे हुए क्षेत्रों में ईसाई धर्म–प्रचार को भी अपना लक्ष्य बनाया. पुर्तगालियों व स्पेन के निवासियों के हृदय में सदियों से मुसलमानों के प्रति आक्रोश था. इस्लाम के अनुयायियों पर प्रहार करना उनकी अभिलाषा थी. पुर्तगालियों ने पूर्व में ईसाई धर्म के व्यापक प्रसार–प्रचार के लिए भी निरन्तर प्रयास किए. जेसुइट मिशन के फ्रांसिस ज़ेवियर ने मलक्का, मलाकू द्वीप, अम्बोनिया, टीमाटे, जापान, चीन और विशेषकर भारत के गोआ में ईसाई धर्म का व्यापक प्रचार किया.
3. जो यूरोपीय अंतर्राष्ट्रीय व्यापार केवल भूमध्यसागर तक सीमित था वह भौगोलिक खोजों के बाद पूरे विश्व में फैल गया. अब पूर्वी व्यापार पर इटली के नगर राज्यों का एकाधिकार समाप्त हो गया और जेनोवा अथवा वेनिस के स्थान पर लिस्बन, बोर्दिया, ब्रिस्टल, लिवरपूल, एम्सटर्डम और एंटवर्प का व्यापारिक महत्त्व अधिक हो गया. अब यूरोप में पूर्व से आयातित सामानों में मसाले, सूती तथा रेशमी कपड़े, पोर्सलिन आदि के साथ–साथ पश्चिम तम्बाकू, कोको, चॉकलेट, कुनैन और अफ्रीका से दास, हाथी दांत, शुतुरमुर्ग के पंख आदि सम्मिलित हो गए. आयातित शक्कर, कॉफ़ी, चावल औउर कपास की मात्र में भी तीव्र वृद्धि हुई. यूरोप में जहाँ सोने–चांदी की कमी थी, वहां अब इसकी आपूर्ति इसकी मांग से कहीं अधिक होने लगी. भौगोलिक खोजों के बाद यूरोपीय व्यापार समस्त विश्व में फैल गया. इससे यूरोप में सामन्तवाद के पतन की प्रक्रिया तीव्र हो गई और पश्चिमी यूरोप में पूंजीवाद उभर कर आने लगा. सोने–चाँदी का अतुलित भण्डार आ जाने से यूरोप में आवश्यक वस्तुओं के दामों में अत्यधिक वृद्धि हो गई. व्यापार में भू–मध्यसागर के स्थान पर अटलान्टिक महासागर की महत्ता बढ़ जाने से इटली और जर्मनी जैसे देश आर्थिक दृष्टि से पिछड़ने लगे और नीदरलैण्ड व इंग्लैण्ड जैसे देश आगे बढ़ने लगे. अब भू–मध्य सागर व बाल्टिक सागर के बन्दरगाहों से अधिक महत्व लिस्बन, लन्दन व एम्सटर्डम के बन्दरगाहों का हो गया.
4. भौगोलिक खोजों के फलस्वरूप व्यापारिक गतिविधियों में अप्रत्याशित वृद्धि ने पूंजीवाद व राष्ट्रीय वाणिज्यवाद को बढ़ावा दिया और अनेक व्यापारिक बैंकों की स्थापना हुई. वाणिज्यिक व्यवस्था के उत्थान के कारण सभी यूरोपीय शक्तियों ने निर्यात को बढ़ावा देने और आयात को घटाने के प्रयास किए.
5. भौगोलिक खोजों ने उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के उदय को सम्भव बनाया. नए क्षेत्रों की खोज के बाद अनेक यूरोपीय उन क्षेत्रों में बस गए और उन्होंने उन पर अपना अधिकार जमा कर वहां अपना शासन स्थापित कर लिया. पुर्तगालियों, स्पेन वासियों, फ्रांसीसियों, डचों तथा अंग्रेज़ों ने एशिया, अफ्रीका तथा अमेरिका में अपने द्वारा खोजे गए क्षेत्रों में अपने–अपने उपनिवेश स्थापित किए. इसी प्रकार रूसी भौगोलिक खोजों ने साइबेरिया के औपनिवेशिकीकरण का मार्ग प्रशस्त किया. औपनिवेशिक शक्तियों ने अपने–अपने उपनिवेशों का व्यवस्थित दोहन प्रारम्भ किया. किसी भी उपनिवेश को अपने शासक राष्ट्र के अतिरिक्त अन्य किसी राष्ट्र से व्यापार करने की अनुमति नहीं थी. औपनिवेशिक शक्तियां अपने उपनिवेशों को उन वस्तुओं का उत्पादन करने से आमतौर पर रोकती थीं जिनका कि उत्पादन स्वयं उनके यहां पर्याप्त मात्रा में होता था. इससे उनके अपने देश के उत्पादकों को उपनिवेशों के उत्पादों से प्रतिस्पर्धा

करने का भय नहीं रहता था. विजित क्षेत्रों के निवासियों पर यूरोपीय शक्तियों ने भयंकर क्रूरता का व्यवहार किया. अमेरिका में तो वहां के मूल निवासियों का लगभग पूरी तरह से उन्मूलन ही कर दिया गया. नए उपनिवेश बसाने के लिए सस्ते से सस्ते श्रमिकों की आवश्यकता थी और इस कमी की पूर्ति औपनिवेशिक शक्तियों ने दास–व्यापार की अमानुषिक व्यवस्था के द्वारा की.

6. भौगोलिक खोजों ने ज्ञान की अन्य विधाओं जैसे वनस्पतिशास्त्र, जन्तुशास्त्र, मानव–जाति विज्ञान आदि में नई खोजों के अवसर उपलब्ध कराए. यूरोपीयों ने आलू, मक्का, टमाटर और तम्बाकू की खेती करना शुरू कर दिया. राष्ट्रीय संसाधनों में वृद्धि के कारण कला की विभिन्न विधाओं को शासक वर्ग तथा धनाढ्य वर्ग द्वारा प्रोत्साहन दिया जाने लगा और वैज्ञानिक आविष्कारों के लिए समुचित धन भी उपलब्ध कराया जाने लगा जिसका कि परिणाम कला व विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति के रूप में दिखाई दिया.
7. भौगोलिक खोजों ने उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद को तो बढ़ावा दिया ही साथ ही साथ इनके परिणाम स्वरूप यूरोपीय राज्यों में जिस प्रकार अतुलित धन–सम्पदा आई, उसने वहां के शासकों के संसाधनों और शक्ति में अपार वृद्धि कर दी. इसने यूरोप में निरंकुश राजतन्त्र की स्थापना को बढ़ावा दिया.
8. भौगोलिक खोजों ने यूरोपीय देशों के मध्य प्रतिस्पर्धा को बढ़ाया जिसकी परिणति अनेक बार भीषण युद्धों में हुई.

3.4 प्रारम्भिक औपनिवेशिक साम्राज्य

3.4.1 यूरोपीय देशों की औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने के महत्वाकांक्षा

पन्द्रहवीं शताब्दी में यूरोप में भौगोलिक खोजों का दौर चल पड़ा था और सोलहवीं शताब्दी तक समुद्री मार्ग द्वारा दुनिया के एक बड़े भाग की खोज कर ली गई थी. पुनर्जागरण के दौरान वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति के परिणाम स्वरूप यूरोपीय देशों ने न केवल नौ–चालन के क्षेत्र में बहुत प्रगति कर ली थी अपितु अस्त्र–शस्त्र के क्षेत्र में भी समान रूप से प्रगति कर ली थी. अब यूरोपीय शक्तियों के पास दुनिया के शेष सभी देशों की तुलना में अधिक मारक शक्ति के हथियार थे और आधुनिक अस्त्र–शस्त्रों से सज्जित उनकी थल सेनाएं व नौ–सेनाए भी सबसे सुगठित व आधुनिक रणनीति में पारंगत थीं. इन अनुकूल परिस्थितियों में अनेक यूरोपीय देशों में 'ग्रीड ऑफ़ गोल्ड एण्ड लस्ट फॉर ग्लोरी' (धन का लोभ और यश की लालसा) की भावना के वशीभूत होकर औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना की महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई. इसके अतिरिक्त अपने–अपने विजित क्षेत्रों में अपने धर्म अर्थात् ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार की आकांक्षा ने भी यूरोपीय देशों को अपने–अपने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने की प्रेरणा दी थी. वास्कोडिगामा ने कहा था कि – 'वह मसालों की प्राप्ति और ईसाई धर्म के प्रसार हेतु भारत पहुंचा है.' वास्तव में औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना के प्रारम्भिक दौर में यूरोपीय देशों का प्रमुख प्रेरक कारण धर्म–प्रचार था न कि विजित क्षेत्रों में अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करना. परन्तु बाद में आर्थिक कारणों से, विशेषकर व्यापारिक लाभ हेतु उपनिवेशों की स्थापना की जाने लगी. अपने देश में उत्पादित माल की बिक्री के लिए नए बाज़ारों की तलाश और अपने यहां तैयार उत्पादों के लिए आवश्यक कच्चे माल की सस्ते में और नियमित एवं निर्बाध आपूर्ति की समस्या, इन दोनों का ही समाधान अधिक से अधिक और बड़े से बड़े उपनिवेशों की स्थापना में मिल सकता था.

3.4.2 पुर्तगाल का औपनिवेशिक साम्राज्य

पुर्तगाल ने सबसे पहले उत्तर क्रूस–युद्ध से प्रेरित होकर अफ्रीका के मुस्लिम राज्यों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास किया. इस से उसकी राजनीतिक महत्ता बढ़ने के साथ–साथ लूट के माल से उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार भी हो सकता था और इसके अतिरिक्त इस से पुर्तगाली व्यापार को भी अंतर्राष्ट्रीय बनाने में सफलता मिल सकती थी. 1415 में भूमध्यसागर में स्थित स्युटा पर पुर्तगाली आक्रमण हुआ. 15 वीं शताब्दी में

हेनरी दि नेविगेटर ने अफ्रीका में पुर्तगाली औपनिवेशिक साम्राज्य के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया. अब पुर्तगाल के लिए मदेरिया तथा एज़ोरेस से गेंहू पहुचाया जाने लगा. करावेल पाल वाले जहाजों की मदद से 1445 में पुर्तगाली सेनेगल तथा केप वेर्दे प्रायद्वीप पहुँच गए. फेर्नाओ गोमेज़ नमक व्यापारी ने गुयाना की खाड़ी की खोज की. 15 वीं शताब्दी के आठवें दशक में पुर्तगाली प्रचुर मात्र में अफ्रीकी सोना अपने देश लाने लगे. अफ्रीकी समुद्र तट के एक बड़े भाग पर अब पुर्तगालियों का अधिकार हो गया. अफ्रीका से दास–व्यापार में भी पुर्तगाल ने बहुत धन कमाया.

आधुनिक काल में औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना का इतिहास पुर्तगाल तथा स्पेन के साहसिक प्रयासों से प्रारम्भ होता है. पूर्वी गोलार्ध एवं पश्चिमी गोलार्ध, दोनों में ही यूरोपीय उपनिवेशवाद के मूल में भौगोलिक अन्वेषण के क्षेत्र में पुर्तगाली व स्पेनिश उपलब्धियां थीं. अपने व्यापारिक लाभ और धर्म–प्रचार अभियान को स्थायित्व देने के लिए पुर्तगालियों ने अफ्रीका, एशिया और अमेरिका में अपने उपनिवेश स्थापित करने के प्रयास किए किन्तु इसमें उनका सामना स्पेन से हो गया. स्पेन और पुर्तगाल के मध्य औपनिवेशिक साम्राज्य के विस्तार विषयक प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने के लिए पोप ने हस्तक्षेप कर दोनों राज्यों के मध्य 7 जून, 1494 को टार्डिसिलास की सन्धि हुई जिसके अन्तर्गत खोज की गई नई दुनिया को स्पेन और पुर्तगाल (इबेरियन राज्यों) के मध्य बांट दिया गया. इस नई दुनिया का पूर्वी भाग (अफ्रीका, सुदूर पूर्व, श्री लंका आदि) पुर्तगाल के अधीन और पश्चिमी भाग (उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका) स्पेन के अधीन रखा गया. परन्तु 1500 में पुर्तगाली नाविक कैबराल अपने भारतीय अभियान में गल्ती से ब्राज़ील पहुँच जाने से पश्चिमी गोलार्ध में पुर्तगाल के अधिकार में ब्राज़ील आने का मार्ग प्रशस्त हो गया. पूर्वी गोलार्ध में पुर्तगाली औपनिवेशिक साम्राज्य का विस्तार अफ्रीका में मोंज़ाबीक तथा मैडागास्कर में, तथा एशिया में श्री लंका, मलेशिया (मलक्का को शामिल कर), इण्डोनेशिया, मकाउ, पूर्वी तिमोर, गोवा, दमन, दिउ, बॉम्बे (बाद में अंग्रेज़ो के अधीन) और चीन व जापान के कुछ भागों तक हो गया.

3.4.3 स्पेन का औपनिवेशिक साम्राज्य

स्पेन के औपनिवेशिक साम्राज्य की गणना विश्व के सबसे बड़े औपनिवेशिक साम्राज्यों में की जाती है. हैब्सबर्ग राज्यवंश के काल में यह सैनिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर था. 18 वीं शताब्दी में बोर्बन राज्यवंश के काल में स्पेन का साम्राज्य विश्व में सबसे बड़ा था. ब्रिटिश साम्राज्य के विषय में कहे जाने से पहले यह कहा जाता था कि दृ 'स्पेन के साम्राज्य में सूर्य, कभी डूबता नहीं है.' स्पेन का साम्राज्य दक्षिण अमेरिका, मध्य अमेरिका, उत्तर अमेरिका सहित एशिया, ओशिएनिया तथा अफ्रीका तक फैला था. इसमें फिलिपींस सहित प्रशांत महासागर के द्वीप समूह भी सम्मिलित थे. स्पेनिश औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना क्रिस्टोफ़र कोलंबस के काल से ही होनी प्रारंभ हो गई थी.

इतिहास में ब्रिटेन के बाद स्पेन का औपनिवेशिक साम्राज्य सबसे बड़ा रहा है. कोलम्बस द्वारा 1492 में नई दुनिया की खोज के बाद स्पेन ने पश्चिमी गोलार्ध में न्यू स्पेन, पेरू, अर्जेन्टिना, कोलम्बिया, वैस्टइंडीज़, मैक्सिको में अपने उपनिवेश स्थापित किए. सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक दक्षिणी अमेरिका का अधिकांश भाग स्पेन के औपनिवेशिक साम्राज्य का अंग बन गया. सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में ब्रिटेन तथा अन्य उत्तरी यूरोपीय देशों ने पश्चिमी गोलार्ध में स्पेन के एकाधिकार को चुनौती दी और अमेरिका के पूर्वी समुद्री तट, कैनाडा, कैरीबियन द्वीपों में अरूबा, मार्टिनिक तथा बारबडोस पर अपना अधिकार कर लिया.

स्पेन के औपनिवेशिक शासन में अमानवीयता की सभी पराकाष्ठाओं को पार कर इण्डियन अमेरिकन्स (रैड इण्डियन्स) का समूल विनाश कर दिया गया. स्पेन को अपने उपनिवेशों से इतना धन प्राप्त हुआ कि वहां के शसकों ने दीर्घकालीन धर्म–युद्ध किए जो आगे चलकर स्पेनिश शक्ति के पतन का कारण बने.

3.4.4 डच तथा फ्रांसीसी औपनिवेशिक साम्राज्य

सोलहवीं शताब्दी में अपनी नौ–सैनिक शक्ति के उत्थान के फलस्वरूप सत्रहवीं शताब्दी तक नीदरलैण्ड व्यापारिक गतिविधियों में विश्व का एक अग्रणी देश बन गया था और एम्सटर्डम जहाजरानी, बैंकिंग तथा बीमा के क्षेत्र में यूरोप का सबसे प्रमुख केन्द्र बन गया था. 1594 में 'कम्पनी फॉर फ़ारलैण्ड' तथा 1602 में 'डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी' तथा 1621 में 'डच वैस्ट इण्डीज़ कम्पनी' की स्थापना के बाद डच औपनिवेशिक साम्राज्य के विस्तार का मार्ग प्रशस्त हो गया. 1619 में डचों ने जकार्ता पर अधिकार कर लिया और बठाविया के नाम से उसे डच ईस्ट इण्डीज़ की राजधानी बनाया. 1638 में उन्होंने मौरिशस पर अधिकार कर लिया. 1641 में उन्होंने मलक्का से पुर्तगालियों को निकाल कर उस पर अधिकार कर लिया. 1658 तक उनका श्री लंका पर अधिकार हो गया. भारत में 1662 में उन्होंने नागपट्टम, केरांगनोर, ट्रैवनकोर, तथा कोचीन पर अधिकार कर लिया. डच शक्ति अफ्रीका तथा अमेरिका में अपने पैर नहीं जमा सकी. 1688 के बाद डच विलियम ऑफ़ औरेन्ज के ब्रिटिश सिंहासन पर बैठने के बाद यह निश्चित किया गया कि पूर्व में कपड़ों व्यापार पर अंग्रेज़ों का और मसाला व्यापार में डचों का वर्चस्व रहेगा. मसाला–व्यापार में डचों ने प्रचुर मात्रा में धन कमाया.

फ्रांसीसी औपनिवेशिक साम्राज्य का विस्तार उत्तरी अमेरिका में कैनाडा, मिसीसिपी नदी की घाटी, वैस्ट इण्डीज़ में – सेन्ट किट्स तथा फ्रेन्च गुयाना तथा भारत (पोंडिचेरी, चन्द्रनगर) तक हो गया था. भारत में आंग्ल–फ्रांसीसी प्रतिद्वन्द्विता में रोबर्ट क्लाइव ने बंगाल और दक्षिण भारत में फ्रांसीसी शक्ति को अपंग बनाने में पूर्ण सफलता प्राप्त की थी.

3.4.5 ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य

ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना की प्रक्रिया ट्यूडर काल में एलिज़ाबेथ प्रथम के शासन के अन्तिम वर्षों में प्रारम्भ हुई किन्तु स्टुअर्ट काल में सम्राट जेम्स प्रथम और विशेषकर, चार्ल्स द्वितीय के शासनकाल में यह गतिमान हो गई. 1583 में न्यू फ़ाउण्डलैण्ड में ब्रिटिश उपनिवेश स्थापित हुआ. प्रारम्भिक काल में व्यापारिक कम्पनियों तथा संयुक्त सार्वजनिक एवं निजी उपक्रमों ने ब्रिटिश उपनिवेशों की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. इंग्लैण्ड की दृष्टि सोने–चाँदी की लालसा, व्यापारिक लाभ, गर्म मसालों, तम्बाकू और चीनी आदि के लिए अपना औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने पर थी किन्तु अमेरिका में इसके लिए स्पेन के औपनिवेशिक साम्राज्य के विस्तार के बाद ब्रिटेन को उत्तरी अमेरिका, मध्य अमेरिका व कैरिबियन में छोटे द्वीपों में तथा दक्षिणी अमेरिका में स्पेन से छूटे हुए क्षेत्र में ही सम्भावनाए बची थीं. सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वर्जीनिया, बाल्टीमोर, मैरीलैण्ड, जेम्सटाउन, होड्स आइलैण्ड, मैसाचुसेट्स, न्यू जेरेसी, जॉर्जिया, अल्बानी, कानेक्टिकस, न्यू नीदरलैण्ड (बाद में इसका नाम न्यूयॉर्क रखा गया), पेन्सिलवेनिया, नार्थ तथा साउथ कैरोलिना में ब्रिटिश कालोनियां स्थापित हुईं.

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में यूरोपीय उपनिवेशों की स्थापना के लिए अनुकूल परिस्थितियां बन गई थीं. आंग्ल–फ्रांसीसी प्रतिद्वन्द्विता में अंग्रेज़ों को विजय दिलाकर रॉबर्ट क्लाइव ने भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना की नींव डाली.

3.4.6 जर्मन, बेल्जियन तथा इटालियन औपनिवेशिक साम्राज्य

जर्मनी में समुद्र–व्यापार की जड़ें तो हैन्सियातिक लीग के काल से ही बहुत मज़बूत थीं किन्तु 1871 तक जर्मनी के एकीकरण से पहले उसका अपना औपनिवेशिक साम्राज्य नहीं था. अब जर्मनी के अनेक निवासी यह मान रहे थे कि जब तक कि उनका देश अपना औपनिवेशिक साम्राज्य खड़ा नहीं कर लेता तब तक एक स्वतंत्र देश के रूप में उसकी अपनी पहचान नहीं बन पाएगी. स्वयं बिस्मार्क औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने की दौड़ में जर्मनी को शामिल नहीं करना चाहता था किन्तु 1884 में उसे जर्मन औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने की योजना को अपनी स्वीकृति देनी पड़ी. अपने औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना से जर्मनी को अपने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को सुरक्षा प्रदान करने, अपने कारखानों के लिए समुचित मात्र में कच्चा माल प्राप्त करने, अपने तैयार

माल का निर्यात करने और अपने देश की पूंजी के लाभकारी निवेश की नए अवसरों की संभावनाओं को देखते हुए उसने इसे स्वीकार किया. अफ्रीका में ज़ंज़ीबार में विशाल जर्मन औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना हुई.

बेल्जियम को डच आधिपत्य से 1830 में स्वतंत्रता प्राप्त हुई. 1840 और 1850 के दशक में बेल्जियम के शासक लियोपोल्ड प्रथम ने पश्चि अफ्रीका में औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना के असफल प्रयास किए किन्तु लियोपोल्ड द्वितीय के शासन काल में कांगो में विशाल बेल्जियन औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना हुई. 1885 में लियोपोल्ड द्वितीय की निजी संपत्ति के रूप में 'कांगो फ्री स्टेट' भी अस्तित्व में आया.

इटली के एकीकरण से अपने औपनिवेशिक साम्राज्य की इटली की महत्वाकांक्षा बढ़ने लगी. ट्यूनिसिया पर अधिकार करने का उसका प्रयास निष्फल हुआ किन्तु मस्सावा, इथोपिया आदि पर उसका अधिकार हो गया. 1896 में इथोपिया से इटली की हार ने इटली की औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने की महत्वाकांक्षा को एक बड़ी चोट पहुंचाई लेकिन बाद में 1911 में इटली का लीबिया पर प्रभुत्व स्थापित हो गया.

3.4.7 औपनिवेशिक शासन के सामान्य लक्षण

धर्म–परिवर्तनः पुर्तगाल तथा स्पेन के औपनिवेशिक साम्राज्य–विस्तार में रोमन कैथालिक चर्च ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी. जहां–जहां पुर्तगाल तथा स्पेन का आधिपत्य हुआ वहां–वहां डोमिनिकन, जेसुइट तथा फ्रंसिस्कन मिशनरियों ने अपना धर्म प्रचार किया. इनमें एशिया में फ्रांसिस ज़ेवियर तथा उत्तरी अमेरिका में जैनिपैरो की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी. ईसाई धर्म का प्रचार सभी यूरोपीय उपनिवेशों में ईसाई धर्म का व्यापक प्रचार किया गया और इस धर्म प्रचार कार्यक्रम को औपनिवेशिक शासकों का संरक्षण प्राप्त था. लाखों–करोड़ों स्थानीय प्रजा को ईसाई धर्म में दीक्षित किया गया.

3.4.8.1 विजित जाति का दमन

उपनिवेशवाद का अर्थ है – किसी सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा अपने विभिन्न हितों को साधने के लिए किसी सैनिक दृष्टि से निर्बल किन्तु प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण राष्ट्र पर अपनी शक्ति के बल पर अधिकार कर उसके संसाधनों का अपने हित में उपयोग करना. उपनिवेशवाद में उपनिवेश की जनता एक विदेशी राष्ट्र द्वारा शासित होती है और उसे शासन में न तो पूरे राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते हैं और न ही पूरे आर्थिक अधिकार.

औपनिवेशिक शक्तियों ने जातीय श्रेष्ठता के सिद्धान्त का पालन करते हुए विजित जाति को कभी भी अपने समकक्ष नहीं समझा और न स्थानीय प्रजाजनों को प्रशासन, न्याय–व्यवस्था व सेना में उच्च पद प्रदान किए. स्थानीय व्यक्तियों की निर्मम हत्या, स्त्रियों के बलात्कार के लिए भी शासक जाति को प्रायः दण्डित नहीं किया जाता था. स्पेन के औपनिवेशिक शासकों ने अमेरिकन इन्डियन्स का समूल विनाश कर दिया. इस प्रकार की अमानुषिक बर्बरता का कोई अन्य उदाहरण मिल पाना असम्भव है.

3.4.8.2 औपनिवेशिक शासकों द्वारा अपने सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं प्रशासनिक मूल्यों की स्थापना

औपनिवेशिक शासन – अनवरत दमन, दोहन, शोषण, जातिभेद, रंगभेद और धर्मभेद की निर्मम गाथा है. उपनिवेशवाद के निहितार्थों में उपनिवेश के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, उपनिवेशों के लिए अपने उत्पादों के लिए नए बाज़ारों का निर्माण, और उपनिवेश (अधीनस्थ देश) में अपने धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व शैक्षिक मूल्यों का विस्तार करना सम्मिलित है. मेकाले की शिक्षा पद्धति के द्वारा अंग्रेज़ों ने भारतीयों के एक ऐसे वर्ग को तैयार किया जो अपने वर्ण (रंग) को छोड़कर मनसा, वाचा और कर्मणा, पूरी तरह अपने गौरांग प्रभुओं के समान था. यही काम पुर्तगालियों, स्पेनियर्ड्स, डचों, फ्रांसीसियों आदि ने अपने–अपने उपनिवेशों में किया था.

3.5 यूरोप में पूंजीवाद, वाणिज्यवाद का उदय और परवर्ती काल में औद्योगिक क्रान्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियां

औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना के कारण यूरोपीय देशों में अथाह समृद्धि आई और व्यापार–संतुलन सदैव उनके पक्ष में रहने के कारण उनकी व्यापारिक गतिविधियां अपने शिखर पर पहुंच गईं. अतुलित धन–सम्पदा ने पूंजीवाद के विकास में सहयोग किया और राष्ट्रीय जीवन में व्यापार की महत्ता बढ़ने के कारण स्वाभाविक रूप से वाणिज्यवाद को भी बढ़ावा मिला. अब यूरोपीय देशों को अपना तैयार माल बेचने के लिए बाज़ार खोजने की ज़रूरत नहीं थी (क्योंकि वो अपने उपनिवेशों में ही अपना सारा माल खपा सकते थे) और न ही अपने यहां अनुपलब्ध कच्चा माल खोजने के लिए उन्हें अपने उपनिवेशों के अतिरिक्त किसी पर निर्भर रहना था. धन–सम्पदा के आधिक्य ने अधिक उन्नत औद्योगिक उपकरणों के आविष्कार के लिए अनुकूल वातावरण विकसित कर दिया था. इन अनुकूल परिस्थितियों में 18 वीं शताब्दी के अन्त में यूरोप में, विशेषकर सबसे बड़े औपनिवेशिक साम्राज्य के स्वामी इंग्लैण्ड में, औद्योगिक क्रान्ति होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी.

3.6 दास–व्यापार एवं दास प्रथा

3.6.1 अटलांटिक दास–व्यापार

15 वीं शताब्दी के अंत से लेकर 19 वीं शताब्दी तक चले अटलांटिक दास–व्यापार ने अनैतिकता क्रूरता और अमानवीयता की सभी हदों को पार कर दिया था. अधिकांश दासों को मध्य अफ्रीका तथा पश्चिमी अफ्रीका से एकत्र किया जाता था फिर उन्हें पश्चिमी अफ्रीकियों द्वारा पश्चिमी यूरोप के दास–व्यापारियों को बेच दिया जाता था. इसके बाद दासों को अमेरिका लाया जाता था. दक्षिण अटलांटिक क्षेत्र की और कैरीबियन क्षेत्र की अर्थ–व्यवस्था के लिए दासों की सेवाओं की नितांत आवश्यकता थी क्योंकि इन्हीं के बल पर खेतों और कारखानों में कम हो सकता था. पश्चिमी यूरोप के देशों के औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना के लिए भी दासों की सेवाओं की आवश्यकता थी. 1526 में पुर्तगालियों ने अफ्रीका से दासों की पहली खेप अमेरिका पहुंचाई थी. बाद में अन्य देशों ने भी पुर्तगाल का इस व्यवसाय में अनुकरण किया. अमेरिका में दासों को विशाल भू–क्षेत्र में कॉफ़ी, तम्बाकू, कोकोआ, चीनी, चावल तथा कपास के उत्पादन से जुड़े हुए कार्य, सोने और चांदी की खानों में काम करने के लिए, इमारतें बनाने के काम के लिए, सड़क बनाने के लिए, जहाज के निर्माण हेतु लकड़ी काटने के काम करने के लिए और घरेलू काम करने के लिए बेच दिया जाता था. इन दासों को बंधुआ दास कहा जाता था. ये दास अपनी स्वामी की संपत्ति माने जाते थे और दास महिलाओं की संतानों की भी वही स्थिति होती थी. दासों के स्वामी अपने समस्त कठिन और श्रम–साध्य काम इन दासों से करवाते थे और उनका सिर्फ़ काम था, अपने दासों पर सख्ती के साथ हुक्म चलाना.

दासों की खरीद और बिक्री बाज़ार में बिकने वाले अन्य सामानों की भांति ही होती थी. अटलांटिक दास–व्यापार से शताब्दियों पहले अफ्रीका, यूरोप और एशिया में दास प्रथा का प्रचलन था और अमेरिका में यूरोपीय औपनिवेशीकरण से पहले भी अफ्रीका से यूरोप के देशों में तथा मुस्लिम देशों में दासों का व्यापार किया जाता था. किन्तु तब अफ्रीकी दासों का व्यापार, यूरोपीय देशों की तुलना में मुस्लिम देशों से अधिक किया जाता था. अटलांटिक दास–व्यापार के समय यूरोपीय व्यापारी अफ्रीकी राज्यों के पारस्परिक युद्धों में पराजित राज्य के बंदी बनाए गए लोगों में से दासों को खरीदते थे. दासों को विक्रेता दासों को बेचकर बदले में बंदूकें, शराब, कपड़े और यूरोप का अन्य तैयार माल प्राप्त करते थे. इस अटलांटिक दास–व्यापार में अफ्रीकन तथा यूरोपीय शासक सामान रूप से भागीदार थे. यूरोपीय दास–व्यापारी अफ्रीका में जिन स्थानों से दास खरीदते थे उनमें मुख्य आठ स्थान थे दृ सेनेगाम्बिया, अपर गुयाना, विंडवार्ड कोस्ट, गोल्ड कोस्ट, बिघ्ट ऑफ़ बियाफ्रा, पश्चिम–मध्य अफ्रीका तथा दक्षिण–पूर्व अफ्रीका.

अटलांटिक दास–व्यापार का पहला चरण 16 वीं शताब्दी में था जब कि दासों को दक्षिण अमेरिका के पुर्तगाली और स्पेनिश उपनिवेशों में भेजा जाता था परन्तु यह कुल अटलांटिक दास–व्यापार का मात्र 3ः था. दास–व्यापार के दूसरे चरण में अंग्रेज़, पुर्तगाली, फ्रांसीसी तथा डच व्यापारियों ने मुख्य भूमिका निभाई और इन दासों को मुख्यतः कैरीबियन द्वीपों और ब्राज़ील में बेचा. ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि अटलांटिक दास–व्यापार 18 वीं

शताब्दी में अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचा. ब्रिटिश दास–व्यापारी सर जॉन हॉकिन्स को अफ्रीका, यूरोप और अमेरिका के त्रिकोणात्मक दास–व्यापार में अग्रणी माना जाता है.

अमेरिका में दासों को अपनी मर्ज़ी से विवाह करने का अधिकार नहीं था. अपने स्वामी के घर में उन्हें कभी भी परिवार के सदस्य के रूप में नहीं देखा जाता था, उन्हें तो अपने स्वामी की संपत्ति के रूप में देखा जाता था. यदि कोई दास विद्रोह करता था अथवा किसी की हत्या कर देता था तो उसे प्राणदंड दिया जाना निश्चित होता था.

3.6.2 नयी दुनिया में दासों की सेवाओं की आवश्यकता

प्रशांत महासागर के पार दास–व्यापार की उत्पत्ति अमेरिकी उपनिवेशों में श्रमिकों की कमी के कारण हुई थी. पहले अमेरिका में उपनिवेश स्थापित करने वालों ने वहां के मूल निवासियों को दास बनाया किन्तु खदान के काम में, शर्करा उत्पाद की खेती और उसके उत्पादन, शीरा और उस से शराब बनाने के और कपास उगाने के गुरुतर कार्यों हेतु उनकी संख्या बहुत कम थी. मुफ्त ज़मीनें दिए जाने वा अन्य प्रलोभनों के बावजूद यूरोप से श्रमिकों की इतनी बड़ी खेप पहुंचना बहुत मुस्किल था. अमेरिका में श्रमिकों की आपूर्ति के लिए यूरोपीय व्यापारियों ने पहले पश्चिमी अफ्रीका और फिर मध्य अफ्रीका की ओर अपनी दृष्टि डाली. सबसे पहले स्पेनियड्र्स और फिर पुर्तगालियों ने अमेरिका में अफ्रीकी दासों की आपूर्ति की. जब ब्रिटिश नौ–सैनिक शक्ति अपने उत्कर्ष पर पहुंची और अमेरिका में उनका औपनिवेशिक साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार हो गया तो लिवरपूल और ब्रिस्टल से व्यापक स्तर पर दास–व्यापार होने लगा. यूरोप से तैयार माल अफ्रीका भेजा जाता था और उसके बदले में वहां से गुलाम खरीदकर लाए जाते थे, जिनको कि बाद में अमेरिका भेज दिया जाता था. मध्य अमेरिका ने 2 लाख, उत्तर अमेरिका ने 5 लाख और ब्राज़ील ने लगभग 45 लाख दासों का आयात किया. 1790 में ब्रिटिश वेस्टइंडीज़ लगभग 5 लाख 24 हज़ार दास थे और फ्रेंच वेस्टइंडीज़ में उनकी संख्या 6 लाख 43 हज़ार थी. स्पेन, नीदरलैंड्स तथा डेनमार्क के उपनिवेशों में भी दासों की संख्या लाखों में थी. इन दासों को इतनी कठिन और अमानवीय परिस्थितियों में रक्खा जाता था कि इन में से अधिकांश की अकाल मृत्यु हो जाती थी. दास–व्यापार अपने समय का सबसे मुनाफ़े वाला व्यापार था. पुनर्जागरण काल से ही कुछ धर्म–प्रचारक दास–व्यापार को ईसाई धर्म की शिक्षा के विरुद्ध बताते आ रहे थे किन्तु अधिकांश लोग यह मानते थे कि इस दुनिया में गोरों और कालों की अलग–अलग भूमिकाएँ हैं और यूरोपीय सभ्यता तथा ईसाई धर्म के वरदान के बदले में अश्वेतों का कठोर श्रम करना तो सर्वथा उचित था.

इंग्लैंड और यूरोप के अन्य भाग में दास–व्यापार के विरुद्ध 'रिलीजस सोसाइटी ऑफ़ फ्रेंड्स' तथा विलियम विल्बरफ़ोर्स जैसे सुधारकों ने अभियान छेड़ा. 1803 में डेनमार्क ने और 1807 में ब्रिटेन ने दास–व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया और 1807 में ही अमेरिका ने दासों के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया किन्तु स्पेन, पुर्तगाल, ब्राज़ील और फ्रांस इस व्यापार में पूर्ववत संलग्न रहे और 1852 तक यह व्यापार चलता रहा.

यूरोप के अधिकांश शक्तिशाली देश – पुर्तगाल, स्पेन, नीदरलैण्ड, फ्रांस ब्रिटेन आदि दास–व्यापार में लिप्त थे. नए उपनिवेशों को बसाने में तथा खेती सहित कठिन श्रम के सभी कार्यों के लिए न्यूनतम मज़दूरी पर कार्य करने वाले दासों से अधिक उपयोगी और कोई नहीं हो सकता था. 16 वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में फ्रांसिस ड्रेक तथा जॉन हाकिंस ने दास–व्यापार द्वारा इंग्लैण्ड के लिए प्रचुर मात्रा में धन कमाया था. अफ्रीका से लाकर लाखों दासों का अमेरिका में निर्यात करने के कारण इंग्लैण्ड के शहर ब्रिस्टल व लिवरपूल अत्यन्त समृद्ध हो गए थे. 1776 तक अमेरिका के 13 उपनिवेशों में में लगभग 6 लाख दास आयात किए गए थे. अश्वेत दासों के साथ उनके मालिकों द्वारा जो अमानवीय व्यवहार किया जाता था उसका शब्दों में वर्णन कर पाना असम्भव है. स्पेनवासी, अमेरिकन इण्डियन्स को गुलाम बनाना अपना अधिकार समझते थे. सेपुवेदा ने कहा था – 'अमेरिकी इण्डिन्स प्राकृतिक रूप से गुलाम होते हैं.'

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए

1. भौगोलिक खोजों की तत्कालीन आवश्यकता एवं उनके लिए अनुकूल परिस्थितियां
2. ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य
3. विजित जाति का दमन
4. नयी दुनिया में दासों की सेवाओं की आवश्यकता

3.7 सारांश

महान भौगोलिक खोजों के युग ने पृथ्वी के आकार और उसके स्वरुप से सम्बंधित अधूरी और दोषपूर्ण जानकारी में आवश्यक संशोधन किए. अब सभी महाद्वीपों तथा विभिन्न देशों के विषय में नयी जानकारी प्राप्त हुई और भौगोलिक अध्ययन को भी एक वैज्ञानिक पद्धति प्राप्त हुई.

यूरोपीय देशों में पुर्तगाल ने भौगोलिक खोजों के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाई थी. आगे चलकर स्पेन, नीदरलैण्ड, फ्रांस और इंग्लैण्ड ने भी नई खोजें करने में अपना योगदान दिया था. 1453 में तुर्कों द्वारा कांस्टेन्टिनोपल पर अधिकार करने के बाद पश्चिमी यूरोपीय देशों के लिए यूरोप और पूर्व के मध्य एशिया माइनर और सीरिया से होकर जाने वाला भू–क्षेत्रीय मार्ग अवरुद्ध हो चुका था. बार्तालोम्यू डियाज, कोलम्बस, वास्कोडिगामा, वोराज़ानो, जे0 कार्तियर, जॉन स्मिथ आदि ने अफ्रीका, एशिया तथा अमेरिका में अज्ञात क्षेत्रों की खोज की.

भौगोलिक खोजों से यूरोपीय देशों को अफ्रीका, एशिया तथा अमेरिका में सैनिक दृष्टि से कमज़ोर किन्तु प्राकृतिक संसाधनों में समृद्ध क्षेत्रों पर अपना अधिकार करने का अवसर मिला. इन क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर यूरोपीय देशों ने अपने–अपने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित किए. उपनिवेशवाद ने यूरोपीय राज्यों के संसाधनों में अपार वृद्धि की. राजनीतिक दृष्टि से इसने शासकों को अधिक साधन–सम्पन्न बनाकर यूरोप में निरंकुश राजतन्त्र को सुद्रढ़ बनाया. उपनिवेशों से अपार धन–सम्पदा आ जाने से यूरोपीय जन–जीवन स्तर में सुधार आया तथा कला का सर्वतोमुखी विकास हुआ. पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क में आने से औपनिवेशिक प्रजा को भी भौतिक प्रगति का महत्व समझ में आने लगा और धीरे–धीरे उपनिवेशों में सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक चेतना का विकास होने लगा. धीरे–धीरे वाणिज्य का केंद्र 'भूमि' से हटकर 'समुद्र' में स्थापित हो गया. अब यूरोपीय अपनी आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक महत्वाकांक्षाओं को साकार कर सकते थे.

यूरोप में भौगोलिक खोजों ने वाणिज्यिक क्रान्ति को और सशक्त व व्यापक बना दिया था. 16 वीं एवं 17 वीं शताब्दी में वाणिज्यिक क्रान्ति अपनी उन्नति और विकास के चरम शिखर पर पहुँच गई. वास्तव में भौगोलिक खोजों, औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना तथा दास–व्यापार का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है. इन सबने मिलकर मनुष्य के संकुचित दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में तथा विश्व इतिहास को मध्य युग से आगे बढ़ाकर आधुनिक युग में प्रविष्ट कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी.

यूरोपीय खोजों ने पूर्व पर पश्चिम की श्रेष्ठता स्थापित कर दी. व्यापारिक गतिविधियों के साथ यूरोपीय देशों ने नए खोजे हुए क्षेत्रों में ईसाई धर्म–प्रचार को भी अपना लक्ष्य बनाया. जो यूरोपीय अंतर्राष्ट्रीय व्यापार केवल भूमध्यसागर तक सीमित था वह भौगोलिक खोजों के बाद पूरे विश्व में फैल गया. अब यूरोप में पूर्व से आयातित सामानों में मसाले, सूती तथा रेशमी कपड़े, पोर्सलिन आदि के साथ–साथ पश्चिम तम्बाकू, कोको, चॉकलेट, कुनैन और अफ्रीका से दास, हाथी दांत, शुतुरमुर्ग के पंख आदि सम्मिलित हो गए. आयातित शक्कर, कॉफ़ी, चावल और कपास की मात्रा में भी तीव्र वृद्धि हुई. यूरोप में जहाँ सोने–चांदी की कमी थी, वहां अब इसकी आपूर्ति इसकी मांग से कहीं अधिक होने लगी. वाणिज्यवाद के विकास से यूरोप में सामन्तवाद के पतन की प्रक्रिया तीव्र हो गई और पश्चिमी यूरोप में पूंजीवाद उभर कर आने लगा. भौगोलिक खोजों के फलस्वरूप व्यापारिक गतिविधियों में अप्रत्याशित वृद्धि ने पूंजीवाद व राष्ट्रीय वाणिज्यवाद को बढ़ावा दिया और अनेक व्यापारिक बैंकों की स्थापना हुई. वाणिज्यिक व्यवस्था के उत्थान के कारण सभी यूरोपीय शक्तियों ने निर्यात को बढ़ावा देने और आयात को घटाने के प्रयास किए.

भौगोलिक खोजों ने उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के उदय को सम्भव बनाया. नए क्षेत्रों की खोज के बाद अनेक यूरोपीय उन क्षेत्रों में बस गए और उन्होंने उन पर अपना अधिकार जमा कर वहां अपना शासन स्थापित कर लिया. पुर्तगालियों, स्पेन वासियों, फ्रांसीसियों, डचों तथा अंग्रेज़ों ने एशिया, अफ्रीका तथा अमेरिका में अपने द्वारा खोजे गए क्षेत्रों में अपने–अपने उपनिवेश स्थापित किए. इसी प्रकार रूसी भौगोलिक खोजों ने साइबेरिया के औपनिवेशिकीकरण का मार्ग प्रशस्त किया. औपनिवेशिक शक्तियों ने अपने–अपने उपनिवेशों का व्यवस्थित दोहन प्रारम्भ किया.

भौगोलिक खोजों ने ज्ञान की अन्य विधाओं जैसे वनस्पतिशास्त्र, जन्तुशास्त्र, मानव–जाति विज्ञान आदि में नई खोजों के अवसर उपलब्ध कराए. यूरोपीयों ने आलू, मक्का, टमाटर और तम्बाकू की खेती करना शुरू कर दिया. राष्ट्रीय संसाधनों में वृद्धि के कारण कला की विभिन्न विधाओं को शासक वर्ग तथा धनाढ्य वर्ग द्वारा प्रोत्साहन दिया जाने लगा और वैज्ञानिक आविष्कारों के लिए समुचित धन भी उपलब्ध कराया जाने लगा जिसका कि परिणाम कला व विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति के रूप में दिखाई दिया.

भौगोलिक खोजों ने यूरोपीय देशों के मध्य प्रतिस्पर्धा को बढ़ाया जिसकी परिणति अनेक बार भीषण युद्धों में हुई।अटलांटिक दास–व्यापार में अफ्रीकन तथा यूरोपीय शासक समान रूप से भागीदार थे.अटलांटिक दास–व्यापार का पहला चरण 16 वीं शताब्दी में था जब कि दासों को दक्षिण अमेरिका के पुर्तगाली और स्पेनिश उपनिवेशों में भेजा जाता था. दास–व्यापार के दूसरे चरण में अंग्रेज़, पुर्तगाली, फ्रांसीसी तथा डच व्यापारियों ने मुख्य भूमिका निभाई और इन दासों को मुख्यतः कैरीबियन द्वीपों और ब्राज़ील में बेचा. ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि अटलांटिक दास–व्यापार 18 वीं शताब्दी में अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचा. ब्रिटिश दास–व्यापारी सर जॉन हॉकिन्स को अफ्रीका, यूरोप और अमेरिका के त्रिकोणात्मक दास–व्यापार में अग्रणी माना जाता है. अमेरिका में श्रमिकों की आपूर्ति के लिए यूरोपीय व्यापारियों ने पहले पश्चिमी अफ्रीका और फिर मध्य अफ्रीका की ओर अपनी दृष्टि डाली. सबसे पहले स्पेनियर्ड्स और फिर पुर्तगालियों ने अमेरिका में अफ्रीकी दासों की आपूर्ति की. जब ब्रिटिश नौ–सैनिक शक्ति अपने उत्कर्ष पर पहुंची और अमेरिका में उनका औपनिवेशिक साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार हो गया तो लिवरपूल और ब्रिस्टल से व्यापक स्तर पर दास–व्यापार होने लगा. यूरोप से तैयार माल अफ्रीका भेजा जाता था और उसके बदले में वहां से गुलाम खरीदकर लाए जाते थे, जिनको कि बाद में अमेरिका भेज दिया जाता था. दास–व्यापार अपने समय का सबसे मुनाफ़े वाला व्यापार था. यूरोप के अधिकांश शक्तिशाली देश – पुर्तगाल, स्पेन, नीदरलैण्ड, फ्रांस ब्रिटेन आदि दास–व्यापार में लिप्त थे। नए उपनिवेशों को बसाने में तथा खेती सहित कठिन श्रम के सभी कार्यों के लिए न्यूनतम मज़दूरी पर कार्य करने वाले दासों से अधिक उपयोगी और कोई नहीं हो सकता था.

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

कुतुबनुमा – दिशा सूचक यंत्र

एस्ट्रोलोव – अक्षांश नापने का यंत्र

वाइकिंग्स – घुमंतू समुद्री दस्यु

वेनीशियन – इटली के शहर वेनिस के निवासी

निर्बाध – बिना किसी बाधा और बिना किसी रुकावट के

क्रूस युद्ध – ईसाईयों द्वारा धर्म–विजय हेतु किए जाने वाले सैनिक अभियान

इंडियन अमेरिकन्स – रैड इंडियंस

स्पेनियर्ड्स – स्पेन के निवासी

3.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 2. 3. 2. 1

2. देखिए 2. 3. 3. 5

3. देखिए 2. 3. 3. 8

4. देखिए 2. 3. 4. 2

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अर्नाल्ड, डेविड , दि एज ऑफ़ डिस्कवरी 1400–1600,लंकास्टर, 2002
2. एर्मेस्तो फेलिपो फ़र्नान्डेज़ , पाथ फाइंडर्सरू ए ग्लोबल हिस्ट्री ऑफ़ एक्सप्लोरेशन, न्यूयॉर्क, 2006
3. पेनरोज़, बी. , ट्रेवल एंड डिस्कवरी इन दि रिनेसां, कैम्ब्रिज, 1952
4. पेरी, जे. एच. , दि डिस्कवरी ऑफ़ दि सी, कैलिफोर्निया, 1981
5. प्रमोद कुमार , आधुनिक यूरोप का इतिहास (1450–1789), दिल्ली, 2016

3.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

बीज़ले, सी. रेमण्ड दृ प्रिंस हेनरी दि नेविगेटर, दि हीरो ऑफ़ पोर्चगाल एंड ऑफ़ मॉडर्न डिस्कवरी , 1394 , 1460, लन्दन, 1894

फ़ौट, सी. ब्रेड , क्लाइव, फाउंडर ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया, वाशिंगटन, 2013

मार्क बेन्स–जोन्स , क्लाइव ऑफ़ इंडिया, लन्दन, 1974

मार्टिंस, जे. पी. ओलेवेरा , दि गोल्डन एज ऑफ़ प्रिंस हेनरी दि नेविगेटर एंड दि रिजल्ट्स, लन्दन, 1877

3.10निबंधात्मक प्रश्न

1. अटलांटिक दास–व्यापार पर एक आलोचनात्मक निबंध लिखिए.

इकाई एकः यूरोप में वाणिज्यवाद और व्यापारिक क्रान्ति

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3. वाणिज्यिक क्रान्ति एवं व्यापारिक क्रान्ति से पूर्व अंतर्राष्ट्रीय यूरोपीय व्यापार एवं वाणिज्य का विकास
 1.3.1 प्रारंभिक व्यापारिक संघ तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक गतिविधियाँ
 1.3.2 हैन्सियाटिक लीग
 1.3.3 हेनरी दि नेविगेटर
1.4 15 वीं तथा 16 वीं शताब्दी में हुई भौगोलिक खोजों का यूरोपीय व्यापार पर प्रभाव
 1.4.1 भौगोलिक खोजें
 1.4.2 यूरोप से पूर्व और पश्चिम की ओर होने वाला व्यापार
 1.4.3 यूरोप, अफ्रीका और अमेरिका के मध्य त्रिकोणात्मक व्यापार
1.5 वाणिज्यिक क्रान्ति के दौरान वित्तीय सेवाओं का विकास
 1.5.1 बैंकिंग
 1.5.2 निवेशक कम्पनियों का विकास
 1.5.3 प्राचीन एवं मध्यकालीन 'गिल्ड व्यवस्था' का अंत (शिल्पी–संघ व्यवस्था)
 1.5.4 पुटिंग आउट सिस्टम (घरेलू व्यवस्था)
1.6 वाणिज्यवाद, व्यापारिक क्रान्ति तथा उपनिवेशवाद का अन्तः सम्बन्ध
 1.6.1 पुर्तगाल, स्पेन और नीदरलैंड के उपनिवेश
 1.6.2 ब्रिटिश उपनिवेश
1.7 यूरोप में वाणिज्यिक एवं व्यापारिक क्रान्ति के परिणाम
 1.7.1 यूरोप में अथाह समृद्धि का आगमन
 1.7.2 पूंजीवाद का उदय
 1.7.3 यूरोपीय सभ्यता का प्रसार
 1.7.4. दास–प्रथा का पुनर्प्रचलन
 1.7.5 मध्यवर्ग का उदय
 1.7.6 नगरों का विकास तथा जनसँख्या विस्फोट
 1.7.7 औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार करना
1.8 सारांश
1.9 पारिभाषिक शब्दावली
1.10 सन्दर्भ ग्रंथ
1.11 उपयोगी नाठ्य सामग्री
1.11 स्वमूल्यांकित प्रश्न संक्षिप्त टिप्पणी के उत्तर
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

वाणिज्यवाद वह आर्थिक नीति है जिसके अंतर्गत प्रत्येक देश साध्य के औचित्य अथवा अनौचित्य पर विचार किए बिना किसी भी प्रकार से अधिक से अधिक धन एकत्र करने के लिए प्रयत्नशील रहता है. इस नीति के पीछे धारणा यह है कि जो देश जितना अधिक समृद्ध होता है, वह उतना ही अधिक शक्तिशाली होता है. वाणिज्यवाद के प्रतिपादकों में थॉमस मून तथा फ़िलिप वॉन होर्निक प्रमुख हैं. वाणिज्यवाद के प्रारंभिक आलोचकों में हम निकोलस बरबन का नाम ले सकते हैं.

वाणिज्यिक क्रान्ति ने मध्ययुगीन अस्थिर, सीमित क्षेत्र तक व्याप्त और महत्वाकांक्षा–हीन, केवल जीवन–निर्वाह तक सीमित अर्थव्यवस्था को एक नया व्यापक अंतर्राष्ट्रीय स्वरुप प्रदान किया, उसमें गतिशीलता व महत्वाकांक्षा का संचार किया और अंततः पूँजीवादी व्यवस्था को विश्वव्यापी बनाया. 'वाणिज्यवाद' तथा 'वाणिज्यिक क्रान्ति' शब्द, 20 वीं शताब्दी के आर्थिक इतिहासकार रोबेर्टो सबातिनो लोपेज़ की देन हैं. जो कि उन्होंने अपनी पुस्तक दृ 'दि कमर्शियल रेवोलुशन ऑफ़ दि मिडिल एजेज़' में प्रयुक्त किए थे. 13 वीं के उत्तरार्ध से लेकर 18 वीं शताब्दी के प्रारंभ तक यूरोपीय आर्थिक विस्तार, उपनिवेशवाद और वाणिज्यवाद को हम वाणिज्यिक क्रान्ति के रूप में जानते हैं. वाणिज्यिक क्रान्ति ने आधुनिक युग के प्रारंभ में समस्त विश्व की दिशा और दशा बदल दी. अंतर्राष्ट्रीय और स्थानीय व्यापार को ध्यान में रखते हुए विभिन्न राज्यों में नए क़ानून बनाए गए. अब राज्यों ने अपने राष्ट्रीय व्यापार और उद्योग को अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा से सुरक्षा प्रदान करने के लिए उन्हें राज्य की ओर से प्रोत्साहन तथा सहायता देना प्रारंभ कर दिया.

ईसाई शक्तियों को अपने जल–मार्गीय धर्म–युद्ध (11 वीं शताब्दी से प्रारम्भ) अभियानों के दौरान मसाले, रेशम तथा यूरोप में अन्य दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति हुई जिसने मध्यकाल के उत्तरार्ध में उन्हें अपने व्यापार का विस्तार करने के लिए प्रेरित किया। 13 वीं शताब्दी में हेन्सियाटिक लीग ने एक संगठित व्यापार–संघ बनाकर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को नयी ऊंचाइयों तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त की थी. 1453 में तुर्कों द्वारा कुन्सतुनिया पर अधिकार के बाद पश्चिमी यूरोप के देशों (पुर्तगाल, स्पेन, नीदरलैण्ड और इंग्लैण्ड) के लिए थल–मार्ग से पूर्वी व्यापार असम्भव हो गया था. इस व्यापारिक संकट ने शासकों द्वारा प्रायोजित सफल भौगोलिक खोजों का दौर प्रारम्भ किया. एशिया, अफ्रीका व अमेरिका में नए क्षेत्रों की खोज और तदन्तर उन पर यूरोपीय देशों के अधिकार के कारण यूरोपीय, एशियायी, अफ़्रीकी तथा अमेरिकी देशों का आर्थिक दृष्टि से बहु–आयामीय सम्बन्ध स्थापित हो गया. नव गठित यूरोपीय राज्य 15 वीं तथा 16 वीं शताब्दी में पुराने व्यापार मार्गों के वैकल्पिक व्यापार–मार्ग खोज रहे थे. भौगोलिक खोजों ने नए–नए व्यापारिक मार्गों की खोज को संभव बनाया और शीघ्र ही यूरोपीय देशों से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का जाल बिछ गया. यूरोपीय राष्ट्रों ने समृद्धि के नए स्रोतों की तलाश की और वो उन्हें प्राप्त भी हुए. वाणिज्यिक क्रान्ति आम वाणिज्य में वृद्धि तथा बैंकिंग, बीमा तथा निवेश जैसी वित्तीय सेवाओं के विकास में दृष्टिगोचर हुई.

16 वीं से 18 वीं शताब्दी के बीच में यूरोपीयों ने उल्लेखनीय जहाजी आविष्कार किए. अब यूरोपीय शक्तियां सुगमता से अपने अतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ा सकती थीं और अपने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित कर सकती थीं. मानचित्रों, पाल वाले जहाजों, दिशा सूचक यंत्र, नक्षत्रीय गणना के आधार पर दिशाओं के ज्ञान ने वाणिज्यिक क्रान्ति को नया बल प्रदान किया. पुर्तगाल के प्रिंस हेनरी दि नेविगेटर ने प्रशांत महासागर में साहसिक अभियान का दौर प्रारंभ किया, बर्तोलोम्यू दियास, वास्कोडिगामा, फर्दिनेंद मेगेलन, क्रिस्टोफर कोलंबस, जेकेस कार्टियर आदि ने पूर्व और पश्चिम में नए–नए क्षेत्रों की खोज ने व्यापार और वाणिज्य को नयी दिशा और नए आयाम दिए.

अफ्रीका, उत्तर अमेरिका और यूरोप के मध्य त्रिकोणात्मक व्यापार ने व्यापारिक क्रांति को एक नया बल प्रदान किया. दास अफ्रीका से लाए जाते थे और फिर उन्हें अमेरिका भेजा जाता था; कच्चा माल अमेरिका से आता था और फिर उसका उपयोग यूरोप की फैक्टरियों में तैयार माल बनाने के लिए किया जाता था फिर यह तैयार माल अमेरिका में ऊंचे दामों पर बेचा जाता था. कोकोआ, कॉफ़ी, मक्का, कसावा और आलू का प्रचलन सारी

दुनिया में हो गया. वाणिज्यिक एवं व्यापारिक क्रान्ति का एक परिणाम यह हुआ कि बेहतर खाने और बेहतर सुख–सुविधाओं के कारण यूरोप की जनसँख्या में वृद्धि हुई. इसका सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि अब यूरोप में प्रचुर मात्रा में धन की उपलब्धता हो गयी और इसी के बल पर वहां औद्योगिक क्रान्ति संभव हो सकी. भौगोलिक खोजों ने व्यापार के लिए नयी संभावनाओं को विकसित किया. अबतक केप ऑफ़ गुड होप होते हुए भारत तक पहुँचने के समुद्री मार्ग की खोज की जा चुकी थी. पुर्तगाल, पूर्व से पश्चिम के व्यापार की मुख्य कड़ी बन गया था. धीरे–धीरे नीदरलैंड के शहर एंटवर्प की भी इस व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका हो गयी.

यूरोप और चीन के मध्य व्यापार की शुरूआत 16 वीं शताब्दी में हुई. भारत में गोवा और चीन में मकाऊ पुर्तगाली व्यापारिक ठिकाने बन गए. बाद में इस वाणिज्यिक–व्यापारिक होड़ इंग्लैंड भी आ गया और उसने प्रारंभ में अपनी अभिरुचि प्रशांतसागर के पार वाले क्षेत्र की और केन्द्रित की. 1450 से लेकर 1700 तक यूरोपीय आर्थिक केंद्र, इस्लाम के अनुयायियों के भूमध्यसागर से हटकर पाश्चात्य यूरोप (पुर्तगाल, स्पेन, फ्रांस, नीदरलैंड और एक सीमा तक इंग्लैंड) में स्थानांतरित हो गया था.

वाणिज्यवाद ने उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया. यह सिद्धान्त कि – उपनिवेश का अस्तित्व शासक राज्य के लाभ के लिए है' उपनिवेशों के दोहन का मूल मन्त्र बन गया. शासक राष्ट्रों ने अपने उपनिवेशों को स्वतन्त्र रूप से व्यापार करने की अनुमति नहीं दी, उन्हें अपना तैयार माल खरीदने का खरीदार और कच्चे माल की आपूर्ति करने वाला बनाकर छोड़ दिया. इस काल में व्यापारिक कम्पनियों ने ताज के प्रतिनिधि की भूमिका निभाई. वाणिज्यिक क्रान्ति ने आधुनिक कारखानों में वृहद मात्रा में उत्पादित माल की खपत के लिए उपनिवेशों के बाज़ार पहले ही तैयार कर दिए थे। इन अनुकूल परिस्थितियों में औद्योगिक क्रान्ति यूरोपीय इतिहास में कोई आश्चर्यजनक नहीं अपितु नितान्त स्वाभाविक घटना बनकर प्रकट हुई थी.

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको उत्तर मध्यकाल में यूरोप में हुई वाणिज्यिक तथा व्यापारिक प्रगति से अवगत कराना है. इस इकाई के अध्ययन से आपको ज्ञात होगा कि इस काल में यूरोपीय व्यापार एवं वाणिज्य का अत्यधिक विस्तार हुआ और उसका स्वरुप अंतर्राष्ट्रीय हो गया.

1. इस इकाई के प्रथम चरण में आप वाणिज्यिक एवं व्यापारिक क्रान्ति से पूर्व अंतर्राष्ट्रीय यूरोपीय व्यापार एवं वाणिज्य की प्राम्भिक प्रगति के विषय में जान सकेंगे.
2. इस इकाई के दूसरे चरण में आप 15 वीं तथा 16 वीं शताब्दी में बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों तथा भौगोलिक खोजों के फस्वरूप नयी व्यापारिक एवं वाणिज्यिक संभावनाओं के विषय में जान सकेंगे.
3. इस इकाई के तीसरे चरण में आप यूरोप से पूर्व और पश्चिम की ओर होने वाले व्यापार तथा यूरोप, अफ्रीका तथा अमेरिका के मध्य होने वाले त्रिकोणात्मक व्यापार, विशेषकर दास–व्यापार की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
4. इस इकाई के चौथे चरण में आप वाणिज्यिक क्रान्ति के दौरान हुई वित्तीय सेवाओं के क्षेत्र में हुए विकास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
5. इस इकाई के पांचवें चरण में आप वाणिज्यवाद, व्यापारिक क्रान्ति तथा उपनिवेशवाद के अन्तः सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
6. इस इकाई के छठे चरण में आप यूरोप में वाणिज्यिक एवं व्यापारिक क्रान्ति के परिणामों की जानकारी प्राप्त करेंगे तथा इसके साथ ही आप यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार करने में वाणिज्यवाद तथा व्यापारिक क्रान्ति के योगदान के विषय में जानकारी भी प्राप्त कर सकेंगे.

1.3. वाणिज्यिक क्रान्ति एवं व्यापारिक क्रान्ति से पूर्व अंतर्राष्ट्रीय यूरोपीय व्यापार एवं वाणिज्य का विकास

1.3.1 प्रारंभिक व्यापारिक संघ तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक गतिविधियाँ

यहूदी तथा मुस्लिम व्यापारियों ने 11वीं शताब्दी से भी पहले व्यापारी–संघ स्थापित कर लिए थे. वो बहुत पहले ही 'वाणिज्यिक क्रान्ति' में प्रयुक्त की जाने वाली ऋण–सुविधा व मुद्रा–विनिमय की प्रणाली का विकास कर चुके थे.

ईसाई शक्तियों को अपने जल–मार्गीय धर्म–युद्ध (11 वीं शताब्दी से प्रारम्भ) अभियानों के दौरान मसाले, रेशम तथा यूरोप में अन्य दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति हुई जिसने कि मध्यकाल के उत्तरार्ध में उन्हें अपने व्यापार का विस्तार करने के लिए प्रेरित किया.

1.3.2 हैन्सियाटिक लीग

हैन्सियाटिक लीग एक ऐसा शिल्पीसंघ था जो कि व्यापारियों के वाणिज्यिक हितों की रक्षा करने के लिए बनाया गया था. इसने लगभग चार सौ साल बाल्टिक सागर में और उत्तरी यूरोप के समुद्री तट पर होने वाले व्यापार पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था. इस लीग का उद्देश्य व्यापार–मार्ग में आने वाले विभिन्न शहरों और देशों मे शिल्पीसंघ के आर्थिक हितों और कूटनीतिक अधिकारों की रक्षा करना था. इस लीग की अपनी क़ानून प्रणाली थी और अपनी सेना भी थी. इसकी तुलना हम 'फ्री इम्पीरियल सिटी' से कर सकते हैं.

जर्मनी के व्यापारियों ने 1300 में एक व्यापारिक संघ के रूप में 'हैन्सियाटिक लीग' की स्थापना की थी जिसमें कि लगभग 100 नगरों के व्यापारी सम्मिलित थे. इसकी शुरुआत मोटे ऊनी कपड़े के व्यापार से हुई थी, बाद में इसमें अच्छी किस्म के ऊनी तथा रेशमी कपड़ों, लकड़ी तथा धातु निर्मित उत्पाद, फ़र, शहद, गेहूं आदि का व्यापार भी सम्मिलित हो गया. इस लीग ने उत्तरी यूरोप तथा बाल्टिक सागर क्षेत्र में व्यापक स्तर पर व्यापारिक गतिविधियां की. इस लीग का उद्देश्य व्यापारियों के आर्थिक हितों की अपने–अपने शहर, देश और व्यापार–मार्गों पर रक्षा करना था. 'हैन्सियाटिक लीग' के अन्तर्गत शहरों के अपने कानून और समुद्री डाकुओं का मुकाबला करने के लिए अपनी सेनाएं थीं. सैक्सोनी तथा वैस्टफ़ेलिया के लिए ल्यूबेक सबसे बड़ा व्यापारिक केन्द्र बना. लगभग दो सौ वर्षों तक यह लीग यूरोपीय व्यापार में प्रभावशाली भूमिका निभाने में सफल रही. ल्युबेक तथा विस्बी शहर इस लीग की व्यापारिक गतिविधियों के मुख्य केंद्र थे. अपने चरमोत्कर्ष के समय इस लीग का व्यापार ब्रजेस, बर्जेन एवं लन्दन सहित लगभग 170 शहरों तक फैल गया था. हर शहर में एक किलेनुमा प्रांगण में इस लीग के अपने गोदाम थे, अपने तुला–गृह थे, अपने चर्च थे और अपने कार्यालय थे. हैन्सियाटिक शहरों की निष्ठा पवित्र रोमन सम्राट के प्रति होती थी. हैन्सियाटिक लीग ने विभिन्न व्यापार–मार्गों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर रक्खा था और वह राज्यों की नीतियों पर भी अपना प्रभाव स्थापित करने में सफल रहती थी. राजनीतिक प्रभाव के साथ–साथ लीग एक सैनिक शक्ति के रूप में भी उभर कर आई थी. डेनमार्क के राज्य से युद्ध कर लीग ने उसे अपने व्यापारिक लाभ का 15ः लीग को देने के लिए बाध्य किया था. हैन्सियाटिक लीग ने ल्युबेक और डेज़िंग के पोत–निर्माण उद्योग के अधिकांश भाग पर अपना अधिकार कर रक्खा था, इस कारण उसे अपना समुद्री–व्यापार बढ़ाने में अत्यधिक सुविधा प्राप्त थी. डची ऑफ़ बरगुंडी में ब्रजेस, एंटवर्प तथा होलैंड के शामिल होने के बाद 'हैन्सियाटिक लीग' का व्यापार पर एकाधिकार धीरे–धीरे क्षीण होने लगा. और अनाज का व्यापार अब ब्रजेस से एम्सटर्दम की और स्थानांतरित हो गया.

1.3.3 हेनरी दि नेविगेटर

पुर्तगाल के प्रिंस हेनरी दि नेविगेटर ने अटलांटिक महासागर में साहसिक अभियान का दौर प्रारंभ किया. प्रिंस हेनरी का संरक्षण प्राप्त नाविकों ने अफ्रीका के तटीय क्षेत्रों पोर्टो सान्तो, मदेरिया, एज़ोरेस पर पुर्तगाली उपनिवेश की स्थापना की. हेनरी दि नेवीगेटर ने अफ्रीका में सफल निजी व्यापारिक अभियानों की शुरूआत की. उसने सैग्रेस के तट पर एक अनुसन्धान केन्द्र की स्थापना की और वहां से खगोलशास्त्रियों, पोत निर्माताओं, मानचित्र विशेषज्ञों आदि की सहायता से नाविक अभियान भेजने प्रारम्भ किए. उसके प्रोत्साहन और संरक्षण में 1644 से 1646 के बीच 40 व्यापारिक पोत लागोस से अपने अभियान के लिए रवाना हुए. प्रिंस हेनरी के नाविकों

ने सहारा के रेगिस्तान तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की. कुछ ही समय में अफ्रीका से प्रचुर मात्रा में सोना पुर्तगाल पहुँचने लगा और पुर्तगाल दास–व्यापार में भी अग्रणी देश बन गया.

1.4 15 वीं तथा 16 वीं शताब्दी में हुई भौगोलिक खोजों का यूरोपीय व्यापार पर प्रभाव

1.4.1 भौगोलिक खोजें

1453 में तुर्कों द्वारा कुन्सतुनिया पर अधिकार के बाद पश्चिमी यूरोप के देशों (पुर्तगाल, स्पेन, नीदरलैण्ड और इंग्लैण्ड) के लिए थल–मार्ग से पूर्वी व्यापार असम्भव हो गया था. इस व्यापारिक संकट ने शासकों द्वारा प्रायोजित सफल भौगोलिक खोजों का दौर प्रारम्भ किया.

बर्तोलोम्यू दियास, वास्कोडिगामा, फर्दिनेंद मेगेलन, क्रिस्टोफर कोलंबस, जेकेस कार्टियर आदि ने पूर्व और पश्चिम में नए–नए क्षेत्रों की खोज ने व्यापार और वाणिज्य को नयी दिशा और नए आयाम दिए. एशिया, अफ्रीका व अमेरिका में नए क्षेत्रों की खोज और तदन्तर उन पर यूरोपीय देशों के अधिकार के कारण यूरोपीय, एशियायी, अफ़्रीकी तथा अमेरिकी देशों का आर्थिक दृष्टि से बहु–आयामीय सम्बन्ध स्थापित हो गया. वैकल्पिक व्यापारिक मार्गों की खोज से यूरोपीय राज्यों को अंतर्राष्ट्रीय–व्यापार का एक वृहत जाल फैलाने में सफलता मिली. इस अंतर्राष्ट्रीय–व्यापार से यूरोपीय देशों को अतुलित धन प्राप्त हुआ. भौगोलिक खोजों ने व्यापार के लिए नयी संभावनाओं को विकसित किया. 16 वीं से 18 वीं शताब्दी के बीच में यूरोपीयों ने उल्लेखनीय जहाजी आविष्कार किए. अब यूरोपीय शक्तियां सुगमता से अपने अतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ा सकती थीं और अपने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित कर सकती थीं. मानचित्रों, पाल वाले जहाजों, दिशा सूचक यंत्र, नक्षत्रीय गणना के आधार पर दिशाओं के ज्ञान ने वाणिज्यिक क्रान्ति को नया बल प्रदान किया.

1.4.2 यूरोप से पूर्व और पश्चिम की ओर होने वाला व्यापार

15 वीं शताब्दी के अंत तक केप ऑफ़ गुड होप होते हुए भारत तक पहुँचने के समुद्री मार्ग की खोज की जा चुकी थी. पुर्तगाल, पूर्व से पश्चिम के व्यापार की मुख्य कड़ी बन गया था. धीरे–धीरे नीदरलैंड के शहर एंटवर्प की भी इस व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका हो गयी. यूरोप और चीन के मध्य व्यापार की शुरूआत 16 वीं शताब्दी में हुई. भारत में गोवा और चीन में मकाऊ पुर्तगाली व्यापारिक ठिकाने बन गए. बाद में इस वाणिज्यिक–व्यापारिक होड़ इंग्लैंड भी आ गया और उसने प्रारंभ में अपनी अभिरुचि अटलांटिक महासागर के पार वाले क्षेत्र की और केन्द्रित की. 1450 से लेकर 1700 तक यूरोपीय आर्थिक केंद्र, इस्लाम के अनुयायियों के भूमध्यसागर से हटकर पाश्चात्य यूरोप (पुर्तगाल, स्पेन, फ्रांस, नीदरलैंड और एक सीमा तक इंग्लैंड) में स्थानांतरित हो गया था.

16 वीं शताब्दी में चीन के मिंग राज्यवंश में चीन के साथ पुर्तगाल, स्पेन तथा होलैंड के साथ व्यापार बढ़ा. 1543 में जापान में पुर्तगालियों का आगमन हुआ और फिर वहां पुर्तगालियों ने चीन की रेशम के बदले जापान से प्रचुर मात्र में चांदी प्राप्त की. 1573 में जब मनिला में स्पेन का व्यापारिक ठिकाना बन गया तो स्पेन के अधीन अमेरिका के क्षेत्र से लाई गयी चांदी के बदले में चीन से वस्तुओं रेशम आदि वस्तुओं का आयात किया जाने लगा. पहले बाल्टिक, रूसी तथा इस्लामिक व्यापारिक कड़ियों पर जर्मन तथा इटालियन व्यापारिक शक्तियों का प्रभुत्व था किन्तु अब इसकी जगह प्रशांत महासागरीय व्यापार ने ले ली थी. अब चीनी, मसाले और चीनी मिट्टी का सामान भी आसानी से यूरोप के बाज़ार में पहुँचने लगा था.

डची ऑफ़ ब्रैबेंट का एक भाग, एंटवर्प का शहर, समस्त अंतर्राष्ट्रीय अर्थ–व्यवस्था का केंद्र और उस समय का यूरोप का सबसे समृद्ध शहर बन गया. एंटवर्प और एम्सटर्डम के व्यापारिक महत्त्व के कारण ही 'डच गोल्डन एज' अस्तित्व में आया. वेनीशियन प्रतिनिधि फ्रांसिस्को गुचियार्दिनी के अनुसार एंटवर्प से प्रतिदिन 100 जहाज और प्रति सप्ताह लगभग 2000 गाड़ियाँ माल लेकर शहर में प्रविष्ट होती थीं. काली मिर्च और दालचीनी से भरे पुर्तगाली जहाजों से नित्य ही माल उतारा जाता था. एंटवर्प शहर की अर्थ–व्यवस्था पर विदेशियों का क़ब्ज़ा था इसमें वेनिस, रैगुसा, स्पेन और पुर्तगाल के व्यापारी रहते थे. धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाये जाने के कारण यहाँ

बड़ी संख्या में कट्टरपंथी यहूदी समुदाय भी आकर बस गया था. सच्चे अर्थों में यह शहर एक अंतर्राष्ट्रीय शहर था. काली मिर्च, चांदी और कपड़ा उद्योग से सम्बद्ध के व्यापार ने इस शहर को अत्यधिक समृद्ध बना दिया था.

1557 में पुर्तगालियों ने मिंग दरबार को 'मकाउ' को पुर्तगाली व्यापारिक बस्ती के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार कर लिया. चीन से आयात किये जाने वाले मुख्य उत्पाद रेशम और पोर्सलिन के बर्तन थे जो कि योरोपीय विलासिता के आवश्यक अंग बन गए थे. डच ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के बाद से 1602 से 1682 के दौरान 60 लाख पोर्सलिन के बर्तनों का आयत किया गया था.

1.4.3 यूरोप, अफ्रीका और अमेरिका के मध्य त्रिकोणात्मक व्यापार

अफ्रीका, उत्तर अमेरिका और यूरोप के मध्य त्रिकोणात्मक व्यापार ने व्यापारिक क्रांति को एक नया बल प्रदान किया. दास अफ्रीका से लाए जाते थे और फिर उन्हें अमेरिका भेजा जाता था; कच्चा माल अमेरिका से आता था और फिर उसका उपयोग यूरोप की फैक्टरियों में तैयार माल बनाने के लिए किया जाता था फिर यह तैयार माल अमेरिका में ऊंचे दामों पर बेचा जाता था. प्रशांत महासागर के पार दास–व्यापार की उत्पत्ति अमेरिकी उपनिवेशों मं6 श्रमिकों की कमी के कारण हुई थी. अमेरिका में श्रमिकों की आपूर्ति के लिए यूरोपीय व्यापारियों ने पहले पश्चिमी अफ्रीका और फिर मध्य अफ्रीका की ओर अपनी दृष्टि डाली. सबसे पहले स्पेनियर्ड्स और फिर पुर्तगालियों ने अमेरिका में अफ्रीकी दासों की आपूर्ति की. जब ब्रिटिश नौ–सैनिक शक्ति अपने उत्कर्ष पर पहुंची और अमेरिका में उनका औपनिवेशिक साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार हो गया तो लिवरपूल और ब्रिस्टल से व्यापक स्तर पर दास–व्यापार होने लगा. यूरोप से तैयार माल अफ्रीका भेजा जाता था और उसके बदले में वहां से गुलाम खरीदकर लाए जाते थे, जिनको कि बाद में अमेरिका भेज दिया जाता था. मध्य अमेरिका ने 2 लाख, उत्तर अमेरिका ने 5 लाख और ब्राज़ील ने लगभग 45 लाख दासों का आयात किया. 1790 में ब्रिटिश वेस्टइंडीज़ लगभग 5 लाख 24 हज़ार दास थे और फ्रेंच वेस्टइंडीज़ में उनकी संख्या 6 लाख 43 हज़ार थी. स्पेन, नीदरलैंड्स तथा डेनमार्क के उपनिवेशों में भी दासों की संख्या लाखों में थी. इन दासों को इतनी कठिन और अमानवीय परिस्थितियों में रक्खा जाता था कि इन में से अधिकांश की अकाल मृत्यु हो जाती थी. दास–व्यापार अपने समय का सबसे मुनाफ़े वाला व्यापार था. पुनर्जागरण काल से ही कुछ धर्म–प्रचारक दास–व्यापार को ईसाई धर्म की शिक्षा के विरुद्ध बताते आ रहे थे किन्तु अधिकांश लोग यह मानते थे कि इस दुनिया में गोरों और कालों की अलग–अलग भूमिकाएँ हैं और यूरोपीय सभ्यता तथा ईसाई धर्म के वरदान के बदले में अश्वेतों का कठोर श्रम करना तो सर्वथा उचित था.

1.5 वाणिज्यिक क्रान्ति के दौरान वित्तीय सेवाओं का विकास

1.5.1 बैंकिंग

नयी परिस्थितियों में व्यापार की आधारभूत संस्थाओं का विकास, परिष्कार और उनमें परिवर्तन किया जाना आवश्यक हो गया. वाणिज्यिक क्रान्ति के इस दौर में व्यापक स्तर पर व्यापार–वाणिज्य का संगठन विकसित हुआ. यह वाणिज्यिक क्रान्ति, सामान्य व्यावसायिक गतिविधियों में, तथा वित्तीय सेवाओं (बैंकिंग, बीमा, निवेश आदि) में वृद्धि में परिलक्षित हुई. बैंकिंग व्यवस्था के विकास ने वाणिज्यिक क्रान्ति को एक दृढ आधार प्रदान किया. मध्यकाल तक ईसाई समाज में बैंकिंग के व्यवसाय को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था और यूरोप में बैंकिंग व्यवस्था पर एक प्रकार से यहूदियों का ही एकाधिकार था किन्तु 13 वीं शताब्दी से बैंकिंग के व्यवसाय पर लगे धार्मिक प्रतिबन्ध शिथिल होने लगे. मुनाफ़ा कमाना अब कोई पाप नहीं रह गया. सबसे पहले इटली में बैंकिंग व्यवसाय को कई परिवारों ने अपनाया. 14 वीं शताब्दी में व्यापारिक गतिविधियों में आने वाले खतरों को कम करने के लिए बैंकिंग, स्टॉक एक्सचेंज और बीमा जैसे उपायों को विकसित किया गया. जर्मनी में औग्सबर्ग के फुगर परिवार ने बैंकिंग व्यवसाय को नयी बुलंदियों तक पहुंचा दिया था. अतिरिक्त धन की उपलब्धता के कारण उत्तरी यूरोप में मूलतः खदानों के मालिक फुगर परिवार ने आम आदमी को से लेकर आभिजात्य वर्ग तक, यहाँ तक कि

सम्राट तक को ब्याज पर मुद्रा दी और इसके अतिरिक्त भी अन्य वित्तीय गतिविधियाँ प्रारंभ कर दीं. फ्लोरेंस के मेडिसी परिवार ने मेडिसी बैंक की स्थापना की. 15 वीं शताब्दी तक जर्मनी और फ्रांस में भी बैंकिंग व्यवसाय गति पकड़ने लगा. यूरोप में अब निजी परिवारों के बैंकों के साथ धीरे–धीरे सरकारी बैंकों की स्थापना भी होने लगी थी. इन सरकारी बैंकों में 1657 में स्थापित 'बैंक ऑफ़ स्वीडन' तथा 1694 में स्थापित 'बैंक ऑफ़ इंग्लैंड' प्रमुख थे. बैंकिंग व्यवस्था के विकास ने स्थानीय तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को सुगम बनाकर उसे एक नया बल प्रदान किया. अब व्यापारियों के लिए बड़े–बड़े क़र्ज़ लेकर भी अपने साहसिक अभियानों को सफल बनाना असंभव नहीं रह गया. चेक के द्वारा धन के लेन–देन ने व्यापार को पहले से कहीं अधिक सुरक्षित बना दिया. अब विनिमय में सोने–चांदी की जगह कागज़ के बने नोटों ने ले ली थी.

1.5.2 निवेशक कम्पनियों का विकास

स्टॉक एक्सचेंज का प्रारंभिक रूप हमको 11 वीं शताब्दी में कैरो के मुस्लिम तथा यहूदी व्यापारिक संगठनों में देखने को मिलता है. 13 वीं शताब्दी के मध्य में वेनिस के बैंकरों ने राज्य–सुरक्षा में व्यापार करना प्रारंभ किया था और 14 वीं शताब्दी में पीसा, वेरोना, जेनेवा तथा फ्लोरेंस भी इस प्रकार के व्यापार में सम्मिलित हो गए थे. पहली बार 1602 में डच ईस्ट इंडिया कंपनी ने एम्स्टर्डम स्टॉक एक्सचेंज में अपने शेयर और बांड निर्गत किए थे. एम्सटर्डम स्टॉक एक्सचेंज ने 17 वीं शताब्दी के प्रारंभ में निर्बाध व्यापार को संभव बनाया था. डच व्यापारियों ने अल्पावधि बिक्री, वैकल्पिक व्यापार, व्यापारी–बैंकिंग आदि की शुरूआत की थी. निवेशक कम्पनियां पूँजी निवेश में साझेदारी के आधार पर हिस्सेदारी (शेयर) जारी करने लगी थीं. इन निवेश कम्पनियों में कोई भी निवेश कर सकता था और अपने निवेश के अनुपात में कंपनी के मुनाफ़े या घाटे में उसकी हिस्सेदारी होती थी. पहले इन निवेश कम्पनियों ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास में अपना योगदान दिया और बाद में औद्योगिक क्रान्ति को भी दृढ़ आर्थिक आधार देने में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही. विभिन्न राज्यों की सरकारों ने कुछ कम्पनियों को चार्टर प्रदान किए. व्यापारिक क्रांति की सफलता के लिए यह आवश्यक था कि व्यापार को सुरक्षित बनाया जाय. बैंक, स्टॉक एक्सचेंज तथा बीमा कंपनियों के विकास ने व्यापार को आवश्यक सुरक्षा प्रदान की. भूमध्यसागर में व्यापार करने वालों को 1750 ईसा पूर्व के 'कोड ऑफ़ हमूराबी' द्वारा एक रकम देकर अपने माल का दुर्घटना बीमा कराने की सुविधा थी. अब इस बीमा–व्यवस्था को पुनर्जीवित किया गया. बीमा पर वैधानिक नियमों की पहली पुस्तक पेड्रो सनातेरना ने 1488 में लिखी जिसका कि प्रकाशन 1552 में हुआ. 17 वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में लन्दन में व्यापारिक अभियानों में जहाज तथा माल का बीमा किए जाने की व्यवस्था हुई. सत्रहवीं शताब्दी के अंत में लन्दन में एडवर्ड लायड ने व्यापारिक बीमा के लिए 'लायड कॉफ़ी हाउस' की स्थापना की. फ्रांस के वित्तमन्त्री कोलबर्ट ने 1681 में व्यापार–बीमा के लिए नए नियम जारी किए.

1.5.3 प्राचीन एवं मध्यकालीन 'गिल्ड व्यवस्था' का अंत (शिल्पी–संघ व्यवस्था)

प्राचीन काल में और मध्यकाल के प्रारंभिक चरण में व्यापार और उद्योग पर 'गिल्ड व्यवस्था' का एक प्रकार से एकाधिकार था. 'गिल्ड व्यवस्था' कुछ परिवारों, घरानों तक सीमित थी और उसमें नए विचारों तथा नयी तकनीक से अधिक परंपरा को महत्त्व दिया जाता था. इस अपरिवर्तनशीलता की प्रवृत्ति के कारण व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग का चहुमुखी विकास असंभव था. वाणिज्यिक क्रान्ति ने 'गिल्ड व्यवस्था' के एकाधिकार को समाप्त कर दिया, खासकर खनन उद्योग, धातु उद्योग और कपड़ा उद्योग का विकास अब 'गिल्ड व्यवस्था' के बाहर भी होने लगा. इन उद्योगों में नयी तकनीक और नए–नए उपकरणों का उपयोग किया जाने लगा. कपड़ा उद्योग में तो नयी तकनीक की तकलियों, चर्खों तथा बुनाई के लिए नयी तकनीक के फ्रेमों ने कपड़ा उत्पादन में क्रान्ति ला दी थी. धीरे–धीरे उद्योगों पर नए पूंजीपतियों का अधिकार हो गया तथा कारीगर, शिल्पी आदि उनके मजदूर बनकर रह गए.

1.5.4 पुटिंग आउट सिस्टम (घरेलू व्यवस्था)

इस व्यवस्था के अंतर्गत कारीगरों को अपने घर में ही रहकर काम करना होता था. व्यापारी उन्हें कच्चा माल उनके घर पर ही उपलब्द्ध करा देते थे जिसको एक निश्चित अवधि में और निश्चित मज़दूरी में, तैयार माल के रूप में देना होता था. इस व्यवस्था में कारीगरों को अपने काम में अपने घर के सदस्यों का सहयोग भी मिल जाता था और उन्हें घर में रहकर अपने इस काम के अतिरिक्त खेती आदि करने का अवसर भी मिल जाता था. किन्तु इस व्यवस्था ने कारीगरों को एक मज़दूर बना दिया था और उनकी मुनाफ़े की संभावनाओं (प्रॉफिट इंसेटिव) को बहुत कम कर दिया था. व्यापारीगण कारीगरों को अग्रिम राशि का भुगतान कर उन्हें अपने जाल में फँास लेते थे और उसके बल पर उन्हें एक प्रकार से अपना बंधुआ मजदूर बना लेते थे. 18 वीं शताब्दी उत्तरार्ध में 'ग्रांट ऑफ़ दीवानी' के अंतर्गत बंगाल के जुलाहों के साथ ईस्ट इंडिया कंपनी कम्पनी के कर्मचारियों ने इसी व्यवस्था के अंतर्गत व्यवसाय किया था. भारतीय कपड़ा उद्योग पर इसके विनाशकारी प्रभाव से हम सब भलीभांति अवगत हैं. इस व्यवस्था से कारीगरों की संगठित शक्ति पूर्णतया निष्प्राण हो गयी तथा वो इन पूंजीपति व्यापारियों के चंगुल में सदा–सदा के लिए फँस गए थे.

1.6 वाणिज्यवाद, व्यापारिक क्रान्ति तथा उपनिवेशवाद का अन्तः सम्बन्ध

1.6.1 पुर्तगाल, स्पेन और नीदरलैंड के उपनिवेश

अनेक यूरोपीय देशों में 'ग्रीड ऑफ़ गोल्ड एण्ड लस्ट फॉर ग्लोरी' (धन का लोभ और यश की लालसा) की भावना के वशीभूत होकर औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना की महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई. अपने देश में उत्पादित माल की बिक्री के लिए नए बाज़ारों की तलाश और अपने यहां तैयार उत्पादों के लिए आवश्यक कच्चे माल की सस्ते में और नियमित एवं निर्बाध आपूर्ति की समस्या, इन दोनों का ही समाधान अधिक से अधिक और बड़े से बड़े उपनिवेशों की स्थापना में मिल सकता था. 15 वीं शताब्दी के आठवें दशक में पुर्तगाली प्रचुर मात्र में अफ्रीकी सोना अपने देश लाने लगे. अफ्रीका से दास–व्यापार में भी पुर्तगाल ने बहुत धन कमाया. स्पेन के औपनिवेशिक शासन में अमानवीयता की सभी पराकाष्ठाओं को पार कर इण्डियन अमेरिकन्स (रैड इण्डियन्स) का समूल विनाश कर दिया गया। स्पेन को अपने उपनिवेशों से अत्यधिक धन प्राप्त हुआ. सोलहवीं शताब्दी में अपनी नौ–सैनिक शक्ति के उत्थान के फलस्वरूप सत्रहवीं शताब्दी तक नीदरलैण्ड व्यापारिक गतिविधियों में विश्व का एक अग्रणी देश बन गया था और एम्सटर्डम जहाजरानी, बैंकिंग तथा बीमा के क्षेत्र में यूरोप का सबसे प्रमुख केन्द्र बन गया था. 1594 में 'कम्पनी फॉर फ़ारलैण्ड' तथा 1602 में 'डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी' तथा 1621 में 'डच वैस्ट इण्डीज़ कम्पनी' की स्थापना के बाद डच औपनिवेशिक साम्राज्य के विस्तार का मार्ग प्रशस्त हो गया. 1688 के बाद डच विलियम ऑफ़ औरेन्ज के ब्रिटिश सिंहासन पर बैठने के बाद यह निश्चित किया गया कि पूर्व में कपड़ों व्यापार पर अंग्रेज़ों का और मसाला व्यापार में डचों का वर्चस्व रहेगा। मसाला–व्यापार में डचों ने प्रचुर मात्रा में धन कमाया.

1.6.2 ब्रिटिश उपनिवेश

1553 में न्यू फ़ाउण्डलैण्ड में ब्रिटिश उपनिवेश स्थापित हुआ. प्रारम्भिक काल में व्यापारिक कम्पनियों तथा संयुक्त सार्वजनिक एवं निजी उपक्रमों ने ब्रिटिश उपनिवेशों की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. इंग्लैण्ड की दृष्टि सोने–चाँदी की लालसा, व्यापारिक लाभ, गर्म मसालों, तम्बाकू और चीनी आदि के लिए अपना औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने पर थी. अंग्रेजों ने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को ब्रिटिश ताज के हितों के रक्षक के रूप में प्रयुक्त किया. ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत पर शासन करते समय वहां की जनता और वहां के वाणिज्य के हितों की रक्षा करने के अपने दायित्व को ब्रिटिश ताज और ब्रिटिश व्यापार के हितों पर कुर्बान कर दिया. विभिन्न राज्यों की ओर से व्यक्ति–विशेष अथवा कम्पनियों को व्यापारिक एकाधिकार प्रदान किए जाने लगे. महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम ने वाल्टर रैले को ब्रॉड क्लोद और शराब के निर्यात का एकाधिकार प्रदान किया था. ईस्ट इंडिया कंपनी के भारत व्यापार के अधिकांश क्षेत्रों में व्यापारिक एकाधिकार के विषय में सब जानते हैं. 1930 में

महात्मा गाँधी ने नमक बनाने और उसे बेचने के अँगरेज़ सरकार के सरकार के एकाधिकार के विरुद्ध अपना नमक सत्याग्रह प्रारंभ किया था.

1.7 यूरोप में वाणिज्यिक एवं व्यापारिक क्रान्ति के परिणाम

1.7.1 यूरोप में अथाह समृद्धि का आगमन

वाणिज्यिक क्रान्ति ने आधुनिक युग के प्रारंभ में समस्त विश्व की दिशा और दशा बदल दी. वाणिज्यिक क्रान्ति तेरहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों से लेकर 18 वीं शताब्दी के दौरान हुई. इस अवधि के दौरान यूरोप का आर्थिक विकास हुआ, यूरोपीय देशों के औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना हुई और वाणिज्य का अभूतपूर्व विकास हुआ.अमेरिका में स्पेनिश साम्राज्य की स्थापना के लिए इन्का, एज़टेक तथा माया साम्राज्यों को तहस–नहस कर दिया गया. अफ्रीका से 'येलो फीवर, बीमारी अमेरिका पहुँच गयी. कोकोआ, कॉफ़ी, मक्का, कसावा और आलू का प्रचलन सारी दुनिया में हो गया. वाणिज्यिक एवं व्यापारिक क्रान्ति का एक परिणाम यह हुआ कि बेहतर खाने और बेहतर सुख–सुविधाओं के कारण यूरोप की जनसँख्या में वृद्धि हुई. इसका सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि अब यूरोप में प्रचुर मात्रा में धन की उपलब्धता हो गयी और इसी के बल पर वहां औद्योगिक क्रान्ति संभव हो सकी. अब राज्यों ने अपने राष्ट्रीय व्यापार और उद्योग को अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा से सुरक्षा प्रदान करने के लिए उन्हें राज्य की ओर से प्रोत्साहन तथा सहायता देना प्रारंभ कर दिया. अपनी थल सेना और नौ–सेना को सशक्त बनाने के लिए राज्यों को प्रचुर मात्र में धन की आवश्यकता थी जो कि उन्हें व्यापारिक लाभ में अपनी हिस्सेदारी से सुगमता से प्राप्त हो सकता था. शासकों के लिए व्यापारिक एवं औद्योगिक घरानों का समर्थन अब बहुत महत्वपूर्ण हो गया था और दूसरी ओर व्यापारिक एवं औद्योगिक घरानों को भी अपनी उन्नति के लिए शासकों का सहयोग नितांत आवश्यक था. नयी दुनिया की खोज ने यूरोप में वाणिज्यिक क्रान्ति के विकास में निर्णायक भूमिका निभायी. घोड़े तथा भेड़ें यूरोप से नयी दुनिया को निर्यात हुईं और नयी दुनिया से सोना, चांदी, तम्बाकू, आलू, मक्का, गन्ने से बनाई गयी चीनी और कपास का आयात यूरोप को हुआ. समुद्री खोजों ने पूरी दुनिया में यूरोपीय देशों के औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना के स्वप्न को साकार किया.

1.7.2 पूंजीवाद का उदय

सामन्तवाद का पतन और मध्यमवर्ग से सम्बद्ध पूंजीपतियों (व्यापारी, बैंकर्स, पूंजी–निवेशक, उद्योगपति, जहाज–मालिक आदि) की देश के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका वाणिज्यिक क्रान्ति का परिणाम थी.

1.7.3 यूरोपीय सभ्यता का प्रसार

वाणिज्यिक क्रान्ति का एक परिणाम समस्त विश्व का यूरोपीकरण था। यूरोपीय धर्म (ईसाई धर्म), अर्थ–व्यवस्था, शैक्षिक, कलात्मक व सांस्कृतिक मूल्य, राजनीतिक आदर्श, प्रशासनिक एवं न्यायिक–व्यवस्था को एशिया, अफ्रीका, अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में स्थापित किया गया.

1.7.4. दास–प्रथा का पुनर्प्रचलन

यूरोप में लगभग 500 साल तक लुप्तप्राय दास–प्रथा को उपनिवेशों में नई बस्तियां बसाने और श्रम–साध्य कार्यों से स्वयं को मुक्ति दिलाने के लिए अमानुनिषिक दास–प्रथा का पुनर्प्रचलन वाणिज्यिक क्रान्ति का एक दुखद परिणाम था.

1.7.5 मध्यवर्ग का उदय

वाणिज्यिक क्रांति ने यूरोप को धन–सम्पदा का अतुलित भंडार बना दिया. अब धन केवल शाही परिवारों तथा आभिजात्य वर्ग तक ही सीमित नहीं रह गया. अब यूरोप में मध्यवर्ग का उदय हुआ जो कि पुश्तैनी जागीरों और खजाने के बल पर नहीं बल्कि अपनी योग्यता, साहस, कर्मठता और आर्थिक मामलों में अपनी विशेषज्ञता के

बल पर धनवान बना था. इस वर्ग में व्यापारी, बैंकर्स, निवेशक, उद्योगपति, शिक्षक, वकील , चिकित्सक, कलाकार आदि सम्मिलित थे. इस वर्ग ने धीरे–धीरे यूरोप में अपना राजनीतिक प्रभाव भी स्थापित किया.

1.7.6 नगरों का विकास तथा जनसँख्या विस्फोट

यूरोप में जब वाणिज्यिक एवं व्यापारिक क्रान्ति से धन–सम्पदा में अपार वृद्धि हुई तो वहां भुखमरी तथा महामारी का प्रकोप कम हो गया. फलस्वरूप जनसँख्या में अप्रत्याशित वृद्धि होने लगी. अब समृद्ध वर्ग गाँवों के स्थान पर शहरों में रहना पसंद करने लगा. 14 वीं शताब्दी में जहाँ लन्दन की जनसँख्या मात्र पचास हज़ार थी वह 17 वीं शताब्दी के अंत तक बढ़ कर दो लाख तक पहुँच गयी. नगरों में एक ओर जहाँ व्यापार व उद्योग की संभावनाएं अधिक थीं, वहीं विलासिता के साधन भी अधिक थे. ऊंची–ऊंची अट्टालिकाएँ, पक्की, साफ़ और चौड़ी सड़कें, उद्यान, वाचनालय, थियेटर, विद्यालय आदि ने नगरों का स्वरुप ही बदल दिया.

1.7.7 औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार करना

वाणिज्यिक क्रान्ति ने यूरोपीय देशों में धन–सम्पदा का अतुलित भण्डार का संचय कराने में उलेखनीय भूमिका निभाई। लगभग समूची दुनिया के व्यापार पर नियन्त्रण स्थापित कर और अपने उपनिवेशों की औद्योगिक प्रगति पर भारी चोट लगा कर अब यूरोपीय राज्य अपने उद्योग के आधुनिकीकरण के लिए प्रयास कर सकते थे। वैज्ञानिक प्रगति ने और शोध के लिए आवश्यक पूंजी की उपलब्धता ने औद्योगिक क्रान्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न कर दी थीं. वाणिज्यिक क्रान्ति ने आधुनिक कारखानों में वृहद मात्रा में उत्पादित माल की खपत के लिए उपनिवेशों के बाज़ार पहले ही तैयार कर दिए थे. इन अनुकूल परिस्थितियों में औद्योगिक क्रान्ति यूरोपीय इतिहास में कोई आश्चर्यजनक नहीं अपितु नितान्त स्वाभाविक घटना बनकर प्रकट हुई थी.

स्वमूल्यांकित प्रश्नों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. हेन्सियाटिक लीग
2. यूरोप, अफ्रीका और अमेरिका के मध्य त्रिकोणीय व्यापार
3. बैंकिंग
4. ब्रिटिश उपनिवेश

1.8 सारांश

वाणिज्यवाद वह आर्थिक नीति है जिसके अंतर्गत प्रत्येक देश साध्य के औचित्य अथवा अनौचित्य पर विचार किए बिना किसी भी प्रकार से अधिक से अधिक धन एकत्र करने के लिए प्रयत्नशील रहता है. इस नीति के पीछे धारणा यह है कि जो देश जितना अधिक समृद्ध होता है, वह उतना ही अधिक शक्तिशाली होता है. वाणिज्यवाद के प्रतिपादकों में थॉमस मून तथा फ़िलिप वॉन होर्निक प्रमुख हैं. वाणिज्यवाद के प्रारंभिक आलोचकों में हम निकोलस बरबन का नाम ले सकते हैं.

वाणिज्यिक क्रान्ति ने मध्ययुगीन अस्थिर, सीमित क्षेत्र तक व्याप्त और महत्वाकांक्षा–हीन, केवल जीवन–निर्वाह तक सीमित अर्थव्यवस्था को एक नया व्यापक अंतर्राष्ट्रीय स्वरुप प्रदान किया, उसमें गतिशीलता व महत्वाकांक्षा का संचार किया और अंततः पूँजीवादी व्यवस्था को विश्वव्यापी बनाया. 'वाणिज्यवाद' तथा 'वाणिज्यिक क्रान्ति' शब्द, 20 वीं शताब्दी के आर्थिक इतिहासकार रोबेर्टो सबातिनो लोपेज़ की देन हैं. जो कि उन्होंने अपनी पुस्तक दृ 'दि कमर्शियल रेवोलुशन ऑफ़ दि मिडिल एजेज़' में प्रयुक्त किए थे. 13 वीं के उत्तरार्ध से लेकर 18 वीं शताब्दी के प्रारंभ तक यूरोपीय आर्थिक विस्तार, उपनिवेशवाद और वाणिज्यवाद को हम वाणिज्यिक क्रान्ति के रूप में जानते हैं. वाणिज्यिक क्रान्ति ने आधुनिक युग के प्रारंभ में समस्त विश्व की दिशा और दशा बदल दी. अंतर्राष्ट्रीय और स्थानीय व्यापार को ध्यान में रखते हुए विभिन्न राज्यों में नए क़ानून बनाए गए. अब राज्यों ने अपने राष्ट्रीय व्यापार और उद्योग को अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा से सुरक्षा प्रदान करने के लिए उन्हें राज्य की ओर से प्रोत्साहन तथा सहायता देना प्रारंभ कर दिया. 13 वीं शताब्दी में हेन्सियाटिक लीग ने एक संगठित व्यापार–संघ बनाकर

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को नयी ऊंचाइयों तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त की थी. 1453 में तुर्कों द्वारा कुन्सतुनिया पर अधिकार के बाद पश्चिमी यूरोप के देशों (पुर्तगाल, स्पेन, नीदरलैण्ड और इंग्लैण्ड) के लिए थल–मार्ग से पूर्वी व्यापार असम्भव हो गया था. इस व्यापारिक संकट ने शासकों द्वारा प्रायोजित सफल भौगोलिक खोजों का दौर प्रारम्भ किया. एशिया, अफ्रीका व अमेरिका में नए क्षेत्रों की खोज और तदन्तर उन पर यूरोपीय देशों के अधिकार के कारण यूरोपीय, एशियायी, अफ़्रीकी तथा अमेरिकी देशों का आर्थिक दृष्टि से बहु–आयामीय सम्बन्ध स्थापित हो गया.

अब यूरोपीय शक्तियां सुगमता से अपने अतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ा सकती थीं और अपने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित कर सकती थीं. मानचित्रों, पाल वाले जहाजों, दिशा सूचक यंत्र, नक्षत्रीय गणना के आधार पर दिशाओं के ज्ञान ने वाणिज्यिक क्रान्ति को नया बल प्रदान किया. पुर्तगाल के प्रिंस हेनरी दि नेविगेटर ने प्रशांत महासागर में साहसिक अभियान का दौर प्रारंभ किया, बर्तोलोम्यू दियास, वास्कोडिगामा, फर्दिनेंद मेगेलन, क्रिस्टोफर कोलंबस, जेकेस कार्टियर आदि ने पूर्व और पश्चिम में नए–नए क्षेत्रों की खोज ने व्यापार और वाणिज्य को नयी दिशा और नए आयाम दिए.

अफ्रीका, उत्तर अमेरिका और यूरोप के मध्य त्रिकोणात्मक व्यापार ने व्यापारिक क्रांति को एक नया बल प्रदान किया. दास अफ्रीका से लाए जाते थे और फिर उन्हें अमेरिका भेजा जाता था; कच्चा माल अमेरिका से आता था और फिर उसका उपयोग यूरोप की फैक्टरियों में तैयार माल बनाने के लिए किया जाता था फिर यह तैयार माल अमेरिका में ऊंचे दामों पर बेचा जाता था. कोकोआ, कॉफ़ी, मक्का, कसावा और आलू का प्रचलन सारी दुनिया में हो गया. वाणिज्यिक एवं व्यापारिक क्रान्ति का एक परिणाम यह हुआ कि बेहतर खाने और बेहतर सुख–सुविधाओं के कारण यूरोप की जनसँख्या में वृद्धि हुई. इसका सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि अब यूरोप में प्रचुर मात्रा में धन की उपलब्धता हो गयी और इसी के बल पर वहां औद्योगिक क्रान्ति संभव हो सकी. भौगोलिक खोजों ने व्यापार के लिए नयी संभावनाओं को विकसित किया. 1450 से लेकर 1700 तक यूरोपीय आर्थिक केंद्र, इस्लाम के अनुयायियों के भूमध्यसागर से हटकर पाश्चात्य यूरोप (पुर्तगाल, स्पेन, फ्रांस, नीदरलैंड और एक सीमा तक इंग्लैंड) में स्थानांतरित हो गया था.

वाणिज्यिक क्रान्ति के दौरान बैंकिंग, स्टॉक एक्सचेंज, बीमा आदि वित्तीय सेवाओं का विकास हुआ. वाणिज्यवाद ने उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया. यह सिद्धान्त कि – उपनिवेश का अस्तित्व शासक राज्य के लाभ के लिए है' उपनिवेशों के दोहन का मूल मन्त्र बन गया. शासक राष्ट्रों ने अपने उपनिवेशों को स्वतन्त्र रूप से व्यापार करने की अनुमति नहीं दी, उन्हें अपना तैयार माल खरीदने का खरीदार और कच्चे माल की आपूर्ति करने वाला बनाकर छोड़ दिया. इस काल में व्यापारिक कम्पनियों ने ताज के प्रतिनिधि की भूमिका निभाई. वाणिज्यिक क्रान्ति ने आधुनिक कारखानों में वृहद मात्रा में उत्पादित माल की खपत के लिए उपनिवेशों के बाज़ार पहले ही तैयार कर दिए थे। इन अनुकूल परिस्थितियों में औद्योगिक क्रान्ति यूरोपीय इतिहास में कोई आश्चर्यजनक नहीं अपितु नितान्त स्वाभाविक घटना बनकर प्रकट हुई थी.

यूरोप में वाणिज्यिक एवं व्यापारिक क्रान्ति के परिणामों में सबसे महत्वपूर्ण था– यूरोप में अथाह समृद्धि का आगमन. वाणिज्यिक क्रान्ति तेरहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों से लेकर 18 वीं शताब्दी के दौरान हुई. इस अवधि के दौरान यूरोप का आर्थिक विकास हुआ, यूरोपीय देशों के औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना हुई और वाणिज्य का अभूतपूर्व विकास हुआ. कोकोआ, कसावा और आलू, मक्का, कॉफ़ी, चाय आदि का प्रचलन सारी दुनिया में हो गया और परिणाम यह हुआ कि बेहतर खाने और बेहतर सुख–सुविधाओं के कारण यूरोप की जनसँख्या में वृद्धि हुई. सामन्तवाद का पतन और मध्यमवर्ग से सम्बद्ध पूंजीपतियों (व्यापारी, बैंकर्स, पूंजी–निवेशक, उद्योगपति, जहाज–मालिक आदि) की देश के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका वाणिज्यिक क्रान्ति का परिणाम थी. यूरोप में लगभग 500 साल तक लुप्तप्राय दास–प्रथा को उपनिवेशों में नई बस्तियां बसाने और श्रम–साध्य कार्यों से स्वयं को मुक्ति दिलाने के लिए अमानुनिषिक दास–प्रथा का पुनर्प्रचलन वाणिज्यिक

क्रान्ति का एक दुखद परिणाम था. यूरोप में जब वाणिज्यिक एवं व्यापारिक क्रान्ति से धन–सम्पदा में अपार वृद्धि हुई तो वहां भुखमरी तथा महामारी का प्रकोप कम हो गया. फलस्वरूप जनसँख्या में अप्रत्याशित वृद्धि होने लगी. अब समृद्ध वर्ग गाँवों के स्थान पर शहरों में रहना पसंद करने लगा.

वाणिज्यिक क्रान्ति का सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि अब यूरोप में प्रचुर मात्रा में धन की उपलब्धता हो गयी और इसी के बल पर वहां औद्योगिक क्रान्ति संभव हो सकी. वाणिज्यिक क्रान्ति का एक परिणाम समस्त विश्व का यूरोपीकरण था. यूरोपीय धर्म (ईसाई धर्म), अर्थ–व्यवस्था, शैक्षिक, कलात्मक व सांस्कृतिक मूल्य, राजनीतिक आदर्श, प्रशासनिक एवं न्यायिक–व्यवस्था को एशिया, अफ़्रीका, अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में स्थापित किया गया.

लगभग समूची दुनिया के व्यापार पर नियन्त्रण स्थापित कर और अपने उपनिवेशों की औद्योगिक प्रगति पर भारी चोट लगा कर अब यूरोपीय राज्य अपने उद्योग के आधुनिकीकरण के लिए प्रयास कर सकते थे. वैज्ञानिक प्रगति ने और शोध के लिए आवश्यक पूंजी की उपलब्धता ने औद्योगिक क्रान्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न कर दी थीं. वाणिज्यिक क्रान्ति ने आधुनिक कारखानों में वृहद मात्रा में उत्पादित माल की खपत के लिए उपनिवेशों के बाज़ार पहले ही तैयार कर दिए थे. इन अनुकूल परिस्थितियों में औद्योगिक क्रान्ति यूरोपीय इतिहास में कोई आश्चर्यजनक नहीं अपितु नितान्त स्वाभाविक घटना बनकर प्रकट हुई थी.

1.9 पारिभाषिक शब्दावली

मिडिल एज – यूरोपीय सन्दर्भ में 5 वीं शताब्दी से लेकर 15 वीं शताब्दी के प्रथमार्ध तक का काल

जल–मार्गीय धर्म–युद्ध दृ ईसाई धर्म–विजय हेतु नौ–सैनिक अभियान

फ्री इम्पीरियल सिटी – उत्तर–मध्य काल के स्व–शासित नगर जिन्हें एक सीमा तक स्वायत्तता प्राप्त थी और जिनकी निष्ठां पवित्र रोमन राज्य के सम्राट के प्रति होती थी.

डच गोल्डन पीरियड – हौलैंड (नीदरलैंड) के इतिहास का स्वर्ण–युग

चार्टर –अधिकार पत्र

गिल्ड – शिल्पि–संघ

इंडियन अमेरिकन – रैड इंडियन

येलो फीवर– मादा मच्छर के काटने से फैलने वाला एक वायरल ज्वर

पुटिंग आउट सिस्टम – उत्पादन की घरेलू व्यवस्था

1.10 सन्दर्भ ग्रंथ

1. लोपेज़, रॉबर्ट , दि कमर्शियल रेवोलुशन ऑफ़ दि मिडिल एजेज़, न्यूयॉर्क, 1976
2. लोपेज़ रॉबर्ट , मेडिवल ट्रेड इन दि मेडीटेरेरियन वर्ड, न्यूयॉर्क, 1955
3. कनिंघम, विलियम , दि ग्रोथ इंग्लिश इंडस्ट्रीज़ एंड कॉमर्स इन मॉडर्न टाइम्स, 1892, न्यूयॉर्क
4. गिबन्स, हेनरी दि बेल्टजेन्स , दि हिस्ट्री ऑफ़ कॉमर्स इन यूरोप , 1891, न्यूयॉर्क
5. प्रमोद कुमार , आधुनिक यूरोप का इतिहास (1450–1789), दिल्ली, 2016
6. मार्शल माइकल , फ्रॉम मर्कैंटाइलिज्म टू दि वेल्थ ऑफ़ नेशंस, 1999, लन्दन
7. सदर्न, आर. डब्लू. , दि मेकिंग ऑफ़ दि मिडिल एजेज़, न्यू हावेन, 1953

8. सिपोला, सी. एस. दृबिफ़ोर दि इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन, यूरोपियन सोसाइटी एंड इकॉनमी 1000– 1700, न्यूयॉर्क, 1980

1.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. किपलिंग, रुडयार्ड – दि व्हाइट मैन'स बर्डन, 1899, लन्दन
2. लेनिन, वी. आई. दृ दि हाइएस्ट स्टेज ऑफ़ कैपिटलिज्म, न्यूयॉर्क, 1997
3. मार्शल माइकल दृ फ्रॉम मर्कैंटाइलिज्म टू दि वेल्थ ऑफ़ नेशंस, 1999, लन्दन
4. टेलर, ए. , जे. पी. दृ इकनोमिक इम्पीरियलिज्म, 1952, दि अनार्किस्ट लाइब्रेरी वेब साइट

1.12 स्वमूल्यांकित प्रश्न संक्षिप्त टिप्पणी के उत्तर

1. देखिए 1. 3. 2
2. देखिए 1. 4. 3
3. देखिए 1. 5. 1
4. देखिए 1. 6. 2

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. वाणिज्यिक क्रान्ति के परिणामों पर एक संक्षिप्त आलोचनात्मक निबंध लिखिए.

इकाई दो– धर्म सुधार आन्दोलन

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 धर्म सुधार का अर्थ एवं स्वरुप

2.4 पृष्ठभूमि

2.5 धर्म सुधार आन्दोलन के कारण

2.5.1 राष्ट्रीय चेतना का विकास

- 2.5.2 प्रिंटिंग प्रेस
- 2.5.3 मानववाद
- 2.5.4 बुर्जुआ वर्ग का उदय
- 2.5.5 पोप एवं चर्च में दोष

2.6 मार्टिन लूथर

- 2.6.1 मार्टिन लूथर के विचार
- 2.6.2 प्रोटेस्टेंट चर्च

2.7 ज्विंगली

2.9 काल्विनवाद

2.10 धर्म सुधार आन्दोलन के परिणाम

- 2.10.1 कैथोलिक चर्च का विभाजन
- 2.10.2 राजनैतिक परिवर्तन
- 2.10.3 गृहस्थ जीवन और स्त्री दशा
- 2.10.4 शिक्षा एवं संस्कृति
- 2.10.5 प्रति धर्म सुधार आन्दोलन
- 2.10.6 पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास

2.11 अभ्यास एवं बोध प्रश्न

2.12 शब्दावली

2.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.14 अध्ययन सामग्री

2.15 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

पुनर्जागरण से पहले यूरोपीय समाज धर्म केन्द्रित था, मानव जीवन पर ईसाई धर्म, चर्च एवं पोप का ऐसा वर्चस्व था कि वह जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न संस्कारो के कारण चर्च के नियंत्रण में होता था। यूरोप का पूरा ईसाई जगत रोम के पोप के अधीन था, राज्य एवं समाज पर उसका एकाधिकार था। पोप का निर्वाचन पादरियों के एक विशेष संगठन द्वारा किया जाता था, जिन्हें कार्डिनल कहा जाता था। कैथोलिक चर्च ही एक ऐसा तंत्र था जो सम्पूर्ण यूरोप को एक सूत्र में बांधे हुए था, और व्यक्ति चाह कर भी इस बंधन से मुक्त नहीं हो सकता था। धीरे–धीरे इस बंधन की पकड़ और मज़बूत होती गयी और अब तब लोगों का दम घुटने लगा, पर विरोध का कहीं कोई नाम नहीं था। राजकीय कर के साथ चर्च के भी अनेक करों को देना होता था, जो कि असहनीय होता जा रहा था। कैथोलिक चर्च जिसका वास्तविक मूल मानव सेवा में था, अब चर्च लोगों से सेवा ले रहा था, जिसके प्रसार का मुख्य कारण ही सेवा भाव, धर्म की सादगी, संतों का शुद्ध आचरण था, अब वह कहीं धूमिल सा होता जा रहा था, धीरे–धीरे चर्च रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, भ्रष्टाचारों और शोषण का उपकरण बन गया।

सोलहवीं शताब्दी के आते आते यह एकाधिकार टूटने लगा। पुनर्जागरण ने लोगों को सवाल करना सिखा दिया, जिसका जवाब वे पादरी वर्ग, पोप या चर्च से चाहते थे। परन्तु पोप के जवाब उन्हें संतुष्ट नहीं कर सके क्योंकि अब लोग तर्क एवं विवेक के आधार को महत्व देने लगे थे, अंततः विरोध होना स्वाभाविक हो गया। जहाँ तेरहवीं शताब्दी में चर्च का विरोध करने पर मृत्युदंड मिलता था, वहीं अब सोलहवीं सदी में विरोधियों ने न केवल मजबूती से पोप एवं चर्च की सत्ता का विरोध किया बल्कि प्रोटेस्टेंट चर्च की नींव भी डाली। इसके साथ ही यूरोप में अन्य अनेक सम्प्रदायों कि स्थापना होनी आरम्भ होने लगी जोकि उनके राष्ट्रीय राज्यों के अनुकूल थी। ये सभी ईसा मसीह और बाइबिल में तो पूर्ण यकीन रखते थे परन्तु पोप और रुढ़िवादी चर्च के संगठन के विरोधी थे, इनमें से अनेक समाज सुधारक भी हुए, जिनके बारे में आगे चर्चा की जाएगी और साथ ही धर्म सुधार आन्दोलन की विभिन्न गतिविधियों का भी आप अध्ययन कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम सोलहवीं सदी में यूरोप में होने वाले धर्म सुधार आन्दोलन के कारणों एवं परिणाम की विस्तार से चर्चा के साथ ही इस सम्बन्ध में विभिन्न इतिहासकारों के मत को भी समझने का प्रयास करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- रोमन कैथोलिक चर्च के उत्थान एवं उसके विभाजन कि परिस्थितियों से अवगत हो सकेंगे।
- विभिन्न समाज सुधारक जिन्होंने इस धर्म सुधार आन्दोलन में अपना सहयोग दिया उनसे भी आप परिचित हो सकेंगे।
- और धर्म सुधार आन्दोलन के परिणामों का अध्ययन कर सकेंगे।
- चर्च विरोधी आन्दोलन तथा पूंजीवाद से इसके सम्बन्ध से अवगत हो पाएंगे।

2.3 धर्म सुधार का अर्थ एवं स्वरुप

धर्म सुधार से तात्पर्य धर्म में व्याप्त बुराईयों को समझने और उनमें सुधार के लिए किये जाने वाले प्रयास से है। समकालीन यूरोप में सुधारवादियों ने रोमन कैथोलिक चर्च में व्याप्त बुराईयों के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद की। यूरोप में होने वाले धर्म सुधार आन्दोलन से आशय रोमन कैथोलिक चर्च के विभाजन से भी समझा जाता है। 16वीं शताब्दी तक चर्च एवं पोप में अनेक बुराइयाँ घर कर गयी थीं, संसार के प्रति मोह, विलासिता, भ्रष्टाचार तथा पोप द्वारा धन की लूट (ईन्डल्जेंस की बिक्री के द्वारा) अर्थात पोप की नैतिकता का पूरी तरह पतन हो चुका था। 1517 ई० में मार्टिन लूथर द्वारा कैथोलिक चर्च में व्याप्त बुराईयों एवं पोप की निरंकुश सत्ता का पुरजोर विरोध किया गया, इसे ही व्यापक रूप में धर्म सुधार आन्दोलन कहा जाता है। इसके परिणामस्वरूप ईसाई धर्म के भीतर अनेक सम्प्रदायों का जन्म हुआ, जिनमे, प्रोटेस्टेंट, कैल्विनिस्ट, प्यूरिटन्स, ऐनाबैप्टिस्ट, एन्गिलकंस,

प्रेस्बिटेरेनियंस प्रमुख हैं। इसके पश्चात कैथोलिक चर्च ने भी स्वयं में व्याप्त बुराईयों को समाप्त एवं अनेक सुधार करते हुए प्रति धर्म सुधार आन्दोलन शुरू किये। परंतु इससे कहीं अधिक यह महत्वपूर्ण है कि इसके पश्चात धर्म से इतर सामाजिक एवं आर्थिक मामलों के सम्बन्ध में लोगों की सोच में व्यापक परिवर्तन आया। अब लोग धर्म को नहीं बल्कि मानव को अधिक महत्व दे रहे थे। पूंजीवाद एवं अर्थव्यवस्था के विकास के लिए नए कदम उठने लगे थे। इस इकाई में हम आगे पढेंगे कि यह विरोध केवल चर्च में व्याप्त बुराईयों के खिलाफ ही नहीं था, बल्कि एक ऐसा क्रन्तिकारी कदम था, जिसने चर्च कि जर्जर व्यवस्थाओं पर ऐसी चोट करी कि उसकी जड़ें तक हिल गयी और यह सब क्यों और कैसे हुआ? आइये इसका जवाब हम आगे देखते हैं–

2.4 पृष्ठभूमि

ऐसा नहीं है कि लोगों में धर्म सुधार की भावना का जागृत होना कोई नयी घटना थी, इससे पूर्व भी चर्च एवं चर्च के सांगठनिक गतिविधियों के सम्बन्ध में समय–समय पर विरोध प्रतिरोध होते ही रहे हैं। पंद्रहवीं सदी में कन्सिलियर आन्दोलन के द्वारा पोप के अधिकारों को सीमित करने कि मांग रखी गयी और सोलहवीं सदी में पुनर्जागरण के पश्चात् जब धर्म के स्थान पर मानव को केंद्र में रखकर समाज की कल्पना ने अनेक बुद्धिजीवियों द्वारा चर्च कि बुराईयों को समाप्त करने के लिए ईसाई धर्म की प्राचीन व्यवस्थाओं की ओर लौटने की बात की गई, तथा बाइबिल का क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद के बारे में सोचा जाने लगा जो अब तक प्राचीन लैटिन भाषा में लिखी होती थी, और जिस पर पादरी वर्ग का एकाधिकार था। विक्लिफ तथा जॉन हुस जैसे लोगों ने जो आंदोलन चलाए उनमें किसानों, मजदूरों एवं निम्नवर्गीय का सहयोग प्राप्त था। परन्तु 16वीं सदी का धर्मसुधार आन्दोलन बुर्जुआ एवं धनिक वर्ग के समर्थन से ही संभव हो सका था।

जैसा कि आप पिछले अध्याय में पढ़ चुके होंगे कि सोलहवीं सदी यूरोप में पुनर्जागरण ने समाज के प्रत्येक क्षेत्र को उद्वेलित किया। अब लोगों ने तर्क के आधार पर समझना आरम्भ किया, तथा धर्म केन्द्रित समाज की गाँठ कमज़ोर होने लगी। पुनर्जागरण से पूर्व समूचे यूरोप पर कैथोलिक चर्च का एक छत्र अविभाज्य साम्राज्य था, रोम से लेकर सुदूर गावं तक चर्च का ही राज था। व्यक्ति जन्म के साथ स्वयं को चर्च की शरण में पाता और मृत्यु के साथ ही उसे चर्च से छुटकारा मिल पाता था, जिसका विरोध करने का साहस कोई नहीं कर सकता था। लोगों को अन्य राजकीय करों के साथ चर्च कर भी अनिवार्य रूप से देना होता था, जिसका उपयोग वे एश्वर्य एवं विलासितापूर्ण जीवन जीने में करते थे। पोप एवं उसकी संस्था दिनोंदिन भ्रष्ट होती जा रही थी। एक प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि पवित्र रोमन साम्राज्य और पोप ने धर्म को जनता के लिए एक बोझ की तरह बना दिया था जोकि धीरे–धीरे असह्य होता जा रहा था, जिसका प्रस्फुटन धर्म सुधार आन्दोलन के रूप में सामने आया, जिसके परिणामस्वरुप ईसाई धर्म के अन्दर अनेक सम्प्रदायों का निर्माण हुआ जैसे– लूथरवाद, कैल्विनवाद, प्यूरिटनवाद, प्रेसबिटेरियन इत्यादि। इसके साथ ही कैथोलिकों ने प्रति धर्म सुधार आन्दोलन चलाया, और चर्च की कमियों को दूर करने का निर्णय लिया। यह धर्म सुधार आन्दोलन कई क्षेत्रों में हुआ। चर्च और समाज कि नैतिकता के साथ ही संरचना में भी सुधार किया गया। इसाई धर्म के वास्तविक स्वरुप की व्याख्या की गयी और साथ ही अनेक रुढ़िवादी सिद्धांतों में सुधार भी किया गया। अतः आगे हम देखेंगे कि यह धर्म सुधार आन्दोलन केवल कैथोलिक चर्च में व्याप्त बुराईयों के खिलाफ ही नहीं था बल्कि मानव समाज से जुड़े पहलुओं पर प्रहार करने वाली ताकतों के खिलाफ भी था।

2.5 धर्म सुधार आन्दोलन के कारण

धर्म सुधार के लिए जो कारण उत्तरदायी थे, यदि उन पर नज़र डाली जाये तो हम यह पाते हैं कि लगभग 14वीं 15वीं शताब्दी के मध्य कैथोलिक चर्च को अनेक आतंरिक समस्याओं का सामना करना पड रहा था। चर्च के अधिकारी अब अपना ध्यान आध्यात्म से हटाकर भोग–विलास में लगा रहे थे। अराजकता, युद्ध बिमारियां. एवं फसल बर्बाद होने के कारण, जिसे लोग पहले ईश्वर का क्रोध मानते थे पर अब लोगों के मन में धर्म, चर्च को

लेकर अनेको सवाल थे; पर उनका जवाब देने वाला कैथोलिक चर्च में कोई विवेकशील धर्माधिकारी नहीं था। धर्मगुरुओं के भाषण भी उन्हें संतुष्ट नहीं कर पा रहे थे। परिस्थितियां चर्च की अक्षमता और धर्म गुरुओं के भ्रष्टाचार की कहानियां स्वयं बयान कर रही थीं। 14वीं–15वीं सदी के धार्मिक आन्दोलन कमज़ोर भले ही थे परन्तु इन आंदोलनों ने 16वीं सदी में हुए धर्म सुधार आन्दोलन के बीज जरुर बो दिए थे। वायक्लिफ और हस को उनके आंदोलनकारी विचारों तथा पोप विरोधी होने के कारण फांसी दे दी गयी। सोचने वाली बात यह है कि आखिर क्या कारण रहे होंगे जिससे कि यह सक्रीय एवं सफल हो गया। अतः आइये अब हम उन कारणों को देखते हैं।

2.5.1 राष्ट्रीय चेतना का विकास

पुनर्जागरण चेतना के कारण राज्य से धर्म–चर्च को अलग करने की कल्पना की जाने लगी, अतः अनेक राष्ट्रीय राज्यों के निर्माण पर बल दिया जाने लगा। मध्यकाल में ही संप्रभुता को लेकर चर्च एवं राज्य के बीच विवाद उत्पन्न हो गया था, चर्च ने धार्मिक एवं न्यायिक मामलों पर अपने दावे पेश किये और राज्य ने राजनैतिक संप्रभुता का। चर्च के पास अनेक व्यापक अधिकार थे, वित्तीय एवं विधिक मामले उसके पास होने के कारण वह अधिक शक्तिशाली था। परन्तु अब अनेक राजा और राजकुमार स्वछंद रूप से अपनी जनता पर शासन करना चाहते थे, जिसमें वे चर्च एवं पोप की भागीदारी के बिलकुल भी समर्थक नहीं थे। अब वे इस बात को समझ चुके थे कि जितना ज्यादा नियंत्रण होगा उतना ही अधिक उन्हें राजस्व प्राप्त होगा, जिससे वे अपना और अधिक राज्य विस्तार और विकास कर सकते थे। जर्मनी में चर्च विरोधी भावनाएं तीव्र थीं और इसी कारण लूथर और उसके विचारों को दबे रूपों में ही सही पर राज्य एवं कुलीन वर्ग का समर्थन मिल रहा था। स्विट्ज़रलैंड में भी ज्विंगली ने नगर परिषदों से अपने सुधार आंदोलनों में समर्थन एवं सहयोग की अपील की। अब लोग यह सहन नहीं कर सकते थे कि उनके राज्य का धन कर के रूप में रोम जाये, क्योंकि अब लोग इस धन का उपयोग अपने राज्य के विकास में लगाना चाहते थे, अतः हम यह स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि जब राष्ट्रीय चेतना का विकास हो रहा था तो लोग चर्च के प्रभाव से विमुख होते जा रहे थे।

2.5.2 प्रिंटिंग प्रेस

सोलहवीं सदी में प्रिंटिंग प्रेस के निर्माण ने भी धर्म सुधार आन्दोलन को और अधिक प्रभावी बना दिया। अब सुधारकों के विचारों को आमजन तक पहुचने में आसानी हो गयी। लोक भाषाओँ में सुधारकों की बातें पहुँचने लगी और इसी के साथ बाइबिल एवं अन्य धर्मशास्त्रों का अनुवाद और उसकी अनेक प्रतियां उनकी अपनी भाषा में उपलब्ध होने लगी। लगभग 10 लाख बाइबिल की प्रतियाँ प्रकाशित की गयीं। सोलहवीं सदी के अंतिम दशक तक इंग्लैण्ड के उच्च वर्ग तक लूथर के विचार उसकी किताबों के द्वारा अधिक लोकप्रिय होने लगे क्योंकि इन वर्गों के पास इन छपी हुई किताबों को खरीदने और इन्हें पढ़ने की क्षमता थी। जहाँ वायक्लिफ और हेस के विचार प्रिंटिंग प्रेस ना होने के कारण उनके क्षेत्र के बाहर शायद ही जाने गये, परन्तु लूथर के विचार सम्पूर्ण जर्मनी और जर्मनी के बाहर भी लोगो को प्रभावित कर रहे थे, और यह सब केवल प्रिंटिंग प्रेस के कारण ही संभव हो सका था। धर्म सुधार आन्दोलन के प्रचार के लिए इन प्रिंटिंग प्रेस की सहायता से न केवल किताबों, धर्मशास्त्रों का अनुवाद बल्कि अनेक तस्वीरें और कार्टून्स को भी शामिल किया गया।

2.5.3 मानववाद

धर्म सुधार आन्दोलन के प्रसार में मानववाद की भी भूमिका रही है। मानववाद का अर्थ उन सभी विषयों के अध्ययन से है, जो मानव से सम्बंधित हो। अर्थात समाज का केन्द्रीय विषय मानव, मानव जीवन में रूचि, मानव की समस्याओं का अध्ययन, मानव का आदर इत्यादी होना चाहिए। इसके अंतर्गत मानव के बौद्धिक चिंतन का विकास से तर्क एवं आलोचन को बल मिला। वास्तव में मानववाद प्रत्यक्ष रूप से धर्म सुधार आन्दोलन से जुडा हुआ तो नहीं था, परन्तु फिर भी इसने आलोचना का हथियार तो थमा ही दिया था, जिसके द्वारा चर्च एवं पोप के

भ्रष्ट संगठन पर प्रहार करना आसान हो गया। यह अवश्य ही ध्यान देने की बात है कि मानववादी लेखकों और समाज सुधारकों (खास कर मार्टिन लूथर) का कोई सम्बन्ध नहीं था, परन्तु इरैस्मस के विचारों का प्रभाव कहीं न कहीं अवश्य ही दिख पड़ता है। डेसिडेरियस इरैस्मस (1466—1536) को उत्तरी मानववाद का सर्वश्रेष्ठ लेखक माना जाता है, उसने धर्मग्रंथों के महत्व के साथ ही पोप एवं अन्य धर्माधिकारियों के एकाधिकार की आलोचना की, उसने चर्च के रुढ़िवादी संस्कारों की भी आलोचना की जो मनुष्य के लिए असह्य थे। लूथर के अलावा हमें कैल्विन और ज्विंगली के विचारों से भी यह पता चलता है कि उनके विचारों का बौद्धिक आधार मानववाद ही था, जिसने उन्हें धर्म सुधार आन्दोलन के लिए उद्वेलित किया।

2.5.4 बुर्जुआ वर्ग का उदय

बुर्जुआ वर्ग के उदय को भी धर्म सुधार आन्दोलन का कारण माना जाता है। मार्क्स और एंगेल्स धर्म सुधार आन्दोलन को क्रान्तिकारी घटना मानते हैं। क्योंकि यह वर्ग (बुर्जुआ) सामंतवाद का विरोधी था, जर्मनी में इनका उदय पीजेंट वार के दौरान हो रहा था, जो कि जर्मनी के सामाजिक—आर्थिक संघर्ष की कहानी है। धर्म सुधार आन्दोलन इन्हीं संघर्षो की अभिव्यक्ति है। यह माना जाता है कि बढती हुई पूंजीवादी वयवस्था ने वणिक समुदाय के धन संपत्ति के विस्तार में योगदान दिया और लूथर, केल्विन, ज्विंगली इत्यादि ने इन महत्वपूर्ण लोगों को प्रभावित किया परन्तु इसके बावजूद यह सवाल उठता है कि क्या वास्तव में इन नए बुर्जुआ वर्ग कि संपत्ति में वृद्धि हुई थी, राजकुमारों ने आर्थिक प्रगति के लिए कोई कर वृद्धि किये थे? उदाहरण के रूप में स्काटलैंड को देख सकते हैं।

2.5.5 पोप एवं चर्च में दोष

कैथोलिक चर्च का प्रसार सादगी, सेवा भाव और संतों के प्रभावी आचरण के कारण हो सका था, परन्तु 14वीं—15वीं सदी से ही उनमें उनमे अनेक कमियां आनी शुरू हो गयीं थी। पोप द्वारा चर्च के विभिन्न पदों को बेचा जाने लगा था, जो धर्माधिकारी वर्ग अब तक संत का जीवन जी रहे थे, व्यभिचारी होते जा रहे थे, जिनकी अनेक नाजायज संताने थीं। इन संतानों के जीवन को सुरक्षित बनाने के लिए वे निर्लज्ज होकर अनेक यत्न कर रहे थे। जुलियस II (1505—1513) पोप होते हुए भी सैनिक कार्यों में रूचि लेता था। लियो X (1513—1529) एक कला प्रेमी था, जिस पर पुनर्जागरण का ऐसा प्रभाव हुआ कि उसने इन्हें मूर्त रूप देने के लिए लोगों पर विभिन्न कर लगाकर आर्थिक शोषण भी करना प्रारंभ कर दिया।

इस आर्थिक शोषण का सबसे घिनौना रूप क्षमा—पत्रों (इन्डल्जेंस) के रूप में देखा गया। वास्तव में ईसाई धर्म में अपने पापों के प्रायश्चित के लिए पादरी के समक्ष कंफेशन करना होता था, जिसका आधार यह होता है कि, मन से अपने पापों को स्वीकार करने और प्रायश्चित करने के बाद फिर से अपनी इस भूल को दुहरायेगा नहीं, तो उस क्षमा के योग्य समझा जाता था और क्षमा करने का सबसे अधिक अधिकार पोप के पास था। वास्तव में यदि देखा जाए तो वह भी पूरी तरह क्षमा नहीं कर सकता था, बल्कि ईश्वर द्वारा उसे क्षमा कर दिया जायेगा ऐसा वह केवल आश्वासन दे सकता था लेकिन अपने निकृष्टतम रूप में प्रयाश्चित हेतु क्षमा के लिए क्षमा—पत्रों को बेचा जाने लगा। ऐसा कहा जाता था कि इन पत्रों को खरीदने से वह न केवल पिछले पापों से मुक्त ही नहीं हो जाता है, बल्कि भविष्य में भी यदि वह कोई पाप करे तो उसे उससे भी मुक्ति मिल जाएगी। टेटजेल द्वारा यह कहना कि जैसे ही इस धन पेटिका में सिक्कों के गिरने की आवाज़ आती है, स्वर्ग में उसका घर बन जाता है। ये सब बाते बुद्धिजीवियों द्वारा अस्वीकार्य थीं।

अतः यह स्पष्ट है कि यूरोपीय समाज का प्रत्येक वर्ग किसी न किसी रूप में धर्म विरोधी होता जा रहा था और इन घटनाओं से लोगों के अन्दर चर्च विरोधी भावनाए उत्पन्न होने लगीं, जिन्हें आसानी से शांत नहीं किया जा सकता था। ये अन्दर ही अन्दर विरोध की चिंगारियां तो थी, आवश्यकता थी तो बस नेतृत्व की जो एक फूंक से इनके अन्दर की क्रांति को भड़का सके, और मार्टिन लूथर ने इसे नेतृत्व प्रदान किया।

2.6 मार्टिन लूथर (1483–1546)

मार्टिन लूथर का जन्म 10 नवम्बर, 1483 ई० में जर्मनी के एक किसान परिवार में हुआ था। पिता ने उनकी शिक्षा–दीक्षा पर अधिक ध्यान दिया, उनके पिता उन्हें वकील बनाना चाहते थे परन्तु कानून पढ़ते हुए उनका रुझान धर्म की ओर अधिक होने लगा। अतः 1505 ई० में उन्होंने संत बनने का फैसला किया, और पिता के न चाहते हुए भी उन्होंने एरफर्ट से अपने मठ–जीवन का आरम्भ किया। 1511 ई० में लूथर ने रोम की यात्रा की जहाँ पोप एवं पोपतंत्र में भ्रष्टाचार को देखकर उन्हें बहुत निराशा हुई। धर्म एवं धार्मिक आस्था में लूथर को पूर्ण विश्वास था, परन्तु क्षमा पत्रों की बिक्री ने उन्हें चर्च विरोधी बना दिया। लूथर ने इन क्षमा पत्रों के विरोध में 95 आक्षेप लिखकर विटेंबर्ग के चर्च के द्वार पर चिपका दिए, चर्च एवं भ्रष्ट पोपतंत्र के खिलाफ तीन लघु पुस्तके लिखी, जिनमें उनकी शिक्षाओं एवं विचारों कि जानकारी प्राप्त होती है, ये पुस्तिकाए निम्न हैं–

1. जर्मन सामंत वर्ग को संबोधन (An Address to the Nobility of the German Nation)
2. ईश्वर के चर्च की कैद (On the Babylonian captivity of the church of God)
3. ईसाई मनुष्य की मुक्ति (On the freedom of Christian man)

अपने विचारों के द्वारा लूथर ने चर्च एवं समाज व्याप्त बुराईयों को समाप्त करने का सफल प्रयास किया।

2.6.1 मार्टिन लूथर के विचार

1. उसने ईसा और बाइबिल को आदर्श माना तथा चर्च की संस्था एवं पोप की निरंकुशता का बहिष्कार किया।
2. मोक्ष की प्राप्ति केवल ईश्वर की दया व प्रेम पर निर्भर है जो केवल ईश्वर में आस्था से ही मिल सकती है।
3. क्षमा के लिए प्रायश्चित को आवश्यक बताया परन्तु वह भी केवल ईश्वर की अनुकम्पा से ही मिल सकती है।
4. चर्च द्वारा प्रदत्त विभिन्न संस्कारों में से उसने केवल दो बप्तिज्मा, युखारिस्त को ही महत्वपूर्ण बताया।
5. उसने रुढ़िवादी कर्मकांडों, चमत्कारों एवं मूर्ति– पूजा का विरोध किया।
6. बाइबिल एवं अन्य धर्मग्रंथों को पढने और समझने के लिए उसने जर्मन भाषा में उनका अनुवाद करवाया ताकि सभी लोग इसका अध्ययन कर सकें।
7. शिक्षा को महत्वपूर्ण बताया तथा राज्य की ओर से सभी के लिए नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा अनिवार्य करने की बात कही।
8. पादरियों के लिए उसने ब्रह्मचर्य से बेहतर गृहस्थ जीवन को बताया।
9. उसने राष्ट्रीय राज्यों के उत्थान को आवश्यक बताया तथा चर्च को राज्य के अधीन करने की बात कही।

इन विचारों के साथ लूथर ने धर्मसुधार आन्दोलन का प्रचार–प्रसार किया। 1525 ई० में लूथर ने किसान आंदोलनों का समर्थन किया, परन्तु उसे इस बात का एहसास हो गया था कि उसे इन गरीब किसानों से कोई सहायता नहीं मिल पायेगी, तथा केवल शासक और मध्यम वर्ग के सहयोग से अपने विचारों का प्रसार कर सकता था। अब लूथर ने स्वतंत्र चर्च की स्थापना की बात कही जिस पर राज्य का नियंत्रण आवश्यक बताया, उसने मठ जीवन को भी समाप्त करने की बात की। सारांशतः हम यह कह सकते हैं कि वह धर्म के सरलीकरण के प्रयत्न में लगा हुआ था।

2.6.2 प्रोटेस्टेंट चर्च

मार्टिन लूथर के विचारों से जर्मनी में धर्म सुधार को लेकर आन्दोलन शुरू हो गया। इस धार्मिक विवाद को समाप्त करने के लिए 1526 में स्पीयर की धर्म सभा बुलाई गयी परन्तु इस सभा का कोई परिणाम नहीं निकला, इसके पश्चात् 1529 में स्पीयर में ही दूसरी सभा का आयोजन किया गया, इसमें धर्म सुधार आन्दोलन के

खिलाफ अनेक कठोर निर्णय लिए गए, जिसके तहत लूथर की पुस्तकों एवं उसके विचारों पर प्रतिबंध लगाया गया। ये प्रतिबन्ध एक पक्षीय था जिसमें लूथर एवं उसके समर्थकों से कोई राय नही ली गयी। जिसका विरोध (प्रोटेस्ट) किया गया इसी कारण इस धर्मं सुधार आन्दोलन को प्रोटेस्टेंट कहा गया। वास्तव में यह विरोध 19 अप्रैल 1529 को हुआ अतः इसी दिन से प्रोटेस्टेंट शब्द का जन्म माना जाता है। कैथोलिक्स और प्रोटेस्टेंट समर्थकों के बीच चली इस लड़ाई का अंत 1555 में आग्सबर्ग शांति समझौते के साथ हुआ जिसके द्वारा प्रोटेस्टेंट धर्म को मान्यता मिल गयी और 300 से भी अधिक जर्मन राजकुमारों को अपना धर्मं चुनने की स्वीकृति मिल गयी और उन राजकुमारों की प्रजा को उनके द्वारा चुने गए धर्मं का पालन करना पड़ता था। लूथर की भाँति यूरोप के अन्य भागों में प्रोटेस्टेंट आन्दोलन चल रहे थे, स्विट्ज़रलैंड में इसका नेतृत्व ज्विंगली द्वारा किया गया, उसने भी कैथोलिक धर्मं की रुढ़िवादी परम्पराओं को छोड़ कर केवल बाइबिल की सर्वोच्चता का समर्थन किया। उसने कोपल की संधि के द्वारा स्विट्ज़रलैंड में रिफोर्मेड चर्च कि स्थापना की। इसी प्रकार यूरोप के अन्य देशों में भी धर्मं सुधार आन्दोलन होते रहे और किसी न किसी रूप में प्रोटेस्टेंटवाद को समर्थन मिलता रहा।

2.7 ज्विंगली (1484–1531)

कैथोलिक चर्च का विरोध करने वाले मार्टिन लूथर के अलावा अन्य सुधारक भी थे जिनमे जॉन केल्विन और ज्विंगली का नाम प्रमुख है। ज्विंगली लूथर का समकालीन था। उसने ज्यूरिक के स्विस परिसंघ में धर्म सुधार चलाया, उसका यह धर्मं सुधार मानववादी (इरैस्मस) विचारों से प्रेरित था। जॉन वर्थ के अनुसार ज्विंगली सांस्कृतिक सुधार को अधिक महत्व देते थे। उन्होंने धर्मं सुधार के साधारण रूप से विकास करने की बात कही। उनके उपदेश सरल और सीधी भाषा में होने के कारण लोगों को समझने में आसानी होती थी। ज्विंगली ने लूथर के समान ही परम संस्कारों की आलोचना की, परन्तु बाइबिल को महत्वपूर्ण बताया। बच्चों के बप्तिस्मा की परंपरा को अपनाया, युखारिस्त (प्रभु–भोज) को भी आवश्यक बताया। उनका मानना था कि ईसा लोगों के दिलों में रहते हैं परन्तु लूथर प्रभुभोज में ईसा की उपस्थिति मानते थे। ज्विंगली ने धर्मसुधार के लिए चर्च में पवित्र समुदाय का निर्माण किया, जिसने पादरी वर्ग और आम प्रजा को एक स्तर पर ला दिया। इस प्रवित्र समुदाय ने बप्तिस्मा, युखारिस्त और अंतिम संस्कार के लिए कर वसूलने की प्रथा को समाप्त कर दिया। पादरी वर्ग का कार्य केवल बाइबिल एवं धर्मं ग्रंथों का उपदेश देना भर रह गया। मूर्ति पूजा एवं जुलूसों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। ज्विंगली ने लूथर कि अपेक्षा धर्मं और राज्य को जोड़ कर देखा। अतः ज्विंगली के विचारों और शिक्षाओं का प्रभाव हमें ज्युरिक में देखने को मिलता है जहाँ मठों को समाप्त कर के उसे अनाथालयों और अस्पतालों में तब्दील कर दिया गया और मठों की संपत्ति का उपयोग गरीबों की मदद में किया गया। यहाँ चर्च और राज्य द्वारा मिलकर नैतिक अनुशासन देखा जाने लगा, मजिस्ट्रेट और पादरी वर्ग को अर्थात चर्च और राज्यों द्वारा मिलाकर अनेक दंड प्रावधानों में सुधार किया गया।

2.8 केल्विन्वाद

जॉन कैल्विन (1509–1564) फ्रांस के नेयो शहर का रहने वाला था। उसके माता–पिता उसे पादरी बनाना चाहते थे। धर्म और साहित्य में उसकी गहरी रूचि थी, जिसका उसने अध्ययन भी किया परन्तु चर्च की दशा को देखते हुए उसके पिता ने उसे वकील बनने की सलाह दी। कैथोलिक चर्च के भ्रष्ट माहौल को देखकर उसने एक अलग इसाई सम्प्रदाय की स्थापना में रूचि ली, उसने चर्च से सम्बन्ध तोड़कर लोगों के समक्ष अपने विचार प्रस्तुत किये, केल्विन पर इरेस्मस जैसे मानववादियों का गहरा प्रभाव था। आमतौर पर माना जाता है कि 1533–34 में कैल्विन नरम मानववादी से क्रान्तिकारी सुधारक बन गया। उनका विचार था कि मोक्ष केवल ईश्वर की आस्था में मिल सकता है, जो कि बाइबिल में निहित है। यह आस्था का सबसे बड़ा स्त्रोत है और सभी को इसपर अमल करना चाहिए। केल्विन ने अलग–अलग देशों में प्रोटेस्टेंट सुधारकों की जमात तैयार की, इसके लिए उन्हें तीन परीक्षणों से गुजरना पड़ता था। धर्मं की खुली स्वीकृति, मर्यादित एवं धर्मपरायण जीवन तथा बप्तिज्मा और

प्रभुभोज में शामिल होना आवश्यक था। उन्होंने जेनेवा को अंतररास्ट्रीय प्रोटेस्टेंटवादी का मुख्य केंद्र बना दिया और केल्विन की पुस्तक इंस्टिट्यूट ऑफ़ द क्रिश्चियन रिलिजन को प्रोटेस्टेंट धर्मशास्त्र की सबसे प्रभावशाली पुस्तक माना गया। केल्विन के विचारों और शिक्षाओं का आंकलन करें तो हम पातें है कि उसका धर्मसुधार लूथर से बहुत सरल था उसने परम संस्कारों को उचित ढंग से कराने में बल दिया, केल्विन ने धर्म सुधार के लिए चर्च की संरचना और अनुशासन पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। चर्च की संरचना को चार प्रमुख संस्थाओं में बांटकर चर्च के भ्रष्ट माहौल को ख़त्म किया। यद्यपि केल्विन पर चर्च के सम्बन्ध में अत्यधिक खर्च करने का आरोप लगाया जाता है फिर भी हम देखते हैं कि समकालीन व्यापारियों दुकानदारों एवं बुर्जुआ वर्ग उसके द्वारा स्थापित अनुशासन से प्रसन्न थे। जेनेवा में सम्पन्नता बढ़ी और भ्रष्ट लोगों पर नियंत्रण किया जा सका। केल्विन समाज के लिए धन को बुराई नहीं बल्कि आवश्यकता समझते थे, उनके अनुसार उत्पादन के लिए मामूली ब्याज पर ऋण दिया जा सकता था परन्तु वे सूदखोरी के खिलाफ भी थे। वास्तव में यदि देखा जाए तो केल्विन समाज की जरूरतों को आर्थिक गतिविधियों से जोड़कर देखते थे; उनके इन विचारों का प्रसार यूरोप के अनेक भागों में हुआ जिनमें फ्रांस, नीदरलैंड और स्कॉटलैंड प्रमुख हैं, जहाँ इन्होंने अपने सुधारों को स्थापित करने के लिए मिशनरियों को भेजा। केल्विन्वाद मध्य और पश्चिमी यूरोप में भी फ़ैल गया तथा पोलैंड, लिथुवानिया, हंगरी और बोहेमिया में भी लोकप्रिय हुआ यहाँ तक कि हंगरी का डेब्रिसेन नगर 'द केवेल्निस्ट रोम' कहा जाने लगा।

2.9 एंग्लिकन चर्च

जर्मनी और स्विट्ज़रलैंड की अपेक्षा इंग्लैंड में धर्मसुधार का स्वरुप राजनीतिक था। यहाँ ट्युडर वंश का शासक हेनरी अष्टम (1509–1547) अपनी पत्नी कैथरीन को तलाक देकर दूसरा विवाह करना चाहता था, परन्तु पोप इसके लिए तैयार नहीं था, जिससे हेनरी ने कैथोलिक चर्च एवं पोप से अपने सम्बन्ध 1534 ई० में तोड़ कर स्वयं को अर्थात इंग्लैण्ड के शासक को इंग्लैण्ड के चर्च का सर्वोच्च अधिकारी घोषित कर दिया। उसके बाद उसके उत्तराधिकारी ने भी अपने पिता के विचारों को आगे बढाया। उसने 42 सिद्धांतों के घोषणापत्र की एक प्रार्थना पुस्तक प्रकाशित कर प्रोटेस्टेंट विचारधारा का समर्थन किया। एलिज़ाबेथ के काल में इस विचारधारा को और समर्थन प्राप्त हुआ, और 42 सिद्धान्तों को संशोधित कर 39 सिद्धान्त स्थापित किये गये, इंग्लैण्ड में जिस राष्ट्रीय चर्च की स्थापना हुई, वह कर्मकाण्डों से रोमन और धर्मशास्त्रीय रूप से कैल्विनवादी था। इस प्रकार मार्टिन लूथर ज्विंगली, केल्विन और हेनरी अष्टम के प्रयत्नों से यूरोप के अधिकांश देशों में धर्मसुधार की भावना जागृत होने लगी, और विकसित भी हुईं।

2.10 धर्मसुधार आन्दोलन के परिणाम

यूरोप में होने वाले इस धर्मसुधार आन्दोलन से मानव जीवन में आमूल परिवर्तन हुए। मध्यकाल से धर्म ही उनके जीवन का केंद्र बिंदु हुआ करता था, परन्तु मानववादी सुधारकों के द्वारा जो प्रयास किये गए उसने यूरोपीय मानव के प्रत्येक समुदाय के आतंरिक एवं बाह्य जीवन को झकझोर कर रख दिया। अब लोग धर्म की वास्तविक महत्ता से रूबरू होने लगे। यदि हम धर्म सुधार का आंकलन करें तो हम पाते हैं कि अन्य आंदोलनों की भांति इसके भी परिणाम बहुत स्पष्ट हैं, जोकि निम्न हैं–

2.10.1 कैथोलिक चर्च का विभाजन

धर्म सुधार आन्दोलन का पहला परिणाम कैथोलिक चर्च का विभाजन था। कैथोलिक चर्च कई भागों में विभक्त हो गया था, और प्रत्येक समुदाय की अपनी अलग पहचान थी, इनके अपने अलग राजनैतिक, व्यवहारिक और नैतिक कायदे कानून थे, हर समूह की अपनी अलग सख्त पहचान थी, जिनके विचारों में काफी संघर्ष था।

2.10.2 राजनैतिक परिवर्तन

मध्यकाल से ही हमें चर्च का प्रभाव राज्य एवं शासकों के जीवन पर साफ़ दिखाई देता है। 15वीं सदी में तो चर्च ने राजनीति में भी भाग लेना आरम्भ कर दिया था। धर्मसुधार आंदोलनों ने राज्य एवं शासकों के जीवन

को बदल कर रख दिया। अब राज्य चर्च के बंधन से मुक्त हो गया था, और अनेक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना को बल मिला। निरंकुश शासकों द्वारा अपने राज्यों का विस्तार किया जाने लगा। अब वे इस बात को समझ चुके थे, राज्य का जितना अधिक विस्तार होगा करों के द्वारा उतना ही उनकी आय में वृद्धि होगी, जिससे वे अपने राज्य का विकास स्वतंत्र होकर कर सकेंगे। चर्च एवं उसकी संपत्ति पर भी राज्य का अधिकार हो गया था, और धार्मिक कर अब रोम नहीं जा रहे थे। पोप एवं धर्माचार्यों का कार्य केवल धार्मिक उपदेशों तक सीमित कर दिया गया। लूथर का मानना था कि शासकों के आदेशों का पालन करना प्रजा का कर्तव्य है जबकि केल्विन धार्मिक राज्य की स्थापना पर जोर देते थे।

2.10.3 गृहस्थ जीवन और स्त्री दशा

ईसाई धर्म में विवाह को एक संस्कार माना जाता है, परन्तु कैथोलिक चर्च के धर्माचार्यों को अविवाहित रहकर आजीवन चर्च कि सेवा करनी होती थी। अपनी काम इच्छाओं पर नियंत्रण ना रख पाने के कारण उनमे व्यभिचार बढ़ता गया, जिससे उनका नैतिक पतन भी हुआ। धर्म सुधार आन्दोलन के तहत गृहस्थ जीवन को आवश्यक समझा जाने लगा। लूथर के अनुसार यदि कोई अपनी काम इच्छाओं पर नियंत्रण रख सकता है, तो ही ब्रह्मचर्य का पालन करे अन्यथा उसे विवाह कर लेना चाहिए। धर्म सुधार ने ब्रह्मचर्य एवं मठ जीवन की पवित्रता को नकार दिया। पहले मठ जीवन को स्वर्ग का मार्ग समझा जाता था, परन्तु अब उसका स्थान परिवार ने ले लिया, अब पारिवारिक जीवन को अधिक महत्वपूर्ण समझा जाने लगा।

धर्मसुधार का प्रभाव यदि स्त्रियों की दशा के सन्दर्भ में देखा जाए तो अब उनकी शिक्षा की आवश्यकता को समझा जाने लगा, अब वे भी बाइबिल एवं अन्य धार्मिक साहित्यों का अध्ययन कर सकती थीं। उनके लिए प्राथमिक स्कूलों और महाविद्यालयों स्थापित होने लगे, परन्तु इनका उद्देश्य स्त्रियों की नैतिक शिक्षा से था न कि उनके बौद्धिक विकास की बात सोची जा रही थी। लूथर ने उनके घरेलु काम काज और घर की देखभाल पर अधिक जोर दिया। मठों को समाप्त करने का एक उद्देश्य यह भी था कि वे महिलाओं के धार्मिक संघों को समाप्त करना चाहते थे। उनके अनुसार महिलाएं ही पाप का केंद्र थीं। कुलीन महिलाओं की स्थिति फिर भी बेहतर थी, परन्तु साधारण महिलाओं की स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं आया।

2.10.4 शिक्षा एवं संस्कृति

प्रोटेस्टेंटवादियों एवं जेसुइट मिशनरियों ने शिक्षा के महत्व को समझते हुए उसके प्रोत्साहन के लिए अनेक कार्य किये। पुनर्जागरण एवं मानववादी विचारों ने शिक्षा के प्रति लोगों को जागृत अवश्य किया था, परन्तु इन धर्मसुधारकों ने इसे और आगे बढ़ाया। मानववादी विचारकों से प्रेरित होकर अनेक स्कूलों की स्थापना का कार्य हुआ, और यह मानववादियों की अपेक्षा आम जन के बच्चों के लिए भी था। लूथर के अनुसार शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य होनी चाहिए, और इसकी व्यवस्था राज्य द्वारा की जानी चाहिए। इन विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा के साथ मानववादी शिक्षा भी दी जाने लगी। लूथर शिक्षा के लिए लोकप्रिय माध्यम जैसे– नृत्य, संगीत एवं नाटकों को आवश्यक बताते थे।

धर्म सुधार आन्दोलन का प्रभाव लोक संस्कृति पर भी दिखाई देता है– धर्म सुधारकों ने यूरोप में व्याप्त रुढ़िवादी कर्मकांडों की आलोचना की, उनके अनुसार संतों के नाम पर छुट्टी, धार्मिक जुलुस, उपवास इत्यादि को मानने से इंकार किया। इस सम्बन्ध में कैल्विन और ज्विंगली के विचार लूथर से अधिक आक्रामक दिखते हैं। इन्होंने संतों की मूर्ति, मेरी की मूर्ति रखने तथा मूर्ति पूजा की आलोचना की, तथा पूजा को सामूहिक या पारिवारिक स्तर पर सरल रूप में अपनाने की सलाह दी। धर्मसुधार आन्दोलन ने लोक भाषाओं को भी लोकप्रिय बनाने का कार्य किया। अब लोक भाषाओँ में साहित्य की रचना की जाने लगी, जिसके कारण लोगों में पढने की रूचि भी विकसित हो सकी। सुधार के द्वारा यूरोप में व्याप्त जादू–टोना कर्मकांडों एवं डाइनों को मारने इत्यादि को समाप्त करने की पहल भी हो सकी, जोकि लगभग 17वीं सदी के अंत तक ही संभव हो सका।

2.10.5 प्रति धर्म सुधार आन्दोलन

कैथोलिक चर्च एवं पोप के भ्रष्ट आचरण एवं संरचनात्मक दोष के कारण उन्हें विरोध का सामना करना पड़ रहा था, जिससे कैथोलिक चर्च से टूटकर अनेक सम्प्रदायों की स्थापना भी हुई। कैथोलिक चर्च में बुराईयों की जड़ें इतनी गहरी थी कि सुधार भी आंतरिक रूप से ही किया जा सकता था। जिसके लिए चर्च में संगठनात्मक परिवर्तन, पोप के आचरण व्यवहार को बदलकर ही नयी स्फूर्ति पैदा की जा सकती थी। जिसमें प्रमुख रूप से इग्नेशियस लोयोला (1491—1556) ने महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। अपने आरम्भिक जीवन में ये स्पेन के निवासी और बहादुर सैनिक थे, युद्ध में घायल हो जाने के पश्चात उन्होंने आध्यात्म की ओर अपना घ्यान आकर्षित किया। कैथोलिक चर्च में व्याप्त बुराईयों को समाप्त करने के लिए उसने कठोर अनुशासन लागू किये, और उनका पालन करने पर जोर दिया। उसने शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान दिया और खेल—कूद, नृत्य, नाटक और अभिनय के द्वारा लोगों तक नैतिक उपदेश पहुंचाने का कार्य किया। लोयोला अपने शिष्यों को केवल पवित्र जीवन की ही शिक्षा नहीं देता था बल्कि उसने चर्च की रक्षा एवं उसके प्रसार पर भी बल दिया। लोयोला के अनुयायियों का संघ जेसुइट संघ कहलाया, जिन्होंने सुधारों के साथ कैथोलिक चर्च का पुनः प्रसार किया और पोपतंत्र के अधिकारों को पुनः स्थापित किया। विद्रोहों के दमन के लिए ट्रेंट की धर्म सभा का भी आयोजन किया गया जिसके द्वारा कैथोलिकवाद को पुनः जीवित करना था, तथा उन दोषों को दूर करना था जिसके कारण प्रोटेस्टेंटवाद का जन्म संभव हो सका था। इस सभा द्वारा यह भी निर्णय लिया गया कि उन क्षेत्रों में कैथोलिकवाद का प्रचार करना था जहाँ प्रोटेस्टेंटवादी सफल नहीं हो सके थे।

2.10.6 पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास

पूंजीवादी समाज का जन्म पुनर्जागरण के साथ ही ही गया था, परन्तु इसका विकास धर्मसुधार आन्दोलन के साथ दिखाई देता है। समाज में नए माध्यम वर्ग की उत्पत्ति एवं राष्ट्रीयता की भावना को धर्मसुधारकों ने बढ़ावा दिया जिससे चर्च को जाने वाले धन (जिनका उत्पादन में कोई योगदान नहीं होता था) को रोककर उसे उत्पादन में लगाने की भावना का विकास हुआ, इससे पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ। मैक्स वेबर ने भी पूंजीवाद के विकास का सम्बन्ध प्रोटेस्टेंट आन्दोलन से बताया है, उनके अनुसार पूंजीवादी भावना का विकास आर्थिक कारकों से नहीं बल्कि सामाजिक आवश्यकताओं का परिणाम था। पूंजीवादी उद्यम धर्मसुधार से पहले भी कार्यरत थे परंतु पूंजीवादी भावना का विकास प्रोटेस्टेंट आन्दोलन का परिणाम था। वेबर के अनुसार प्रोटेस्टेंट सुधारकों ने खासकर कैल्विन के अनुशासनात्मक विचारों ने लोगों को उद्यमशीलता का पाठ पढ़ाया, जिससे पूंजीवादी भावना का विकास हुआ, यह भावना सत्ता या किसी अन्य लालच के लिए नहीं बल्कि काफी सूझ—बुझ से कमाया गया लाभ था, जिससे उन्हें व्यवसायिक सफलता भी मिली, अब धन कमाना गलत नहीं माना जाता था, क्योंकि कैल्विनवादी अपने कार्य को मेहनत और लगन से करना पवित्र उत्तरदायित्व मानते थे। अतः वेबर के अनुसार उन क्षेत्रों में पूंजीवाद का उदय अधिक तेज़ी से हुआ जहाँ केल्विन के विचारों को समर्थन मिला और अपनाया गया।

वेबर का यह सिद्धांत मार्क्सवादी विचारों से अलग था। मार्क्स के अनुसार पूंजीवाद का विकास आर्थिक एवं भौतिक कारकों में ही निहित है जबकि वेबर ने विचारों और वातावरण को अधिक महत्व दिया है। अनेक विद्वान वेबर के इन सिद्धांतों को नहीं मानते, क्योंकि उनका मानना है कि वेबर के विचार विकसित अर्थव्यवस्था के लिए तो सही हो सकते है पर आरंभिक दौर के लिए नहीं। अनेक विद्वानों जिनमें ई. ज्योफरी भी हैं, जिनका मानना है कि अर्थव्यवस्था में विकास एवं पूंजीवादी भावना के विस्तार के कारण धर्मसुधार की भावना उत्पन्न हो सकी।

2.11 अभ्यास एवं बोध प्रश्न

प्र०1— प्रेस्बिटेरियन कौन है?

प्र०2— इन्डल्जेंस से आप क्या समझते है?

प्र०3— एंग्लिकन चर्च कि स्थापना कहाँ और किसने की थी?

प्र०4— मार्टिन लूथर द्वारा लिखित तीन प्रमुख पुस्तकों का नाम लिखे?

2.12 अध्ययन सामग्री

जे० ई० स्वेन —— ए हिस्ट्री ऑफ़ दि वर्ल्ड सिविलाईजेसन

एच० एल० फिशर – हिस्ट्री ऑफ़ यूरोप खंड ৮

एल० बि० वर्मा – यूरोप का इतिहास

पार्थसारथि गुप्ता – आधुनिक पश्चिम का उदय

अरविन्द सिन्हा – संक्रांतिकालीन यूरोप

2.13 शब्दावली

जेसुइट संघ– प्रति धर्म सुधार आन्दोलन में इग्नेशियस लोयोला के अनुयायियों द्वारा स्थापित संघ को जेसुइट संघ कहते हैं।

इन्डलजेंस – पाप मोचन पत्र या क्षमा–पत्र जो पोप के आदेश पर यूरोप के विभिन्न शहरों में बेचे जा रहे थे।

बप्तिस्मा – ईसाई धर्म में जन्म संस्कार या ईसाई धर्म में परिवर्तन के समय कराया संस्कार।

युखारिस्त – ईसा मसीह के अंतिम प्रभु–भोज की याद में किया जाने वाला संस्कार। इस सम्बन्ध में लूथर का मानना था कि स्वयं ईसा इस भोज में उपस्थित होते हैं, जबकि केल्विन इसे प्रतीक मात्र मानते थे।

2.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्र०1— धर्मसुधार के सम्बन्ध में लूथर ज्विंगली और कैल्विन के विचारों का विशलेषण करें?

प्र०2— धर्मसुधार आन्दोलन तथा पूंजीवाद के सम्बन्ध में मैक्स वेबर के विचारों का आलोचनात्मक परीक्षण करें?

2.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उ०1— कैल्विन्वाद के समर्थक प्रेस्बिटेरियंस कहलाते थे, क्योंकि उसने प्रौढ़ लोगों (प्रेस्बीटायर्स) को अधिक महत्व दिया था।

उ०2— क्षमा पत्रों को इन्डल्जेंस कहा जाता था।

उ०3— हेनरी अष्टम ने इंग्लैण्ड में एंग्लिकन चर्च की स्थापना की।

उ०4—

1. जर्मन सामंत वर्ग को संबोधन (An Address to the Nobility of the German Nation)
2. ईश्वर के चर्च कि कैद (On the Babylonian captivity of the church of God)
3. ईसाई मनुष्य की मुक्ति (On the freedom of Christian man)

इकाई तीन – वैज्ञानिक क्रांति

3.1 प्रस्तावना
3.2 उदेश्य
3.3 वैज्ञानिक क्रांति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
    3.3.1 पुनर्जागरण से पहले का काल
    3.3.2 पुनर्जागरण का काल
3.4 वैज्ञानिक क्रांति का आधुनिक विज्ञान
    3.4.1 कॉपरनिकस
    3.4.2 डॉ पारसेल्स्स
    3.4.3 जियोदार्नो ब्रूनो
    3.4.4 टाइको ब्राहे
    3.4.5 फ़्रन्कोइस वियेटा, साइमन स्टेविन, जॉन नेपियर
    3.4.6 केप्लर
    3.4.7 गैलीलियो गैलीली
    3.4.8 विलियम गिलबर्ट
    3.4.9 विलियम हार्वे
    3.4.10 फ्रांसिस बेकन
    3.4.11 रेने देकार्त
    3.4.12 रोबर्ट बॉयल
    3.4.13 एंटोनी वॉन ल्यूवेन्हॉक
    3.4.14 रोबर्ट हुक
    3.4.15 आइजक न्यूटन
3.5 वैज्ञानिक क्रांति और महिलायें
3.6 वैज्ञानिक क्रांति दृ अनेक विचारधारायें
3.7 वैज्ञानिक क्रांति के कुछ दूरगामी परिणाम
3.8 सारांश
3.9 तकनीकी शब्दावली
3.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.13 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

वैज्ञानिक क्रांति से तात्पर्य है यूरोपी इतिहास की वह समयावधि जिसमें आधुनिक विज्ञान की क्रियाविधि, वैचारिक और संस्थागत नींव रखी गयी। यह प्रगति थी भौतिकी, खगोलशास्त्र, जीवविज्ञान, रसायन विज्ञान, मानव रचना व विज्ञान के कई अन्य क्षेत्रों में। इसके लिए एक विशेष रूप से समय सुनिश्चित कर पाना कठिन होगा। यह माना जाता है कि वैज्ञानिक क्रांति का आरंभ 15वीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुआ और 17वीं शताब्दी तक इसने लोगों का चीजों को देखने और समझने का नजरिया बदला। इसका विकास यूरोप के पुनर्जागरण (Renaissance) और धर्म–सुधारक आन्दोलन (Reformation) से प्रभावित था जिसने मुख्य रूप से वैज्ञानिक नजरिया व धर्मनिरपेक्ष होने पर बल दिया। यह परिवर्तन का दौर था जिसमे आधुनिकता ने परम्परागत तरिकों का स्थान ले लिया था व चिंतन और समीक्षात्मक मूल्यांकन ने विज्ञान को बढ़ावा दिया गया।

वैज्ञानिक क्रांति को पूरी तरह से समझने के लिए, तथा समाज में उसका प्रभाव मूल्यांकन करने के लिये यह जानना अनिवार्य होगा कि मध्ययुगीन विश्व का नजरिया तीसरी सदी के यूनानी दार्शनिक अरस्तू, दूसरी सदी के मिस्र के दार्शनिक, टॉलेमी एवं कई अन्य धर्मशास्त्रियों पर निर्भर था। मध्य युग में जब पश्चिमी यूरोप पूर्व के साथ व्यापार करने लगा तब इन दार्शनिको के विचारो से परिचित हुआ। सेंट थामस एक्विनास जो की एक मध्ययुगीन धर्मशास्त्री, उन्होंने ईसाई सिद्धांतों के साथ इन लेखों को लीन कर दिया। पुनर्जागरण के दौरान 1300 से 1500 शताब्दी के शुरुआती दौर तक विज्ञान को धर्म की एक शाखा माना जाता था, जिसके अनुसार पृथ्वी ब्रह्मांड के केंद्र में एक स्थिर वस्तु थी। यह सिर्फ कॉपरनिकस के सैद्धांतिक खोज के बाद माना जाने लगा कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। यह यूरोपीय अरस्तू–मध्ययुगीन वैज्ञानिक सोच को अस्वीकार करने की शुरुआत थी। कोपरनिकस, गैलीलियो और न्यूटन ने प्राकृतिक कानूनों के आधार पर ब्रह्मांड की एक नई अवधारणा विकसित की।

3.2 उदेश्य

- वैज्ञानिक क्रांति की पृष्ठभूमि की जानकारी देना।
- आधुनिक विज्ञान के संस्थापकों व उनके योगदान का उल्लेख करना ।
- वैज्ञानिक क्रांति के प्रभाव को समझना।

3.3 वैज्ञानिक क्रांति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वैज्ञानिक क्रांति को आसानी से समझने के लिए उसे दो भागों में बाँट लिया गया है। पहले भाग में हम पुनर्जागरण से पहले के काल में विज्ञान को जानेगें और दूसरे भाग में पुनर्जागरण काल की परिस्थितियों में आधुनिक विज्ञान का उदय समझेंगे।

3.3.1 पुनर्जागरण से पहले का काल

आधुनिक विज्ञान और प्राचीन यूनानी दर्शन के मध्य एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। पूर्व यूनानी दर्शन के नियमों के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हीं आधुनिक विज्ञान का जन्म हुआ और इसी प्राचीन दर्शन ने आगे होने वाली वैज्ञानिक खोजों को एक आधार प्रदान किया।

बारहवीं शताब्दी में पाइथागोरस का गणित,प्लेटो और अरस्तु का दर्शन, युक्लिड की ज्यामिति, आर्किमिडिज के अनेक सिधांत, टॉलमी के खगोलीय ज्ञान, गेलैन का चिकित्साशास्त्र, आदि की फिर से खोज हुई और अनेक शताब्दियों के पुनर्वेशन की प्रक्रियाओं के बाद मान्यता प्राप्त हुई। पूरे मध्यकाल में यूरोप के ईसाई गिरजाघर एवं विद्वान, रोमन और यूनानी विद्वानों की रचनाओं से परिचित थे परन्तु उनको प्रचारित नहीं किया गया। चौदहवीं शताब्दी में प्लेटो और अरस्तु के दर्शनशास्त्र को पढ़ना शुरु किया गया और पंद्रहवी शताब्दी तक इनके विचारों को अपना लिया गया। इन कृतियों के अनुवाद के लिए श्रेय जाता है उन अरबी भाषा के अनुवादकों को जिन्होंने इन पांडुलिपियों का संरक्षण किया और अनुवाद कर प्रसार के काबिल बनाया। ईसाई धर्म ने भी इन विचारों को स्वीकारा और अपने साथ जोड़ा। अरस्तू प्रणाली ने भौतिक विज्ञान के कई नीयम दिए। उन्होंने यह दावा किया है कि एक वस्तु के गिरने की दर उसके अपने वजन पर निर्धारित करता है, यूनानी खगोलशास्त्री टॉलेमी के अनुसार पृथ्वी ब्रह्माण्ड के केंद्र में स्थिर स्थान पर हैं, चिकित्सकों ने माना जाता कि मानव शरीर में चार अलग–अलग प्रकार के तरल पदार्थ शीनउवतेश हैं और उनके असंतुलन की वजह से बीमारी होती है। इन सब बातों को सत्य मानकर चर्च की शिक्षाओं और युग की शैक्षणिक संस्थाओं ने निर्विवादित रूप से अपनाया। हालांकि, जल्द ही इन विश्व सम्बन्धी पारंपरिक और धार्मिक सिधांन्तों का विरोध होने लगा।

3.3.2 पुनर्जागरण का काल

1300 और 1400 के दशक में इटली ने यूरोपीय व्यापार और विनिर्माण पर जोर दिया। इन व्यापारी जहाजों के साथ आये चूहे जिन्होंने महावारी फैला दी जिसको काली मृत्यु के रूप में जाना जाता है। काली मृत्यु (Black death, a kind of plague in 1347–1350) व इंग्लैंड और फ्रांस के युद्धों (1337–1453) के परिणामस्वरूप जनसंख्या में भारी गिरावट आयी। किसानों और मजदूरों की कमी के कारण उनके श्रम के लिए पहले से बेहतर भुगतान हुआ और सर्फ़डम (serfdom) की कुप्रथा का भी अंत हुआ। आर्थिक तनाव के चलते व्यापार के द्वार भी बंद हो गए। हालांकि जल्द ही स्थियाँ बदली और जैसे ही जनसंख्या बढ़ी, भोजन की मांग भी बढ़ गयी। इन घटनाओं ने वस्तुओं मूल्य में वृद्धि कर पूरे यूरोप में मुद्रास्फ़ीति की स्थिति पैदा कर दी। बढ़ती कीमतें, माल और सेवाओं की अधिक मात्रा में आवशयकता ने व्यापारियों को अपने व्यवसायों का विस्तार करने के लिए प्रोत्साहित किया।

आर्थिक व्यवस्था जल्द ही अपनी जगह पर वापिस आ गयी जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, खनन, बैंकिंग उद्योग, व्यापार मार्गों के विस्तार और नई विनिर्माण प्रणालियों के कारण वाणिज्यिक गतिविधि प्रगति पथ पर आ गयी। 1500 के प्रारंभिक दशक में दक्षिणी जर्मनी में खनन एक महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि के रूप में सामने आया अथवा समुद्री खोज ने 1500 के दशक में स्पेनिश और पुर्तगाली व्यापार को शीघ्रता से बढ़ावा दिया।

इस समय कला के क्षेत्र में बहुत विकास हुआ और यथार्थवाद (realism) पर बल दिया गया। मूर्तिकारों की मूल आकृति जैसा चित्र बनाने की इच्छा को वैज्ञनिकों के अध्यन से सहायता प्राप्त हुई तथा नर–

कंकालों व शरीर–क्रिया विज्ञान का शोध कर उन्हें सटीक आकृति की प्राप्ति हुई। चित्रकारों ने भी मूर्तिकारों की तरह यथार्त चित्र बनाने की कोशिश की । रेखागणित (geometry) के ज्ञान से चित्रकार परिदृश्य को समझ पाए और प्रकाश के बदलते गुणों का अध्ययन कर त्रि–आयामी (three–dimensional) चित्र बना पायें।

जोहानेस गूटेनबर्ग (1400–1458) ने पहले छापेखाने (Printing Press) का निर्माण किया और पहली बार में बाइबिल की 150 प्रतियाँ छापी गयी। इस छापेखाने के फलस्वरूप ज्ञान के प्रचार एवं प्रसार में तेज़ी आयी और लोगों ने पुस्तकों को पढ़कर अनेक विचार, मत एवं जानकारी एकत्रित की।

पंद्रहवी शताब्दी के अंत में यूरोप के कई विद्वान एवं ईसाई मानवतावादी विचारों से प्रभावित हुए। उन्होंने एक सरल धर्म की बात की एवं अनावश्यक कर्मकांडों की आलोचना की। ईसाई मानवतावादी, जैसे की थॉमस मोर (1478–1536) और इरेस्मस (1466–1536) का विचार था की गिरिजाघर एक लालची और धन लूटने वाली संस्था थी जो की लोगों को पाप के नाम पर डराती थीं। लोगों को 'पाप–स्वीकारोक्ति' (indulgences) नामक दस्तावेज़, जिससे पापों का निवारण हो सके के माध्यम से धर्माधिकारियों ने खूब लूटा। यूरोप के किसान चर्च के लगाये करों से दुखी थे व राजा हर बार के हस्तक्षेप से। मानवतावादियों ने यह भी साबित किया 'Constantine Will' नामक दस्तावेज़, जिससे पादरी अपनी न्यायिक और वित्तीय शक्ति का दावा करते है वह परिवर्ती काल में नकली बनाया गया था।

मार्टिन लुथेर (1483–1546) ने 1517 में कैथोलिक चर्च के विरुद्ध धर्मसुधारक अभियान (Reformation या जिसे प्रोटेस्टेंट सुधारवाद भी कहा जाता है) शुरू कर दिया और रोमन कैथोलिक चर्च की शिक्षाओं और प्रथाओं को अस्वीकारा। उन्होंने दृढ़ता से पाप–स्वीकारोक्ति' (indulgences) नामक दस्तावेज़ पर अपनी आपत्ति जताई क्योंकि वह मानते थे की पापों से और भगवान की सजा से मुक्ति रूपये–पैसे से नहीं खरीदी जा सकती। उन्होंने अपने इन विचारों को अपने शोध 'नाइंटी–फाइव थीसिस' (Ninety–Five Thesis) में प्रकाशित किया। लूथर के अनुसार मोक्ष और अनन्त जीवन की प्राप्ति अच्छे कर्मों के द्वारा अर्जित नहीं की जाती, बल्कि ईश्वर की आराधना और विश्वास कर यीशु मसीह से उपहार स्वरूप प्राप्त होती है। उन्होंने पोप के अधिकार एवं कार्यालय को चुनौती दी और सिर्फ बाइबिल को ही परमेश्वर की दैवीय शक्ति का एकमात्र स्रोत माना। इस कारण उन्होंने बाइबल का लैटिन के बजाय स्थानीय भाषा में अनुवाद कर आम लोगों को भी बाइबिल की शिक्षाओं से अवगत कराया।

धर्मसुधार के प्रति चर्च की विरोधी प्रतिक्रिया प्रति–धर्मसुधार(Counter–Reformation) रोमन कैथोलिक चर्च में आंतरिक और बाह्य संगठन में बदलाव लाने की कोशिश थी जिसका प्रमुख उद्देश्य था धर्म से अलग हुए लोगों को चर्च में दोबारा आस्था दिलाना। हालांकि ट्रेंट परिषद् (Council of Trent), धर्म विद्रोह के लिये धर्म समीक्षण (Inquisition) एवं कैथोलिक ईसाई दल (Society of Jesus) का कैथोलिक शिक्षाओं पर दबाव व चर्च के पुराने सिद्धांतों की सुरक्षा से लोगों का कैथोलिक चर्च पर से विश्वास और भी हट गया। इन सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक माहौल में अरिस्टोटेलियन प्रणाली की पकड़ तोड़ते हुए वैज्ञानिक क्रांति का उदय हुआ और सोलहवीं और सत्तरहवीं शताब्दी के दौरान हुए शोध ने आधुनिक विज्ञान को नींव प्रदान की।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नः

1. वैज्ञानिक क्रांति का एतिहासिक पृष्ठभूमि पर टिपण्णी कीजिये।
2. प्राचीन यूनानी ज्ञान ने धर्म को किस प्रकार प्रभावित किया?

3.4 वैज्ञानिक क्रांति का आधुनिक विज्ञान

इस खंड में हम वैज्ञानिक क्रांति के दौरान विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में हुए विकास एवं कुछ महत्वपूर्ण संस्थापकों के योगदान को पढ़ेंगे।

3.4.1 कॉपरनिकस

ईसाई धारणा के अनुसार मनुष्य को एक पापी के रूप में देखा जाता था, हालांकि वैज्ञानिकों ने इस पर हमेशा आपत्ती जतायी। यूरोपीय विज्ञान के क्षेत्र में कॉपरनिकस (जो की मार्टिन लूथरके समकालीन थे) ने एक नया मोड़ दिया। ईसाई धर्म में यह समझा जाता था की पृथ्वी पापियों की जगह है और पाप के भारी बोझ के कारण वह स्थिर है। पृथ्वी ब्रह्मांड के केंद्र में स्थिर है व जिसके चारों ओर ग्रह घूमते हैं।

कॉपरनिकस की खोज के गहरे वैज्ञानिक और धार्मिक परिणाम हुए। अरस्तू और टॉलेमी के विचार, निकोलस कॉपरनिकस (1473–1543) के नए सिधान्तों द्वारा बिखर गए थे। वह एक पक्के ईसाई थे और समझते थे की उनके नए सिद्धांत से परंपरावादी ईसाई धर्माधिकारियों की आलोचनात्मक प्रतिक्रिया उत्पन होंगी जिस कारण से उन्होंने अपनी पांडुलिपि को अपनी मृत्यु के बाद समाज के सामने लाने का फैसला किया। अपनी पुस्तक On the Revolutions of the Heavenly Spheres (1543 में जो कि उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई) कॉपरनिकस ने एक क्रांतिकारी सुझाव दिया कि सूर्य ब्रह्मांड का केंद्र था और पृथ्वी, अन्य ग्रहों की भांति परिपत्र कक्षाओं में घूमती है ।इस सूर्य केंद्रीय सिद्धांत ने जिसमे ब्रह्मांड का केंद्र सूर्य था न की पृथ्वी, ने समकालीन वैज्ञानिक सोच का खण्डन किया और सैकड़ों वर्ष के पारंपरिक शिक्षाओं को चुनौती दी। अब यह बात स्पष्ठ थी कि पृथ्वी एक अन्य ग्रह के ही भांति थी।

3.4.2 डॉ पारसेल्स्स

पारसेल्स्स(1493–1547) स्विस–जर्मन मूल के दार्शनिक, चिकित्सक, ज्योतिष और कई अन्य प्रतिभाओं से लैस क्यक्ति थे। पेरासेलसस ने चिकित्सा के क्षेत्र में रासायनिक औषधियों के अध्यन पर बल दिया। उनके अनुसार शरीर में रोग बहार से आते हैं और हर रोग का उपचार अलग तरह से होता है। प्राचीन मान्यता थी की रोग चार तरल पदार्थ (humors) :रक्त, कफ, काले रंग और पीले रंग के पित्त (Blood, Phelgm, Black Bile and Yellow Bile) के असंतुलन से होते हैं। परन्तु पेरासेलसस ने इस बात का खंडन किया और बताया की बीमारियाँ सल्फर, पारा, और नमक के जहर से होती हैं। आधुनिक मनोविज्ञान उन्हें इस बात का श्रेय देता है की कुछ बीमारियों मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों से उत्पन्न होती हैं। उन्हें विष विज्ञान का संस्थापक भी माना जाता है।

उनके कार्य में कीमियागिरी, जादू–टोना तथा रहस्य का प्रभाव दिखता है, जिससे हम यह सकते हैं की पुनर्जागरण के समय में समाज एकदम विवेकशील नहीं हो गया था और अभी भी लोग विज्ञान को धर्म और जादू से जोड़ते थे।

3.4.3 जियोदार्नो ब्रूनो

जिओरडनो ब्रूनो (1548–1600) एक इतालवी डोमिनिकन तपस्वी, दार्शनिक, गणितज्ञ, कवि, और ब्रह्माण्ड संबंधी विचारक था| उन्होंने कोपर्निकस मॉडल को बढ़ावा दिया और उस पर निर्भर करके ब्रह्माण्ड संबंधी सिद्धांत दीये है। उन्होंने ब्रह्मांडीय बहुलवाद (cosmic pluralism) के प्रस्ताव को आगे बढ़ाया जिसके अनुसार पृथ्वी के अलावा अनेक दुनिया हैं जिनमें जीवन की सम्भावना है| उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया की ब्रह्मांड अनंत है और यह भी संभव है की उसके श्केंद्रश में कोई आकाशीय पिंड (celestial body) न हो।

ब्रूनो के ब्रह्माण्ड विज्ञान के अनुसार कुछ ऐसे ष्सूर्यष हैं जो अपने आप से प्रकाश और गर्मी का उत्पादन करते हैं और कुछ ऐसी "पृथ्वी" हैं जो सूर्य से प्रकाश और ऊष्मा प्राप्त करती हैं। ब्रूनो के अनुसार आकाश में स्तिथ कई प्रतिष्ठित सितारों असल में सूर्य हैं।

1593 की शुरुआत में ब्रूनो को रोमन कैथोलिक न्यायिक जांच ने धर्म के विरुद्ध पाया और न्यायिक जांच में दोषी पाकर उन्हें 1600 में रोम के कैंपो डे फिओरी में जला दिया गया| उनकी मृत्यु के बाद उन्हें काफी प्रसिद्धि प्राप्त हुई और 19वीं और 20वीं सदी के टिप्पणीकारों ने उन्हें विज्ञान के लिए एक शहीद के रूप में माना।

3.4.4 टाइको ब्राहे

कॉपरनिकस के विचारों से प्रभावित होकर एक डेनिश खगोल विज्ञानी, टाइको ब्राहे (1546–1601), ने एक वेधशाला का निर्माण किया और तारों और ग्रहों की स्थिति पर बीस साल का डाटा इकट्ठा करके आधुनिक खगोल विज्ञान के अध्ययन के लिए मंच तैयार है।

उन्होंने यह तो सही समझा की चंद्रमा पृथ्वी की परिक्रमा लेती है और ग्रह सूर्य की परिक्रमा करतें है, परन्तु उनसे चूक तब हुई जब उन्होंने यह माना कि सूर्य कर भी पृथ्वी की परिक्रमा करता है| टाइको ने चंद्रमा की देशांतर के बदलाव की खोज कर कर चन्द्र सिधांत में विशिष्ट योगदान किया|

अपने कार्य डी नोवा स्टेला (On the New Star) De Nova Stella 1573 में उन्होंने एक अरस्तू की अपरिवर्तनीय आकाशीय दायरे की धारणा का खंडन किया। 11 नवंबर 1572, टाइको ने एक बहुत ही उज्ज्वल सितारा को नक्षत्र कैसियोपेइया में देखा| उन्होंने इस पुचल तारे का परिक्षण करते हुए इस नक्षत्र का लंबन जाना और यह प्रमाणित करने में सफल हुए की यह नक्षत्र चंद्रमा से भी भुत दूर है| क्योंकि यह प्राचीन काल से मान्यता थी कि चंद्रमा की कक्षा से परे दुनिया सदा अपरिवर्तनीय रहती है इसलिए इस नजारे को सबने चंद्रमा के नीचे स्थलीय क्षेत्र का माना था | ब्राहे के अनुसार इस पुचल तारे का मार्ग गोल की बजाय लम्बा भी हो सकता है|

3.4.5 फ़्रन्कोइस वियेटा, साइमन स्टेविन, जॉन नेपियर

फ़्रन्कोइस वियेटा(1540–1603) ने बीजगणित (Algebra) व त्रिकोणमिति (Trigonometry) का योगदान दिया| साइमन स्टेविन(1548–1620) ने 1585 में दशमलव (Decimal) का प्रयोग किया और जॉन नेपियर (1550–1617) ने लघुगणक (Logarithm) की खोज कर कठिन समस्याओं को सुलझाने का आसान तरीका प्रदान किया|

3.4.6 केप्लर

केप्लर (1571–1630), एक जर्मन खगोलशास्त्री व गणितग्य थे एवं ब्राहे के सहायक होने के कारण वे उनके कार्यों से भी परिचित थे| उनकी खोज़े विश्व के गुप्त रहस्यों से पर्दा उठाने की ओर

निर्देषित थी। उन्होंने ब्राहे के डेटा और कॉपरनिकस के विचारो का समर्थन किया व उनको अपने प्रयोगों में इस्तेमाल किया। केपलर की पहली बड़ी खगोलीय खोज, Mysterium Cosmographian (1596) के रूप में प्रकशित हुई जिसमे उन्होंने जम के कोपर्निकस प्रणाली का समर्थन किया । केपलर ने ग्रहों की दीर्घवृत्ताकार कक्षा की परिकल्पना की, ग्रहों की गति के गणितीय संबंधों पर आधारित नीयम दिए तथा सही ढंग से एक सूर्य केन्द्रित ब्रह्मांड में ग्रहों की परिक्रमा की भविष्यवाणी की। इसका प्रभाव यह हुआ कि कॉपरनिकस द्वारा प्रस्तावित सिद्धान्तों को मान्यता प्राप्त हुई अथवा प्लेटो एवं पाइथागोरस के नक्षत्रों की वर्तुल गति सम्बन्धी धारणाओं को नष्ट किया जा सका।

3.4.7 गैलीलियो गैलीली

गैलीलियो गैलीली (1564–1642) एक इतालवी बहुश्रुत थे जिन्होंने विज्ञान के पारंपरिक विचारों की कटु निंदा करी और परिकल्पना के बजाय अवलोकन का उपयोग किया। गैलीलियो गैलीली ष्आधुनिक अवलोकन खगोल विज्ञान के जनक, आधुनिक भौतिकी के जनक, विज्ञान के जनक, और आधुनिक विज्ञान के भी जनक माने जाते है। गैलीलियो पहले आधुनिक विचारकों में से एक हैं जिन्होंने स्पष्ट रूप से प्रकृति के नियमों को गणितीय से जोड़ा हैं। उनके अनुसार ब्रह्मांड को भी गणित की भाषा में लिखा गया था जिसके अक्षर त्रिकोण, हलकों, और अन्य ज्यामितीय आंकड़े हैं।

उनकी खोज ने पहले की यह धारणा कि ग्रह क्रिस्टल की गेंदों की तरह है को नष्ट कर दिया और पारंपरिक पृथ्वी और चंद्रमा के बीच के सम्बंधित विचारों को चुनौती दी। उन्होंने दूरबीन के नए आविष्कार का उपयोग करके खगोल विज्ञान में प्रयोगात्मक विधियों को लागू किया। इस यंत्र का उपयोग करके यह ज्ञात हुआ कि बृहस्पति की परिक्रमा 3 चंद्र अथवा नक्षत्र करते हैं, चंद्रमा गोलाकार नहीं था बल्कि पृथ्वी की ही तरह उसकी सतह एक पहाड़ी थी जिसमे थोडा पानी भी था।

गैलिलियो की नई खोजो ने कॉपरनिकस के सिद्धांतों को प्रबल बनाया एवं पुष्टि प्रदान की। अपनी पुस्तक Dialogue Concerning the Two Chief World Systems (1632) के प्रकाशन के बाद, जिसमें उन्होंने अरस्तू और टॉलेमी के काम की आलोचना की, गैलीलियो को गिरफ्तार कर लिया गया, जेल में डाला गया, मतों के विरुद्ध जाने की कोशिश के लिए उनपे पोप न्यायिक जांच बिठाई गयी और सार्वजनिक रूप से अपने विचार को वापिस लेने के लिए मजबूर करा गया। उनको कारावास में डाला गया और बाद में गृहबंदी कर दिया गया जहाँ उन्होंने टू न्यू साइंसेज (Two New Sciences) नामक किताब लिखी जिसमें उन्होंने विज्ञान की दो शाखांए शुद्धगति विज्ञान (Kinematics) और सामग्री की ताकत (Strength of Material) के बारे में जानकारी दी।

3.4.8 विलियम गिलबर्ट

विलियम गिलबर्ट प्रयोगात्मक विधि का एक प्रारंभिक समर्थक थे। उन्होंने प्रचलित अरस्तू के दर्शन और विश्वविद्यालय शिक्षण के शैक्षिक विधि की आलोचना की। उनकी पुस्तक डी मैगनेट (De Magnete) 1600 में लिखी गयी जिसमें अपने मॉडल पृथ्वी जिसको उन्होंने terrella कहा, और इसमें अनेक प्रयोगों का वर्णन किया। इन प्रयोगों से उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि पृथ्वी चुंबकीय है और इस चुम्बकीय बल के कारण नक्षत्र अपने मार्गों में स्थिर रहते हैं। संतुलित सुई के माध्यम से की वह हमेशा उत्तर दिशा की तरफ प्वाइंट करती है उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला। हालांकि हार्टमेन और राबर्ट नॉर्मन ने संतुलित सुई की जानकारी और प्रयोग पहले किये हुए थे।

3.4.9 विलियम हार्वे

विलियम हार्वे (1578–1657) एक अंग्रेज़ी चिकित्सक थे जिन्होंने शरीर में रुधिर के परिसंचारण की तर्कपूर्ण जानकारी दी| हार्वे ने हज़ारों वर्षों तक अपनाए गेलैन के सिद्धांत की आलोचना की| गेलैन ने दूसरी शताब्दी में यह सिधांत दिया था की शिरापरक रक्त जिगर में उत्पन्न होता था और वहाँ से पूरे शरीर में वितरित होता था और धमनियों का रक्त ह्रदय में उत्पन्न होता था और वहाँ से उसका संचारण पूरे शरीर में होते था| और पूरा चक्र करके रुधिर जिगर या ह्रदय में पुनर्जीवित होता है |

हार्वे ने 1628 में अपने शोध De Motu Cordis में शरीर रचना–शास्त्र एवं शरीर क्रिया–शास्त्र का ज्ञान देकर चिकित्सा के क्षेत्र में नये युग का आरंभ किया| उनके अनुसार ह्रदय एक पम्प समान था और ह्रदय से रक्त धमनियों में पहुँचता है और शिराओं के द्वारा वापस ह्रदय में जाता है| अतरू इस प्रकार से रक्त का परिसंचरण पूरे शरीर में होते रहता है| हालांकि वह इसका कारण नहीं समझ पाए क्योंकि धमनी और शिरा आपस में किस तरह से कोशिकाओं द्वारा जुड़े हैं यह स्पष्ट नहीं हो पाया था| हार्वे की इस खोज के चिकित्सा जगत में तुरंत प्रभाव नहीं पढ़ा लेकिन यह निश्चित रूप से कह सकता हैं कि उनके शोध ने चिकित्सा क्षेत्र को दिशा प्रदान की|

3.4.10 फ्रांसिस बेकन

फ्रांसिस बेकन (1561–1626) एक अंग्रेज़ी राजनीतिज्ञ और लेखक थे जिनके अनुसार नए ज्ञान को एक प्रेरक, प्रयोगात्मक एवं तर्क की प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है| अपने प्रकाशन नोवम आग्रेनम (Novum Organum) में बेकन ने मध्ययुगीन परंपरा पर आधारित ज्ञान को खारिज कर दिया व प्रयोग एवं परेक्षण पर जोर दिया| उनका विचार था की डेटा एकत्र करके व निरीक्षण करके जो निष्कर्ष प्राप्त होता है वही वैज्ञानिक पद्धति का आधार बनता है | हालांकि उनका वैज्ञानिक या दार्शनिक क्षेत्र में कोई ख़ास योगदान नहीं है, परन्तु वह एक प्रमुख व्यक्ति के रूप में इसलिए जाने जाते है क्योंकि उन्होंने वैज्ञनिक अन्वेषण पर बल दिया|

3.4.11 रेने देकार्त

रेने देकार्त (1596–1650) एक फ्रांसीसी गणितज्ञ और दार्शनिक थे। बेकन की ही तरह वह पारंपरिक विज्ञान के विरुद्ध थे| दर्शनशास्र के क्षेत्र में देकार्त को पहले आधुनिक चिन्तक के रूप में देखा जाता है| उनको विश्लेषक ज्यामिति के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है|

उन्होंने अपने कार्य डिस्कोर्स ऑन मैथोड (Discourse on the Method) (1637) में लैटिन भाषा (जो की मध्य युग की बौद्धिक भाषा मानी जाती थी) का प्रयोग न करके फ्रेंच में लिखा और इस प्रकार अतीत के साथ नाता तोड़ दिया| देकार्त ने निगमनात्मक तर्क पर बल दिया।

हर वस्तु पर शंका की दृष्टि रखते हुए उन्होंने अपने प्रसिद्ध वाक्य में कहा "cognito ergo sum" (I think therefore I am) जिसका अर्थ है की "मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ| इस तरह उन्होंने अपने अस्तित्व पर भरोसा रखने के तरफ प्रेरित करता है| उनके अनुसार मनुष्य अपने से भी अधिक पूर्ण अस्तित्व की परिकल्पना कर सकता है| अपने अधूरे कार्य द डिस्क्रिप्शन ऑफ़ द ह्यूमन बॉडी (The

Description of the Human Body) में उन्होंने विश्व और मानव शरीर दोनों को एक यंत्र के भांति क्रिया करते हुए बताया है।

3.4.12 रोबर्ट बॉयल

रोबर्ट बॉयल (1627–1691) आधुनिक रसायनशास्त्र के समर्थक थे। वे लंदन की की रॉयल सोसाइटी के एक संस्थापक थे। उनको गैसीय नियमों, द्रव्य के कर्णवाद, वायु पम्प पर प्रयोग, पदार्थों पर ऊष्मा का प्रभाव को प्रदान करने का श्रेय जाता है। बॉयल के नियम (1662) के अनुसार स्थिर तापमान और बंद व्यवस्था में एक गैस के निरपेक्ष दबाव और मात्रा के बीच विपरीत आनुपातिक रिश्ता होता है। हालांकि उनको इस नीयम की खोज का श्रेय नही जाता परन्तु फिर भी इसे बॉयल नीयम के रूप में जाना जाता है। उन्होंने रासयांकारों से नए प्रोयोगों को करने का अनुरोध किया और रासायनिक तत्वों को केवल चार क्लासिक तत्व : पृथ्वी, अग्नि, वायु, और पानी तक सिमित करने के लिए मना किया । बॉयल ने अरस्तु और क़ीमियाईगरों के बताये गये तत्वों का खंडन किया और तत्वो प्रथम वैज्ञानिक परिभाषा दी।

3.4.13 एंटोनी वॉन ल्यूवेन्हॉक

एंटोनी वॉन ल्यूवेन्हॉक (1632–1723) एक डच व्यापारी और वैज्ञानिक थे जिन्होंने माइक्रोस्कोपी के क्षेत्र में शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी एकल लेंस का निर्माण किया। वे पहले थे जिन्होंने पेशी तंतुओं, बैक्टीरिया, शुक्राणु, और केशिकाओं में रक्त के प्रवाह का सूक्ष्म रूप से निरीक्षण किया। उनकी व्यापक टिप्पणियों 1660 के आसपास रॉयल सोसाइटी के साथ पत्राचार के माध्यम से प्रकाशित हुई जिससे जीव विज्ञान की सूक्ष्म दुनिया को समझने के द्वार खुल गये।

3.4.14 रोबर्ट हुक

रोबर्ट हुक (1635–1703) एक अंग्रेजी प्राकृतिक दार्शनिक थे। वह रॉयल सोसाइटी एक सदस्य थे। हुक ने भौतिकी का नीयम दिया जिसके अनुसार एक लोचदार सीमा के भीतर, ठोस वस्तु में खिचांव बल का समानुपाती है। इस नीयम को हुक लोच का नीयम (Hooke's Law of Elasticity) कहा जाता है। उन्होंने संतुलन–चक्र का अविष्कार किया जिसके आधार पर उचित सटीकता के साथ समय बताने वाली घड़ी व क्रोनोमीटर का निर्माण हो सका।

उन्होंने अपवर्तन की घटना की जांच की और प्रकाश की तरंगों को भी समझा। उन्होंने शुरवाती ग्रेगोरियन दूरबीन का निर्माण किया और मंगल और बृहस्पति का नियमित आवर्तन देखा। अपनी पुस्तक मिक्रोग्राफिया (Micrographia) में उन्होंने वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए माइक्रोस्कोप का प्रयोग किया। इस माइक्रोस्कोप से उन्होंने कोशिकाओं और जीवाश्म को सूक्ष्म रूप से जाना और आने विचार प्रस्तुत किये जिस कारण हुक को जैविक विकास का अधिवक्ता माना जाता है।

3.4.15 आइजक न्यूटन

वैज्ञानिक क्रांति में आइजक न्यूटन (1642–1727) का बहुत बड़ा योगदान है। अपनी पुस्तक प्रिन्सिपिया मतेमातिका (Principia Mathematica) (1687) में उन्होंने कोपरनिकस, केपलर और गैलिलियो के विचारों को इकठ्ठा करके अत्यणु–कलन (infinitesimal calculus) की गणितीय नीयम की प्रणाली

बनाई जिससे ग्रहओं के सूर्य के चारों ओर घूमने के व्यवस्थित तरीको को समझा जा सका| उनके शोध की प्रमुख विशेषता सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण का नीयम (law of universal gravitation) था। इस नीयम के अनुसार यह पता चला की ब्रह्मांड में हर वस्तु एक दूसरी वस्तु को सटीक गणितीय संबंधों में आकर्षित करती है। न्यूटन के गणितीय नीयम ने यह साबित कर दिया है कि सूर्य, चंद्रमा, पृथ्वी, ग्रह, आदि गुरुत्व के एक ही मूल बल के अनुसार चलते हैं| इस तरह से यह ज्ञात हुआ की ब्रह्मांड के नियमों का संचालन गणित के माध्यम से समझा जा सकता है और यह भी पता चला कि प्रकृति की शक्तियों को समझने के लिए धार्मिक व्याख्या एकमात्र साधन नहीं है |

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न:

1. वैज्ञानिक क्रांति के दौरान खगोल विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति पर प्रकाश डालिए|
2. चिकित्सा जगत में हुए परिवर्तनों की व्याख्या कीजिये|

3.5 वैज्ञानिक क्रांति और महिलायें

वैज्ञानिक क्रांति में केवल पुरुषों ने ही नहीं, बल्कि कुछ महिलाओं का भी योगदान रहा जैसे लेडी रानेलाघ,क्रिस्टीना ऑफ़ स्वीडन, कारोलिंन ऑफ़ अन्स्पा, कैथरीन बार्टन, कैरलाइन हेर्स्चेल, ममे लेपौते, ऐडा काउंटेस ऑफ़ लोवेला, आदि| हालांकि यह समझना भी आवश्यक है की यह संख्या बहुत ही कम थी| सोलहवी और सतरहवी शताब्दियों में पुरुषों ने पारंपरिक धारणाओं को चुनौती दी और उनके खोकलेपन को साबित किया|उन्होंने ब्रह्माण का निरिक्षण किया, मानव शरीर की संरचना को समझा, टेलिस्कोप से चाँद देखा, पृथ्वी और अन्य ग्रहों की परिक्रमा को समझा, सूर्य और पृथ्वी के सम्बन्ध को समझा, आदि|

परन्तु बोनी एस. एंडरसन एवं जूडिथ पी. ज़िन्स्सेर के अनुसार महिलाओं के लिए कोई वैज्ञानिक क्रांति नहीं हुई| उनके विचार से जब पुरुषों ने स्त्रियों के शरीर की संरचना को पढ़ा, स्त्रियों के शरीर के क्रिया विज्ञान को समझा, महिलाओं के प्रजनन के अंगों और प्रसव में उनकी भूमिका को भी जाना तब उन्होंने किसी भी तरह के बदलाव के नजरिये से अपने हाथ पीछे खींच लिए|

महिलाओं के संधर्भ में पुरुष अब भी अपने निष्कर्ष परंपरा, रुढ़ीवादी व कल्पना पर आधारित कर रहे थे न की वैज्ञानिक अवलोकन पे| जहाँ अरिस्तु और अन्य दार्शनिको के सिद्धांतों का खंडन हो चुका था, वहाँ महिला वर्ग के लिए वे अभी भी उतनी ही मान्यता रखते थे जितना की वह जब लिखे गए होंगे| पुरुषों ने नये विज्ञान के नाम पे पुरानी द्क्यानुसी मान्यताओं को सामने रखा जिसमें उन्होंने महिलाओं के शरीर को पारम्परिक तरीकों से महिलाओं की प्रकृति और भूमिका से जोड़ दिया| इस तरह तर्कपूर्ण तरीके से पुरुष अपने उदेश्य में सफल हुए और प्राचीन पारम्परिक निष्कर्षरू 'पुरुषों की सहज श्रेष्टता और महिला की न्यायोचित अधीनता' को बलपूर्वक सामने लाये|

हालांकि यह भी नकारा जा सकता की कुछ महिलाओं का वैज्ञानिक क्रांति में अमूल्य युगदान था और उन्होंने पुरुष वर्ग को उनके वैज्ञानिक प्रयोगों में अनेक प्रकार से साथ दिया|

3.6 वैज्ञानिक क्रांति – अनेक विचारधारायें

वैज्ञानिक क्रांति की एक सटीक अवधि तय कर पाना मुश्किल है और हर इतिहासकार का मत इस पर अलग है, लेकिन आम तौर पर इसका केंद्र सत्रहवीं सदी माना जाता है जो की सोलहवीं से शुरू

हुई और अठारहवी में स्थापित हुई । इस वैज्ञानिक बदलाव को एक क्रांति के रूप में लेने में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक बहस को जन्म दिया जो आज भी जारी है| अनेक इतिहासकारों का मानना है की यह अवधारणा बनाना कि आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र में एक ऐसी क्रांति उत्पन्न हुई जिसने अतीत को बिलकुल पीछे छोड़ दिया, गलत होगा। हालांकि इस बात से सब सहमति रखते हैं की आधुनिक विज्ञान का उदय पुनर्जागरण, धर्मसुधार, व्यापारिक उन्नति एवं पूंजीवाद के विकास के दौरान ही हुआ| परन्तु इन सब सामाजिक परिवर्तनों और विज्ञान की नई खोजों में क्या सम्बन्ध है यह निर्धारित कर पाना कठिन है| इसी प्रकार से क्रांति की सटीक प्रकृति, उसका मूल एवं कारण और परिणाम स्पष्ट रूप से बता पाना कठिन होगा|

विज्ञान के इतिहासकारों का मानना है की वैज्ञानिक क्रांति स्वतः प्रेरित थी| जो इतिहासकार सातत्य सिधांत (continuist) में आस्था रखते है, उनके अनुसार ऐसी कोई क्रान्ति नहीं हुई, बल्कि प्राचीन और मध्य काल से वैज्ञानिक विकास की जो धारा चली थी वही अपनी सहज गति से आगे बढती रही। वर्तमान में इस 'continuist' वैज्ञानिक विकास की दृष्टि को पूरी तरह से सही नहीं ठहराया जा सकता परन्तु यह भी नकारा नही जा सकता की मध्ययुगीन प्राकृतिक दर्शन ने वैज्ञानिक क्रांति को नींव प्रदान की| वे उस समय में हुई ऐतिहासिक घटनाओं का सम्बन्ध विज्ञान से जोड़ने के पक्ष में नहीं हैं| दूसरी विचारधारा के अनुसार यह क्रांति धर्म निरपेक्षता से प्रेरित थी|

कुछ इतिहासकार जैसे एच. बटरफील्ड, ऐ. कैस्लेर एवं ऐ. कोयरे के अनुसार विज्ञान की प्रगति में व्यक्तिगत प्रतिभा का नतीजा है| बटरफील्ड ने वैज्ञानिक क्रांति के संधर्भ में व्यक्तिगत व्यक्तित्व को महत्व दिया है| उनके अनुसार पुरानी परम्परागत सोच व आदतों को तोड़ना, लालन–पालन के समय से सुनती हुई बातें व व्यावहारिक अनुभव का त्याग करना बहुत कठिन कार्य रहा होगा इसलिए वैज्ञानिक क्रांति की सही व्याख्या कर पाना कठिन है|

कोयरे ने इस क्रांति का पूरा दायित्व गैलेलियो को ही सौंपा| ऐ. कैस्लेर ने व्यक्तिगत प्रतिभा, नई सोच एवं गलतियाँ करते हुए सफलता प्राप्त करने वालों को इस आधुनिक बिज्ञान का श्रेय दिया| इन सब ने अंतर्दृष्टि को ही एक महत्वपूर्ण स्थान दिया|

चार्ल्स वेबस्टर के अनुसार विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति को अन्य घटनाओं, जैसे प्रमुख राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक व बौद्धिक आंदोलनों से जोड़ना आवश्यक है, अन्यथा वह एक 'सीमित इतिहास' होगा|

क्राम्बी और क्लेगेट के अनुसार विज्ञान का विकास धीरे–धीरे प्रगति के पथ पर बढ़ा और नये विचारों के संस्थापक पुराने दार्शनिकों के चिंतन के ही फलस्वरूप आगे बढ़ पाए थे| उन्होंने अरस्तु को विज्ञान की तरक्की में एक रोड़ा नहीं बल्कि एक सफल सूत्रधार माना|

1930 के दशक में मार्क्सवादी और नव–मार्क्सवादी लेखन कार्य में विज्ञान की सामाजिक जांच करने की कोशिश की| इतिहासकार जैसे बोरिस हेसन का मानना है की आधुनिक विज्ञान का विकास नये बुर्जुआ वर्ग की आवश्यकताओं को पूरा करना के लिए हुआ| एडगर ज़िल्सेल के अनुसार वैज्ञानिकों, चित्रकारों और शिल्पकारों के बीच वर्गों की सीमा पुनर्जागरण काल में मिट गयी और इन सब के संयोगवश आधुनिक विज्ञान का उदय हो पाया| फ़्रेडरिक एंगेल्स का यह मानना है की समाज की एक तकनीकी

आवश्यकता का विज्ञान की प्रगति पर उतना प्रभाव होता है जितना दस विश्विद्यालय भी नही डाल सकते| क्रिस्टोफर हिल ने हार्वे के विचोरों में बदलाव (हार्वे ने पहले शरीर में प्रमुख स्थान ह्रदय को दिया था पर बाद में रुधिर को महत्व दे दिया) का अध्यन करके यह बताया कि "हमें किसी विचारक के विचारों को उसके सामाजिक वातावरण से अलग करके नही देखने चाहियें"| इससे स्पष्ठ रूप से पता चलता है कि विज्ञान को किसी व्यक्ति की प्रतिभा से जोड़ने में क्या कठिनाई सामने आती है|

यह सब इतिहासकारों में चर्चा का विषय है और विवादित मुद्दा है| व्याख्या के इस तरह के लचीलेपन से यह स्पष्ट रूप से इंगित होता है कि वैज्ञानिक क्रांति मुख्य रूप से एक इतिहासकार का वैचारिक वर्ग है। वैज्ञानिक क्रांति उन्नीसवीं सदी से पहले दैनिक जीवन पर खास असर नहीं कर पायी| हम यह कह सकते हैं कि सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में विज्ञान के क्षेत्र में हुई क्रांति मुख्य रूप से एक बौद्धिक प्रतिक्रिया थी|

3.7 वैज्ञानिक क्रांति के कुछ दूरगामी परिणाम

- एक वैज्ञानिक समुदाय का जन्म हुआ जिनका प्राथमिक लक्ष्य था ज्ञान का विस्तार करना| फ्रेंच एकेडमी ऑफ साइंसेज और रॉयल सोसाइटी ऑफ लंदन जैसी संस्थाओं की स्थापना हुई जिनका उद्देश्य था वैज्ञानिक विचारों को बढ़ावा देना।
- एक आधुनिक वैज्ञानिक पद्दति का विकास हुआ जो की सैद्धांतिक और प्रायोगिक प्रणाली पर आधारित थी और जिसने पारंपरिक और स्थापित स्रोतों या प्राचीन ग्रंथों के आधार पर अपने निष्कर्ष देने को माना किया| समाज पर धर्म के प्रभुत्व समाप्त होता हुआ नजर आया। आगे चलके इस तर्कसंगिक सोच ने ही प्रबोधन युग या ज्ञानोदय युग (Enlightenment) के लिए पृष्ठभूमि प्रदान करी| प्रबोधन युग में सामाजिक और राजनीतिक जीवन में धर्म और पदानुक्रम केन्द्रीयता को विस्थापित करने का प्रयास किया गया जिसमे वॉल्टेयर, एडम फर्ग्यूसन, एडम स्मिथ, डेविड हयूम, क्रिस्चियन वोल्फ, इम्मानुअल कांत, मर्चेसे दी बच्कारियाइन जैसे महान व्यक्तियों का विशेष योगदान रहा|

3.8 सारांश

मध्य युग (500—1350 ईस्वी) वैज्ञानिक ज्ञान के कैनन ने थोड़े ही परिवर्तन का अनुभव किया, और कैथोलिक चर्च ने प्राचीन यूनानी और रोमन की शिक्षाओं पर आधारित मान्यताओं की एक प्रणाली को स्वीकृति दी और सदियों के लिए धार्मिक सिद्धांत में शामिल किया। इस अवधि के दौरान वैज्ञानिक जांचो और प्रयोग का प्रचलन ज्यादा नहीं था। विज्ञान के छात्र प्राचीन कथित अधिकारियों के कार्यो को पढ़ते थे और उनके शब्दों को सच के रूप में स्वीकार करते थे।

हालांकि, पुनर्जागरण के दौरान यह सैद्धांतिक निष्क्रियता बदलने लगी और प्राकृतिक दुनिया को धर्म निरपेक्ष तरीकों से समझने के लिए प्रयास होने लगा| नये वैज्ञानिक तथ्य सामने आये जो की स्वीकारित सत्य के साथ मेल नहीं खाते थे और इन निष्कर्षो ने उन्हें दुनिया के अध्ययन के लिए प्रेरित किया। निकोलस कोपरनिकस ने आकाशीय पिंडों की जांच करके पुराने भू सिद्धांत जिसमे पृथ्वी सौर मंडल का केंद्र बताया गया उसे खारिज कर दिया गया और एक सूर्य केंद्रीय सिद्धांत की स्थापना की के साथ बदल दिया जिसमें पृथ्वी बस सूरज की परिक्रमा ग्रहों के एक नंबर से एक था। प्रारंभिक सत्रहवी

शताब्दी के दौरान गणित, बीजगणित, त्रिकोणमिति, ज्यामिति के क्षेत्र में अग्रिम विकास हुआ। इस वैज्ञानिक प्रगति को आगे बढ़ाते हुए रेने देकार्त और गैलीलियो गैलीली ने भौतिकी के क्षेत्र में नये नियमों की ख़ोज की। जीव विज्ञान की प्रगति से मानव शरीर के रहस्यों को सुलझाया जा सका। सर आइजैक न्यूटन ने केपलर के ग्रहों की गति के नियमों और गैलिलियो के नियमों को एकीकृत कर विश्वसंबंदी गुरुत्वाकर्षण का नीयम दिया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है की इस पूरे कार्यकाल में यूरोप में सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक आन्दोलन साथ–साथ चल रहे थे जिनका आपसी सम्बन्ध था की नहीं यह कह पाना कठिन होगा। हालांकि, यह सत्य है की इन सब अन्दलोनों के साथ ही विज्ञान प्रगति की ओर बढ़ा।जैसा की आप को ज्ञात हो चुका है की इस वैज्ञानिक बदलाव को क्रांति के रूप में समझने पर कई विवाद उठे हैं, इसलिए एक सुनिश्ति निष्कर्ष पर पहुच पाना मुश्किल होगा। अतरू हम विज्ञान के क्षेत्र में हुए इस परिवर्तन को क्रांति माने या न माने, इस बात को नकारा नहीं जा सकता की इस वैज्ञानिक बदलाव ने लोगों के विचारों और सृजनात्मकता को उन्मुक्त बनाया।

3.9 तकनीकी शब्दावली

पुनर्जागरण: मध्यकाल में यूरोप में हुए सांस्कृतिक आन्दोलन

मानवतावाद : पुनर्जागरण से जुड़ा मानव मूल्यों, नैतिकता, न्याय एवं धर्म निरपेक्ष पर केन्द्रित आन्दोलन

धर्म–सुधारक आन्दोलन: सोलहवी शताब्दी का वह आन्दोलन जिसने चर्च के धार्मिक सिधान्तों का खंडन हुआ और प्रोटोस्टेंट धर्म का उदय हुआ

प्रति–धर्मसुधार आन्दोलन: धर्म–सुधारक विरोधी आन्दोलन जिसका उदेश्य था चर्च की पवित्रता और आदर्शों को पुनरूस्थापित करना

सर्फ़डम: मध्य युगी यूरोप में कृषि दासत्व की प्रथा

3.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 3.3

(1) देखिये 3.3.1 और 3.3.2

(2) देखिये 3.3.2

इकाई 3.4

(1) देखिये 3.4.1, 3.4.3, 3.4.4, 3.4.6, 3.4.7 और 3.4.15

(2) देखिये 3.4.2 और 3.4.9

3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- Anderson, Bonnie S. and Judith P.Zinsser, A History of their Own: Women in Europe from Pre&History to the Present, Vol. 2, Revised Ed. , Oxford University Press, 2000.
- Butterfield, Herbert.] The Origins of Modern Science: 1300&1800, G. Bell and Sons Ltd., 1968.
- Crombie, Alistair.Cameron. , The History of Science from Augustine to Galileo, Falcon Press Limited, London, 1952.
- Henry, John, The Scientific Revolution and the Origin of Modern Science, 2nd Edition, Palgrave, 2002.
- Hill, Christopher., William Harvey and the Idea of Monarchy, Past and Present, No.27, April, 1964.
- Kearney, Hugh. F.(ed.), Origins of the Scientific Revolution, Longmans, London, 1966.

- Koestler, A. , The Sleepwalkers: A History of Man's Changing Vision of the Universe, Macmillian, 1968.
- Osler, Margaret J. (ed.) Rethinking the scientific Revolution, Cambridge University Press, 2000.
- Shapin, Steven, The Scientific Revolution, The University of Chicago Press, London, 1996.
- Webster, Charles. The authorship and significance of Macaria, Past and Present, No. 56, Aug, 1972.
- गुप्ता, पार्थसारथी, (मक.), आधुनिक पश्चिम का उदय , हिंदी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2000.

3.12 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Sherman, Dennis, (ed.) Western Civilization: Images and Interpretations, Vol. II: Since 1660, 3rd Edition, McGraw&Hill, Inc., US, 1991.
- Themas, Keith. Religion and Decline of Magic, Penguin Book,] London, 1971.
- Wernham, R.B., (ed.), The New Cambridge Modern History, Vol. III, Cambridge University Press, Britain, 1968.

3.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. आप किस प्रकार कह सकते हैं की वैज्ञानिक क्रांति ने पुरानी विचारधाराओं को बदल दिया?
2. आपके अनुसार वैज्ञानिक क्रांति ने किन–किन कारणों के परिणामस्वरूप जन्म लिया?
3. क्या विज्ञान के क्षेत्र में हुए उपरोक्त लिखे परिवर्तनों को क्रांति के रूप में देखा जा सकता है? अपने विचार व्यक्त कीजिये|

इकाई एक: यूरोपीय निरंकुश राष्ट्रीय राज्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 निरंकुशवाद की विशेषताएं

1.4 नवीन निरंकुश राजतंत्रों के उदय के कारण

1.5 प्रमुख निरंकुश राष्ट्र–राज्यों का उदय

1.5.1 इंग्लैण्ड

1.5.2 फ्रांस

1.5.3 स्पेन

1.5.4 रूस

1.5.5 प्रशा

1.6 समीक्षा

1.7 निरंकुशता का पतन

1.8 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1.9 सारांश

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय राज्यों का उत्कर्ष आधुनिक युग की एक बहुत बड़ी विशेषता है। आधुनिक सन्दर्भ में राष्ट्रीयता यूरोप की ही देन है, किन्तु यूरोप में यह राष्ट्रीयता लम्बे संघर्ष (मध्यकालीन प्रवृत्तियों) के फलस्वरूप प्राप्त हुई। यूरोपीय मध्ययुग में सर्वत्र सामन्तवाद का वर्चस्च था। सामन्त, राजा की ही तरह अनेक शक्तियों का उपयोग करते हुए स्वयं को लगभग स्वतंत्र मानते थे। किन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी में इस व्यवस्था के विरूद्ध घोर प्रतिक्रिया हुई। इसका एक प्रमुख कारण था, पन्द्रहवी–सोलहवीं शताब्दी में राष्ट्रीयता की भावना का उदय। देश–प्रेम एवं देश–भक्ति की भावना ने मध्य युग का अन्त कर आधुनिक युग की घोषणा की। इसने सामंतकाल की अत्यधिक अव्यवस्था व अराजकता को समाप्त कर दिया। सामन्तवाद को नष्ट करने के साथ–साथ राष्ट्र–राज्यों ने आर्थिक विकास में बड़ा योग दिया।

उत्पादन के लिए सुधरे हुए तरीकों का इस्तेमाल हुआ और तरीकों में सुधार हुए। राष्ट्रीय राज्यों के उदय के कारण राष्ट्रीय सीमाएं और अधिक तर्क संगत हो गयी। राष्ट्रीय राज्य एक संस्कृति के व्यक्तियों को संगठित करने में बहुत सहायक सिद्ध हुए। अपने राष्ट्र के प्रति निष्ठा का विकास हुआ।

1589 ई0 से 1715 ई0 के मध्य नये एवं सबल राजतंत्रीय राष्ट्रीय राज्यों का उत्थान तेजी से हो रहा था। इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्पेन, आदि पश्चिमी यूरोपीय राष्ट्रों में राजनीतिक संगठन, राष्ट्रीय एकता, देशभक्ति तथा सुदृढ़ राजतंत्रों की प्रगति हो रही थी। परन्तु मध्य, दक्षिण एवं पूर्वी यूरोप के राज्य अभी भी उतने संगठित एवं सशक्त न हो पाए जितने पश्चिमी यूरोप के राष्ट्र। ये राष्ट्र राजनीतिक अनैक्यता, अराजकता तथा अविकसित व्यवस्थाओं के कारण असम्बद्ध राज्य बने हुए थे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम यूरोप में नवीन निरंकुश राज्यों के उदय एवं उसके कारणों की चर्चा करेंगें।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1–निरंकुश राज्य का अर्थ एवं उसकी विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

2–इस इकाई के अध्ययन से हम निरंकुश राज्यों के उदय के कारणों से परिचित हो पायेंगे।

3–यूरोप में नये निरंकुश राज्यों एवं उनके शासकों के कार्य एवं योगदान जान सकेंगे।

4–नवीन राष्ट्रीय राज्यों की सीमाओं एवं इसकी प्रगति को समझ पायेंगें।

1.3 निरंकुशवाद की विशेषताएं

1–राजा ही सर्वोच्च होता है। वह सेना तथा अन्य बड़े–बड़े अफसरों की सहायता से शासन कार्य चलाता है। किन्तु उस पर किसी का अंकुश नहीं होता है। राजा ही अन्तिम रूप से कानून का निर्माण करने वाला होता है।

2–सेना निरंकुश राज्य की मूलभूत विशेषता है।

3–नौकरी–पेशा वर्ग की स्थापना शासकों द्वारा की गयी। इस वर्ग में दो प्रकार के पद थे – (क) प्रशासनिक, (ख) सैनिक, कुछ देशों में नौकरी पेशा वर्ग के सदस्य कुलीन न होकर साधारण जनता में से भी लिए जाते थे, ताकि वे राजा का विरोध न कर सकें

4–निरंकुशवाद की एक विशेषता वाणिज्यवाद भी थी, वाणिज्यवाद एक प्रकार का आर्थिक युद्ध था, जिसमें एक राज्य स्वयं आत्मनिर्भर होकर, दूसरे देशों को अपने ऊपर आर्थिक रूप से निर्भर होने के लिए प्रेरित करता था।

1.4 यूरोपीय नवीन निरंकुश राजतंत्रों के उदय के कारण

यूरोप में नवीन निरंकुश राज्यों के उदय के कई प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कारण हैं किन्तु तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। पहला सामन्तवाद का पतन, दूसरा धार्मिक उथल पुथल एवं चर्च की शक्ति का ह्रास और तीसरा व्यापारिक उन्नति एवं नये मध्यम वर्ग का उदय।

मध्ययुगीन यूरोप की व्यवस्था सामन्तों पर टिकी थी। सामन्तों ने धीरे–धीरे शक्ति में वृद्धि करते हुए राजाओं जैसा व्यवहार आरम्भ कर दिया। ये सामन्तों ने अपने निवास को दुर्गीकृत करते हुए नियमित सेना के सहारे कृषकों का शोषण करते हुए विलासिता का जीवन व्यतीत कर रहे थे। यूरोप की इस समान्तवादी व्यवस्था से कृषकों एवं श्रमिकों की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती जा रही थी। सामन्तों के निरन्तर युद्धों एवं लगान की बढ़ती मात्रा से प्रजा का जीवन कष्टमय था। इन सामन्तों ने राजाओं की शक्ति को भी सीमित कर रखा था। किन्तु यूरोप में नवीन विचारोंके प्रस्फुटन, बारूदों एवं तोपों के प्रयोग तथा सैन्य क्षेत्र में प्रगति ने राजाओं को सामन्तों को नष्ट करने के लिये प्रेरित किया तथा प्रजा एवं किसानों ने अपनी हीन स्थिति का कारण सामन्तों का मानते हुए राजाओं का सहयोग किया। यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों अथवा देशों में सामन्तवाद का पतन अलग–अलग समय पर हुआ, किन्तु निःसन्देह सामन्तों के पतन ने राजाओं की शाक्ति में अभूतपूर्व वृद्धि की।

चौदहवीं सदी में यूरोप में बारूद के आविष्कार एवं तद्जनित बारूद के प्रयोग के नये साधनों (बन्दूकों, तोपों एवं गोलों के निर्माण) ने युद्ध प्रणाली में आमूल परिवर्तन कर दिया। इन नवीन साधनों ने ही सामन्तों की शक्ति क्षीण करते हुए उनके दुर्गो को व्यर्थ सिद्ध किया। तोपों एवं बन्दूकों के गोलों के सामने सामन्तों के दुर्ग धराशायी हो गये और सामन्तों का पतन सुनिश्चित हो गया। सामन्तों के पतन ने राजाओं की शक्ति को बढ़ाया अब ये राजा अपनी बढ़ी सैनिक शक्ति एवं मध्यम वर्ग के सहयोग के बल पर सुदृढ़ एवं केन्द्रित तथा सार्वभौम सरकारें कायम कर ली।

व्यापारिक क्रांति ने निरंकुश राजतंत्र के उदय में महती भूमिका निभाई। वाणिज्यवादी नीतियों के उपयोग ने राजाओं को प्रचुर धनराशि प्रदान की, जिसका प्रयोग वे सेना को संगठित करने तथा अपनी राजनीतिक सत्ता के विस्तार के लिए कर सकते थे। व्यापार के विस्तार ने भी सुदृढ़ सरकार की अनिवार्यता को बढ़ावा दिया। व्यापार–वाणिज्य की उन्नति के साथ–साथ मध्यम वर्ग की सामाजिक–आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती गयी एवं मध्यम वर्ग ने अपने व्यापार–वाणिज्य के उत्थान तथा सुरक्षा हेतु सबल राजतंत्र के स्थापना में बड़ा सक्रिय सहयोग दिया। मध्यम वर्ग ने सामन्तो के विरूद्ध राजतंत्रों की बड़ी सेवाएं की एवं राष्ट्रीयता की भावना का सृजन किया। इसके बदले में राजाओं ने व्यापार–वाणिज्य को संरक्षण प्रदान किया।

मध्ययुगीन धर्मयुद्धों ने सामन्त–तन्त्र को दुर्बल कर राजाओं की शक्ति को बढ़ाया। कुछ यूरोपीय देशों में प्रोटेस्टेट आन्दोलन ने राजकीय सत्ता के विकास में सहयोग किया। इसने कैथोलिक चर्च की एकता को भंग कर दिया, शासकों के ऊपर पोप की प्रमुखता को समाप्त कर दिया और राष्ट्रीयता की भावना को बल दिया।

मध्ययुगीन धार्मिक अव्यवस्था चर्च में व्याप्त कुरीतियों एवं पादरियों के नैतिक पतन के विरूद्ध युरोप में धार्मिक उथल पुथल शुरू हुई। यूरोपीय जनता के समस्त जीवन पर चर्च एवं पोप का नियन्त्रण था। पोप एवं चर्च की इस शक्ति के कारण ही राजा धर्मभीरू अथवा पोप का आदेश मानने के लिये प्रतिबद्ध था। किन्तु जब यूरोप में धर्म सुधार आन्दोलन से ईसाई एकता टूटने लगी तो राजाओं ने चर्च एवं पोप के चंगुल से छूटने के लिये धर्म सुधारकों का साथ दिया। फलतः यूरोपीय ईसाई एकता टूट गयी एवं अनेक नवीन सम्प्रदायों ने जन्म लिया। आने वाले कई वर्षो तक इन नवीन सम्प्रदायों (प्रोटेस्टेंट) एवं कैथोलिकों के मध्य संघर्ष होता रहा। इस धार्मिक संघर्ष का लाभ प्रत्यक्षतः राजतन्त्र को प्राप्त हुआ। पोप की शक्ति कमजोर हुई तथा राजाओं की शक्ति का विस्तार तथा राष्ट्रीयता की भावना को बल मिला।

राष्ट्रीयता का उत्थान राजतंत्रों के उत्कर्ष का एक अन्य कारण था। धर्म सुधार ने राष्ट्रीयता की भावना को जागत किया। सभ्यता पहले धर्म–प्रधान थी, अब वह राष्ट्र–प्रधान बन गयी। मठों के टूटने से राष्ट्रीय राज्यों की आय तथा शक्ति में वृद्धि हुई। निरंकुश राजतंत्र के विकास में राज्य के दैवीय उत्पत्ति के सिद्धान्त ने बड़ा योगदान दिया।

पुनरूत्थान एवं धर्म सुधार काल के कुछ विद्वान लेखकों ने भी राजाओं के हाथों को सुदृढ़ करने में सहयोग दिया। इटालियन लेखक मैकिया वेली फ्रांसीसी लेखक बोडिन और अंग्रेज लेखक हाब्स ने क्रमशः दी प्रिंस, दी स्टेट, और लेवियाथन नामक पुस्तके लिखीं। इन लेखकों ने शक्तिशाली निरंकुश राजतंत्र का पूर्ण समर्थन किया।

1.5 प्रमुख यूरोपीय निरंकुश राष्ट्रीय राज्य

1.5.1 इंग्लैण्ड

इंग्लिश चैनल द्वारा विभाजित यूरोप महाद्वीप से अलग द्वीप समूह को हम ग्रेट ब्रिटेन कहते हैं। वास्तव में यहां दो बड़े द्वीप हैं – एक द्वीप जो दूसरे बड़े द्वीप से अलग है, उसे हम आयर लैण्ड कहते हैं तथा दूसरा बड़ा द्वीप जिस पर वेल्स, स्काटलैण्ड एवं इंग्लैण्ड तीन अलग–अलग राज्य थे। इनकी भाषाएं परम्पराएं और शासन तन्त्र भी अलग थे। इनमें इंग्लैण्ड सबसे सक्षम और सम्भावना सम्पन्न देश था।

राष्ट्रीय एकता स्थापित करने वाला पहला राज्य इंग्लैण्ड था। इंग्लैण्ड में राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रीय सरकार की स्थापना का कार्य पश्चिमी यूरोप के अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक तेजी से हुआ। सन् 1337 से 1453 तक फ्रांस और इंग्लैण्ड के बीच हुए दीर्घकालीन सामन्तीय एवं राजवंशीय युद्धों (शतवर्षीय युद्ध) के परिणाम बड़े महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। शतवर्षीय युद्ध की समाप्ति के तुरन्त बाद ही इंग्लैण्ड में व्यापक सामंतीय युद्ध का प्रारम्भ हुआ। इसमें प्रायः सभी सामन्तों ने भाग लिया। यह सामन्तीय युद्ध ''गुलाबों का युद्ध'' (1455–1485) कहलाता है, जिसमें यार्क राजवंश (श्वेत गुलाब) एवं लंकास्टर राजवंश (लाल गुलाब) के परस्पर विरोधी सामन्तों एवं समर्थकों के बीच दीर्घकालीन ध्वंसात्मक युद्ध हुआ। यह युद्ध 1485 में बासवर्थ में रिचर्ड–।।। की पराजय एवं मृत्यु तथा हेनरी ट्यूडर की विजय से समाप्त हुआ।

हेनरी ट्यूडर (हेनरी सप्तम्) के सिंहासन पर बैठने के साथ ही एक नये राजवंश ''ट्यूडर वंश'' (1485–1603 ई0) का उदय हुआ। इसी वंश को इंग्लैण्ड में राष्ट्रीय राज्य के रूप में निर्मित करने का श्रेय दिया जाता है। इंग्लैण्ड के इतिहास में एक नये युग की शुरूआत हुई। गद्दी पर बैठने के बाद हेनरी सप्तम ने गृह कलह को समाप्त करने एवं शान्ति व्यवस्था की स्थापना हेतु यार्क वंश की उत्तराधिकारी राजकुमारी एलिजाबेथ के साथ विवाह कर लिया, इस विवाह से देश में शान्ति, सुरक्षा एवं सुदृढ़ शासन व्यवस्था की स्थापना हुई। हेनरी सप्तम् (1485–1509 ई0) ने सर्वप्रथम देश में शान्ति–व्यवस्था एवं सुरक्षा की स्थापना के उद्देश्य से शक्शिाली राजतंत्र स्थापित करने की चेष्टा की। गुलाबों के युद्ध के परिणामस्वरूप हेनरी सप्तम् को दो बड़े लाभ हुए –

1–इस युद्ध के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड में अनेक शक्तिशाली तथा प्रभावशाली सामन्तगण मारे गये, या अशक्त हो गये। अतः राजा ने उनके अधिकारों को कुचल दिया एवं उनकी जागीरे जब्त कर ली।

2– इस युद्ध ने एक नये वर्ग अर्थात् मध्यवर्ग को जन्म दिया, जिसने अपने हितों के लिए राजा का साथ दिया। इसी जन समर्थन के आधार पर ट्यूडर राजाओं ने सोलहवीं शताब्दी में निरंकुश राजतन्त्र स्थापित किया। उसने विभिन्न अधिनियमों के द्वारा सामन्तों का दमन किया, उनसे सैन्य अधिकार छीन लिये तथा सामन्तों के स्थान पर मध्य वर्ग के लोगों को ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। इस प्रकार उसने इंग्लैण्ड में सामन्त तन्त्र को हमेशा के लिए समाप्त करके निरंकुशता को परिपुष्ट किया।

हेनरी सप्तम ने 1520 में अपनी पुत्री मारग्रेट का विवाह स्काटलैण्ड के राजा जेम्स–चतुर्थ से कर दिया। इस विवाह का सुदूरगामी प्रभाव एक सदी बाद दिखा जब 1603 में स्काटलैण्ड एवं इंग्लैण्ड का एकीकरण हो गया व इंग्लैण्ड में स्टुअर्ट राजवंश का शासन आरम्भ हुआ।

हेनरी सप्तम् के बाद हेनरी अष्टम् (1509–1547 ई0) के शासनकाल में इंग्लैण्ड में धर्म सुधार आन्दोलन हुआ, जिसके महत्वपूर्ण संवैधानिक एवं धार्मिक प्रभाव पड़े। इस आन्दोलन ने राजा और पार्लियामेन्ट को देश के धार्मिक जीवन पर नियन्त्रण का अधिकार दे दिया। इसके कुछ वर्षो बाद मठों एवं समर्पित पूजागृहों के विसर्जन ने राजा को धन एवं समर्थन दोनो ही प्रदान किये। ट्यूडर वंश की अन्तिम शासिका ने भी राजा की शक्ति में वृद्धि की। एलिजाबेथ का शासन काल इंग्लैण्ड के लिये स्वर्ण युग था क्योंकि उसके समय में ही इंग्लैण्ड में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक उन्नति हुई। जनता सुखी और सम्पन्न थी। इंग्लैण्ड को विदेशी युद्धों से शान्ति मिली और अन्तराष्ट्रीय व्यापार वाणिज्य से इंग्लैण्ड आर्थिक रूप से समृद्ध हुआ। उसने इंग्लैण्ड को समुद्रों का स्वामी और संसार का सबसे प्रमुख व्यापारिक राष्ट्र बनाने में सहायता दी।

सोलहवीं शताब्दी में राष्ट्रीय शक्तियों के प्रादुर्भाव और विकास में सबसे अधिक और स्पष्ट सफलता इंग्लैण्ड के ट्यूडर वंश को मिली। एलिजाबेथ ने पार्लियामेट ने कहा था–''यद्यपि ईश्वर ने मुझे इतना ऊँचा उठाया है फिर भी मैं इसे अपना गौरव मानती हूँ कि मैंने आपके स्नेह के सहारे शासन किया है। इसीलिये मैं इस बात से इतनी खुश नहीं हूँ कि ईश्वर ने मुझे रानी बनाया है। मुझे तो इसकी खुशी है कि मैं एक कृतज्ञ प्रजा की रानी हूँ।'' इसी रास्ते पर संभल कर चलते शासक अपने को दृढ़ बनाये रख सकते थे।

ट्यूडर शासकों के शासनकाल में संसद सशक्त राजाओं के प्रभाव में रही। ट्यूडर काल में इंग्लैण्ड की व्यापारिक प्रगति तो हुई ही, दुनिया के देशों में उसका महत्व भी बढ़ा। अंग्रेजों को अपने देश पर गर्व था और ट्यूडर लोग दुनिया में इंग्लैण्ड की शक्ति और गौरव के प्रतीक थे। ट्यूडर शासनकाल में राजाओं ने बड़ी बुद्धिमता एवं समन्वय की दृष्टि अपनाते हुए पोप से स्वतन्त्र होकर संसद की सहायता से अनेक महत्वपूर्ण सुधार किये। इन्होंने संसद से टकराव की जगह संसद की सहायता से तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुरूप शासन में सुधार किया। ट्यूडर सम्राटों ने संसद के द्वारा जनता पर शासन किया तथा जनता को अपने पक्ष में रखा, परन्तु स्टुअर्ट वंश (1603–1719) के शासकों में यह सूझ–बूझ नहीं थी। फलतः राजा एवं संसद के मध्य संघर्ष एवं टकराव हुआ। मेरियट के मतानुसार – ''ट्यूडर सम्राटों के सुदृढ़ एवं अनुशासन पूर्ण प्रशासन के काल में इंग्लैण्ड की संसद को विश्राम और शक्ति संचय का अवसर प्राप्त हुआ। इसी के बल पर सत्रहवीं सदी में सम्राट के विरूद्ध अधिकार व सत्ता प्राप्त करने के लिये वैधानिक संघर्ष करने में संसद समर्थ हुई।'' परन्तु स्टुअर्ट शासनकाल (1603–1688 ई0) के अन्तिम शासक जेम्स द्वितीय के समय इंग्लैण्ड में रक्तहीन गौरवपूर्ण क्रांति (1688 ई0) हुई। जिसमें पार्लियामेन्ट की जीत हुई तथा वह अंग्रेज शासकों पर सर्वोच्च बन गयी। इस प्रकार लोकतंत्र ने निरंकुशता पर विजय पाना आरम्भ कर दिया।

1.5.2 फ्रांस

फ्रांस यूरोप का ऐसा प्रथम देश था, जिसमें सबसे पहले राजनीतिक एकता स्थापित हुई। फ्रांस के दो प्रसिद्ध राजवंशों वैलय राजवंश (1422–1589) एवं बूर्वो राजवंश (1589–1793) ने फ्रांस को एक राष्ट्रीय राज्य के रूप में परिवर्तित किया।

वैलय राजवंश के प्रमुख शासकों लुई ग्यारहवें, बारहवें एवं फ्रांसिस ने फ्रांस में निरंकुश राजसत्ता की स्थापना का सुदृढ़ प्रयास किया। इन शासकों ने विशेषतः लुई ग्यारहवें ने व्यावहारिक बुद्धि, कुशलता तथा सफल कूटनीति द्वारा सामंतों की शक्तियों एवं जागीरों को छीन लिया। साथ ही, उसने सामन्तीय न्यायालयों को समाप्त कर राजकीय न्यायालयों की प्रभुता कायम की। उसने चर्च पर भी अंकुश लगाया। लुई ने कई ऐसे कदम उठाये जिनमें फ्रांस शक्तिशाली बना। इन कदमों में उद्योग धन्धों के विकास हेतु संरक्षण प्रदान करना, जहाजों का निर्माण, बन्दरगाहों को विकसित करना, समस्त राज्य में एक सी मुद्रा, नाप–तौल कानून इत्यादि व्यवस्थाएं शामिल थी। फ्रांस के इतिहास में लुई ग्यारहवें का शासनकाल एक युगान्तकारी घटना समझी जाती है, क्योंकि उसने फ्रांसीसी राज्य की सीमाएं विस्तृत की एवं निरंकुश राजतंत्र तथा सुदृढ़ राष्ट्र की नींव डाली। जब लुई मरा तब फ्रांस का मानचित्र बहुत कुछ वैसा ही था, जैसा आज दिखायी पड़ता है। सोलहवीं शताब्दी में धार्मिक युद्ध से उत्पन्न अव्यवस्था ने निरंकुश राजतंत्र को और अधिक मान्यता, समर्थन एवं बल प्रदान किया।

फ्रांसिस की मृत्यु के पश्चात् (1559–89) के तीस वर्षो में यूरोप में धर्म सुधार आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप हो रहे धार्मिक परिवर्तन से फ्रांस के राष्ट्रीय एकता पर संकटों का बादल घिर आया। यूरोप में व्याप्त इस धार्मिक अशान्ति से फ्रांस अपने को बचा नहीं सका। फ्रांस के मध्यमवर्ग में प्रोटेस्टेंटो जिन्हें वहां ह्यूगनाट कहा जाता था, का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा था और धीरे–धीरे इनकी संख्या एवं शक्ति में अत्यधिक वृद्धि हो गयी, जिससे फ्रांस में धार्मिक युद्धों ने गृह युद्ध का रूप धारण कर लिया। फ्रांसिस की मृत्यु के पश्चात् 1559 से 1989 के बीच यह गृह कलह अपने चरम पर पहुंच गया तथा फ्रांस में तीन हेनरी (फ्रांस का राजा हेनरी–III, गीजा का ड्यूक हेनरी एवं नवारे का युवराज हेनरी) के मध्य शक्ति प्राप्त करने अथवा बनाये रखने का प्रयास किया जा रहा था, जहां गीजा का हेनरी कैथोलिकों का समर्थक एवं नेता था। वहीं प्रोटेस्टेन्टों का समर्थक एवं नेता नेवारे का हेनरी था। राजा हेनरी ने अपने शक्ति को बनाये रखने के लिये समय–समय पर दोनो हेनरियों की सहायता लेता रहा। अन्ततः नवारे के हेनरी को राजा हेनरी की मृत्यु 1589 के बाद फ्रांस की गद्दी मिली। नवारे का हेनरी फ्रांस के प्रसिद्ध बूर्वो राजवंश का संस्थापक एवं फ्रांस के प्रसिद्ध राजा हेनरी चतुर्थ के रूप में विख्यात हुआ।

नवारे का हेनरी जब हेनरी–चतुर्थ के नाम से फ्रांस की गद्दी पर बैठा तो अन्य कोई विकल्प न होने के कारण उसे स्वीकार तो किया गया किन्तु उसकी स्थिति बहुत डांवाडोल थी। उसे एक बुरा प्रोटेस्टेंट समझा जा रहा था क्योंकि वह कैथोलिक हो गया था। उसे एक बुरा कैथोलिक समझा जा रहा था क्योंकि वह प्रोटेस्टेंट लोगों के प्रति सहिष्णु था। किन्तु अपनी नुकीली दाढ़ी, चमकती आंखों, फुर्ती एवं तत्काल निर्णय लेने की आदत से वह शीघ्र ही लोकप्रिय होने लगा और जल्दी ही उसे गुड किंग हेनरी कहा जाने लगा।

हेनरी चतुर्थ (1589–1610) का उल्लेख फ्रांसीसी राजाओं के इतिहास में महान राजा के रूप में ही नहीं, लोकप्रिय राजा के रूप में भी होता है। उसने एक नये राजवंश की शुरूआत की जो दो सौ वर्षो तक फ्रांस पर शासन करता रहा। वह बूर्वो वंश का संस्थापक था, जिसने फ्रांस को ही नहीं यूरोप को भी सबसे शक्तिशाली राजा प्रदान किये। उसके सबसे महत्वपूर्ण कार्यो में एक था – राजाओं की शक्ति की प्रभुता को पुनः स्थापित करना।

हेनरी चतुर्थ के बाद 1617 ई0 में बालिग होने पर उसके पुत्र लुई तेरहवें ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली। लुई तेरहवें में प्रशासकीय क्षमता एंव योग्यता का अभाव था, किन्तु सौभाग्य से उसे कार्डिनल रिशलू नामक एक असाधारण व्यक्ति की अमूल्य सेवाएं प्राप्त थी, जिसे उसने 1624 ई0 में प्रधानमंत्री बनाया। वह मृत्यु पर्यन्त (1642 ई0) इस पद पर बना रहा। उसने लुई के सामने यह शपथ ली कि – ''मुझे जो भी अधिकार दिये जायेंगे उनका उपयोग मैं ह्यूगनटों और सामन्तों का दमन करने, प्रजा को अनुशासित एवं कर्तव्यपरायण बनाने

और राजपरिवारों में उचित स्थान दिलाने में करूँगा।'' योग्य और ओजस्वी रिशलू के अपनी सरकार के सम्बन्ध में दो लक्ष्य थे–

1– राजा को फ्रांस में सम्प्रभु बनाना।
2– फ्रांस को यूरोप में सर्वश्रेष्ठ बनाना।

रिशलू ने ऐसी तमाम सामन्तों की गढ़ियों को बर्बाद कर दिया जो राष्ट्र के लिए आवश्यक नही थी तथा चालबाजों को गुप्तचरों द्वारा ठिकाने लगा दिया। राजा की शक्ति का विरोध करने वाला दूसरा वर्ग काल्विनवादी प्रोस्टेन्टों का था, जिन्हें ''ह्यूगनाट'' कहा जाता था। रिशलू ने ह्यूगनाटों को दबा दिया। रिशलू ने एस्टेट्स जनरल की बैठकें बुलाने से इंकार कर दिया। इस बात से राजा मनमाना काम करने को स्वतंत्र हो गया। राजा कानून बनाने और उन्हें लागू करने लगा। वह कर लगाने और उन्हें खर्च करने लगा। इस तरह रिशलू निरंकुश राजतंत्र का प्रमुख निर्माता था।

रिशलू की मृत्यु के बाद अगले राजा लुई चौदहवें (1643–1715 ई0) की अल्प– वयस्कता के समय, कार्डिनल मेजारिन ने सन् 1661 तक फ्रांस का कार्यभार संभाला। उसने रिशलू की नीतियों को जारी रखा और जन विरोध (फ्रोंदे) के बावजूद लुई के निरंकुश राजतंत्र को दृढ़ किया। उसने विरोध को दबा दिया तथा राजनीतिक एवं वित्तीय मामलों में न्यायिक संस्था पार्लेमा के हस्तक्षेप के अधिकार को छीन लिया। इस तरह राजतंत्र शक्तिशाली हो गया। रिशलू एवं मेजारिन के कार्यो ने ही लुई चौदहवें के निरंकुश राजतंत्र को सम्भव बनाया।

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि फ्रांस में राष्ट्रीय एकता का विकास इंग्लैण्ड के राष्ट्रीय विकास से भिन्न तरीके से हुआ। फ्रांस की भौगोलिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि इस पर आसानी से आक्रमण न हो सके, क्योंकि यह चारो ओर से समुद्र द्वारा उस तरह नहीं सुरक्षित था, जैसे इंग्लैण्ड। इसी कारण शक्ति एवं अधिकार एक व्यक्ति को सौंपे गये न कि पार्लियामेंट को, जिससे शक्तिशाली राजा आपातकाल में तत्काल कार्यवाही कर सके। फ्रांस में राष्ट्रीय राज्य के उदय में बाधक सामन्तवर्ग एवं धार्मिक कलह थी। किन्तु राजा एवं उनके मन्त्रियों सल्ली, रिशलू, मेजारिन और कोल्वर्ट ने फ्रांस को एक निरंकुश राष्ट्रीय राज्य के रूप में परिवर्तित कर दिया।

लुई 16वें (1774–1793 ई0) के समय फ्रांसीसी क्रांति ने फ्रांस में निरंकुशता का अन्त किया। परन्तु तब तक फ्रांस एक शक्तिशाली राष्ट्र–राज्य बन चुका था।

1.5.3 स्पेन

पिरेनीज पहाड़ के दक्षिण में भूमध्य सागर, अटलांटिक सागर और पुर्तगाल से घिरा पठारी इलाका स्पेन है। स्पेन आधुनिक काल के प्रारम्भ में यूरोप के सबसे शक्शिाली एवं उन्नत देशों में से एक था। स्पेन का अतीत स्वर्णिम रहा, किन्तु यह अल्पकालीन ही रहा, क्योकि स्पेन की महानता के भौतिक स्त्रोत उस देश में नहीं थे। दीर्घकालीन एकीकरण के प्रयासों के पश्चात् सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में स्पेन में राष्ट्रीय राजतंत्र का उत्कर्ष सम्भव हुआ।

अरबों की जब शक्ति बढ़ी तो उत्तरी अफ्रीका विजय करते–करते वे स्पेन आये फिर फ्रांस बढ़ गये। फ्रांस से तो उन्हें जल्दी खदेड़ दिया गया किन्तु स्पेन में वे सदियों तक बने रहे। अरबों ने स्पेन में खूबसूरत नगर बसाए, मस्जिद बनवाई तथा इस्लाम का प्रसार किया। कालान्तर में इनकी शक्ति क्षीण होती गयी फलतः स्पेन में

इनका प्रभाव समाप्त हो गया। पन्द्रहवीं शताब्दी में स्पेन में चार विभाजित क्षेत्र दिखाई देते हैं। फ्रांसीसी सीमा के निकट नेवारे, पुर्तगाल की तरफ कास्तील, दक्षिण पूर्व में अरागान तथा दक्षिण में ग्रेनेडा। इन चार क्षेत्रों में कास्तील एवं अरागान प्रमुख राज्य थे, जबकि ग्रेनेडा में मुस्लिम मूरों का अधिकार था। इन चारों क्षेत्रों में शासन, परम्परा एवं सांस्कृतिक भिन्नता का चिन्ह स्पष्ट था। पुर्नजागरण के साथ यूरोप में भावात्मक स्तर पर राष्ट्रीयता की चेतना पनप रही थी, जिससे स्पेन भी अछूता नहीं था। पन्द्रहवीं शब्दाती में स्पेन के दो प्रमुख राज्यों कास्तील एवं अरागान के मध्य वैवाहिक सम्बन्ध (1469) ने स्पेन में राष्ट्रीय राज्य के उदय का मार्ग प्रशस्त किया। कास्तील की उत्तराधिकारी ईसाबेला एवं अरागान के उत्तराधिकारी फर्डिनेंड के वैवाहिक सम्बन्ध से कास्तील एवं अरागान का एकीकरण हो गया। 1492 में फर्डिनेंड एवं ईसाबेला की संयुक्त सेनाओं ने मूरों को पूर्णरूपेण परास्त करते हुए ग्रेनेडा पर अधिकार स्थापित कर लिया। ग्रेनेडा पर अधिकार के फलस्वरूप स्पेन को पूर्ण धार्मिक एवं राष्ट्रीय एकता प्राप्त हुई।

फर्डिनेंड एवं ईसाबेला की गृह नीति स्पष्टतः दो तत्वों पर निर्भर थी – पहली राज्य के समस्त राजनीतिक अधिकारों को अपने अधीन केन्द्रित करना तथा दूसरा सम्पूर्ण राज्य में धार्मिक एकता स्थापित करना। इन्होंने राजपद की गरिमा वृद्धि हेतु एक शक्तिशाली केन्द्रिय शासन स्थापित किया, उदण्ड एवं स्वतन्त्र सामन्तों को दबाकर राज्य में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित की एवं लुटेरों का दमन कर व्यापार व वाणिज्य तथा आवागमन के साधनों का विकास किया। फर्डिनेंड एवं ईसाबेला ने एक निरंकुश राज्य की स्थापना के लिये बड़े सामन्तों की शक्ति घटा दी, कास्तील की प्रतिनिधि सभा की महत्ता सीमित कर दी गयी, अमीरों के पेंशन एवं अनुदान समाप्त कर दिये तथा शक्ति से सभी वर्गो से कर वसूल किया जाने लगा। व्यापार एवं वाणिज्य को राजकीय संरक्षण दिया गया, जिससे मध्यम वर्ग राजतन्त्र का समर्थक हो गया।

फर्डिनेंड एवं ईसाबेला ने धार्मिक एकता के आधार पर सम्पूर्ण राज्य में राजनीतिक एकता स्थापित करने की नीति अपनाई। उन्होंने रोमन कैथोलिक चर्च एवं पोप के प्रति अगाध श्रद्धा एवं निष्ठा दिखाई जिससे पोप ने इनको 'कैथोलिक सम्राट' की उपाधि प्रदान की। वस्तुतः राजशक्ति की वृद्धि एवं पुष्टि हेतु इन्होंने चर्च को अपना मुख्य अस्त्र बनाया। राज्य के धर्म विरोधियों का पता लगाने, उन्हें दण्ड देने, नास्तिकता का दमन करने, कैथोलिक धर्म की रक्षा करने तथा राजा की शक्ति की वृद्धि हेतु 1480 मे इन्क्वीजीशन (Inquisition) नामक धार्मिक न्यायालय की स्थापना की, जिससे मूरों एवं यहूदियों का समूल नाश सम्भव हो सका।

यूरोप के मध्य स्पेन को महत्वपूर्ण स्थान दिलाने के लिये फर्डिनेंड ने अपनी पुत्रियों के विवाह का सफल उपयोग किया, इसने अपनी बड़ी पुत्री जोआना का विवाह पवित्र रोमन साम्राज्य के युवराज फिलिप से कर दिया, दूसरी पुत्री मेरिया की शादी पुर्तगाल के शासक से कर दी तथा छोटी पुत्री कैथरिन की शादी इंग्लैण्ड के युवराज आर्थर एवं आर्थर की मृत्यु के पश्चात् हेनरी अष्टम से कर दी। इस वैवाहिक सम्बन्ध से स्पेन का सम्बन्ध आस्ट्रिया, इंग्लैण्ड एवं पुर्तगाल से मधुर हो गया तथा देश के गौरव में अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

स्पेन के एकीकरण व राष्ट्रीयकरण के मार्ग में अन्तिम महत्वपूर्ण कदम सन् 1512 ई0 में उठाया गया, जब स्पेन ने फ्रांस को परास्त कर नैवारे पर अधिकार स्थापित कर लिया। ईसाबेला और फर्डिनेन्ड के संयुक्त प्रयासों के परिणामस्वरूप आधुनिक एवं शक्तिशाली स्पेन राष्ट्र का निर्माण संभव हुआ। किन्तु आने वाले समय में स्पेन के राजा अपनी राजवंशी महात्वाकांक्षाओं में फंस गये, जिसने अगली दो शताब्दियों तक थका देने वाले संघर्षो में स्पेन को व्यस्त रखा।

फर्डिनेंड एवं ईसाबेला ने यूरोपीय राजनीति में अपनी महत्वपूर्ण स्थिति बनाने के लिए अपना ध्यान वैदेशिक तथा औपनिवेशिक विस्तार की ओर आकृष्ट किया। कोलम्बस की खोज ने अमेरिका में वृहत्तर स्पेनिस साम्राज्य स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त किया। शीघ्र ही अमेरिका के अधिकांश भाग पर स्पेन का प्रभुत्व स्थापित हो गया। इन प्रदेशों में सोने–चाँदी की बहुलता थी। इस प्रकार स्पेन को एक ऐसा कल्पवृक्ष प्राप्त हुआ जिसने उसको आधुनिक काल के प्रारम्भ में यूरोप के सबसे शक्तिशाली एवं उन्नति देशों की श्रेणी में ला खड़ा करने में उल्लेखनीय योगदान दिया।

फर्डिनेन्ट एवं ईसाबेला ने राज्य के समस्त राजनीतिक अधिकारों को केन्द्रित करने तथा समस्त राज्य में धार्मिक एकता स्थापित करने की नीति अपनायी। उन्होंने राजपद की गौरव वृद्धि के लिए एक शक्तिशाली केन्द्रित शासन स्थापित किया। उदण्ड स्वतन्त्र सामन्तों को दबाकर राज्य में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित की एवं लुटेरों का दमन कर व्यापार वाणिज्य तथा आवागमन के साधनों में वृद्धि की।

यह उल्लेखनीय तथ्य है कि 14वीं एवं 15वीं शताब्दी में तुर्को के बढ़ते प्रभाव से आक्रान्त ईसाई जगत में जहाँ पूर्व में मुसलमानों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था और साम्राज्य की राजधानी वियना भी सुरक्षित नहीं थी, वहाँ पश्चिम में स्पेन के सैनिकों ने मुसलमानों के सदियों पुराने प्रभाव का अन्त कर दिया और ईसाई प्रभाव की पुर्नस्थापना की। कोई भी अन्य वस्तु स्पेनिस राजतन्त्र के लिए इससे बढ़कर गौरव और उन्नति नहीं ला सकती थी। पोप अलेक्जेण्डर षष्ठ ने फर्डिनेन्ड एवं ईसाबेला को कैथोलिक राजाओं की उपाधि प्रदान की।

फर्डिनेंड की मृत्यु के बाद उसकी बड़ी पुत्री का पुत्र चार्ल्स प्रथम (1516–1556 ई0) के नाम से स्पेन की गद्दी पर बैठा। 1519 ई0 में चार्ल्स–। पवित्र रोमन साम्राज्य का सम्राट चुना गया। पवित्र सम्राट के रूप में वह चार्ल्स पंचम कहलाया। उसने स्पेन के अतिरिक्त पवित्र रोमन साम्राज्य, नीदरलैण्ड्स, बर्गडी, नेपल्स, सिसली, सार्डीनिया, सम्पूर्ण स्पेनिश अमेरिका, फिलिपाइन्स और अफ्रीका के कुछ भागों पर शासन किया। निःसन्देह उसने दुनिया के सबसे बड़े भू–भाग पर शासन किया। चार्ल्स के शासनकाल में स्पेन अपने गौरव की पराकष्ठा पर पहुँचा। किन्तु यह पराकष्ठा स्थायी नहीं रह सकी।

चार्ल्स पंचम को सौभाग्य से जो दैत्याकार राज्य उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ वह फूलों की सेज नहीं अपितु कांटों से भरा ताज था, य़द्यपि उसमें समस्याओं से जूझने की क्षमता एवं इच्छा दोनो थी, किन्तु जीवन भर जूझने के बावजूद वह अपनी समस्याओं को घटा नहीं सका। अन्ततः उसने साम्राज्य का विभाजन कर स्वयं गद्दी छोड़ दी। स्पेन, नीदरलैण्ड, इटालियन राज्य एवं अमेरिकी साम्राज्य अपने पुत्र फिलिप तथा मध्य यूरोप का क्षेत्र अपने अनुज फर्डिनेंड को दे दिया। फिलिप की मृत्यु के बाद स्पेन लगातार पतनोन्मुख होता गया। फिलिपि–चतुर्थ के निःसन्तान मरने से स्पेन की गद्दी पर छिड़े उत्तराधिकार का लाभ फ्रांस के सम्राट लुई चौदहवें ने उठाया। उसने अपने वंश के आजू को स्पेन का शासक बनाया। इस प्रकार स्पेन में भी बूर्वों वंश की स्थापना हुई एवं स्पेन में चार्ल्स एवं फिलिप का राज वंश समाप्त हो गया।

स्पेन जिस तेजी से यूरोप के आसमान में चमका उसी तेजी से वह यूरोप से विलीन भी हो गया। वास्तविकता यह है कि स्पेन में महानता का आधार ही नहीं बना। किसी देश की वास्तविक महानता वहां की स्थायी आर्थिक उपलब्धियों पर निर्भर करती है। प्रकृति ने ही स्पेन को गरीब बनाया किन्तु वहां के निवासियों ने भी अपने कर्म से इस कमी को पूरी करने का प्रयास नहीं किया। ऐसा लगता है कि सोलहवीं शताब्दी में स्पेन यूरोप का सबसे शक्तिशाली देश हो गया किन्तु अचानक प्राप्त महानता के बोझ से ऐसा दबा कि इस भार से कभी भी मुक्त न हो सका और आज भी यूरोप का कमजोर एवं पिछड़ा देश बना हुआ है।

1.5.4 रूस

आज का रूस दुनिया का सबसे बड़ा देश है। केवल भूक्षेत्र की दृष्टि से ही नहीं अपितु शक्ति की दृष्टि से भी। आधुनिक काल का आरम्भ होने से पहले यही रूस मस्कोबी का छोटा सा राज्य था जो प्रायः मंगालों से त्रस्त रहता था। यूरोप व एशिया को विभाजित करने वाले यूराल पर्वत के पश्चिम में तथा पश्चिमी यूरोप से कटा हुआ यूरोप के सुदूर उत्तर पूर्व में स्थित यह राज्य प्रारम्भ में यूरोपीय राजनीति एवं संस्कृति में अत्यन्त हीन अथवा महत्वहीन समझा जाता था।

रूस में एरिक या रूरिक वंश के शासकों के पांच शताब्दियों के शासन के पश्चात् रूस का विस्तार एवं ईसाईकरण हुआ। किन्तु तेरहवीं सदी में एशिया के बर्बर मुगल तातारियों ने रूस पर भयंकर आक्रमण किये। मुगल तातारियों ने प्रायः एक सदी तक पश्चिमी रूस, तो दो सदियों तक पूर्वी रूस पर अपना अधिपत्य कायम रखा। अन्त में पन्द्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इवान महान (1462–1505) ने मुगल तातारियों को रूस से खदेड़ कर रूस को इनकी दासता से मुक्त किया। इवान महान ने अन्तिम रोमन सम्राट कान्स्टेन्टाइन ग्यारहवां की भतीजी के साथ शादी की और जार अथवा सम्पूर्ण रूस के सम्राट की पदवी धारण की। जार शाही की स्थापना के अतिरिक्त ईवान महान ने पश्चिमी योरप के देशों से घनिष्ठता बढ़ाने का प्रयास किया, साथ ही रूस में एक केन्द्रिय तथा शक्तिशाली जारशाही की स्थापना हेतु रूसी सामन्तों व रूढ़िवादी चर्च को अपने नियन्त्रण में कर लिया। इवान महान की भांति इवान चतुर्थ अथवा ईवान भयंकर (1533–1584) ने भी अपने दीर्घकालीन शासन में रूस के साम्राज्य विस्तार के साथ निरंकुश जार शाही की स्थापना एवं दृढ़ता का अथक प्रयास किया। निरंकुश एवं सुदृढ़ जार शाही की स्थापना के उद्देश्य से उसने रूसी रूढ़िवादी चर्च को कुस्तुतुनिया के धर्माध्यक्ष के नियन्त्रण से मुक्त कर अपने नियन्त्रण में कर लिया।

यद्यपि इवान महान एवं इवान भयंकर के शासन काल में रूसी जारशाही की शक्ति वृद्धि और रूसी सीमा की पर्याप्त वृद्धि हुई तथापि सास्कृतिक विकास में विशेष प्रगति न हो सकी। इवान भयंकर की मृत्यु के बाद 30 वर्षो तक रूस में अराजकता एवं गृह युद्ध की स्थिति रही इस अराजकता को समाप्त करने के लिये सामन्तों ने काफी द्वन्द के बाद 1613 में सोलह वर्षीय माइकल रोमोनोव को रूस का जार बनाया। फलतः रूस में एक नये राजवंश (रोमोनोव) का शासन प्रारम्भ हुआ। इस वंश का शासक पीटर महान ही आधुनिक रूस के जन्मदाता कहलाये।

पीटर महान का शासनकाल (1682–1725 ई0) रूस के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इतिहासकार हेजन के शब्दों में पीटर की गणना विश्व इतिहास के अत्यधिक कर्मठ और शक्तिशाली शासकों में है।पीटर रूस को एक बड़ी शक्ति बनाना चाहता था। पीटर का कहना था कि ''पश्चिम के साथ स्वतंत्रता पूर्वक और सरलता से मिलने–जुलने के लिए यह आवश्यक है कि रूस कहीं एक खिड़की खोले, तभी उसमें बाहर से प्रकाश आ सकेगा।'' अर्थात् रूस के पास यूरोपीय समुद्रों में स्थित एक ऐसा बन्दरगाह होना चाहिए जो पूरे वर्ष जहाजों के उपयोग में आ सके। इसलिए पीटर की विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य रूस के लिए पश्चिम की ओर ''खुली खिड़की'' या समुद्रतट प्राप्त करना था।

सन् 1697 में पीटर पश्चिमी यूरोप की यात्रा पर गया। इस यात्रा में उसका उद्देश्य तुर्की के विरूद्ध यूरोप के ईसाई राज्यों से सहायता प्राप्त करना था। यात्रा का असर जबरदस्त हुआ, क्योंकि पीटर इस इरादें को मन में भर कर लौटा कि वह अपने देश को पश्चिम प्रणाली के अनुरूप ढालेगा। सदियों से बाकी दुनिया से कटा मस्कवी राज्य अपने द्वार यूरोप के लिए खोल देने की तैयारी में खड़ा था। पीटर ने अनुभव किया कि पश्चिम

यूरोप रूस की अपेक्षा कहीं ज्यादा समृद्ध, शिक्षित और शक्तिशाली था। उसने रूसी विचारों एवं प्रथाओं का खण्डन किया। उसने समाज में सभ्य आचार–व्यवहार पर जोर दिया। स्त्रियों को प्रेरित किया कि वे पर्दा प्रथा छोड़ कर पाश्चात्य वेशभूषा में बाहर आएं। बड़े–बड़े सामन्तों को यूरोपीय सभ्यता सिखाई गयी। उसने अपने दरबारियों को लम्बा रूसी चोंगा पहनने बन्द करने और छोटे यूरोपीय वस्त्र पहनने एवं दाढ़ी साफ करने का हुक्म दिया, जो लोग दाढ़ी रखना चाहते थे, उन्हें कर देने के लिए विवश किया।

पीटर ने रूस में यूरोपीय शिक्षा पद्धति को लागू किया। नगरों में स्कूल खोले गये, इंजीनियरिंग और चिकित्सा विद्यालयों की स्थापना की गयी और फ्रेंच को शिक्षा का माध्यम बनाया गया। पीटर के द्वारा एक विज्ञान अकादमी की स्थापना के लिए 1724 ई0 में निर्देश दिये गये थे, जिन्हें उसकी मृत्यु के बाद पूरा किया गया। उसके शासनकाल में ही सर्वप्रथम रूसी समाचार–पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ और सार्वजनिक थियेटर खोला गया। देश में यूरोपीय पंचाग लागू किया गया। पीटर रूस का ऐसा पहला शासक था, जिसने आर्थिक श्रोत में एक संगठित नीति अपनायी। उसने कृषि का महत्व समझा और उसे प्रोत्साहित किया। उसके प्रोत्साहन से उद्योगों का विकास हुआ।

पीटर ने नियमित सेना की स्थापना की और उसके समुचित प्रशिक्षण की व्यवस्था की। किसानों के हष्ट–पुष्ट लड़के रूस की स्थायी सेना में भर्ती किये जाने लगे। सैनिकों के लिए यूनीफार्म की व्यवस्था की गयी, जर्मनी का अनुसरण करके उसने सेना एवं नौसेना में वृद्धि की, उसे अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित किया और नये ढंग की शिक्षा दी।

इसी सैनिक शक्ति के बल पर पीटर ने यूरोप की ओर खिड़की खोलने का प्रयत्न किया। पीटर यह खिड़की काला सागर अथवा वाल्टिक सागर की ओर खोलना चाहता था। प्रारम्भ उसने काला सागर की ओर से करते हुए तुर्की से आजोव का बन्दरगाह छीन लिया किन्तु काला सागर एवं भूमध्य सागर को जोड़ने वाले क्षेत्रों पर टर्की का अधिकार था, जिससे रूसी सेना भूमध्य सागर में नहीं जा सकती थी। इसीलिये तुर्को ने आजोव पर पुनः कब्जा करते हुए पीटर के काला सागर में खिड़की खोलने के अभियान को पूरा नहीं होने दिया। काला सागर की ओर से असफल होने पर उसने पश्चिम में वाल्टिक सागर की ओर अपना ध्यान लगाया तथा अपूर्व धैर्य, साहस और वीरता के बल पर स्वीडन को परास्त कर वाल्टिक सागर के पूर्वी तट का अधिकांश हिस्सा जीत लिया। स्वीडन के स्थान पर अब रूस उत्तर की महान शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो गया।

इतिहासकार हेज ने लिखा है – ''रूस के सैन्यवादी शासन का निर्माण, रूसी चर्च की स्वतन्त्रता व सत्ता का अन्त, रूसी समाज का कायाकल्प, रूसी रहन–सहन, व्यवहार एवं परम्पराओं का यूरोपीयकरण, सुदृढ़, निरंकुश जारशाही की स्थापना, साम्राज्यवादी विस्तार, इत्यादि कार्यो का श्रेय पीटर महान को ही प्राप्त है।

पीटर की मृत्यु के बाद के 40 वर्षो में रूस में पुनः गतिरोध खड़ा हो गया ऐसा लगता था कि पीटर की देन समाप्त हो जायेगी सुधारों की गति रूक गयी थी, किन्तु रूस के भाग्य में नियति ने अप्रत्याशित रूप से कैथरिन जिसे कैथरिन द्वितीय महान (1762–96) भी कहा जाता है, को गद्दी दिला दी। एक जर्मन राजकुमारी होते हुए भी जरीना की तरह 30 वर्षो तक रूस पर निरंकुश शासन किया। जीवन में किसी नैतिकता की परवाह किये बिना उसने रूस को इतना बदल दिया कि इतिहासकारों ने उसे कैथरिन महान कहना शुरू कर दिया। विदेश नीति में कैथरिन को सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई। उसने पीटर महान के अधूरे कार्यो को पूर्ण करते हुए काला सागर व भूमध्य सागर की ओर खुली खिड़की प्राप्त की। पोलैण्ड के तीनो विभाजनों में मुख्य भूमिका निभाते हुए कैथरिन ने पोलैण्ड का विस्तृत भाग हड़प लिया। अब योरोपीय मामलों में रूस का प्रभाव सुस्पष्ट हो गया।

कैथरिन का कथन ''मैं एक गरीब लड़की की भांति तीन चार वस्त्रों के साथ रूस आयी और रूस ने मुझे बहुमूल्य उपहार प्रदान किया, परन्तु अब मैं उसे आजोव, क्रीमिया और यूक्रेन देकर उस ऋण से मुक्त हूँ।'' संक्षेप में पीटर महान ने रूस को एक यूरोपीय राज्य बनाया और कैथरिन ने उसे एक शक्तिशाली और प्रभावशाली निरंकुश यूरोपीय राज्य बना दिया।

1.5.5 प्रशा

पन्द्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी एवं पवित्र रोमन साम्राज्य समानार्थी थे। यह तथ्य जर्मनी के राष्ट्रीयकरण व एकीकरण में बड़ा घातक सिद्ध हुआ। आधुनिक युग के प्रारम्भ में जर्मनी में लगभग 300 छोटी बड़ी परस्पर विरोधी स्वतन्त्र रियासतें थी, जिनका नाम मात्र का प्रधान पवित्र रोमन सम्राट था। कालान्तर में कुछ जर्मन सामान्तों अथवा राजाओं ने अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ली कि वे सम्राट का निर्वाचन करने लगे तथा निर्वाचक कहलाये। इन निर्वाचकों में एक बैन्डनवर्ग का राजा भी था। ब्रैन्डनवर्ग म्यूज एवं एल्व नदियों के बीच, स्लाव जाति की प्रगति एवं हमलों से रक्षा हेतु दशवीं शताब्दी में बनाया गया छोटा सा सुरक्षा चौकी राज्य था। इसी ब्रैन्डनवर्ग की डची (जो आगे प्रशा कहलाया) के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण सम्पन्न हुआ।

1415 में पवित्र रोमन सम्राट ने ब्रैन्डनवर्ग का शासनाधिकार होहेलजोलर्न राजकुमार फ्रेडरिक को सौंपा, जिससे ब्रैन्डनवर्ग में होहेलजोलर्न वंश की स्थापना हुई। इस वंश के फ्रेडरिक विलियम (1640–88) ने (जो इतिहास में महान निर्वाचक के नाम से प्रसिद्ध है) सम्पूर्ण जर्मनी में अपने राज्य तथा वंश की मर्यादा में बड़ी वृद्धि की। वस्तुतः फ्रेडरिक विलियम ब्रैन्डनवर्ग की प्रभुसत्ता का वास्तविक संस्थापक था। फ्रेडरिक जब गद्दी पर बैठा तो उसके राज्य में तीन अलग–अलग ईकाईयां (ब्रैन्डनवर्ग क्लीव्स और पूर्वी प्रशा) थी। इन इकाईयों का अलगाव एक गम्भीर समस्या थी। दूरदर्शी फ्रेडरिक विलियम ने सर्वप्रथम इन इकाईयों के केन्द्रियकरण एवं प्रशासनिक संगठन को एक करने की अथक चेष्ठा की। इसने स्थानीय निकायों, सामन्तों का दमन कर एक केन्द्रिय सेना का निर्माण किया। तीस वर्षीय युद्ध से ब्रैन्डनवर्ग को अपार क्षति पहुंची थी। अतः आवश्यकतानुकूल फ्रेडरिक विलियम ने आर्थिक क्षेत्र में बड़े प्रशंसनीय सुधार किये।

उसने कृषि एवं उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिये नहरों का निर्माण, दलदल सुखाने तथा पशुपालन की शिक्षा की व्यवस्था की, स्थानीय चुंगियों को हटाकर तथा यातायात के साधनों का विकास कर देश के उद्योग धन्धों एवं व्यापार वाणिज्य को प्रोत्साहित किया। फ्रेडरिक विलियम अपने समकालीन लुई चौदहवें से ज्यादा दूरदर्शी था, धार्मिक रूप से उदार एवं प्रोटेस्टेंट होते हुए भी उसने कैथोलिकों, विदेशी प्रोटेस्टेंटों एवं यहूदियों को बर्लिन में बसने की अनुमति इस कारण दी कि ये लोग मेहनती एवं कुशल कारीगर थे, इनके सहयोग से ही वैण्डनवर्ग के उद्योग धन्धों एवं व्यापार वाणिज्य की आशातीत उन्नति सम्भव होगी।

फ्रेडरिक विलियम ने अपने शासन काल में सैन्य शक्ति में भी अपूर्व वृद्धि की। इसके पास 30 हजार सुशिक्षित एवं दक्ष सैनिक थे, यह क्षेत्र जर्मनी का राजपूताना था, जहां के योद्धा सारे यूरोप में विख्यात थे। इसी सेना के बल पर फ्रेडरिक विलियम ने यूरोपीय युद्धों में बड़ी सफलता एवं प्रसिद्धि प्राप्त की। फ्रेडरिक विलियम के पुत्र फ्रेडरिक–।।। (1688–1713) अपने पिता के समान योग्य नहीं था, किन्तु 1701 में सम्राट लियोपोल्ड ने विवश होकर इसे 'प्रशा का राजा' स्वीकार कर लिया। 1713 में यूट्रेक्ट की संधि से यूरोप ने प्रशा के राजतन्त्र को मान्यता दे दी। अब ब्रैन्डनवर्ग प्रशा राज्य के नाम से जाना जाने लगा। यही फ्रेडरिक–।।। की सबसे बड़ी सफलता थी।

फ्रेडरिक–।।। के पश्चात् इसका पुत्र फ्रेडरिक विलियम प्रथम (1713–1740) राजा बना। जिस प्रकार फ्रेडरिक महान निर्वाचक ने प्रशा के गौरव की नींव डाली, उसी प्रकार फ्रेडरिक विलियम–। ने प्रशा की राजनीतिक संस्थाओं एवं सेना का निर्माण किया। यह प्रबुद्ध निरंकुश राजतन्त्र का प्रबल समर्थक था। इस हेतु उसका प्रथम उद्देश्य एक विशाल शक्तिशाली तथा सुसंगठित सेना का निर्माण करना था, जिसके लिये उसने राजकीय मितव्ययता करते हुए अपनी सेना की संख्या 83 हजार कर दी। उसके सैन्य सुधारों के परिणामस्वरूप कार्य कुशलता की दृष्टि से यह सेना यूरोप की सर्वश्रेष्ठ सेना हो गयी।

फ्रेडरिक विलियम–। की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र फ्रेडरिक–।। अर्थात फ्रेडरिंक महान (1740–1786) प्रशा का शासक बना। यह एक ऐसा राजकुमार था जिसे तलवार से अधिक बांसुरी पसंद थी, जो शिकार खेलने की जगह जंगलों और खेतों में प्रकृति के लुभावने रहस्यों में खोया रहता था, इसे कविता संगीत और दर्शन से प्रेम था और पिता के कट्टर अनुशासन एवं नियंत्रण से घृणा थी। अपने पिता के कठोर अनुशासन एवं नियंत्रण से ऊब कर फ्रेडरिक महान ने अपने मित्र के साथ प्रशा से भाग निकलने की योजना बनाई, परन्तु योजना असफल हुई और दोनो को करावास में बन्द कर दिया गया। कुछ दिन बाद इसके मित्र को मृत्यु दण्ड दिया गया तथा इस दण्ड को देखने के लिये फ्रेडरिक को बाध्य किया गया। राजकुमार फ्रेडरिक को विवश होकर एक सेवक प्रजा व पुत्र के रूप में कर्तव्यपालन की शपथ लेनी पड़ी। इसी शर्त पर उसे कारावास से मुक्ति मिली। 1740 में जब उसका पिता मरा और वह शासक बना तो कोई आश्वस्त नहीं था कि वह क्या करेगा लेकिन लगभग 50 वर्षो के शासन के बाद जब फ्रेडरिक महान की मृत्यु हुई तो प्रशा की गणना यूरोप के सबसे शक्तिशाली राज्यों में होनी लगी।

प्रशा के इतिहास में फ्रेडरिक महान का स्थान अत्यन्त ऊॅचा है। इसके शासन काल का पूर्वाद्ध युद्धों से परिपूर्ण है, परन्तु उसका उत्तरार्द्ध प्रजा के हित में किये गये सुधारों से पूर्ण है वह लुई चौदहवें के विपरीत स्वयं को 'प्रजा का प्रथम सेवक' समझता था तथा उसकी नीति धार्मिक सहिष्णुता की थी।

फ्रेडरिक महान के समय प्रशा का विकास चरम सीमा पर पहुँच गया। अपने शासन के प्रारम्भ से ही वह युद्धरत हो गया था, लेकिन उसने कृषि एवं उद्योग को भुलाया नहीं। किसानों और जमींदारों को वैज्ञानिक ढंग से खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया। पहली बार आलू की खेती बड़े पैमाने पर शुरू की, जो आज भी जर्मन लोगों का मुख्य भोजन है। पशुपालन को बढ़ावा दिया गया। वह कर वसूल करने वाले कर्मचारियों पर कड़ी नजर रखता था। वह स्वयं एक–एक पैसे का हिसाब रखता था, चाहे उसका निजी खर्चा हो या राज्य का, इसलिए दूसरे भी अपव्यय करने से डरते थे। सांस्कृतिक विषयों में उसकी सहज रूचि थी। उसके अनुरोध पर ही बाल्तेयर उसके दरबार में मित्र की भाँति रहने लगा, यद्यपि बाद में दोनो में बन न सकी। खाने की मेज पर वह राजनीति से अधिक साहित्य की चर्चा करना पसन्द करता था। राजधानी बर्लिन में अकादमियाँ स्थापित हुई, और लेखकों, कलाकारों को संरक्षण दिया जाने लगा। विज्ञान में उसकी विशेष रूचि थी, इसलिए ऐसी परम्पराएं डाली गयी जिनका विकास होने पर दुनिया के सबसे बड़े वैज्ञानिक देशों में प्रशा का नाम गिना जाने लगा।

विदेश नीति के मामलों में फेडरिक का उद्देश्य प्रशा की सीमाओं का विस्तार करना था। फ्रेडरिक ने साइलेशिया को आस्ट्रिया से बलात् छीन लिया। प्रशा की समृद्धि के लिए साइलेशिया का प्रदेश बहुत महत्वपूर्ण हो सकता था। सप्तवर्षीय युद्ध की समाप्ति के नौ वर्ष पश्चात् पोलैण्ड का प्रथम विभाजन प्रशा, आस्ट्रिया और रूस के मध्य हो गया। फेडरिक को इस विभाजन से पश्चिमी पोलैण्ड का क्षेत्र मिला और प्रशा की सीमाएं पूर्व में रूस के करीब पहुँच गयी।

यह तथ्य है कि फ्रेडरिक दुनिया के कुछ सबसे प्रसिद्ध शासकों में है। जर्मनी को एक राष्ट्रीय शक्ति के रूप में विकसित करने के कारण जर्मन इतिहासकारों ने इसकी अत्यधिक प्रशंसा की है। वह एक कुशल सैनिक, दक्ष सेनानायक, चतुर राजनीतिज्ञ, महान् सुधारक और प्रबद्ध निरंकुश शासक था। फेडरिक ने सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि उसने यह सिद्ध कर दिया कि जर्मनी में आस्ट्रिया का एकाधिकार नहीं चल सकता।

प्रशा को पराजित करने के बाद नेपोलियन सारे जर्मनी के शासकों द्वारा लाये गये उपहारों के बीच घूम रहा था। सारा हाल सजे सजाये व्यक्तियों बहुमूल्य उपहारों से जगमगा रहा था। दुनिया की दौलत उसके कदमों में थी लेकिन नेपोलियन केवल एक वस्तु के सामने रूका और उसने उसे आदर पूर्वक उठाकर अपने कमर में बांध लियां वह वस्तु थी प्रशा के पूर्व शासक फ्रेडरिक महान की तलवार। नेपोलियन महान जैसा असाधारण विजेता ने फ्रेडरिक को अकारण यह सम्मान नहीं दिया था।

एगेल्स ने ठीक ही लिखा है कि– 'विस्मार्क ने फ्रेडरिक से ही सीखा था कि पूरी तरह अनैतिक होते हुए भी कैसे जन्मभूमि के परम्पराओं के प्रति सच्चे लगाव की चेतना से अपने को गौरवान्वित समझा जा सकता है। फ्रेडरिक महान की ही राह पर चलते हुए विस्मार्क ने प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी को एक कर दिया।

1.6 समीक्षा

दुर्भाग्य से राष्ट्रीय राज्यों का उदय यूरोप में शांति स्थापित नहीं कर सका। मध्यम वर्ग द्वारा समर्थित राष्ट्रीय राजाओं ने सामन्ती युद्धों को समाप्त करने तथा आंतरिक शान्ति और व्यवस्था के नाम पर युद्ध किया। परन्तु सामन्ती युद्धों के बाद राष्ट्रीय और वंशानुगत युद्धों की शुरूआत हुई। आधुनिक काल के प्रारम्भ में चार शक्तिशाली राष्ट्रीय राजतंत्र– स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस और इंग्लैण्ड का उदय हुआ और इन्होंने यूरोपीय राजनीति पर प्रधान्य कायम किया।

सोलहवीं एवं सत्रहवीं शताब्दियों में यूरोप में उदीयमान राष्ट्रीय शासकों ने राष्ट्रीय चेतना की नींव रखी। यही चेतना राष्ट्रीय राज्यों के निर्माण मे सहायक सिद्ध हुई। युद्धों में बढ़ते व्यय ने सभी देशों में कर को अधिकाधिक बढ़ा दिया था एवं इस प्रश्न को लेकर राजतंत्रीय राज्यों का समाज की नवोदित शक्तियों के साथ संघर्ष आरम्भ हुआ। नवोदित वर्ग कर की सीमा सीमित रखना चाहते थे। करारोपण के प्रश्न को लेकर सभी जगह शासकों का विरोध हो रहा था। किन्तु लगभग सभी स्थानों पर विरोध को संगठित रूप देने की सुविधाएं उपलब्ध न थी। इंग्लैण्ड एक अपवाद था। वहाँ नवोदित वर्ग जिसमें व्यापारी, पढ़ा–लिखा मध्यम वर्ग, कुछ भू–स्वामी आदि थे, ने राजतंत्र पर अन्य देशों की तुलना में शीघ्र ही नियंत्रण स्थापित कर लिया। राष्ट्रीय राज्यों के उदय से कुछ सुपरिणाम भी निकलें। सामन्तवाद समाप्त हुआ। आर्थिक विकास के कारण उत्पादन बढ़ा। तकनीकी क्षेत्र में नवीन प्रणालियाँ खोजी गयी। अब राष्ट्रों की सीमाएं भी अधिकाधिक निश्चित और तर्क संगत हो गयी। अतः हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि आज की राष्ट्रीय चेतना कल के निरंकुश राष्ट्रीय राज्यों की ही देन है। राष्ट्रीय राज्यों के उदय ने यूरोप में कई परिवर्तनों को जन्म दिया, व्यापारिक क्रान्ति से वाणिज्यिक क्रान्ति और इससे आगे आद्योगिक क्रान्ति। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उपनिवेशीकरण को अत्यधिक बल मिला और इसी औपनिवेशिक शासन के प्रतिरोध में यूरोप के अतिरिक्त अमेरिका, एशिया, अफ्रीका में भी राष्ट्रीयता की चेतना का उदय हुआ।

1.7 निरंकुशता का पतन

अतः अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लोकप्रिय सरकारों की माँग ने निरंकुशता की जड़े कमजोर कीं। कालान्तर में जनता ने निरंकुशता पर सीधा प्रहार करना शुरू कर दिया। जनता ने अनुचित कानूनों तथा राजा के असीमित अधिकारों का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। विरोध करने वालों में समाज के वे हिस्से भी शामिल थे, जिन्होंने पहले शक्तिशाली राजाओं का समर्थन किया था। जनता ने शासकों के निरंकुश अधिकारों में कटौती तथा राजसत्ता में हिस्सा देने की माँग शुरू की। शासकों और जनता का परस्पर विराधे सबसे पहले इंग्लैण्ड में सामने आया। इसके बाद अमेरिका की क्रांति एवं फ्रांस की क्रांति ने निरंकुशता को एक जोरदार धक्कता पहुँचाया।

1.8 स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्न प्रश्नों में सही और गलत का निशान लगायें –

प्र01– शतवर्षीय युद्ध इंग्लैण्ड एवं फ्रांस के मध्य हुआ था। ( )

प्र02– ईसाबेला एवं फर्डिनेन्ड स्पेन के शासक थे। ( )

प्र03– लुई ग्यारहवाँ प्रशा का शासक था। ( )

प्र04– पीटर महान को आधुनिक रूस का जन्मदाता कहा जाता है। ( )

प्र05– रिशलू एवं मेजारिन ने फ्रांस में निरंकुश राजतंत्र बनाने में सर्वाधिक भूमिका निभाई ( )

प्र06– सामन्तवाद राष्ट्रीय राज्यों के उदय में बाधक था। ( )

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

प्र07– निरंकुश वाद की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं? टिप्पणी लिखें।

प्र08– निरंकुश राष्ट्रीय राज्य के उदय के कारणों पर प्रकाश डालिये।

प्र09– निरंकुशता का पतन क्यों हुआ?

प्र010– आधुनिक रूस के निर्माण में पीटर महान एवं कैथरिन की भूमिका की जाँच करें?

प्र011– फ्रेडरिक महान की नीतियों एवं कार्यो ने प्रशा को आधुनिक यूरोप का एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाया? इस कथन की समीक्षा करें।

प्र012– राष्ट्रीय राज्यों के उदय में मध्यम वर्ग भूमिका पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

1.9 सारांश

रोमन साम्राज्य एवं पोपशाही की अवनति के परिणामस्वरूप यूरोपीय राजनैतिक पटल पर महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। सामन्तवाद के पतन, पुर्नजागरण एवं धर्म सुधार की कड़ी में ही नवीन निरंकुश राजतन्त्र का बीज भी छुपा है। सामन्तों के पतन एवं धर्म सुधार आन्दोलन में राजाओं की शक्ति को बढ़ाया। राजाओं ने अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए राष्ट्रीयता को साधन के रूप में अपनाया तथा सैनिक शक्ति बढ़ाकर राष्ट्रीय सीमा का विस्तार किया।

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1– ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिविलाइजेशन – जे0ई0 स्वेन

2– द आउट लाइन आफ हिस्ट्री – एच0जी0 वेल्स

3– विश्व इतिहास – जैन एवं माथुर

4— आधुनिक पश्चिम का उदय – पार्थसारथि गुप्ता
5— फ्रेडरिक द ग्रेट – गूच
6— पीटर द ग्रेट – ग्राहम
7— ए पोलिटिकल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ यूरोप (वाल्यूम–1) – हेज

1.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

प्र01— सही (✓)
प्र02— सही (✓)
प्र03— गलत (X)
प्र04— गलत (✓)
प्र05— सही (✓)
प्र06— सही (✓)
प्र07— देखें बिन्दु—1.3
प्र08— देखें बिन्दु—1.4
प्र09— देखें बिन्दु—1.7
प्र010— देखें बिन्दु—1.5.4
प्र011— देखें बिन्दु—1.5.5
प्र012— देखें बिन्दु—1.4

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. निरंकुश राष्ट्रीय राज्यों के उदय पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. स्पेन के उत्थान एवं पतन के कारणों की समीक्षा कीजिये।
3. बूर्वो वंश के अधीन फ्रांस के उत्थान पर प्रकाश डालिये।

इकाई दो – इंग्लैण्ड में संसदीय संस्थाओं का विकास

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3.3 इंग्लैंड में संसदीय संस्थाओं के विकास का पहला चरण

2.3.3.1 'चार्टर ऑफ़ लिबर्टीज़

2.3.3.2 'मैग्ना कार्टा' (महान अधिकारपत्र)

2.3.3.3 प्रोविज़ंस ऑफ़ ऑक्सफ़ोर्ड

2.3.4 हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स तथा हाउस ऑफ़ कॉमन्स की स्थापना

2.3.4.1 अपर चौम्बर तथा लोअर चौम्बर

2.3.4.2 हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स तथा हाउस ऑफ़ कॉमन्स

2.3.5 शासक तथा पार्लियामेंट के मध्य अधिकारों के लिए संघर्ष

2.3.5.1 जेम्स प्रथम का शासनकाल

2.3.5.2 चार्ल्स प्रथम का शासनकाल

2.4 गणतन्त्र युग (1649–1660)

2.4.1 चार्ल्स द्वितीय का शासनकाल

2.5 गौरवपूर्ण क्रान्ति

2.5.1 जेम्स द्वितीय का शासन काल

2.5.2 गौरवपूर्ण क्रान्ति (1688) के कारण

2.5.3 गौरवपूर्ण क्रान्ति

2.5.3.1 गौरवपूर्ण क्रांति के परिणाम

2.6 ब्रिटिश संसदीय संस्था के आधारभूत स्तम्भ

2.6.1 हाउस ऑफ़ कॉमन्स

2.6.2 हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स

2.6.3 मताधिकार

2.7 सारांश

2.8 पारिभाषिक शब्दावली

2.9 स्वमूल्यांकित लघु प्रश्नों के उत्तर

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

विश्व इतिहास में इंग्लैण्ड को संसदीय संस्थाओं की जन्म भूमि कहा जाता है. 1100 में हेनरी प्रथम ने 'चार्टर ऑफ़ लिबर्टीज़' के द्वारा विशिष्ट क्षेत्रों में अपनी शक्तियों को सीमित कर दिया था. ब्रिटिश संसदीय संस्था के विकास में 1215 की 'मैग्ना कार्टा' का ऐतिहासिक महत्त्व है. मैग्ना कार्टा को आजादी का महान चार्टर भी कहा जाता है. 1258 में 7 अग्रणी बैरनों ने तत्कालीन शासक हेनरी तृतीय को 'प्रोविज़न्स ऑफ़ ऑक्सफ़ोर्ड' स्वीकार करने के लिए बाध्य किया. इस व्यवस्था ने निरंकुश एंग्लो–नॉर्मन राजतन्त्र की व्यवस्था समाप्त कर दी. हेनरी तृतीय के पुत्र एडवर्ड (1271–1307) के शासनकाल में इंग्लैंड की पार्लियामेंट का जन्म हुआ. वित्तीय मामलों में अब शासक के लिए पार्लियामेन्ट का अनुमोदन लिया जाना आवश्यक हो गया. एडवर्ड तृतीय के शासनकाल में पार्लियामेन्ट की शक्ति में वृद्धि हुई. 1341 में अपर चौम्बर (आभिजात्य वर्ग तथा पादरी वर्ग) तथा लोअर चौम्बर (नाइट्स तथा बर्जेज़) का गठन किया गया. 1430 में लोअर चौम्बर के लिए सम्पत्ति विषयक न्यूतम योग्यता के आधार पर सदस्यों के चुनाव हेतु नागरिकों को मताधिकार (सीमित मताधिकार) प्रदान किया गया। 1535–42 में वेल्श पर ब्रिटिश अधिकार हो जाने के बाद वेल्श के प्रतिनिधि भी पार्लियामेन्ट में आने लगे. 1544 के बाद पार्लियामेन्ट के दोनों सदनों को क्रमशः हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स तथा हाउस ऑफ़ कॉमन्स कहा जाने लगा. किसी बिल को कानून बनाए जाने के लिए पहले उसका दोनों सदनों में बहुमत द्वारा अनुमोदन आवश्यक था. जेम्स प्रथम के सिंहासनारूढ़ (1603) होते ही संसद तथा शासक के मध्य सर्वोच्चता के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गया. 1628 में चार्ल्स प्रथम द्वारा अपनी शक्ति के निरंकुश प्रयोग से सशंकित हाउस ऑफ़ कॉमन्स ने 'पेटीशन ऑफ़ राइट' प्रस्तुत की. चार्ल्स प्रथम के शासन काल में शौर्ट पार्लियामेंट और लॉन्ग पार्लियामेंट के काल में भी उसके तथा पार्लियामेंट के मध्य विवाद पूर्ववत बना रहा. 1642 में ओलिवर क्रामवेल के नेतृत्व में 'बैटिल ऑफ़ एजहिल' से 'इंग्लिश सिविल वार' प्रारम्भ हुई. क्रामवेल के नेतृत्व में 'आइरन साइड्स' कही जाने वाली सेना ने मान्सटनमूर में 1644 में तथा नेजबी में 1645 में चार्ल्स प्रथम की सेना को करारी हार दी. 1649 में पार्लियामेन्ट ने एक न्यायालय गठित किया जिसने चार्ल्स प्रथम को प्राणदण्ड सुनाया.

यद्यपि गणतन्त्र युग (1649–1660) को हम सैनिक तानाशाही का युग मानते हैं पर इसी अवधि में पार्लियामेन्ट के भविष्य का निर्धारण भी हुआ था. निम्न सदन अर्थात् 'हाउस ऑफ़ कॉमन्स' में निर्वाचित सदस्य होते थे जब कि उच्च सदन अर्थात् 'हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स के सदस्य – 'लार्ड्स स्प्रिचुअल' तथा लार्ड्स टैम्पोरल' (अधिकांश पीयर्स) होते थे जिनकी कि नियुक्ति प्रधान मन्त्री की अथवा 'हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स अपाइन्टमेन्ट कमीशन' की सलाह पर शासक द्वारा की जाती थी.

चार्ल्स द्वितीय का शासनकाल (1660–1685) एक ओर जहां अराजकता का काल था वहीं इस काल में राजा की शक्ति को निरंकुश बनाने में नवीन पार्लियामेन्ट (कैवेलियर पार्लियामेन्ट) में उसके समर्थक सदस्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. कैथोलिक जेम्स द्वितीय (1685 में राज्यारोहण) ने अपनी वैधानिक शक्ति का दुरूपयोग कर अपने अनेक रोमन कैथोलिक समर्थकों को उच्च सैनिक एवं सरकारी पदों पर नियुक्त किया और उन्हें निजी स्तर पर अपना धर्म–पालन करने स्वतंत्रता भी प्रदान कर दी. इंग्लैण्ड के सिंहासन पर फिर से कैथोलिक शासक के आरूढ़ होने की सम्भावना समाप्त करने के उद्देश्य से पादरी वर्ग, टोरी तथा व्हिग दल ने जेम्स द्वितीय को अपदस्थ कर उसके स्थान पर उसकी बड़ी बेटी मैरी के पति, प्रोटैस्टैन्ट मतावलम्बी विलियम ऑफ़ ऑरेंज (हालैण्ड का शासक) को इंग्लैण्ड के सिंहासन पर अपना अधिकार करने के लिए आमन्त्रित किया. जेम्स द्वितीय के सैन्य अधिकारी व उसकी अपनी छोटी पुत्री एन भी विद्रोहियों के साथ हो गए. युद्ध से पूर्व ही जेम्स द्वितीय 23 दिसम्बर, 1688 को इंग्लैण्ड छोड़कर फ्रांस भाग गया और बिना रक्त की एक बूंद बहे इंग्लैण्ड में सत्ता परिवर्तन (विलियम ऑफ़ ऑरेंज के सिंहासनारूढ़ होने से) हो गया जिसको हम गौरवपूर्ण क्रान्ति के नाम से जानते हैं. मैरी

तथा विलियम ऑफ़ ऑरेंज द्वारा संयुक्त रूप से इंग्लैण्ड की सत्ता सम्भाले जाने से यह स्पष्ट हो गया कि पार्लियामेन्ट के निर्णयों की अवज्ञा करके कोई भी शासक अपने पद पर बना नहीं रह सकता है. इसके साथ ही राजत्व के दैविक सिद्धान्त की अवधारणा, इंग्लैण्ड के सन्दर्भ में अर्थहीन हो गई. इंग्लैंड के इतिहास में संवैधानिक राजतन्त्र का युग प्रारंभ हुआ जो कि आज भी जारी है. ब्रिटिश संवैधानिक राजतन्त्र में सम्राट/साम्राज्ञी की शक्तियां मुख्य रूप से अलंकारिक होती हैं. यूं तो वह प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता/करती है और ब्रिटिश सेना का/की कमांडर–इन–चीफ़ भी होता/होती है किन्तु शासन की वास्तविक शक्ति ब्रिटिश पार्लियामेंट में ही निहित होती है.

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ कर आप इंग्लैंड में संसदीय प्रणाली के क्रमिक विकास के विषय विस्तार से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे. इंग्लैंड को संसदीय प्रणाली की जन्मभूमि कहा जाता है. राजतन्त्र होते हुए भी इंग्लैंड में जनमत की महत्ता है. यहाँ का संवैधानिक राजतन्त्र अन्य सभी देशों के राजतन्त्र से उदार और प्रगतिशील है. इंग्लैंड में शासक का पद औपचारिक तथा अलंकारिक शक्ति का प्रतीक है और शासन की वास्तविक बागडोर जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों में से बहुमत का समर्थन प्राप्त नेता के हाथ में होती है जिसे प्राइममिनिस्टर (प्रधानमंत्री) कहा जाता है. यद्यपि प्रधानमंत्री की नियुक्ति वैधानिक तौर पर शासक द्वारा की जाती है किन्तु वह पार्लियामेंट और जनता के प्रति उत्तरदायी होता है. इंग्लैंड में संसदीय संस्थाओं का विकास एक लम्बे संघर्ष के बाद संभव हुआ है. इस इकाई को पढ़कर आप इंग्लैंड की संसदीय संस्थाओं के क्रमिक विकास के विषय में जान सकेंगे.

इकाई के

1. प्रथम चरण में आप इंग्लैंड में संवैधानिक विकास के प्रारंभिक चरण के विषय में जान सकेंगे.
2. द्वितीय चरण में आप हाउस ऑफ़ लॉड्र्स तथा हाउस ऑफ़ कॉमन्स की स्थापना के विषय में जान सकेंगे.
3. तृतीय चरण में आप क्रोमवेल के नेतृत्व में क्रान्ति, चार्ल्स प्रथम को मृत्युदंड दिए जाने तथा गणतंत्र काल की घटनाओं के विषय में जान सकेंगे.
4. चौथे चरण में आप गौरव पूर्ण क्रान्ति के विषय में जान सकेंगे.
5. पांचवें चरण में आप 'हाउस ऑफ़ लॉड्र्स', 'हाउस ऑफ़ कॉमन्स', मताधिकार आदि के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.

2.3.3 इंग्लैंड में संसदीय संस्थाओं के विकास का पहला चरण

2.3.3.1 'चार्टर ऑफ़ लिबर्टीज़

इंग्लैण्ड में सन् 1066 में विलियम ऑफ़ नौर्मंडी ने एक सामन्ती व्यवस्था का प्रचलन किया था जिसमें उसने 'टैनेन्ट–इन–चीफ़' (भू–स्वामी) तथा चर्च के प्रतिनिधियों की एक समिति गठित कर कानून बनाने से पहले उसकी सलाह लेने की व्यवस्था की थी. 1100 में हेनरी प्रथम ने 'चार्टर ऑफ़ लिबर्टीज़' के द्वारा विशिष्ट क्षेत्रों में अपनी शक्तियों को सीमित कर दिया था.

वास्तव में प्रारम्भिक काल में इंग्लैण्ड के शासक के पास अपनी कोई स्थायी सेना नहीं थी और न ही उसके पास पर्याप्त आर्थिक साधन थे. इसलिए राज्य संचालन के लिए उसे आभिजात्य वर्ग और चर्च के प्रतिनिधियों के सहयोग पर निर्भर रहने के लिए बाध्य होना पड़ता था. इंग्लैण्ड में सन् 1066 में विलियम ऑफ़ नौर्मंडी ने एक सामन्ती व्यवस्था का प्रचलन किया था जिसमें उसने 'टैनेन्ट–इन–चीफ़' (भू–स्वामी) तथा चर्च के प्रतिनिधियों की एक समिति गठित कर कानून बनाने से पहले उसकी सलाह लेने की व्यवस्था की थी. सन् 1100 में हेनरी प्रथम ने 'चार्टर ऑफ़ लिबर्टीज़' के द्वारा विशिष्ट क्षेत्रों में अपनी शक्तियों को सीमित कर दिया था.

2.3.3.2 'मैग्ना कार्टा' (महान अधिकार पत्र)

विश्व इतिहास के चर्चित दस्तावेजों में से एक गिने जाने वाले मैग्ना कार्टा ने 800 वर्ष पूरे कर लिए है. मैग्ना कार्टा एक लैटिन शब्द है, जिसका अर्थ श्महान चार्टरश होता है. मैग्ना कार्टा लैटिन भाषा में लिखित एक ऐतिहासिक दस्तावेज है. मैग्ना कार्टा को श्आजादी का महान चार्टरश भी कहा जाता है. मैग्ना कार्टा मानवाधिकारों की बुनियाद रखने वाला दस्तावेज भी माना जाता है.

15 जून, 1215 को मैग्ना कार्टा पर ब्रिटेन के तत्कालीन राजा किंग जॉन ने हस्ताक्षर किए थे.

मैग्ना कार्टा के इस अहम दस्तावेज के तहत ही पहली बार राजा को कानून के दायरे में रखा गया और यह नियम बनाया गया कि कोई भी व्यक्ति, संस्था या राजा कानून से ऊपर नहीं है. करीब 3500 शब्दों की मैग्ना कार्टा संधि चर्म पत्र पर लिखी गई है. इसमें लैटिन भाषा में लिखी एक प्रस्तावना और कुल 63 धाराएं हैं.

मैग्ना कार्टा को ब्रिटेन और अमेरिका (अमेरिका के संविधान का आधार होने के कारण) में वही दर्जा प्राप्त है, जो भारत में संविधान को प्राप्त है. मैग्ना कार्टा ने ब्रिटेन और अमेरिका के साथ – साथ विश्व को भी बदलने का काम किया है. इसमें लिखा गया है कि किसी भी शख्स को कानून के तहत दोषी साबित होने के बाद ही सजा, देश निकाला या पदमुक्त किया जा सकता है. यानी किसी भी व्यक्ति को इसलिए दंडित नहीं किया जा सकता, क्योंकि राजा का मिजाज अच्छा नहीं था. यही वजह है कि इसे आधुनिक कानून और न्याय तंत्र का आधार माना गया है. मैग्ना कार्टा मानवाधिकारों की बुनियाद रखने वाला दस्तावेज भी माना जाता है. मैग्ना कार्टा ने महिला अधिकार कार्यकर्ताओं से लेकर महात्मा गांधी और नेल्सन मंडेला तक को प्रेरित किया. हमारे संविधान में भी मौलिक अधिकार सम्बन्धी प्रावधान को श्भारतीय संविधान का मैग्ना कार्टाश कहा जाता है. ऐतिहासिक दस्तावेज़ 'मैग्ना कार्टा' की पृष्ठभूमि जानना अत्यंत आवश्यक है.

मैग्ना कार्टा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जान लेना अत्यंत आवश्यक है –

अत्यधिक करों के बोझ, असफल युद्धों और पोप से विवाद के कारण इंग्लैण्ड के शासक जॉन से क्रुद्ध होकर उसके कुछ महत्वपूर्ण बैरन उसके विरुद्ध विद्रोह करने को तत्पर हो गए. अपनी कमज़ोर स्थिति को सुधारने के उद्देश्य से जॉन ने प्रभावशाली बैरन और अपने फ्रांसीसी व स्काटिश मित्र राज्यों से भेंट की और तत्पश्चात उसने लन्दन के निकट रनीमेड नामक स्थान पर 15 जून, 1215 को 'मैग्ना कार्टा' (महान अधिकारपत्र) पर हस्ताक्षर किए जिसके अनुसार शासक को कर लगाने और कर एकत्र करने से पहले अपनी रॉयल काउन्सिल (जिसमें कि सामन्तवादी व्यवस्था के स्तम्भ – आर्क बिशप, अबाट, बैरन तथा अर्ल सम्मिलित थे) की सहमति लेना आवश्यक हो गया. इसी रॉयल काउन्सिल ने बाद में विकसित होते–होते पार्लियामेन्ट का रूप धारण कर लिया. यह उल्लेख करना आवश्यक है कि नागरिक अधिकार विषयक यह ऐतिहासिक दस्तावेज़ आम आदमी के लिए नहीं अपितु केवल प्रभावशाली वर्ग तक सीमित था. 'मैग्ना कार्टा' में प्रदत्त नागरिक अधिकारों का शासकों ने कभी निष्ठापूर्वक क्रियान्यन नहीं किया किन्तु इसने सामान्य तथा संवैधानिक कानून और साथ ही राजनीतिक प्रतिनिधित्व व संसदीय प्रणाली की विकास–प्रक्रिया को अत्यधिक प्रभावित किया है. 'मैग्ना कार्टा' ने लोकतन्त्र, शासक की सीमित शक्ति और समानता के अधिकार के सिद्धान्तों को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है. लैटिन तथा फ्रेंच भाषाओं में विचार–विमर्श तथा भाषण के लिए प्रयुक्त 'पार्लियामेन्ट' शब्द का ब्रिटिश इतिहास में उल्लेख, सर्वप्रथम 13 वीं शताब्दी में हुआ है. यद्यपि 'मैग्नाकार्टा' समग्र रूप से एक सामंती दस्तावेज़ था किन्तु इस ने नागरिक अधिकारों के महत्वपूर्ण सिद्धांतों को पहली बार लेखबद्ध किया था. इसके अंतर्गत शासक को यह स्वीकार करना पड़ा था की वह रॉयल काउंसिल के अनुमोदन के बिना बड़ी धन राशि प्राप्त नहीं कर सकता था. 'मैग्नाकार्टा' से यह भी स्थापित हो गया कि किसी भी स्वतंत्र व्यक्ति को मनमाने ढंग से दण्डित नहीं किया जा सकेगा अपितु क़ानून के अंतर्गत उस पर अभियोग चलाकर उसे दोषी पाए जाने के बाद ही उसे दण्डित किया जा सकेगा. 'मैग्नाकार्टा' ने निश्चित रूप से शासक की स्वेच्छाचारिता को नियंत्रित किया और साथ ही साथ इसने शासक को भी क़ानून के दायरे के अन्दर ला खड़ा किया. 'मैग्नाकार्टा' ने निरंकुश शासनतंत्र को प्रतिबंधित करने

का कार्य किया किन्तु इस से केंद्रीयकृत शासन की प्रक्रिया को नियंत्रित नहीं किया जा सका. हेनरी तृतीय (1216– 77) के शासनकाल में पूर्ण शक्ति प्राप्त प्रशासनिक एवं न्यायिक संस्थाओं की उपस्थिति से इसका खुलासा हो गया. उसी के शासनकाल में स्थाई उच्च न्यायालयों की स्थापना होना प्रारंभ हो गया था.

2.3.3.3 प्रोविज़ंस ऑफ़ ऑक्सफ़ोर्ड

प्रोविज़ंस ऑफ़ ऑक्सफ़ोर्ड को प्रायः इंग्लैंड का प्रथम लिखित संविधान माना जाता है. लीसेस्टर के छठे अर्ल के नेतृत्व में 7 बैरंस के एक समूह ने तत्कालीन शासक हेनरी तृतीय को 1258 में 'प्रोविज़न्स ऑफ़ ऑक्सफ़ोर्ड' स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इस व्यवस्था ने निरंकुश एंग्लो–नॉर्मन राजतन्त्र की व्यवस्था समाप्त कर दी गई और अब राज्य–संचालन की शक्ति 15 बैरनों की एक समिति के हाथ में आ गई. इंग्लैण्ड, वेल्स तथा स्काटलैण्ड के एकीकरण के उद्देश्य से एडवर्ड प्रथम (शासन काल 1272– 1307) ने प्रभावशाली वर्ग का सहयोग प्राप्त करने के लिए और विद्रोहों की सम्भावना को समाप्त करने के लिए पार्लियामेन्ट को एक संस्था के रूप में विकसित होने का अवसर प्रदान किया. उसने समाज के सभी वर्गों को अपनी शिकायतों से सम्बन्धित याचिकाएं प्रस्तुत करने का अधिकार दिया। उसने समाज के सभी वर्गों को अपनी शिकायतों से सम्बन्धित याचिकाएं प्रस्तुत करने का अधिकार दिया.

हेनरी तृतीय के पुत्र एडवर्ड (1271–1307) के शासनकाल में इंग्लैंड की पार्लियामेंट का जन्म हुआ. इस पार्लियामेंट का सम्बन्ध जन–प्रतिनिधियों से नहीं बल्कि सामंतों के बृहद परिवार से था किन्तु इसमें सामंतों के साथ–साथ गावों, कस्बों तथा नगरों के प्रतिनिधि भी सम्मिलित होते थे. एडवर्ड प्रथम के काल से शासक की शक्ति अथवा उसकी दुर्बलता के अनुपात में पार्लियामेन्ट की शक्ति घटती या बढ़ती रही परन्तु वित्तीय मामलों में अब शासक के लिए पार्लियामेन्ट का अनुमोदन लिया जाना आवश्यक हो गया. एडवर्ड द्वितीय को अपदस्थ करने और एडवर्ड तृतीय को सिंहासनारूढ़ करने में पार्लियामेन्ट की निर्णायक भूमिका रही. एडवर्ड तृतीय के शासनकाल में पार्लियामेन्ट की शक्ति में वृद्धि हुई.

2.3.4 हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स तथा हाउस ऑफ़ कॉमन्स की स्थापना

2.3.4.1 अपर चौम्बर तथा लोअर चौम्बर

1341 में अपर चौम्बर (आभिजात्य वर्ग तथा पादरी वर्ग) तथा लोअर चौम्बर (नाइट्स तथा बर्जेज़) का गठन किया गया. 1376 में लोअर चौम्बर (तदन्तर हाउस ऑफ़ कामन्स) के प्रिसाइडिंग ऑफिसर (तदन्तर स्पीकर) सर पीटर डी ला मारे ने शाही व्यय का हिसाब मांगा था और शासक की सैनिक नीति की आलोचना की थी, 1430 में लोअर चौम्बर के लिए सम्पत्ति विषयक न्यूतम योग्यता के आधार पर सदस्यों के चुनाव हेतु नागरिकों को मताधिकार (सीमित मताधिकार) प्रदान किया गया. 1535–42 में वेल्श पर ब्रिटिश अधिकार हो जाने के बाद वेल्श के प्रतिनिधि भी पार्लियामेन्ट में आने लगे.

2.3.4.2 हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स तथा हाउस ऑफ़ कॉमन्स

1544 के बाद पार्लियामेन्ट के दोनों सदनों को क्रमशः हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स तथा हाउस ऑफ़ कॉमन्स कहा जाने लगा. पैलेस ऑफ़ वैस्ट मिनिस्टर में हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स तथा सेन्ट स्टीफ़ेन्स चौपल में हाउस ऑफ़ कॉमन्स बनाए गए. किसी भी सदन का कोई भी सदस्य संसद में बिल प्रस्तुत कर सकता था. शासक द्वारा अनुमोदित बिलों को प्रायः प्रिवी काउन्सिल के सदस्य पार्लियामेन्ट में रखते थे. किसी बिल को कानून बनाए जाने के लिए पहले उसका दोनों सदनों में बहुमत द्वारा अनुमोदन आवश्यक था और इसके बाद अन्त में उसे शासक के पास भेज दिया जाता था जिसे उसका अनुमोदन कर उसे कानून बनाने अथवा अपने निषेधाधिकार (वीटो पॉवर) का प्रयोग कर उसे रद्द करने का अधिकार था. 16 वीं तथा 17 वीं शताब्दी में कई बार शासकों ने अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर बिलों को रद्द किया था.

2.3.5 शासक तथा पार्लियामेंट के मध्य अधिकारों के लिए संघर्ष

2.3.5.1 जेम्स प्रथम का शासनकाल

एलिज़ाबेथ प्रथम ने स्वयं शक्तिशाली होते हुए भी पार्लियामेन्ट की महत्ता व उपयोगिता को स्वीकार किया था. ट्यूडर काल में पार्लियामेन्ट ने भी शासक की सर्वोच्चता को स्वीकार करने में संकोच नहीं किया था. महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम की मृत्यु के बाद जेम्स प्रथम के सिंहासनारूढ़ होते ही संसद तथा शासक के मध्य सर्वोच्चता के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गया. जेम्स प्रथम राजत्व के दैविक सिद्धान्त में विश्वास करता था और उसकी दृष्टि में राजा की आलोचना करने, उसका विरोध करने अथवा उसकी नीतियों को नियन्त्रित करने का किसी को अधिकार नहीं था. प्रतिनिधि सभाओं की उपयोगिता पर उसका कोई विश्वास नहीं था. जेम्स प्रथम के शासनकाल में इंग्लैण्ड के राष्ट्रीय चर्च का स्वरूप प्रोटेस्टैन्ट हो गया था जिससे एक ओर जहां इंग्लैण्ड में अल्पसंख्यक रोमन कैथोलिक कुपित थे वहीं दूसरी ओर प्रोटैस्टैन्टों का एक वर्ग (प्यूरिटन्स) इसलिए कुपित था कि चर्च का स्वरूप पूरी तरह प्रोटैस्टैन्ट क्यों नहीं हुआ था. जेम्स प्रथम ने प्यूरिटन्स को आंग्ल–चर्च विरोधी घोषित कर राज्य की ओर से उन्हें दी जाने वाली सुविधाएं समाप्त कर दीं. पार्लियामेन्ट में प्रोटैस्टैन्ट्स का बहुमत था जिन्होंने जेम्स के इस निर्णय का विरोध किया. 1618 में यूरोप में 30 वर्षीय युद्ध प्रारम्भ हुआ जिसको कि रोमन कैथोलिकों व प्रोटैस्टों (लूथरवादी तथा काल्विनवादी) के मध्य धार्मिक संघर्ष की पराकाष्ठा के रूप में देख सकते हैं. इस युद्ध के दौरान जेम्स प्रथम आर्थिक लाभ की सम्भावना देखकर अपने बेटे चार्ल्स का विवाह स्पेन की रोमन कैथालिक मतावलम्बी राजकुमारी मारिया अन्ना से करना चाहता था जिसका कि बहुसख्यंक प्रोटैस्टैन्ट सदस्यीय ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने खुलकर विरोध किया. इसके जवाब में जेम्स ने फ़रवरी, 1622 में पार्लियामेन्ट को भंग कर दिया. विवाह की आकांक्षा हेतु राजकुमार चार्ल्स की स्पेन यात्रा के बावजूद यह विवाह नहीं हो सका. इस समाचार को पार्लियामेन्ट ने अपनी जीत माना. 1624 में जेम्स प्रथम को वित्तीय समस्याओं के समाधान हेतु फिर पार्लियामेन्ट की बैठक बुलानी पड़ी. अपने शासनकाल (1603–1625) के दौरान जेम्स प्रथम को लगातार पार्लियामेन्ट की आलोचना अथवा उसके विरोध का सामना करना पड़ा. 1625 में जब जेम्स प्रथम की मृत्यु हुई तो उसने अपने उत्तराधिकारी चार्ल्स प्रथम के लिए विरासत में शासक और पार्लियामेन्ट के मध्य शाश्वत संघर्ष और पारस्परिक अविश्वास छोड़ा था.

2.3.5.2 चार्ल्स प्रथम का शासनकाल

चार्ल्स प्रथम (1625 से 1649 तक शासनकाल) भी अपने पिता जेम्स प्रथम की भांति राजत्व के दैविक सिद्धान्त में विश्वास रखता था और उसकी दृष्टि में शासक की इच्छा के विरुद्ध पार्लियामेन्ट की आलोचना अथवा उसका विरोध कोई महत्व नहीं रखता था. उसने अपने पिता की प्यूरिटन्स तथा पार्लियामेन्ट के दमन की नीति को जारी रखा. पार्लियामेन्ट के विरोध के बावजूद चार्ल्स प्रथम ने फ्रांस की रोमन कैथोलिक मतावलम्बी राजकुमारी के साथ अपना विवाह रचा लिया. यद्यपि चार्ल्स प्रथम प्रोटैस्टैन्ट विरोधी नहीं था किन्तु रोमन कैथोलिकों के प्रति उसकी उदारता को पार्लियामेन्ट ने सहन नहीं किया और राज्य की नीतियों को प्रोटैस्टैन्ट मतावलम्बियों के पक्ष में करने के लिए उस पर दबाव डाला. 1628 में चार्ल्स प्रथम द्वारा अपनी शक्ति के निरंकुश प्रयोग से सशंकित हाउस ऑफ़ कॉमन्स ने 'पेटीशन ऑफ़ राइट' प्रस्तुत की. इसकी प्रथम धारा में घोषित किया गया था कि दृ

1. संसद के अनुमोदन के बिन लगाए जाने वाले कर अवैधानिक थे.
2. किसी भी व्यक्ति पर बिना मुक़द्दमा चलाए और उसका अपराध सिद्ध हुए बिना उसे कारावास में नहीं डाला जा सकता था.
3. निजी घरों को सैनिकों के उपयोग के लिए नहीं लिया जा सकता था.
4. शांति–काल में सैनिक कानून लागू नहीं किया जा सकता था.

इसमें यह चेतावनी भी दी गई थी कि सम्राट द्वारा उनकी मांग को स्वीकार न किए जाने की स्थिति में पार्लियामेन्ट किसी भी मामले में उसके साथ सहयोग नहीं करेगी. सम्राट को इस याचिका को स्वीकार करना पड़ा. पार्लियामेन्ट की याचिका को स्वीकार किए जाने को हम चार्ल्स प्रथम–पार्लियामेन्ट विवाद में पार्लियामेन्ट की पहली

जीत के रूप में देख सकते हैं. परन्तु इसके बाद भी चार्ल्स व पार्लियामेन्ट के मध्य अपने–अपने अधिकारों को लेकर संघर्ष जारी रहा. पार्लियामेन्ट ने चार्ल्स को चुंगी कर (टनेज एण्ड पाउण्ड्स) वसूल करने का आजीवन अधिकार देने से इंकार कर दिया. कुपित चार्ल्स प्रथम ने मार्च, 1629 में पार्लियामेन्ट को भंग कर दिया और अगले 11 वर्ष तक पार्लियामेन्ट के भंग रहते हुए ही उसने शासन किया. 11 वर्ष तक पार्लियामेन्ट के भंग रहते हुए भी चार्ल्स प्रथम को कोई राहत नहीं मिली. नौ–सेना को अधिक शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से चार्ल्स प्रथम द्वारा पार्लियामेन्ट की स्वीकृति के बिना लगाए गए 'शिपमनी टैक्स' का आम जनता ने खुलकर विरोध किया. 'स्काटिश बिशप्स वार' (1639–40) की वित्तीय आपदा के कारण उसे नए कर लगाने के लिए पार्लियामेन्ट को दुबारा बुलाना पड़ा. इस सत्र में पार्लियामेन्ट ने चार्ल्स प्रथम के साथ किसी भी प्रकार का सहयोग नहीं किया और उसकी वित्तीय एवं विदेश नीति की कटु आलोचना की. पार्लियामेन्ट के असहयोग से कुपित होकर एक महीने से भी कम समय में उसने उसे फिर भंग कर दिया। इस लघु–अवधि की पार्लियामेन्ट को 'शार्ट पार्लियामेन्ट' कहा गया। 3 नवम्बर, 1640 को उसने फिर पार्लियामेन्ट बुलवाई जो उसके शेष शासनकाल तथा उसके बाद 1660 तक कार्यरत रही. इसे लौंग पार्लियामेन्ट कहा गया. 'लौंग पार्लियामेन्ट' ने सर्वप्रथम चार्ल्स प्रथम के दोनों सलाहकारों – लाड तथा बेंडबर्थ को प्राणदण्ड दिलवाया. इसके पश्चात सम्राट से पार्लियामेन्ट को भंग करने का अधिकार छीन लिया गया. सम्राट और पार्लियामेन्ट में खटास आ जाने के बाद पार्लियामेन्ट समर्थक 'राउण्डहैड्स' के द्वारा अक्टूबर, 1642 में ओलिवर क्रामवेल के नेतृत्व में 'बैटिल ऑफ़ एजहिल' से 'इंग्लिश सिविल वार' प्रारम्भ हुई. पार्लियामेन्ट के समर्थन में मध्यम वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग खड़ा था जब कि सम्राट के पक्ष में सामन्ती वर्ग था. क्रामवेल के नेतृत्व में 'आइरन साइड्स' कही जाने वाली सेना ने मान्सटनमूर में 1644 में तथा नेजबी में 1645 में चार्ल्स प्रथम की सेना को करारी हार दी. पराजित चार्ल्स प्रथम ने स्काटलैण्ड में आत्मसमर्पण कर दिया. एक समझौते के अन्तर्गत स्काटलैण्ड के निवासियों ने चार्ल्स प्रथम को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट को सौंप दिया. 'आइरनसाइड्स' के दबाव में पार्लियामेन्ट ने एक न्यायालय गठित किया जिसने चार्ल्स प्रथम को प्राणदण्ड सुनाया. यह उल्लेखनीय है कि पार्लियामेन्ट के निर्वाचित सदस्यों का बहुमत चार्ल्स प्रथम को प्राणदण्ड दिए जाने के पक्ष में नहीं था. क्रामवेल ने 'न्यू माडल आर्मी' द्वारा अपने विरोधियों का दमन किया। इसको 'प्राइड पर्ज' (दल–शोधन) का नाम दिया जाता है. 30 जनवरी, 1649 को चार्ल्स प्रथम को प्राणदण्ड दे दिया गया. शताब्दियों से इंग्लिश पार्लियामेन्ट शनैः–शनैः जिस प्रकार इंग्लिश राजतन्त्र की शक्तियों को सीमित करने का जो प्रयास कर रही थी वह अन्ततः अपने निष्कर्ष तक 'सिविल वार' तथा चार्ल्स प्रथम के मृत्यु दण्ड के रूप में दृष्टिगोचर हुआ.

2.4 गणतन्त्र युग (1649–1660)

आयरलैण्ड व स्काटलैण्ड में चार्ल्स द्वितीय को चार्ल्स प्रथम का उत्तराधिकारी घोषित किया गया परन्तु क्रामवेल के कुशल सैन्य–नेतृत्व में राजतन्त्र के समर्थकों की पराजय के बाद उसे अपनी जान बचाने के लिए इंग्लैण्ड छोड़कर यूरोप के अन्य देशों में दर–दर भटकना पड़ा. पार्लियामेन्ट से अपने विरोधियों को हटाकर 1649 से 1653 तक क्रामवेल ने इस 'रम्प पार्लियामेन्ट' शासन का दायित्व 'काउन्सिल ऑफ़ स्टेट' को सौंपा जिसके सदस्य के रूप में उसने पार्लियामेन्ट का नेतृत्व किया. अब इंग्लैण्ड को कामनवेल्थ (इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड तथा आयरलैण्ड) बना दिया गया. 'रम्प पार्लियामेन्ट' के युग में ही सदस्यों को 'मेम्बर ऑफ़ पार्लियामेन्ट' कहा जाने लगा था. पार्लियामेन्ट के सदस्य चार्ल्स प्रथम के पतन को अपनी सफलता मानकर अनुशासनहीनता व उद्दण्डता की सीमा लांघने लगे थे जो कि क्रामवेल को स्वीकार्य नहीं था. 20 अप्रैल, 1653 को उसने पार्लियामेन्ट पर सैनिक आक्रमण करके अपने विरोधियों को वहां से निकाल बाहर किया और 'रम्प पार्लियामेन्ट' को भंग कर दिया. अब क्रामवेल ने मनोनीत सदस्यों की अल्पजीवी, एक सदनीय 'बेयरबोन्स पार्लियामेन्ट' का गठन किया. बाद में 16 दिसम्बर, 1653 को उसके सहयोगी नेताओं ने उसे 'लार्ड प्रोटैक्टर ऑफ़ कामनवेल्थ ऑफ़ इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड एण्ड आयरलैण्ड' के रूप में शासन करने के लिए आमन्त्रित किया. क्रामवेल ने 1653 से लेकर मृत्यु पर्यन्त (3 सितम्बर, 1658) तक 'लार्ड प्रोटैक्टर ऑफ़ कामनवेल्थ ऑफ़ इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड एण्ड आयरलैण्ड' के रूप में

शासन किया. यद्यपि गणतन्त्र युग (1649–1660) को हम सैनिक तानाशाही का युग मानते हैं पर इसी अवधि में पार्लियामेन्ट के भविष्य का निर्धारण भी हुआ था. निम्न सदन अर्थात् 'हाउस ऑफ़ कॉमन्स' में निर्वाचित सदस्य होते थे जब कि उच्च सदन अर्थात् 'हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स के सदस्य – 'लार्ड्स स्प्रिचुअल' तथा लार्ड्स टैम्पोरल' (अधिकांश पीयर्स) होते थे जिनकी कि नियुक्ति प्रधान मन्त्री की अथवा 'हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स अपाइन्टमेन्ट कमीशन' की सलाह पर शासक द्वारा की जाती थी.

3 सितम्बर, 1658 को ओलिवर क्रामवेल की मृत्यु के बाद सम्पूर्ण व्यवस्था चरमरा गई. उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र रिचर्ड क्रामवेल ने लगभग आठ महीने तक 'लार्ड प्रोटैक्टर ऑफ़ कामनवेल्थ ऑफ़ इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड एण्ड आयरलैण्ड' के रूप में शासन का संचालन किया परन्तु मई, 1659 को उसे अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा और इसके साथ ही 'लार्ड प्रोटैक्टर' का पद भी समाप्त हो गया. इसके बाद जॉर्ज मौंक ने 'लौंग पार्लियामेन्ट' को पुनर्जीवित किया और उसकी देखरेख में 1660 में नवीन संसद में वह आवश्यक संवैधानिक परिवर्तन किए गए जिससे कि राजतन्त्र को पुनर्स्थापित किया जा सके और निर्वासित चार्ल्स द्वितीय को सिंहासनारूढ़ किया जा सके. 1660 में चार्ल्स द्वितीय के सिंहासनारूढ़ होने के बाद इस परम्परागत सिद्धान्त को पुनः स्वीकार किया गया कि सरकार को राजा, हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स तथा हाउस ऑफ़ कॉमन्स, इन तीनों के द्वारा संचालित किया जाना चाहिए.

2.4.1 चार्ल्स द्वितीय का शासनकाल

चार्ल्स द्वितीय का शासनकाल (1660–85) एक ओर जहां अराजकता का काल था वहीं इस काल में राजा की शक्ति को निरंकुश बनाने में नवीन पार्लियामेन्ट (कैवेलियर पार्लियामेन्ट) में उसके समर्थक सदस्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. क्लैरेंडन कोड के समर्थकों को छोड़कर शेष सभी प्रोटैस्टैन्ट मतावलम्बियों (डिसेन्टर्स) के विरुद्ध कठोर नीति अपनाई गई. 'डिसेन्टर्स' के कट्टर विरोधी 'टोरी' (अनुदार दलीय) कहलाए और जो धार्मिक सहिष्णुता के समर्थक थे वह 'व्हिग' (उदार दलीय) कहलाए. चार्ल्स द्वितीय ने छुपकर रोमन कैथोलिक मत अपना लिया था और साथ ही उसने फ्रांस के शासक लुई चतुर्दश का अंधानुकरण करना प्रारम्भ कर दिया.

2.5 गौरवपूर्ण क्रान्ति

2.5.1 जेम्स द्वितीय का शासन काल

जेम्स द्वितीय एक पीड़ादायक, कष्ट–प्रदायक शासक था. इंलैंड जैसे प्रोटोस्टेंट मतावलंबियों के देश में उस जैसे रोमन कैथोलिक को जनता संदेह और संशय की दृष्टि से देखती थी. जनता को आशंका थी कि रोमन कैथोलिक चर्च और पोप इंग्लैंड के सम्राट ही नहीं अपितु पूरे इंग्लैंड पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेंगे. चिंता की बात यह थी कि जेम्स द्वितीय ने जनता की आशंकाओं को निर्मूल करने का कोई प्रयास नहीं किया. इसके विपरीत उसने ऐसे–ऐसे कार्य किये कि जनता की आशंकाएं और भी उभर कर सामने आ गईं. यद्यपि सम्राट ने इस बात का आश्वासन दिया था कि वह धार्मिक क्षेत्र में यथास्थिति बनाए रक्खेगा किन्तु उसके कार्य तथा निर्णय इसके विपरीत थे. इंग्लैंड में किचित नियम बनाए गए थे जिनके कारण रोमन कैथोलिक न तो लोक–पद पर नियुक्त हो सकते थे और न ही उन्हें अपना धर्म पालन करने की खुली छूट थी किन्तु जेम्स द्वितीय ने इन नियमों को शिथिल करने एवं उन्हें तोड़ने की प्रक्रिया प्रारंभ कर दी. अपनी वैधानिक शक्ति का दुरूपयोग कर उसने अपने अनेक रोमन कैथोलिक समर्थकों को उच्च सैनिक एवं सरकारी पदों पर नियुक्त किया और उन्हें निजी स्तर पर अपना धर्म–पालन करने स्वतंत्रता भी प्रदान कर दी. इस से पार्लियामेंट तथा अंग्लिकन बिशप बहुत घबड़ा गए और फिर उन्होंने अपने कैथोलिक सम्राट को ही अपदस्थ करने का निश्चय कर लिया.

2.5.2 गौरवपूर्ण क्रान्ति (1688) के कारण

1. 1685 में चार्ल्स द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त उसका भाई जेम्स द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ. जेम्स द्वितीय कैथोलिक था और वह वह अपने मत के प्रचार–प्रसार हेतु कटिबद्ध था. उसका राजत्व के दैविक सिद्धान्त में

अटूट विश्वास था. यह बातें पार्लियामेन्ट को स्वीकार्य नहीं थीं. इंग्लैण्ड में उभरता हुआ और समाज में एक सीमा तक अपना प्रभाव स्थापित कर चुका शिक्षित मध्यम वर्ग शासक की निरंकुशता सहन करने को तैयार नहीं था.

2. 'व्हिग' दल जेम्स द्वितीय का विरोधी था. इसी दल ने जेम्स द्वितीय के अवैध पुत्र मन्मथ को विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया. मन्मथ ने विद्रोह करके स्वयं को इंग्लैण्ड के सिंहासन का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया. जेम्स द्वितीय ने मन्मथ के विद्रोह को कुचल दिया और न्यायालय ने उसे प्राणदण्ड दिया. जनता ने इस न्यायालय को 'ब्लडी कोर्ट्स' (खूनी न्यायालय) कहा. इस प्रसंग के कारण जेम्स द्वितीय इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड व आयरलैण्ड की जनता और पार्लियामेन्ट की घृणा का पात्र बन गया.

3. चार्ल्स द्वितीय के काल में पारित 'टेस्ट अधिनियम' के अन्तर्गत केवल एंग्लिकन चर्च के अनुयायी ही सरकारी पदों पर नियुक्त किए जा सकते थे किन्तु जेम्स द्वितीय ने इस अधिनियम को स्थगित कर मन्त्रिमण्डल, न्यायालय, नगर निगम और सेना के अनेक उच्च पदों पर कैथोलिकों की पार्लियामेन्ट ने इस कृत्य को संविधान का अपमान बताया किन्तु जेम्स द्वितीय ने इस आलोचना की कोई परवाह नहीं की.

4. जेम्स द्वितीय शिक्षा के क्षेत्र में भी कैथोलिक आधिपत्य स्थापित करना चाहता था और इसीलिए उसने अपनी नीतियों के विरोधी कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के कुलपति को अपदस्थ कर दिया और परिणामतः जनता में उसके प्रति आक्रोश में और वृद्धि हुई.

5. जेम्स द्वितीय की विदेश नीति, विशेषकर उसका फ्रांस के शासक लुई चौदहवें की विदेश नीति का अन्धानुकरण करने की प्रवृत्ति.

6. जेम्स द्वितीय की एंग्लिकन चर्च के विरुद्ध नीतियों का कैण्टरबरी के आर्कबिशप तथा अन्य 6 पादरियों ने खुलकर विरोध किया. जेम्स ने उन सभी को राजद्रोह के आरोप में टावर ऑफ़ लन्दन में कैद कर लिया. जनता के दबाव में न्यायधीशों ने उन सभी को आरोप–मुक्त कर दिया.

7. जेम्स द्वितीय की पुत्री को, जिसका कि विवाह हालैण्ड के शासक प्रोटैस्टैन्ट मतावलम्बी विलियम से हुआ था, सभी लोग उसका उत्तराधिकारी मानते थे किन्तु 10 जून, 1688 को जेम्स द्वितीय को अपनी दूसरी रानी मैडोना से एक पुत्र हुआ और अब यह निश्चित हो गया कि उसका यह पुत्र ही उसका उत्तराधिकारी होगा जिसका कि लालन–पालन एक कैथोलिक की भांति होगा, पार्लियामेन्ट को यह स्वीकार्य नहीं था कि भविष्य में भी इंग्लैण्ड का शासक कैथोलिक ही हो. इन परिस्थितियों में शासक और पार्लियामेन्ट के मध्य संघर्ष हुआ और यही गौरवपूर्ण क्रान्ति का तात्कालिक कारण बना.

2.5.3 गौरवपूर्ण क्रान्ति

इंग्लैण्ड के सिंहासन पर फिर से कैथोलिक शासक के आरूढ़ होने की सम्भावना समाप्त करने के उद्देश्य से पादरी वर्ग, टोरी तथा व्हिग दल ने जेम्स द्वितीय को अपदस्थ कर उसके स्थान पर उसकी बड़ी बेटी मैरी के पति, प्रोटैस्टैन्ट मतावलम्बी विलियम ऑफ़ ऑरेंज (हालैण्ड का शासक) को इंग्लैण्ड के सिंहासन पर अपना अधिकार करने के लिए आमन्त्रित किया. विलियम ऑफ़ औरेन्ज ने इस निमन्त्रण स्वीकार करते हुए इंग्लैण्ड की ओर कूच किया. जेम्स द्वितीय के सैन्य अधिकारी व उसकी अपनी छोटी पुत्री एन भी विद्रोहियों के साथ हो गए. युद्ध से पूर्व ही अपनी सैनिक असमर्थता देखकर जेम्स द्वितीय 23 दिसम्बर, 1688 को इंग्लैण्ड छोड़कर फ्रांस भाग गया और बिना रक्त की एक बूंद बहे इंग्लैण्ड में सत्ता परिवर्तन (विलियम ऑफ़ ऑरेंज के सिंहासनारूढ़ होने से) हो गया जिसको हम गौरवपूर्ण क्रान्ति के नाम से जानते हैं.

'बिल ऑफ़ राइट्स अथवा डिक्लेरेशन ऑफ़ राइट्स (दिसम्बर, 1689)

मैरी तथा विलियम ऑफ़ ऑरेंज द्वारा संयुक्त रूप से इंग्लैण्ड की सत्ता सम्भाले जाने से यह स्पष्ट हो गया कि पार्लियामेन्ट के निर्णयों की अवज्ञा करके कोई भी शासक अपने पद पर बना नहीं रह सकता है. इसके साथ ही राजत्व के दैविक सिद्धान्त की अवधारणा, इंग्लैण्ड के सन्दर्भ में अर्थहीन हो गई. इंग्लैंड के इतिहास में संवैधानिक राजतन्त्र का युग प्रारंभ हुआ जो कि आज भी जारी है. ब्रिटिश संवैधानिक राजतन्त्र में

सम्राट/साम्राज्ञी की शक्तियां मुख्य रूप से अलंकारिक होती हैं. यूं तो वह प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता/करती है और ब्रिटिश सेना का/की कमांडर–इन–चीफ़ भी होता/होती है किन्तु शासन की वास्तविक शक्ति ब्रिटिश पार्लियामेंट में ही निहित होती है.

2.5.3.1 गौरवपूर्ण क्रांति के परिणाम

अब इंग्लैण्ड में संवैधानिक राजतन्त्र की स्थापना हो गई. इंग्लैण्ड का शासक अब केवल प्रोटैस्टैन्ट ही हो सकता था. शासक की शक्तियों पर, राज्य के खर्च पर और शासक के निजी खर्च पर पार्लियामेन्ट का नियन्त्रण स्थापित हो गया. प्रति वर्ष पार्लियामेन्ट का अधिवेशन होना अनिवार्य हो गया. अब शासन में शासक के स्थान पर पार्लियामेन्ट की सर्वाच्चता स्थापित हो गई. अब राज–परिवार में होने वाले विवाहों के लिए भी पार्लियामेन्ट का अनुमोदन आवश्यक हो गया. अब इंग्लैण्ड उदार एवं संवैधानिक राजतन्त्र का मुख्य केन्द्र बन गया. गौरवपूर्ण क्रान्ति के उदार विचारों ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रान्ति को प्रभावित किया और आगे चल कर समस्त विश्व में लोकतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना हेतु आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार की.

2.6 ब्रिटिश संसदीय संस्था के आधारभूत स्तम्भ

2.6.1 हाउस ऑफ़ कॉमन्स

दि हाउस ऑफ़ कॉमन्स ऑफ़ दि यूनाइटेड किंगडम ब्रिटिश पार्लियामेंट का निम्न सदन होता है. हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स की ही भांति इसकी बैठक भी पैलेस ऑफ़ वैस्ट मिनिस्टर में होती है. इस सदन में निर्वाचित सदस्य होते हैं (कुल 650) जिन्हें कि मेम्बर ऑफ़ पार्लियामेंट कहा जाता है. 13 वीं तथा 14 वीं शताब्दी में हाउस ऑफ़ कॉमन्स ऑफ़ इंग्लैंड का विकास हुआ जो कि 1707 में इंग्लैंड में स्कॉटलैंड मिलाए जाने के बाद से हाउस ऑफ़ कॉमन्स ऑफ़ ग्रेट ब्रिटेन कहा जाने लगा और अंततः 19 वीं शताब्दी में इंग्लैंड में आयरलैंड भी मिलाए जाने के बाद दि हाउस ऑफ़ कॉमन्स ऑफ़ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड कहा जाने लगा. 1922 में आयरिश फ्री स्टेट की स्थापना के बाद से इसे दि हाउस ऑफ़ कॉमन्स ऑफ़ ग्रेट ब्रिटेन एंड नॉर्दर्न आयरलैंड कहा जा रहा है.

यद्यपि हाउस ऑफ़ कॉमन्स प्रधानमंत्री का चुनाव नहीं करता है (प्रधानमंत्री की नियुक्ति तो शासक ही करता है) किन्तु प्रधानमंत्री हाउस ऑफ़ कॉमन्स के प्रति जवाबदेह होता है और बिना उसके समर्थन के सरकार नहीं चला सकता है. सामान्यतः हाउस ऑफ़ कॉमन्स में सबसे बड़े दल का नेता ही प्रधानमंत्री चुना जाता है और सदन में दूसरे स्थान के दल का नेता सदन में नेता प्रति–पक्ष बनाया जाता है. सामान्यतः हाउस ऑफ़ कॉमन्स का कार्य–काल 5 वर्ष का होता है.

2.6.2 हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स

हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स ऑफ़ दि यूनाइटेड किंगडम, ब्रिटिश पार्लियामेंट का उच्च सदन होता है. इसे हाउस ऑफ़ पीअर्स (जिनमें लॉर्ड्स स्प्रिचुअल तथा लॉर्ड्स टेम्पोरल होते हैं.) भी कहा जाता है. हाउस ऑफ़ कॉमन्स की ही भांति इसकी बैठक पैलेस ऑफ़ वैस्ट मिनिस्टर में ही होती हैं.

हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स में हाउस ऑफ़ कॉमन्स द्वारा अनुमोदित बिलों की समीक्षा की जाती है. पहले हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स में हाउस ऑफ़ कॉमन्स द्वारा पारित बिलों को क़ानून बनाए जाने से रोका जा सकता था किन्तु 1911 के पार्लियामेंट एक्ट के बाद से इसे उन्हें रोकने का अधिकार नहीं है, केवल उन्हें देर तक रोके रहने का तथा उनमें संशोधन करने का अधिकार है. हाउस ऑफ़ कॉमन्स की ही भांति हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स में भी बिल पेश किये जा सकते हैं. हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स के सदस्य भी मंत्रिमंडल में शामिल हो सकते हैं.

2.6.3 मताधिकार

उन्नीसवीं शताब्दी तक अनेक पाश्चात्य देशों में मताधिकार के लिए न्यूनतम आय अथवा संपत्ति की सीमाएं थीं.. उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में ही संपत्ति विषयक शर्तों को मताधिकार से विलग किया गया.

प्रारंभ में सभी नागरिकों को मताधिकार प्राप्त नहीं था. इसमें धर्म और संपत्ति विषयक अनेक प्रतिबन्ध थे. 1728 से लेकर 1793 तक रोमन कैथेलिकों को वोट देने का और 1829 तक मेम्बर ऑफ़ पार्लियामेंट का चुनाव लड़ने का अधिकार नहीं था. यहूदियों के मताधिकार पर भी प्रतिबन्ध था. आज भी एक निश्चित पता न होने के कारण गृह–हीनों के लिए मतदाता सूची में अपना नाम दर्ज करा पाना कठिन है.

महिलाओं को मताधिकार के लिए सदियों तक संघर्ष करना पड़ा था. व्यावहारिक दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जाकर ही महिला–मताधिकार के लिए आंदोलनों का दौर प्रारंभ हुआ. अमेरिका और ब्रिटेन में महिला–मताधिकार को लेकर व्यापक आन्दोलन हुए. 1888 में 'इंटरनेशनल काउंसिल ऑफ़ वीमेन' का गठन हुआ और 1904 में ब्रिटेन की मिलिसेंट फासेट, अमेरिका की केरी चौपमन काट तथा अन्य महिलाओं ने 'इंटरनेशनल वुमन सफ़रेज एलाइन्स' का गठन किया. नवम्बर, 1918 के ब्रिटिश पार्लियामेंट के 'एलिजिबिलिटी ऑफ़ वीमेन एक्ट द्वारा महिलाओं को चुनाव में खड़े मेम्बर ऑफ़ पार्लियामेंट के चुनाव में खड़े होने का और 1928 के 'दि रिप्रेजेन्टेशन ऑफ़ दि पीपुल एक्ट' द्वारा उन्हें मताधिकार प्राप्त हो गया. 1928 में स्त्रियों के लिए भी मताधिकार की न्यूनतम आयु 30 साल से घटाकर 21 साल कर दी गयी और 1969 में पुरुषों और स्त्रियों, दोनों के लिए ही, मताधिकार की न्यूनतम आयु घटाकर 18 वर्ष कर दी गयी.

स्वमूल्यांकित प्रश्नों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. मैग्नाकार्टा 2. हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स तथा हाउस ऑफ़ कॉमन्स 3. जेम्स प्रथम का शासनकाल
4. क्रामवेल

2.7 सारांश

विश्व इतिहास में इंग्लैण्ड को संसदीय संस्थाओं की जन्म भूमि कहा जाता है. इंग्लैण्ड में सन् 1066 में विलियम ऑफ़ नौर्मंडी ने एक सामन्ती व्यवस्था का प्रचलन किया था जिसमें उसने 'टैनेन्ट–इन–चीफ़' (भू–स्वामी) तथा चर्च के प्रतिनिधियों की एक समिति गठित कर कानून बनाने से पहले उसकी सलाह लेने की व्यवस्था की थी. सन् 1100 में हेनरी प्रथम ने 'चार्टर ऑफ़ लिबर्टीज़' के द्वारा विशिष्ट क्षेत्रों में अपनी शक्तियों को सीमित कर दिया था. 15 जून, 1215 की 'मैग्ना कार्टा' के अनुसार शासक को कर लगाने और कर एकत्र करने से पहले अपनी रॉयल काउन्सिल की सहमति लेना आवश्यक हो गया. इसी रॉयल काउन्सिल ने बाद में विकसित होते–होते पार्लियामेन्ट का रूप धारण कर लिया. 'मैग्ना कार्टा' ने लोकतन्त्र, शासक की सीमित शक्ति और समानता के अधिकार के सिद्धान्तों को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है. इंग्लैण्ड, वेल्स तथा स्काटलैण्ड के एकीकरण के उद्देश्य से एडवर्ड प्रथम (शासन काल 1272–1307) ने प्रभावशाली वर्ग का सहयोग प्राप्त करने के लिए और विद्रोहों की सम्भावना को समाप्त करने के लिए पार्लियामेन्ट को एक संस्था के रूप में विकसित होने का अवसर प्रदान किया. वित्तीय मामलों में अब शासक के लिए पार्लियामेन्ट का अनुमोदन लिया जाना आवश्यक हो गया. एडवर्ड तृतीय के शासनकाल में पार्लियामेन्ट की शक्ति में वृद्धि हुई. 1430 में लोअर चौम्बर के लिए सम्पत्ति विषयक न्यूतम योग्यता के आधार पर सदस्यों के चुनाव हेतु नागरिकों को मताधिकार (सीमित मताधिकार) प्रदान किया गया. 1544 के बाद पार्लियामेन्ट के दोनों सदनों को क्रमशः हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स तथा हाउस ऑफ़ कॉमन्स कहा जाने लगा. ट्यूडर काल में पार्लियामेन्ट ने शासक की सर्वोच्चता को स्वीकार करने में संकोच नहीं किया था किन्तु महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम की मृत्यु के बाद जेम्स प्रथम तथा चार्ल्स प्रथम के शासनकाल में संसद तथा शासक के मध्य सर्वोच्चता के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गया.

चार्ल्स प्रथम और पार्लियामेन्ट में खटास आ जाने के बाद पार्लियामेन्ट समर्थक 'राउण्डहैड्स' के द्वारा अक्टूबर, 1642 में ओलिवर क्रामवेल के नेतृत्व में 'बैटिल ऑफ़ एजहिल' से 'इंग्लिश सिविल वार' प्रारम्भ हुई और अन्ततः 1649 में चार्ल्स प्रथम का पतन हुआ और इंग्लैण्ड में अगले 11 वर्षों तक गणतन्त्र स्थापित रहा. 1660 में राजतन्त्र की पुनर्स्थापना से लेकर 1688 तक पार्लियामेन्ट और शासक के मध्य सर्वोच्चता हेतु संघर्ष जारी रहा. इस संघर्ष में कैथोलिक चार्ल्स द्वितीय व जेम्स द्वितीय और प्रोटैस्टैन्ट समर्थक पार्लियामेन्ट के मध्य धार्मिक विवाद

भी ज़ोर पकड़ता गया. 1688 में उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर उठे विवाद ने क्रान्ति का रूप ले लिया जिसके फलस्वरूप जेम्स द्वितीय का पतन हुआ. 1689 के 'बिल ऑफ़ राइट्स' द्वारा शासक पर पार्लियामेन्ट की सर्वोच्चता स्थापित हुई और इंग्लैण्ड में संवैधानिक राजतन्त्र की स्थापना हुई. गौरवपूर्ण क्रान्ति के उदार विचारों ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रान्ति को प्रभावित किया और आगे चल कर समस्त विश्व में लोकतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना हेतु आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार की.

2.8 पारिभाषिक शब्दावली

मैग्ना कार्टा – अधिकार पत्र

अपर चौम्बर – इसके सदस्य आभिजात्य वर्ग तथा पादरी वर्ग से नियुक्त किए जाते थे.

लोअर चौम्बर – इसके सदस्य नाइट्स तथा बर्जेज़ वर्ग से नियुक्त किए जाते थे.

सीमित मताधिकार – इसके अंतर्गत आय और संपत्ति की न्यूनतम शर्तों को पूरा करने वाले वयस्क पुरुषों को मत देने का अधिकार प्राप्त था.

राजत्व का दैविक सिद्धांत – इस सिद्धांत के अंतर्गत शासक, पृथ्वी पर, ईश्वर का प्रतिनिधि होता है और उसका हर आदेश, ईश्वरीय आदेश होता है.

कमांडर–इन–चीफ़– सेनाध्यक्ष

रम्प पार्लियामेंट – बिना दुम वाली (शक्ति हीन) संसद

2.9 स्वमूल्यांकित लघु प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 2. 3. 3. 2
2. देखिए 2.3.4.2 तथा 2. 3. 7. 1 व 2. 3. 7. 2
3. देखिए 2. 3. 5. 1
4. देखिए 2. 3. 5. 3

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

एल्टन, जी. आर. दृ इंग्लैंड अन्दर दि ट्यूडर्स, लन्दन, 1977

प्रमोद कुमार दृ आधुनिक यूरोप का इतिहास (1450–1789), दिल्ली, 2016

फ्रेज़र, लेडी एन्तानिया दृ ओलिवर क्रामवेल, लन्दन, 1973

फ्लोरेंस, एल., बोमैन दृ ब्रिटेन इन दि मिडिल एजेज़, लन्दन, 1920

मैरीमैन, जॉन, एम0 – 'हिस्ट्री ऑफ़ मॉडर्न यूरोप' (बुक 1), न्यूयॉर्क, 2009

मुखर्जी, एल0 – 'ए स्टडी ऑफ़ यूरोपियन हिस्ट्री' , कोलकाता, 2000

बट, आर0 – 'ए हिस्ट्री ऑफ़ पार्लियामेन्ट इन दि मिडिल एजेज़' लन्दन, 1989

रसेल, कोनराड दृ दि क्राइसिस ऑफ़ पार्लियामेंट्स; इंग्लिश हिस्ट्री, 1509–1660, न्यूयॉर्क, 1971

सेल्स, जी0 ओ0 – 'दि किंग्स पार्लियामेन्ट ऑफ़ इंग्लैण्ड', लन्दन, 1981

2.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

जेनकिन्स, सिमोन – 'ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लैण्ड', लन्दन, 2012

जोंस, जे. आर. दृ ब्रिटेन एंड यूरोप इन दि सेवेंतींथ सेंचुरी, न्यूयॉर्क, 1961

मैकाले, टी0 बी0 – 'दि हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लैण्ड फ्रॉम दि एक्सेशन ऑफ़ जेम्स सेकेन्ड, न्यूयॉर्क , 2009

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. 1688 की गौरवपूर्ण क्रान्ति के कारणों पर प्रकाश डालिए.

इकाई तीनः प्रबोधन का युग

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 प्रबोधन का युग

3.4 प्रबोधन से संबंधित विचार

3.5 कुछ प्रमुख विचारक

- 3.5.1 पियरे बेयल
- 3.5.2 मॉण्टेस्क्यू
- 3.5.3 वॉल्टेयर
- 3.5.4 जीन जैकस रूसो
- 3.5.5 दिदरो
- 3.5.6 क्वेसने

3.6 प्रबोधन का प्रभाव

3.7 सारांश

3.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.9 शब्दावली

3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

18वीं सदी के वैविध्य और परस्पर विरोधी प्रकृति वाला प्रबोधन जो सामान्यः तर्क के युग के नाम से जाना जाता है, वस्तुतः पिछली सदी की बौद्धिक उत्तेजना का ऋणी है। 17वीं सदी की वैज्ञानिक क्रान्ति ने ऐसे प्रारूप प्रस्तुत किये जिनके द्वारा समस्या का समाधान तार्किक विचारों और प्रयोगों के द्वारा संभव हो सका। वास्तव में फ्रांसिसी दार्शनिक, गणितज्ञ और वैज्ञानिक रेने देकार्ट ने मानव की तार्किक क्षमता को उसके अस्तित्व का प्रमुख प्रमाण माना। वैज्ञानिक क्रान्ति तो वास्तव में 16वीं सदी के मध्य में ही प्रारंभ हो चुकी थी जब कॉपरनिकस ने प्राचीन काल से मान्य टॉलेमी के विचार कि पृथ्वी ही ब्रह्माण्ड का केन्द्र है का खण्डन कर यह बताया कि वास्तव में सूर्य, ब्रह्माण्ड का केन्द्र है। इस वैज्ञानिक क्रान्ति ने 1687 में सर आइजैक न्यूटन की प्रिसंपिया के प्रकाशन के साथ चरमोत्कर्ष प्राप्त किया, प्रिंसपिया में यान्त्रिक ब्रह्माण्ड को सार्वजनीन गति के नियमों द्वारा सविस्तार समझाया गया। प्रिंसपिया से उद्भूत विचारों ने उस युग में मौलिक बौद्धिक परिवर्तन प्रारंभ कर दिये। 18वीं सदी के प्रारंभिक दौर से ही अनुमान का केन्द्र धार्मिकता से हटकर धर्मनिरपेक्ष होने लगा था, यह नया दृष्टिकोण इस बात से समझा जा सकता है कि फ्रांस का शासक लुई XIV एक ठेठ 17वीं सदी का शासक था जो शासक के रूप में राज्य का प्राथमिक कर्तव्य धार्मिक नेतृत्व को मानता था, उसके द्वारा 1685 में नॉट के अभिलेखों का खण्डन किया गया जिससे हजारों प्रोटेस्टेण्टों को फ्रांस से भागना पड़ा, यह उदाहरण उसके राज्य की धार्मिक एकता के प्रति उसकी सोच को बतलाता है, जबकि दूसरी ओर 18वीं सदी में प्रशा का शासक फ्रेडरिक महान् मूलतः एक धर्मनिरपेक्ष शासक था। वह स्वयं को राज्य का प्रथम सेवक मानता था, उसके अनुसार उसकी प्रजा का धर्म उनका व्यक्तिगत मामला है और राज्य का इससे कुछ लेना–देना नहीं है। उसकी मुख्य रूचि अपनी सैन्य क्षमता का विकास, जनता की समृद्धि और सुरक्षा में थी।

अब विज्ञान और बौद्धिक जांच–पड़ताल लोगों को एकबद्ध करने के सार्वजनिक आधार बन गये जो पहले कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट में विभाजित थे। अब आनन्द की खोज इस जगत में की जाने लगी। तर्क ने एकीकरण का सिद्धान्त प्रस्तुत किया और साथ ही मानव को आनन्द वृद्धि की कुंजी के साथ वह स्थान प्राप्त किया जो पहले धर्म को प्राप्त था। यह माना जाने लगा कि तर्क के सही प्रयोग से समाज की समस्याओं का निदान किया जा सकता है और सभी मनुष्य समृद्धता और खुशहाली से जी सकते हैं। इस आशावाद ने बढ़ते हुए आर्थिक अवसरों की अनुभूति उत्पन्न की। 18वीं सदी का यूरोप अब तक का सबसे सम्पन्न और जनसंख्या वाला यूरोप बन गया। बढ़ती हुई आर्थिक संवृद्धि ने यह भावना विकसित की कि वैज्ञानिक तरीके न केवल भौतिक जगत की कुंजी है वरन् यह धर्मशास्त्र, इतिहास, राजनीति और सामाजिक समस्याओं का हल भी प्रदान कर सकती है। तर्कपूर्ण वैज्ञानिक अन्वेषण के फलस्वरूप उत्पन्न उन्नति से किसानों ने कृषि में सुधार किया और उद्यमियों ने उत्पादों और नयी तकनीकों के साथ प्रयोग करने प्रारंभ कर दिये।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई प्रबोधन से संबंधित है इसको पढ़ने के बाद आप अग्रांकित जानकारियां प्राप्त कर सकेंगे–

- प्रबोधन काल के विचार
- प्रबोधन युग के प्रमुख विचारक
- प्रबोधन का प्रभाव

3.3 प्रबोधन का युग

वैज्ञानिक सोच का प्रभाव 18 वीं सदी के चिंतन में स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगता है। इस सदी के दृष्टिकोण में एक नवीन विकास यह दिखता है कि धर्म निरपेक्ष और विवके सम्मत पूछताछ को बढ़ावा दिया गया, इसे ही प्रबोधन कहा गया है। इस सोच या प्रबोधन का प्रभाव यह पड़ा कि इस काल के लेखकों एवं विद्वानों ने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों में समाज में फैली बुराइयों को उद्घाटित करना प्रारंभ कर दिया।ये लेखक तर्क, सहिष्णुता और मानवता को सर्वाधिक महत्व देते थे। विश्लेषणात्मक शैली में लिखी गयी इस काल की रचनाओं में विचारों, संस्थाओं एवं पद्धतियों का अत्यधिक गहन परीक्षण किया गया है।प्राचीन परंपराओं के विरूद्ध कठोर आलोचनाओं से युक्त इस काल के साहित्य में समाज को सुधारने के लिए नये ढांचे पर भी विचार किया गया मिलता है। फ्रांसीसी इतिहासकार परम्परागत रूप से प्रबोधन के काल को 1715 ई0 जब लुई XIV की मृत्यु हुई थी और 1789 ई0 जब फ्रांस की क्रांति की शुरूआत हुई थी, के मध्य रखते हैं, जबकि कुछ आधुनिक इतिहासकार 1620 के दसक से प्रबोधन के युग का प्रारंभ मानते हैं जब वैज्ञानिक क्रान्ति का प्रारंभ हुआ था। प्रबोधन के कुछ प्रमुख व्यक्तियों में जिन लोगों के नाम शामिल हैं उनमें महत्वपूर्ण हैं, फ्रांस के मॉण्टेस्क्यू (1689–1755); वॉल्टेयर (1694–1778); दिदरो (1713–1784); रूसो (1712–1778); कांडिलैक (1714–1780) और काण्डोर्सेट (1743–1794); ब्रिटेन के डेविड ह्यूम (1711–76) और एडम स्मिथ (1723–1790); जर्मनी के लेसिंग (1729–1781), और काण्ट (1724–1804); इटली के गैम्बटिस्टा विको (1668–1744); बेकारिया (1734–1794) और पगानो (1748–1799)।

प्रबोधन का युग अपने पूर्वगामी वैज्ञानिक क्रान्ति से अत्यन्त निकटता से संबंधित था। कुछ पूर्व के दार्शनिकों जिन्होंने प्रबोधन को प्रभावित किया उनमें बेकन (1562–1626), देकार्ट (1596–1650), जॉन लॉक (1632–1704); स्पीनोजा (1632–1677); पियरे बेयल (1647–1706) और सर आइजक न्यूटन (1642–1727) शामिल हैं।

प्रबोधन के युग का सबसे महत्वूर्ण प्रकाशन 'इनसाइक्लोपीडिया' था, जिसे दिदरो, डि एलम्बर्ट तथा 150 वैज्ञानिकों एवं दार्शनिकों के एक दल द्वारा संकलित किया गया था, यह 1751 और 1772 के बीच 35 खण्डों में प्रकाशित किया गया था। इसके द्वारा प्रबोधन के विचार सम्पूर्ण यूरोप और उसके बाहर भी प्रसारित हुए। अपने विश्वकोश में उसने एकतंत्रात्मक सत्ता, धार्मिक असहिष्णुता, दास प्रथा तथा सामतंवादी पद्धति जैसे विषयों पर

सविस्तार प्रकाश डाला। उसने समाज में फैली असमानता, चर्च के भ्रष्टाचार और शासन की बंराइयों पर भी चर्चा की। उसने वैज्ञानिक एवं औद्योगिक बातों पर भी विचार विमर्श किया। इस विश्वकोश द्वारा उसने विभिन्न बुराइयों को जनता के समक्ष रखा और विश्वकोश का जनता पर व्यापक प्रभाव भी पड़ा।इनसाइक्लोपीडिया के अलावा जो अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें थीं उनमें वाल्टेयर द्वारा लिखित 'लेटर्स ऑन इंग्लिश', रूसो द्वारा लिखित 'डिस्कोर्स ऑन इक्वैलिटी', तथा 'सोशल काण्ट्रेक्ट', मॉण्टेस्क्यू की 'स्पिरिट ऑफ लॉ' शामिल थी।

3.4 प्रबोधन से संबंधित विचार

प्रबोधन युग के दार्शनिकों ने सर्वाधिक महत्व स्वतन्त्रता, विकास, तर्क, सहिष्णुता और चर्च तथा राज्य की बुराइयों को समाप्त करने में दिया। हांलाकि इन उददेश्यों को प्राप्त करने के साधनों में उनके विचारों में वैभिन्य मिलता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उत्पन्न चिंतन ने इस युग के विचारों को परिवर्तित कर दिया था, अब धर्मनिरपेक्ष चिंतन और विवेकपूर्ण पूछताछ को बढ़ावा दिया जाने लगा। इस काल के लेखक सामाजिक बुराइयों को उद्घाटित करने लगे। उन्होंने तर्क, सहिष्णुता और मानवता को सबसे आगे रखा। प्रबोधन युग में आम जनता के विचारों और दृष्टिकोण में विज्ञान तथा तर्क को बढ़ावा देने के कारण इतना अधिक परिवर्तन आ गया कि अनेकों लोग इसे बौद्धिक क्रान्ति भी कहने लगे। इस युग में चिंतन का केन्द्र मनुष्य था और मानव कल्याण को परम लक्ष्य माना गया। यह माना गया कि राज्य, चर्च तथा अन्य संस्थाओं को निरंतर मानव कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। अब मानव गरिमा, मानवीय अधिकार तथा मानवीय आदर्शों को स्थापित किया जाने लगा, इन्होंने मध्यकालीन परंपराओं, सामंतवादी समाज, रूढ़िवादी धर्म और निरंकुश राजतन्त्र सभी का तिरस्कार करना प्रारंभ किया।

इस युग का यह सामान्य विचार था कि विश्व एक विशाल मशीन की भांति है जो कुछ प्राकृतिक नियमों के अनुसार संचालित होती है, ये नियम शाश्वत एवं अपरिवर्तनीय हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह इन प्राकृतिक नियमों का पता लगाये, अपने क्रियाकलापों को इन नियमों के अनुसार संचालित करे और इन नियमों का अतिक्रमण करने का प्रयत्न न करे। बुद्धि और तर्क द्वारा इन प्राकृतिक नियमों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, जो नियम तर्क एवं बुद्धि की कसौटी में खरे उतरते हैं, वे ही सही है और मनुष्यों के लिए श्रेयस्कर हैं, लेकिन जो तर्क, बोधगम्य न होकर केवल प्राचीन मान्यताओं, विश्वासों और परम्पराओं पर आधारित हैं वे मनुष्य के लिए हितकारी नहीं हो सकते हैं। मनुष्य एक बुद्धिवान प्राणी है जिसके द्वारा वह प्राकृतिक नियमों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। सभी मुनष्य एक समान उत्पन्न होते हैं, उनमें जो अन्तर मिलता है वह केवल शिक्षा और उन्नति के समान अवसर न मिल पाने की वजह से है। समाज में सभी मनुष्यों का समान स्थान और महत्व होता है।

3.5 कुछ प्रमुख विचारक

प्रबोधन का युग बौद्धिक क्रियाकलाप का युग है, इस युग में अनेकों दार्शनिकों, लेखकों, वैज्ञानिकों ,विचारकों एवं चिंतकों ने जनसामान्य के मध्य ज्ञान, बुद्धि, तर्क के प्रति जागृति उत्पन्न करने का कार्य किया था। कुछ प्रमुख विचारकों के विषय में आपको यहां पर जानकारी दी जा रही है–

3.5.1 पियरे बेयल

पियरे बेयल

फ्रांस का पियरे बेयल, लुई XIV का समकालीन था। वह सत्य का पक्षपाती था और वैज्ञानिक चिंतन पर विश्वास रखता था। उसका मानना था कि किसी भी धर्म के अनुयायियों को अपने विरोधियों के साथ शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसमें प्रतिक्रिया होती है जिसका कोई अंत नहीं होता। अपनी पुस्तक 'व्हॉट होली कैथोलिक फ्रांस अण्डर दी रिजीम ऑफ लुई फोरटीन्थ रियली इज?' में उसने लुई XIV द्वारा नॉट की घोषणा की आलोचना की है। उसकी, 'हिस्टोरिकल एण्ड क्रिटिकल डिक्शनरी' में उसने वैज्ञानिकों, इतिहासकारों, धर्मशास्त्रियों और दार्शनिकों के जीवन तथा उनकी कृतियों एवं विचारों का सूक्ष्म विवेचन किया है।

3.5.2 मॉण्टेस्क्यू

मॉण्टेस्क्यू

मॉण्टेस्क्यू भी फ्रांस का एक प्रसिद्ध विचारक था।उसका जन्म 1689 ई. में फ्रांस के एक कुलीन घराने में हुआ था।वह उच्च कोटि का वकील और बोर्दो की संसद में न्यायाधीष था।फ्रांस की तत्कालीन शासन पद्यति से वह असंतुष्ट था, 1729 ई. में अपने इंग्लैण्ड भ्रमण के दौरान उसे इंग्लैण्ड की शासन व्यवस्था को नजदीक से जानने का अवसर मिला और उसे प्रतीत हुआ कि इंग्लैण्ड की शासन व्यवस्था फ्रांस से काफी अच्छी है। उसकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना, 'स्पिरिट ऑफ लॉज' में उसने अपने विचारों को व्यक्त किया है।वह इस बात को नहीं मानता था कि इसमें सामाजिक, भौगोलिक, राजनीतिक तथा आर्थिक शक्तियों के संबंधों पर चर्चा की गयी है। साथ ही दासता, धार्मिक अत्याचार और निरंकुशतावाद पर आक्रमण किया गया है। उसने राजा के दैवी अधिकारों की निंदा की है और संवैधानिक राजतन्त्र का समर्थन किया है। इस पुस्तक में उसने 'शक्ति पार्थक्य' के सिद्धान्त को भी प्रतिपादित किया है। **स्पिरिट ऑफ लॉज** की गणना विश्व के महानतम् ग्रन्थों में की जाती है। 'पर्शियन लेटर्स' नामक उसकी पुस्तक फ्रांस के तत्कालीन धर्म, रीति–रिवाजों, परम्पराओं तथा निरंकुश शासन पर व्यंग करती है और फ्रांस के तत्कालीन पतनोन्मुख राजतंत्रपर भी गहनता से विचार करती है।

अठारहवीं सदी में माण्टेस्क्यू का प्रथक्करण का सिद्धान्त जनता में अत्यधिक लोकप्रिय हुआ और इस सिद्धान्त को राजनीतिक स्वतंत्रता का मूल मन्त्र माना जाने लगा।

3.5.3 वॉल्टेयर

फ्रांस का वॉल्टेयर एक महान् लेखक, कवि, दार्शनिक, पत्रकार, नाटककार, आलोचक और व्यंगकार था।उसका जन्म 1694 ई. में पेरिस के एक धनी परिवार में हुआ था। उसने अपने लेखन द्वारा राज्य और चर्च में

व्याप्त भ्रष्टाचार, अभिजात्य वर्ग के विशेषाधिकार इत्यादि की घोर आलोचना की।उसकी शैली व्यंगात्मक थी, उसने फ्रांस में प्रचलित तत्कालीन कुप्रथाओं में तीखे व्यंगात्मक लेख लिखे और समाज को जागरूक किया, शीघ्र ही वह यूरोप में एक लोकप्रिय साहित्यकार के रूप में जाना जाने लगा। उसकी कुछ प्रमुख पुस्तकों में, 'लैटर्स ऑन इंग्लिश', 'एज ऑफ लुई XIV', 'ट्रिटाइज ऑन टॉलरेन्स' हैं। वॉल्टेयर को समस्त यूरोप में विवेक, प्रबुद्धता और प्रकृति के सिद्धान्त के प्रचार–प्रसार का श्रेय दिया जा सकता है। उसने निरन्तर अन्याय, कटटरता, विशेषाधिकार और धार्मिक दुराग्रह का प्रभावशाली ढंग से विरोध किया, उसके समय के लोग सम्मान से उसे 'राजा वॉल्टेयर' कहते थे।उसने अपने युग में प्रचलित अन्याय, अत्याचार, धार्मिक पक्षपात और अंधविश्वासों के विरूद्ध जमकर लिखा लेकिन वह सर्वाधिक विरोधी तत्कालीन चर्च व्यवस्था का था और उसने चर्च के विरूद्ध तीखे व्यंगात्मक बाण चलाये। इतिहासकार एच. जे. रोज ने उसे 'फ्रांसीसी विचारों का पूर्ण दर्पण' बताया है।

वॉल्टेयर

3.5.4 जीन जैकस रूसो

जीन जैकस रूसो को फ्रांस का सबसे प्रबुद्ध दार्शनिक माना जाता है।उसका जन्म 1712 ई. में जेनेवा में हुआ था, उसका पिता एक घड़ीसाज था। उसने अनेक निबन्ध, लेख तथा उपन्यासों के साथ–साथ स्वयं की जीवनी भी लिखी।अपने एक निबंध 'डिस्कोर्सेज ऑन साइन्स एण्ड आर्टस्' में में उसने तत्कालीन सभ्यता की जमकर आलोचना की। उसने लिखा कि भौतिक सुख होने का मतलब आर्थिक प्रगति कदापि नहीं है, वरन् आधुनिक काल की प्रगति तो मनुष्य को पतन के मार्ग में ले जा रही है। मनुष्य की वास्तविक प्रगति वस्तुतः नैतिक प्रगति है। उसका मानना था कि आधुनिक युग के विपरीत प्राचीन काल का मनुष्य अधिक नैतिक था। आधुनिक युग में नैतिकता की जगह असमसनता, भ्रष्टाचार, क्रूरता और द्वेष का अधिक विकास हुआ है। उसकी सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तक, 'सोशल काण्ट्रेक्ट' है। इसी पुस्तक कें प्रारंभ में लिखा गया है कि, *'मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है परन्तु वह सर्वत्र जंजीरों में जकड़ा हुआ है।'* इस पुस्तक के अनुसार आदिम काल में मनुष्यों को स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व प्राप्त था, लेकिन जैसे–जैसे मनुष्य सभ्य होता गया उसने एक समवेत शक्ति उत्पन्न करने के लिए समझौता किया और इस प्रकार राज्य का जन्म हुआ। रूसो के अनुसार राज्य का जन्म सत्ता तथा उन लोगों के बीच एक समझौता था, जिन्होंने उसका निर्माण किया था। अतः सत्ताधिकारी यहां तक कि स्वयं राजा भी जनता के प्रतिनिधि हैं। अतः यदि जनता के प्रतिनिधि स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व–भाव में हस्तक्षेप करते हैं तो जनता को चाहिए कि वह उन्हें बदल दे। रूसो निरंकुश राजतन्त्र का घोर विरोधी था। वह जनतन्त्र को आदर्श शासन प्रणाली मानता था। रूसो की महानता के विषय में नेपोलियन ने कहा था कि, *'रूसो का जन्म न होता तो फ्रांस की राज्य क्रांति का होना असंभव था।*

रूसो

3.5.5 दिदरो

दिदरो

दिदरो भी फ्रांस का एक प्रमुख दार्शनिक था। वह '**इनसाइक्लोपीडिया**' का प्रमुख संकलनकर्ता था। सभी मध्यकालीन संस्थाओं का उसने घोर विरोध किया था, उसका मानना था कि समस्त कटुता को निरकुंश शासकों एवं पादरियों ने उत्पन्न किया था। उसकी इनसाइक्लोपीडिया में धार्मिक असहिष्णुता, अन्धविश्वास, दासों के व्यापार, पादरियों का भ्रष्ट जीवन, अवांछित करों और अभिजात वर्ग के विशेषाधिकारों को निशाना बनाया गया है। इस ग्रन्थ में विज्ञान और तर्कवाद को सर्वाधिक महत्व दिया गया है।

3.5.6 क्वेसने

क्वेसने

क्वेसने फ्रांस का एक भू–अर्थशास्त्री था, वह लुई पन्द्रहवें का राजवैद्य भी था वह और उसक अर्थशास्त्री मित्र आय–व्यय व्यापार, व्यवसाय इत्यादि विषयों में चिंतन करते थे। उनका मानना था कि उस काल में विद्यमान आर्थिक बुराइयों को दूर कर उन पर सुर करना चाहिए। उस काल में भू–अर्थशास्त्रियों का मानना था कि भूमि और कृषि ही धन के वास्तविक स्रोत होते हैं , क्योंकि व्यापार में केवल स्थान परिवर्तन के कारण वस्तु का मूल्य बढ़ता है और उसे धन का उत्पादन नहीं कहा जा सकता है।वास्तव में देखा जाय तो सभी चीजें प्रकृति की ही देन हैं,अतः धन का मूल स्रोत तो प्रकृति ही है, जहां से हमें कृषि उत्पाद, मत्स्य उत्पाद और खनिज पदार्थ प्राप्त होते हैं और वास्तव में ये ही धन उत्पन्न करते हैं अतः राज्य को चाहिए कि वह उत्पादन के इन क्षेत्रों में हस्तक्षेप न करे और उन्मुक्त व्यापार को प्रोत्साहित करे। क्वेसने का मानना था कि किसानों पर कर्ज का बोझ कम होना चाहिए क्योंकि यदि किसान गरीब है तो राज्य के साथ–साथ राजा भी गरीब हो जायेगा। क्वेसने और उसके साथियों का प्रधान सिद्धान्त था कि आर्थिक जगत को खुला छोड़ दो

स्वमूल्यांकित प्रश्न

अग्रांकित प्रश्नों में रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. व्हॉट होली कैथोलिक फ्रांस अण्डर दी रिजीम ऑफ लुई फोरटीन्थ रियली इज?' के लेखक.......................हैं।
2. स्पिरिट ऑफ लॉज' के लेखक.......................हैं।
3. लेटर्स ऑन इंग्लिश' के लेखक.......................हैं।
4. डिस्कोर्स ऑन इक्वैलिटी' के लेखक.......................हैं।
5. सोशल काण्ट्रेक्ट के लेखक.......................हैं।
6. *'मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है परन्तु वह सर्वत्र जंजीरों में जकड़ा हुआ है।'*यह कथन ....ने कहा है।
7. *'रूसो का जन्म न होता तो फ्रांस की राज्य क्रांति का होना असंभव था*।यह कथन ....ने कहा है।

8. .... 'इनसाइक्लोपीडिया' का प्रमुख संकलनकर्ता था।

9. 'एज ऑफ लुई XIV के लेखक......................हैं।

10. ट्रिटाइज ऑन टॉलरेन्स' के लेखक......................हैं।

11. 'हिस्टोरिकल एण्ड क्रिटिकल डिक्शनरी' के लेखक......................हैं।

12. 'पर्शियन लेटर्स' के लेखक......................हैं।

13. प्रिसंपिया के लेखक.................हैं।

3.6 प्रबोधन का प्रभाव

18वीं सदी बुद्धिवाद और तर्कवाद की सदी थी, जैसा कि ऊपर बताया गया है विभिन्न दार्शनिकों, विद्वानों ने अपने लेखन द्वारा इस काल में व्यापक जनजागृति उत्पन्न कर दी थी। यह स्वाभाविक है कि इस जागृति का प्रभाव यूरोप के विभिन्न शासकों में भी पड़ा। इस काल के प्रमुख शासक जिनमें इस जागृति का प्रभाव पड़ा था, उनमें रूस की साम्राज्ञी कैथरीन, ऑस्ट्रिया का सम्राट जोसेफ द्वितीय, प्रशा का राजा फ्रेडरिक द्वितीय, स्पेन का राजा चार्ल्स तृतीय, पुर्तगाल का शासक जोसेफ प्रथम, स्वीडन का राजा गुस्ताव तृतीय तथा टस्कनी का शासक चार्ल्स इमैन्युअल तृतीय प्रमुख थे। यद्यपि ये सभी शासक स्वेच्छाचारी और निरंकुश थे और अपनी इच्छा को ही कानून मानते थे पर जागृति की लहर ने इन्हें प्रबुद्ध निरंकुश बना दिया, इन्होंने अपने–अपने देशों की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अवस्था को नये विचारों के अनुसार परिवर्तित करने का प्रयास किया। सभी ने कम या अधिक मात्रा में प्रशासनिक सुधारों को क्रियान्वित किया। कानूनी कार्यप्रणाली में एकरूपता लाने का प्रयास किया, कानूनों को संहिताबद्ध किया, कर–पद्धति को न्याय संगत बनाया। जन साधारण की शिक्षा व्यवस्था, कृषि दासों के प्रति मानवीयता, साहित्य का विकास, चिकित्सालयों का निर्माण आदि कार्यों को किया जाने लगा।

धर्म एवं अध्यात्म का क्षेत्र भी दार्शनिकों की आलोचना का प्रमुख क्षेत्र था, अतः यहां भी व्यापक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इस युग के प्रारंभ में लोगों की जो धार्मिक मान्यताऐं थी वे वस्तुतः इसाई धर्मग्रन्थों में लिखी बातों पर आधारित थीं और उनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था। बौद्धिक क्रान्ति ने लोगों को यह समझाया कि इन प्रमाणों का तब तक कोई मूल्य नहीं जब तक कि उनमें लिखी बातें तर्क एवं बुद्धि की कसौटी में खरी न उतरें, इन ग्रन्थों की उन बातों को छोड़ने को कहा गया जो तार्किक न हों, बातों को स्वीकार करने से पहले उनकी सत्यता परीक्षण एवं तर्क से जांचना आवश्यक हो गया।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

सही उत्तर छांटिये–

1. मॉण्टेस्क्यू की पुस्तक का क्या नाम था–

(i) द स्पिरिट ऑफ लॉज (ii) नेपालियन कोड

(iii) सोशल कॉण्ट्रेक्ट (iv) सभी गलत हैं

2.शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किस विद्वान ने किया–

(i) वॉल्टेयर (ii)दिदरो

(iii)मॉण्टेस्क्यू (iv)रूसो

3.''मनुष्य स्वतन्त्र उत्पन्न हुआ है, किन्तु सर्वत्र जंजीरों में जकड़ा हुआ है'' यह किसने कहा था–

(i) नेपालियन बोनापार्ट (ii)रूसो

(iii)मॉण्टेस्क्यू (iv) वॉल्टेयर

4. रूसो की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम क्या है–

(i) सोशल कॉण्ट्रेक्ट (ii) द स्पिरिट ऑफ लॉज

(iii)ऑर्गेनाइजेशन ऑफ लेबर (iv)सोशल रिकन्स्ट्रक्शन

3.7 सारांश

फ्रांसीसी इतिहासकार परम्परागत रूप से प्रबोधन के काल को 1715 ई0 जब लुई XIV की मृत्यु हुई थी और 1789 ई0 जब फ्रांस की क्रांति की शुरूआत हुई थी, के मध्य रखते हैं, जबकि कुछ आधुनिक इतिहासकार 1620 के दसक से प्रबोधन के युग का प्रारंभ मानते हैं जब वैज्ञानिक क्रान्ति का प्रारंभ हुआ था। 18वीं सदी के प्रारंभिक दौर से ही अनुमान का केन्द्र धार्मिकता से हटकर धर्मनिरपेक्ष होने लगा था। प्रबोधन युग के दार्शनिकों ने सर्वाधिक महत्व स्वतन्त्रता, विकास, तर्क, सहिष्णुता और चर्च तथा राज्य की बुराइयों को समाप्त करने में दिया। इस युग के प्रमुख विचारकों में फ्रांस के मॉण्टेस्क्यू (1689–1755); वॉल्टेयर (1694–1778); दिदरो (1713–1784); रूसो (1712–1778); कांडिलैक (1714–1780) और काण्डोर्सेट (1743–1794); ब्रिटेन के डेविड ह्यूम (1711–76) और एडम स्मिथ (1723–1790); जर्मनी के लेसिंग (1729–1781), और काण्ट (1724–1804); इटली के गैम्बटिस्टा विको (1668–1744); बेकारिया (1734–1794) और पगानो (1748–1799) आदि शामिल थे।

3.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. पियरे बेयल
2. मॉण्टेस्क्यू
3. वॉल्टेयर
4. जीन जैकस रूसो
5. जीन जैकस रूसो
6. जीन जैकस रूसो
7. नेपोलियन

8. दिदरो

9. वाल्टेयर

10. वॉल्टेयर

11. पियरे बेयल

12. मॉण्टेस्क्यू

13. न्यूटन

14. वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1 . i   2 . iii   3 . ii   4 . i

3.9शब्दावली

आशावाद : यह विचार की भविष्य अच्छा होगा
इनसाइक्लोपीडिया : विश्वकोश
बोधगम्य : बुद्धि के तर्क–वितर्क से समझ में आने योग्य
अभिजात्य वर्ग : पोप, पादरी, राजा, उच्च अधिकारी एवं धनी लोग
दैवी अधिकार : ईश्वर द्वारा दिये गये अधिकार

3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

---

1. विश्व का इतिहास 1500–1950 : जैन एवं माथुर, जैन पुस्तक मंदिर, चौड़ा रास्ता, जयपुर।
2. आधुनिक पश्चिम का उदय – पार्थसारथि गुप्ता
3. ए हिस्ट्री आफ वर्ल्ड सिविलाइजेशन – जे0ई0 स्वेन
4. द आउट लाइन आफ हिस्ट्री – एस0जी0 वेल्स
5. हेज, सी.जे.एच.–ए पोलिटिकल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ मार्डन यूरोप, भाग 1एवं 2

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. प्रबोधन से आप क्या समझते हैं? इस युग के प्रमुख विचारकों के बारे में बताइये।

इकाई एक – अमेरिकी क्रान्ति एवं उसका महत्त्व

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 अमेरिकी क्रान्ति के मौलिक कारण

1.3.1 औपनिवेशिक शासन की त्रुटिपूर्ण व्यवस्था

1.3.2 इंगलैण्ड की व्यापारिक नीति

1.3.3 अन्य आर्थिक प्रतिबन्ध

1.3.4 जहाजरानी अधिनियम

1.3.5 सप्तवर्षीय युद्ध का प्रभाव

1.3.6 अमेरिका व इंगलैण्ड के परस्पर विरोधी दृष्टिकोण

1.3.7 ग्रेनविल के अनुचित कार्य

1.4 अमेरिकी युद्ध के तात्कालिक कारण

1.4.1 स्टाम्प अधिनियम

1.4.2 आयात कर अधिनियम

1.4.3 बोस्टन टी पार्टी

1.5 स्वतंन्त्रता संग्राम का आरम्भ

1.5.1 वर्साय की संधि

1.5.2 अमेरिका का सविधान

1.5.3 अंग्रेजो की असफलता के कारण

1.5.4 क्रांति का स्वरूप

1.6 अमेरिकी क्रान्ति का महत्त्व

1.7 अमेरिका के स्वतंत्र संग्राम के परिणाम

1.7.1 जार्ज तृतीय की निरंकुश शासन का अन्त

1.7.2 इंगलैण्ड द्वारा नवीन उपनिवेशों की स्थापना

1.7.3 इंगलैण्ड की परम्परागत औनिवेशिक नीति में परिवर्तन

1.7.4 आयरलैण्ड की जनता के अधिकारों में वृद्धि

1.7.5 फ्रांस की राजनीति पर प्रभाव

1.8 सारांश

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अमेरिकी क्रान्ति विश्व इतिहास के युगान्तरी घटनाओं में से एक है। इसने न केवल इंगलैण्ड एवं अमेरिका को प्रभावित किया, बल्कि सम्पूर्ण विश्व की राजनीति पर अपना गहरा प्रभाव डाला। इस क्रान्ति के बाद जनतांत्रिक, राजनीतिक व्यवस्था तथा राष्ट्रवाद पर आधारित स्वतंत्र राज्यों की स्थापना ,सारे संसार के लोगों का मुख्य ध्येय हो गया। ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध अमेरिकी उपनिवेशों की जनता ने सम्पूर्ण विश्व के सामने स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीयता की एक प्रेरणा दायक मिसाल पेश की।

अमेरिका में स्थित ब्रिटिश उपनिवेशों की कुल संख्या तेरह थी। उनमें आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक दृष्टि से परस्पर भिन्नता थी। प्रत्येक उपनिवेशों में अपनी अलग–अलग व्यवस्थापिका थी। ग्रेट ब्रिटेन द्वारा अपने उपनिवेशों पर बहुत सीमित मात्रा में अधिकार रखा जाता था। प्रत्येक उपनिवेशों में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक गर्वनर जनरल की नियुक्ति की जाती थी ,यद्यपि उपनिवेशों की रक्षा का दायित्व ग्रेट ब्रिटेन पर था, किन्तु सामान्यतः उपनिवेश अपनी रक्षा स्वंय करते थे। ग्रेट ब्रिटेन इन उपनिवेशों से कच्चा माल मंगाता था तथा निर्मित माल इन उपनिवेशों को भेजता था। इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से अन्य महान शक्तियों के उपनिवेशों की अपेक्षा ब्रिटेन के उपनिवेशों की स्थिति संतोषजनक थी। इतना होने के बावजूद अमेरिकावासियों ने ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध स्वतंत्रता संग्राम प्रारम्भ क्यों किया ? यह एक विचारनीय बिन्दू है। वास्तव में इस युद्ध के कारणों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। (1) दूरवर्ती अथवा मौलिक कारण (2) तात्कालिक अथवा प्रत्यक्ष कारण।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि

- अमेरिकी की क्रान्ति के मौलिक एवं तात्कालिक कारण क्या थे।
- शोषण एवं असमानता के विरूद्ध लोगों में जागृति।
- अमेरिकी क्रान्ति का प्रस्फोटन एवं संघर्ष।
- वर्साय की संधि एवं इसके प्रावधान।
- अमेरिकी क्रान्ति का महत्त्व
- अमेरिका के स्वतंत्र आन्दोलन का विश्व समुदाय पर प्रभाव।

1.3 अमेरिकी क्रान्ति के मौलिक कारण

1.3.1 औपनिवेशिक शासन की त्रुटिपूर्ण व्यवस्था

प्रत्येक उपनिवेशक के गवर्नर को शासन–कार्य में सहायता करने के लिए एक व्यवस्थापिका होती थी, जिसके सदस्यों का चुनाव जनता करती थी। गवर्नर–कार्यकारिणी के सदस्यों का मनोनयन ब्रिटिश सम्राट द्वारा किया जाता था। व्यवस्थापिका जनता के प्रति उत्तरदायी होती थी, जबकि कार्यकारिणी सम्राट के प्रति उत्तरदायी होती थी। कानून का निर्माण करना तथा कर निर्धारण करना व्यवस्थापिका का कार्य था। किन्तु सबसे बड़ी विडम्बना यह थी कि व्यवस्थापिका द्वारा कानून को स्वीकार करने अथवा उन्हें रद्द करने का पूर्ण अधिकार गवर्नर जनरल को ही था। यह दोहरी शासन–व्यवस्था उपनिवेशों की जनता के असन्तोष का कारण बनी। उपनिवेशवासी अपने आंतरिक मामलों में अधिक राजनीतिक स्वतंत्रता चाहते थे, जबकि इसके विपरीत इंगलैण्ड उपनिवेशों के आन्तरिक मामलों को अपने नियन्त्रण में रखने के उद्देश्य ये अधिकतम हस्तक्षेप करता था, जो उपनिवेशों की जनता को पसन्द नहीं था।

1.3.2 इंगलैण्ड की व्यापारिक नीति

आर्थिक मामलों में ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीति भी उपनिवेशवासियों के असंतोष का एक मुख्य कारण था। इंगलैण्ड, उपनिवेशों के आर्थिक शोषण की नीति का पालन करता था, तथा व्यापारिक नीति का निमार्ण अपने हितों को ध्यान मे रखकर करता था, न कि उपनिवेशों के हितों को। इंगलैण्ड ने अमेरिकी उपनिवेशों को अपनी स्वंय की अर्थव्यवस्था विकसित करने के लिए कभी प्रोत्साहन नहीं दिया। उपनिवेशों में लोहे के सामान, ऊनी वस्त्र, एवं टोपी बनाने के कार्य या तो निषिद्ध थे अथवा अति परिमित थे, जिससें उनका माल इंगलैण्ड से आने वाले माल से प्रतिस्पर्धा न कर सके। इंगलैण्ड अधिक से अधिक मात्रा में कच्चा माल उपनिवेशों से लाना चाहता था, और पुनः उनसे निर्मित वस्तुओं को उपनिवेशों में ऊँचे दामों पर बेचना चाहता था। उपनिवेशों के कुछ प्रमुख फसलें जैसे–कपास और तम्बाकू केवल ब्रिटेन को ही भेजा जा सकता था। इसका परिणाम यह हुआ कि इंगलैण्ड के व्यापारी अपनी स्वेच्छा से इन फसलों का दाम लेने लगे। इंगलैण्ड के व्यापारी इन वस्तुओं को स्वदेश में ही तथा अन्य देशों में ऊँचे दामों पर बेचकर काफी धन पैदा कर रहे थे। इस प्रकार सभी तरह से उपनिवेशों के उद्योग तथा व्यापार के विकास में रोड़े अटकाए जा रहे थे, अतः संघर्ष एवं प्रतिस्पर्धा की भावना पैदा होना निश्चित सा हो गया था।

1.3.3 अन्य आर्थिक प्रतिबन्ध

उपनिवेशवासियों पर अनेक अन्य व्यापारिक प्रतिबन्ध भी लगे हुए थे। इंगलैण्ड को छोड़कर कोई अन्य देश सीधे अमेरिका के साथ व्यापार नहीं कर सकता था और न अमेरिका को ही उन देशों के साथ व्यापार करने दिया जाता था। गैर–ब्रिटिश उपनिवेशों के साथ भी उपनिवेशवासियों को व्यापार करने की स्वतंत्रता नहीं थी। ब्रिटीश सांसद ने कुछ ऐसे कानून पास किए, जिससे अमेरिकी व्यापार को धक्का लगा। 1699 ई0 में एक कानून के द्वारा संसद ने उपनिवेशों से ऊनी माल बाहर भेजने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। 1732 ई0 के एक अन्य कानून के अनुसार अमेरिका से हैट बाहर भेजने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस प्रकार अमेरिकी व्यापार की प्रगति प्रतिबन्धों के द्वारा अवरूद्ध कर दी गयी। हालत यह थी कि वे बटन तथा घोड़े के नाल भी नहीं बना सकते थे।

1.3.4 जहाजरानी अधिनियम

ब्रिटेन की सरकार ने 1651, 1660 और 1689 ई0 जहाजरानी अधिनियम पास किये। ये अधिनियम उपनिवेशों के लिए अहितकर थे, इसलिए वे अप्रसन्न हो गये। वस्तुतः कुछ सीमा तक ये अधिनियम संघर्ष के कारण बने। इनके परिणामस्वरूप उपनिवेशों का व्यापार केवल अंग्रेजी जहाजों के माध्यम से ही किया जा सकता था। इस अधिनियम के द्वारा यह भी प्रतिबन्ध लगाया गया कि उपनिवेश विदेशों से सीधा व्यापार नहीं कर सकते थे, पुनः उसके जो माल इंगलैण्ड में उतारे जाते थे, उनसे चुगीं वसूली जाती थी। इससे उपनिवेशों के व्यपारियों को काफी हानि होती थी। वे विदेशों से सीधा व्यापार करना चाहते थे। दूसरी और क्रान्ति के पूर्व इंगलैण्ड के प्रधानमंत्री ग्रेनविल ने व्यापारिक नियमों का कठोरता से पालन करना चाहा। यह भी क्रान्ति का एक महत्वपूर्ण कारण बना।

1.3.5 सप्तवर्षीय युद्ध का प्रभाव

सप्तवर्षीय युद्ध में फ्रांस की पराजय हो जाने से सम्पूर्ण उत्तरी अमेरिका पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया , इससे रेड इंडियन का यह भय स्थायी हो गया कि अंग्रेज सारे देश में फैल जाएगें और उनका नाश कर देगें। अतः वे विद्रोह करने लगे थे। इन विद्रोहों को दबाने तथा उपनिवेशवासियों की सुरक्षा के लिए एक विशाल स्थायी सेना को रखना आवश्यक हो गया। सरकार इस सेना पर होने वाले व्यय की अदायगी उपनिवेशवासियों पर नए कर लगाकर करना चाहती थी। यह भी असंतोष का एक महत्वपूर्ण बना। सप्तवर्षीय युद्ध में इंगलैण्ड को आर्थिक समस्या का सामना करना पड़ा तथा उसका राष्ट्रीय ऋण बढ़ गया। किन्तु अमेरिका की जनता को इंगलैण्ड की समस्याओं के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। उसका तत्कालीन उद्देश्य आर्थिक व सामाजिक समस्याओं का

समाधान ढूढ़ना था। इस प्रकार पारस्पारिक द्वेष की अग्नि धीरे–धीरे प्रज्ज्वलित होने लगी थी। सप्तवर्षीय युद्ध के परिणामों ने अमेरिका की जनता में स्वतंत्रता की भावना का सूत्रपात करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

1.3.6 अमेरिका व इंगलैण्ड के परस्पर विरोधी दृष्टिकोण

अमेरिका में स्थित ब्रिटिश उपनिवेशों की जनता भी अंग्रेज जाति से सम्बन्धित थे, फिर भी दोनों का राजनीतिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण अलग–अलग थे। अमेरिका के निवासी जनतन्त्र के समर्थक थे, जबकि इंगलैण्ड की जनता कुलीन राजतंत्र की समर्थक थी ,जो अंग्रेज ब्रिटेन से अमेरिका के लिए निष्कासित किये गये थे, उनका भी राजनीतिक व धार्मिक दृष्टि से इंगलैण्ड की सरकार से मतभेद था। वे अंग्रेजों के अनुचित व्यवहार को सहन नहीं करते थे तथा अमेरिका के निवासियों में स्वतंत्रता व जनतन्त्रता की भावना विकसित करते रहते थे इसके अतिरिक्त अमेरिका प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति और विकास करने लगा था जिसके फलस्वरूप वहाँ के निवासियों में स्वतंत्रता व जनतंत्रता की भावना के प्रति आर्कषण उत्पन्न हो गया । दूसरी तरफ इंगलैण्ड की सरकार व जनता अमेरिका के उपनिवेशों पर राजतंत्रीय सिद्धान्तों के अनुसार अपना अधिकार बनाये रखना चाहती थी। वास्वत में इंगलैण्ड के तत्कालीन समाज में राजतन्त्र के समर्थकों, दास व्यापार करने वालों, सेनानायकों तथा बड़े व्यापारियों का विशेष प्रभुत्व था। ये लोग अमेरिकावासियों की स्वतंत्रता व जनतन्त्र की भावनाओं को किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं कर सकते थे। इस प्रकार दोनों देशों में परस्पर विरोधी दृष्टिकोण के कारण संघर्ष अनिवार्य हो गया।

1.3.7 ग्रेनविल के अनुचित कार्य

1763 ई0 में सप्तवर्षीय युद्ध के समाप्त होने के तुरन्त पश्चात ब्रिटिश प्रधानमंत्री ग्रेनविल ने अमेरिका स्थित ब्रिटीश उपनिवेश के सम्बन्ध में चार नियम पारित किये, ये सभी नियम अमेरिका की जनता के हितों के विपरीत थे। उसने उपनिवेशों में चोर बाजारी रोकने के लिए तथा वाणिज्य प्रणाली के स्थापित नियमों का विरोध करने वालों को दण्डित करने के लिए 1763 ई0 में एडमिरेल्टी कोर्ट (Admirality Court) की स्थापना की। इसी वर्ष शोरा कानून (Molasses Act) पारित करके अमेरिका में शोरा पर आयात कर घटा दिया गया। ग्रेनविल ने अमेरिकावासियों की सुरक्षा के नाम पर अमेरिका में छोटी सेना रखने की घोषणा की तथा इस सेना के सम्पूर्ण व्यय का 1/3 भाग का भुगतान करने का आदेश अमेरिकावासियों को दिया गया। एक अन्य नियम के अनुसार मिसीसिपी के बड़े–बड़े रेड इण्डियन्स (Red- Indians) के लिए सुरक्षित कर दिये गये। ग्रेनविल के इन कार्यों से अमेरिका की जनता अत्यन्त क्रोधित हो गई, क्योंकि उसकी दृष्टि में ये नियम इतने अपमानजनक थे कि जनता ने इन नियमों के विरोध में क्रान्ति करने का निश्चय कर लिया।

1.4 अमेरिकी युद्ध के तात्कालिक कारण

उपर्युक्त घटनाओं के साथ–साथ कुछ ऐसी घटनाएँ भी घटित हुई, जिन्होंने तात्कालिक रूप में अमेरिकावासियों को स्वतंत्र संग्राम के लिए प्रेरित किया था। ऐसी ही कुछ प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखित है :–

1.4.1 स्टाम्प अधिनियम

1765 ई0 में ब्रिटिश सरकार साम्राज्य के व्यय की पूर्ति के लिए अमेरिकी उपनिवेशों की जनता से कुछ धन वसूल करना चाहती थी, किन्तु अमेरिकावासी सरकार को किसी प्रकार की आर्थिक सहायता देने को तैयार नहीं थे। फलस्वरूप ब्रिटिश प्रधानमंत्री ग्रेनविल ने 1765 में संसद में स्टाम्प अधिनियम पारित कराया। इस अधिनियम के अनुसार अमेरिका में सभी दस्तावेजों एवं कानूनी कागजातों पर सरकार द्वारा निर्धारित शुल्क का स्टाम्प लगाना अनिवार्य कर दिया गया। सरकार ने यह कदम साम्राज्य की आय में वृद्धि करने के उद्देश्य से उठाया था, किन्तु स्टाम्प या अन्य किसी रूप में अमेरिकावासियों से धन वसूल करना सरल कार्य नहीं था। आशंका के अनुरूप अमेरिका की जनता ने एक स्वर से इस अधिनियम का विरोध किया। सभी उपनिवेशवासियों ने ब्रिटीश सरकार के इस कदम का विरोध किया। उस समय तक ब्रिटीश संसद में अमेरिकावासियों को प्रतिनिधित्व

प्राप्त नहीं था अतः चारों ओर से आवाज आने लगी – 'प्रतिनिधित्व के बिना कोई कर नहीं' (No Taxation Without Representation) अमेरिका की जनता की यह दृढ़ धारणा थी कि ब्रिटिश सरकार को उसके आतंरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है।

इस अधिनियम का लगभग सभी उपनिवेशों में कड़ा विरोध हुआ। स्थान–स्थान पर विद्रोह होने लगे। इस अधिनियम का सामूहिक एवं सशक्त विरोध करने के उद्देश्य से एक विशाल जनसभा का आयोजन किया गया, जिसमें भाग लेने के लिए सभी उपनिवेशों का एक विशाल जन समूह उमड़ पड़ा। ऐसा प्रतीत होने लगा कि ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध अमेरिका की जनता क्रान्ति करने के लिए कृतसंकल्प है। परिस्थिति को नियंत्रित करने के उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार ने विवश होकर 1766 ई0 में स्टाम्प अधिनियम को समाप्त कर दिया।

1.4.2 आयात कर अधिनियम

1767 ई0 ब्रिटिश सरकार ने आयात कर अधिनियम (Import Duties Act) पारित किया जिसके द्वारा अमेरिका में कागज चाय, शीशा, रंग, आदि वस्तुओं पर आयात कर लगा दिया गया। सरकार ने यह अधिनियम भी अमेरिका वासियों के सहमति के बिना पारित किया था। अतः स्वाभाविक रूप से इस अधिनियम का भी सर्वत्र विरोध होने लगा। उपनिवेशवासियों के विचार में यह कर अधिनियम भी औपनिवेशिक स्वराज के मौलिक सिद्धान्त के विपरीत था। अधिक विरोध होने पर सन् 1970 ई0 में प्रधानमंत्री लार्ड नार्थ ने कागज तथा शीशे से आयात कर समाप्त कर दिया, किन्तु चाय पर कर पूर्ववत बना रहा। यह नार्थ की भयंकर भूल थी। उपनिवेशवासी किसी वस्तु विशेष के लिए नहीं, अपितु सभी वस्तुओं पर कर लगाने के विरूद्ध थे अतः विरोध यथावत बना रहा।

1.4.3 बोस्टन टी पार्टी

1773 ई0 में ब्रिटिश सरकार ने एक नवीन चाय अधिनियम बनाकर अमेरिका में चाय बेचने का प्रत्यक्ष अधिकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी को प्रदान कर दिया। अमेरिका के निवासियों ने इस अधिनियम का भी विरोध किया तथा उन्हें बोस्टन के बन्दरगाह पर रूके हुये सभी अंग्रेजी जहाजों में बलात प्रवेश करके चाय के लगभग 350 डिब्बों को समुन्द्र में फेंक दिया। इस घटना से ब्रिटिश सरकार आश्चर्य में पड़ गयी। अमेरिका की जनता का यह कृत सरकार की शक्ति व अस्तित्व को चुनौती देने वाला तथा अपमानित करने वाला था। अतः सरकार ने अमेरिका में दमनात्मक कार्यवाही करने का निश्चय किया। सभी उपनिवेशों में सैनिक शासन लागू कर दिया गया। बोस्टन का बन्दरगाह सभी प्रकार के व्यापार के लिए बन्द कर दिया गया। सरकार के इस कार्यवाही के फलस्वरूप अनेक लोग बेकार हो गये। एक अन्य अधिनियम के द्वारा कनाडा की सीमा को ओहियों नदी तक बढ़ा दिया गया।

1.5 स्वतन्त्रता संग्राम का प्रारम्भ

ब्रिटिश सरकार की दमानात्मक कार्यवाही अमेरिकी जनता के अपमान का सूचक थी। अतः अमेरिका स्थित सभी उपनिवेशों की जनता की एक विशाल सभा 1774 ई0 में फिलाडेलफिया में आयोजित की गयी। इस सभा में ब्रिटिश सरकार से बात–चीत के द्वारा समस्या सुलझाने का प्रस्ताव पारित किया गया, किन्तु ब्रिटिश सम्राट जार्ज तृतीय तथा प्रधानमंत्री लार्ड नाथ की अदूरदर्शितापूर्ण नीति एवं हटधर्मी के कारण वार्ता सम्भव नहीं हो सकी। साम्राट द्वारा वार्ता के माध्यम से समस्या सुलझाने से इनकार करने तथा ब्रिटिश सेनाओं के सतर्क रहने के आदेश देने से स्थिति और गंभीर हो गयी। 1776 ई0 में सभी उपनिवेशों की एक सभा पुनः फिलाडेलफिया में आयोजित की गयी। 14 जुलाई 1776 ई0 को इस सभा ने अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी तथा सभी उपनिवेशो को मिलाकर संयुक्त राज्य अमेरिका के नाम से एक नये राष्ट्र की स्थापना की भी घोषणा कर दी। इसके साथ ही जार्ज वाशिंगटन के नेतृत्व में अमेरिका वासियों का स्वतंत्रता संग्राम का श्री गणेश हो गया।

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम का युद्ध निरन्तर सात वर्षों से (1776–1783) तक चला। इस युद्ध में अमेरिका की जनता ने फ्रांस से इंगलैण्ड के विरूद्ध सहायता मांगी जिसे फ्रांस ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। 1778 ई0 में

उसने अमेरिका के समर्थन में ब्रिटेन के विरूद्ध युद्ध की घोषण कर दी। इतिहासकार ट्रेवेलियन ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखा है कि '' फ्रांस का उद्देश्य अमेरिका की सहायता करना नहीं था उसका उद्देश्य तो ब्रिटिश सरकार के विघटन में सहायता देकर सप्तवर्षीय युद्ध में हुई पराजय का बदला लेना था'' प्रारम्भ में युद्ध के विभिन्न मोर्चों पर अमेरिकी सेना की भीषण पराजय हुई तथा प्रधान सेनापती जार्ज वाशिंगटन को देश छोड़कर भागना पड़ा, किन्तु उसके अदम्य साहस, कूटनीति, दूरदर्शिता तथा फ्रांस व स्पेंन के सक्रिय सैनिक समर्थन के बल पर अन्ततः अमेरिका की विजय हुई। यह फ्रांस के सहयोग का ही परिणाम था। 1781 में यॉर्कटाउन (York Town) के युद्ध में लार्ड कार्नवालिस के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना की भीषण पराजय हुई और उसे आत्मसमर्पण करना पड़ा। अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम की समस्त घटनाओं में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना थी। इस विजय के फलस्वरूप अमेरिका के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी जार्ज वाशिंगटन के सम्मान में और अधिक वृद्धि हुई।

1.5.1 वर्साय की संधि (1783)

युद्ध में पराजित होने के पश्चात् विवश होकर ग्रेट ब्रिटेन ने संधि वार्ता का प्रस्ताव रखा जिसके आधार पर युद्ध बन्द कर दिया गया। दोनों पक्षों के बीच 1783 ई0 में वर्साय की संधि सम्पन्न हुई। इस संधि के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका के रूप में एक नवीन राष्ट्र को मान्यता प्रदान की गयी । अमेरिका स्थित ब्रिटिश उपनिवेशों से इंग्लैण्ड का अधिपत्य समाप्त हो गया। फ्रांस को इस संधि से विशेष उल्लेंखनीय लाभ नहीं मिला, परन्तु फ्रांस को भारत में उसकी बस्तियाँ वापस मिल गयी। सप्तवर्षीय युद्ध की समाप्ती के समय ब्रिटेन और फ्रांस के मध्य जो औपनिवेशिक सन्तुलन स्थापित हो गया था, उसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं किया गया। इस संधि की उपलब्धि पर प्रकाश डालते हुए फर्डिनेण्ड शेविल (Ferdemand Schevil) ने लिखा है ''पेरिस की द्वितीय संधि की मुख्य स्मरणीय विशेषता यह है कि विद्रोही उपनिवेशों को संयुक्त राज्य अमेरिका के रूप में मान्यता प्राप्त हो गयी' इस प्रकार विश्व के मंच पर एक नवीन राष्ट्र का उदय हुआ''।

इस संधि को कुछ मुख्य बिन्दुओं के द्वारा समझा जा सकता है।

(क) इंग्लैण्ड ने 13 अमेरिकी बस्तियों की स्वतत्रंता को मान्यता प्रदान कर दी। इस नये राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को अलगानी पहाड़ों और मिसिसिपी नदी के बीच के अंग्रजी क्षेत्र भी सौंप दिये गये।

(ख) फ्रांस को इंग्लैण्ड से वेस्टइंडीज में सेंट लूसिया, टोबागो, अफ्रीका में सेनीगाल व गोरी तथा भारत के कुछ क्षेत्र प्राप्त हुए।

(ग) इंग्लैण्ड व हॉलैण्ड में युद्ध पूर्व स्थिति वापस लायी गयी।

(घ) स्पेन को फ्लोरिडा तथा भू–मध्य सागर में माइनारका का टापू मिला।

(ड़) नए अमेरिकी राष्ट्र की सीमा ओहायो नदी के साथ–साथ तय की गयी।

1.5.2 अमेरिका का संविधान

पेरिस संधि के बाद अमेरिकी राज्यों में आपसी मतभेद उभरने लगे, परन्तु कुछ समय बाद इन मतभेदों को सुलझा लिया गया, जिसके फलस्वरूप अमेरिकी संविधान पर 17 सितम्बर 1787 को 55 व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षर किये गये और यह संविधान 21 जून 1788 से लागू किया गया। इस संविधान के तहत अमेरिका में गणतंत्र की स्थापना की गयी तथा संघ पद्धति स्वीकार की गयी जिसके अन्तर्गत शक्तियों का विभाजन संघीय और राज्य सरकारों के बीच किया गया। नए संविधान में अमेरिका के नागरिकों को अनेक अधिकार दिये गये, जिनमें प्रमुख अधिकार थे– भाषण, प्रकाशन और धर्म की स्वतंत्रता, कानून के अनुसार न्याय प्राप्त करने का अधिकार। नए संविधान में किसी भी व्यक्ति का कानूनी प्रक्रिया के अतिरिक्त जीवन, सम्पत्ति और स्वतंत्रता से वंचित न रखे जाने की गारण्टी दी गयी। संविधान के अनुसार मार्च 1789 में नयी सरकार का गठन हुआ, जिसका प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन को बनाया गया।

1.5.3 अंग्रेजों की असफलता के कारण

यद्यपि इंग्लैण्ड विशाल साम्राज्य का स्वामी था, उसके पास एक अजेय जल सेना थी, आधुनिक अस्त्र–शस्त्र, प्रशिक्षित सेना एवं अनुभवी सेनानायक थे। लगभग सभी सामरिक स्थानों पर अंग्रेज छावनियाँ थी, किन्तु इसके विपरित जार्ज वाशिंगटन की सेना बहुत छोटी थी। किसी भी समय पर जार्ज वाशिंगटन युद्ध भूमि पर चार हजार हथियारबंद सिपाहियों से अधिक नहीं जुटा पाया। अंग्रजों की असफलता के कारणों में से एक कारण यह भी माना जा सकता है कि इंग्लैण्ड की युद्ध नीति तय करने वालों ने अमेरिकी शक्ति का ठीक अनुमान नहीं लगाया। उन्हें अपनी शक्ति पर ज्यादा ही भरोसा था। जो उनकी असफलता के कारणों में से एक था जैसा एलन नेव्हिन्स एवं हैनरी स्टील कोमेगर लिखते हैं– ''देश भक्तों का सुसंगठित और टोरी या वफादार लोगों का आव्यवस्थित होना'' इंग्लैण्ड की असफलता का कारण माना जा सकता है। इंग्लैण्ड से अमेरिका तीन हजार मील की दूरी पर स्थित है यातायात के साधनों के अभाव ने इस दूरी को और अधिक बढ़ाया, जिससे सैनिक सहायता पहुँचाना बहुत मुश्किल कार्य था। स्थिति और अधिक कठिन उस समय हो गयी, जब फ्रॉस व स्पेन की नौ–सेनाओं ने अटलांटिक महासागर पर अंग्रेजी रसद पूर्ती रेखा को भंग कर दिया। स्थल पर भी अंग्रेजी सेना स्थानीय सहयोग के अभाव में काफी बड़ी कठिनाई में पड़ गयी। इसके अलावा युद्ध के केन्द्र भी लगभग एक हजार मील के घेरे में फैले हुए थे। उपनिवेशवासी अपनी धरती की भौगौलिक स्थिति से पूर्ण रूप से परिचित थे, इसलिए युद्ध के दौरान उन्हें किसी विशेष कठिनाई का सामना नही करना पड़ा, जबकि अंग्रेज विदेश में लड़ रहे थे। इस क्रान्ति में जार्ज तृतीय एक एसा शासक था जिसमें स्थिति की गंभीरता और दूसरों की योग्यता को परखने की शक्ति नहीं थी वह अपने पूर्वज जार्ज प्रथम व द्वितीय की भांति नाम मात्र का शासक था 1760 से लेकर उस समय तक जितने भी मंत्रिमण्डल बनें उन सबके पीछे वस्तुतः वही काम कर रहा था इसलिए सरकार की नीतियों में कोई तालमेल नही था। एक ओर ग्रेनविल की सरकार ने स्टाम्प एक्ट लागू किया तो दूसरी ओर राकिंघम की सरकार ने उसे वापस ले लिया। डिक्लेमेटरी ऐक्ट 1766 बनाकर जहाँ एक ओर यह घोषणा की गयी थी कि इंग्लैण्ड की संसद को अमेरिकी लोगों पर कर लगाने का अधिकार है वहाँ दूसरी ओर यह भी घोषणा की गयी की ऐसे कर लगाना अनुचित होगा। टाउनशिप ने जिन पाँच वस्तुओं पर कर लगाये वे किसी समुचित योजना के तहत नही थे। अतः उनका विरोध हुआ और कालान्तर में चाय को छोड़कर अन्य वस्तुओं पर से कर हटाने पड़े। जार्ज तृतीय ने यह मानकर भूल की कि लड़ाई जल्द ही समाप्त हो जायेगी और उन्हें विजयश्री मिलेगी। उसका अनुमान था कि फ्रांस के साधन शीघ्र ही जवाब दे जाएंगे किन्तु उसे यह मालूम नही था कि फ्रांस के आर्थिक साधनों के जवाब देने से पूर्व ही इंग्लैण्ड लड़खड़ा जायेगा। सच पूछों तो सरकार के पास न तो कोई नीति थी और न ही कोई योजना किन्तु इस सब के बावजूद क्रान्ति की सम्पूर्ण जिम्मेदारी जार्ज तृतीय पर नही डाली जा सकती क्योंकि समस्याएं उसने पैदा नही की थीं, वह पहले से ही चली आ रही थीं। अमेरिकी उपनिवेशों में रहने वाले लोगों में पिछले कई वर्षों से असंतोष चला आ रहा था जिसके एकाधिक कारण थे, जैसे तत्कालीन व्यापार प्रणाली, आर्थिक शोषण जातीय भेदभाव, शासन की दूषित एवं साम्राज्यवादी प्रवृत्ति। इंग्लैण्ड की सरकार उनकी अनदेखी करती रही। समय गुजरने पर यह एक पैचीदा समस्या बन गयी दुर्भाग्य से इस जटिल समस्या का सामना भी जार्ज तृतीय जैसे अयोग्य शासक को करना पड़ा।

1.5.4 इंग्लैण्ड के सेनानायकों व सैनिकों की अकुशलता

उपनिवेशवासियों की सफलता के कारणों में इंग्लैण्ड के अकुशल सेनानायकों तथा सैनिकों का ब़ड़ा योगदान रहा। इसके अतिरिक्त उपनिवेशों से लड़ रही अंग्रेजी सेना व यूरोप के भाडे के सिपाहियों से कोई आशा नही की जा सकती थी। अंग्रेज सेनानायकों ने भी अनेक भूलें कीं। सेनानायक बुर्गोयन एक आरामतलब स्वभाव का व्यक्ति था, जिसने अनेक बार हाथ में आये अवसरों को खोया एवं कभी पूरी निष्ठा के साथ अपने कर्तव्यों का पालन नही किया। इसके अतिरिक्त अंग्रेज सेना छापामार युद्ध से निपटने में योग्य नही थी और अमेरिकी युद्ध मुख्यतः इस पद्धति से लड़ा गया। वास्तव में जार्ज वाशिंगटन को केवल कुछ सामरिक केन्द्रों की सुरक्षा करनी

पड़ी जबकि कार्नवालिस को एक पूरे महाद्वीप को जीतना था। लार्ड नार्थ व जार्ज तृतीय ने इस अंतर को ठीक से नही समझा जो आगे चलकर अंग्रेजी शासन की असफलता का कारण बना।

1.5.5 क्रान्ति का स्वरूप

अमेरिकनों ने अपनी क्रान्ति के स्वरूप पर लम्बा वाद–विवाद किया। इस प्रश्न पर भी विचार हुआ कि यह वास्तविक क्रान्ति थी या नहीं। कतिपय विद्वानों के अनुसार क्रान्ति इसकी मांगों के सन्दर्भ में रूढ़ीवादी एवं सुरक्षात्मक थी तथा यह मांगें अग्रेजों के दृष्टिकोण से परम्परागत उदारता की परिचायक थीं। यद्यपि अमेरिकन अंग्रेजों के विरूद्ध संगठित थे अन्यथा वे संतुष्ट लोग थे। इसके विपरित अन्य विद्वानों के मत में अमेरिकन क्रान्ति उग्र सुधारवादी थी। इसने लोगों को देशभक्त एवं वफादार दो पक्षों में बांट दिया और इस आधार पर देश को विभक्त कर दिया गया। क्रान्ति ने अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया यह उतने ही प्रगतिशील थे, जितने कुछ वर्षों बाद होने वाली फ्रॉसीसियों की महान क्रान्ति के थे। क्रान्ति के सन्दर्भ में कुछ इतिहासकारों का यह कहना है कि यह तो परिवर्तन विरोधी तथा निवारक आन्दोलन मात्र थी। जार्ज बानफ्रोफ्ट अपनी कृति हिस्ट्री ऑफ द यूनाइटेड स्टेटस में लिखते है कि ''यह तो एक ऐसी क्रान्ति थी जिसकी सफलता इतनी सुखद शान्ति के साथ प्राप्त कर ली गई कि परिवर्तन विरोधी भी इसकी निन्दा करने में हिचके'' कुछ इतिहासकार इसे लोकतन्त्र का संघर्ष ही नही मानते। उनका कहना है कि अमेरिका में तो इससे पूर्व भी प्रजातन्त्र विद्यमान था। प्रमाण में वे कहते हैं कि मेसाचूसेट्स में 95 प्रतिशत पुरूष अपना मत देने के अधिकारी थे। इसलिए जे0 एफ0 जेमसन ने इसे एक सामाजिक आन्दोलन बताया है। 1800 ई0 में फ्रेडरिक जेनटेन ने बर्लिन से प्रकाशित अपनी एक पत्रिका में यह मत प्रकट किया है कि अमेरिका का विद्रोह तो केवल अंग्रजों द्वारा उनके स्वीकृत अधिकाशों पर किये जाने वाले अतिक्रमण के विरूद्ध एक संघर्ष मात्र था। इस सबसे किसी को यह आभास नही मिल सकता है कि अमेरिका की क्रांति से अमेरिका की राजनीति में विशेष परिर्वन नहीं हुआ, किन्तु यह अमेरिका का एक वास्तविक संघर्ष थ। आर0 आर0 पामर 'द एज ऑफ द डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन में इस कथन का समर्थन करते हुए लिखते है कि ''यह एक दर्दनाक संघर्ष था, जिसमें बहुमतों को चोट पहुंची थी''।

जो विद्वान इसे स्वतंत्रता संग्राम नही मानते उनका कहना है कि अमेरिका की ब्रिटिश बस्तियों के लोगों ने सर्वप्रथम स्वतंत्रता की मांग नही की थी उन्होंने तो इंग्लैण्ड की संसद द्वारा आरोपित अधिनियम का ही विरोध किया था। वे कहते है कि इंग्लैण्ड की सरकार उनके व्यापारिक विषयों में हस्तक्षेप न करें तथा उन पर किसी प्रकार का कर न लगायें। बोस्टन टी पार्टी की घटना ने उपनिवेशवासियों की उत्तेजना को जरूर अभिव्यक्त किया तथा जब कुछ लोग गोली काण्ड में मारे गये तब कुछ लोगों ने अंग्रेजी सरकार को हटाने की बात सोची थी। यह सत्य है कि सेना में मध्यम श्रेणी व कृषक वर्ग के लोगों ने अपना नाम लिखवाया था पर उन सैनिकों में उत्साह नही था तथा इकरार किये गये समय की समाप्ति के उपरान्त वे युद्ध के लिए तैयार नहीं थे। इसके अलावा अमेरिका के समस्त निवासी इंग्लैण्ड की सरकार के विरूद्ध युद्ध के लिए उद्यत नहीं थे। इसका कारण उपनिवेशवासियों का इंग्लैण्ड की सरकार के समर्थक स्वामीभक्त तथा उसके विरोध देशभक्तों में बंटा होना था। लेक्सिगटन एवं कानकार्ड की घटनाओं ने अमेरिकावासियों में अति उत्साह का संचार जरूर किया किन्तु वे देशभक्तों समान युद्ध करने को अभी भी उद्यत नही थे। यह एक तथ्य है कि 1787 ई0 में संविधान के निर्माण हेतु फिलेडेल्फिया सम्मेलन में एकत्र 45 सदस्यों में से अधिकांश सदस्य केवल सरकार की सुरक्षा, गुलामों में व्यापार व भूमि में अभिरूची रखते थे उन्हें स्वतंत्रता से विशेष प्रयोजन नही था। यह भी कहा जाता है कि अपने देशवासियों में संघर्ष के प्रति उदासीनता देखकर ही अमेरिका ने विदेशी सहायता लेने की सोची थी। यदि फ्रांस उसकी सहायता का वचन नही देता तो संभवता है कि अमेरिका इस संघर्ष के लिए तैयार नही होता और संघर्ष प्रारम्भ होने के कुछ समय बाद बीच में ही समाप्त हो जाता। अतः यह संघर्ष शुद्धता अमेरिकावासियों का नही था बल्कि इंग्लैण्ड से शत्रुता रखने वाले अन्य राष्ट्रों का भी था जो इस बहाने इंग्लैण्ड से बदला लेना चाहते थे,

इसलिए कुछ इतिहासकारें ने इसे अमेरिका का स्वतंत्रता संग्राम न कहकर यूरोप की महान शक्तियों का इंग्लैण्ड के विरूद्ध युद्ध कहा है।

1.6 अमेरिकी क्रान्ति का महत्व

विश्व इतिहास में अनेक दृष्टिकोणों से अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम को बड़ा ही महत्वपूर्ण माना गया है। इस क्रान्ति ने विश्व समुदाय को एक नई चेतना के रूप में उर्जा प्रदान की। इसने राज्य के दैवी अधिकार के सिद्धान्त तथा कुलीन तंत्र का अंत कर दिया। इसने जनतात्रिंक शासन प्रणाली को जन्म दिया। अमेरिका विश्व का पहला देश है जहाँ आधुनिक जनतांत्रिक शासन व्यवस्था की स्थापना की गई। यह पहला देश है, जहाँ एक लिखित संविधान और संघीय शासन व्यवस्था की नींव डाली गयी। इस क्रांति के द्वारा अमेरिका जनता को एक परिवार्तित सामाजिक अवस्था प्राप्त हुई जिसमें परम्परा धन और विशेषाधिकारों का महत्व कम था और मानवीय समानता का अधिक विशेषाधिकारों का तीन प्रमुख दिशाओं में सफल अतिक्रमण करने के पश्चात जनतन्त्र को काफी प्रोत्साहन मिला– अर्थात परम्परागत साम्पत्तिक अधिकारों की समाप्ति ,टोरियों की विशाल जायदादों का विघटन और जहां कहीं भी ऐग्लिकन चर्च के केन्द्र थे, उनकी समाप्ति 1786 ई0 में वर्जीनिया में धार्मिक स्वेच्छा आधिनियम पास हुआ। इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को चर्च जाने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता था। प्रत्येक व्यक्ति को पूजा और आराधना की पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई संघीय संविधान में भी फेडरल कर्मचारियों के लिए किसी धार्मिक योग्यता की आवश्यकता न रही परन्तु अभी भी कई राज्यों के विधानों में धार्मिक बंधन विद्यमान थे। अब से पहले अधिक शिक्षा का महत्व अमेरिकन समाज ने समझा। क्रांति के पश्चात् स्वतन्त्र सार्वजनिक स्कूलों तथा जनसाधारण की प्रशिक्षा की मांग की गयी। यह तत्काल अनुभव किया गया कि प्रजातन्त्रीय स्वराज्य में शिक्षित मतदाताओं का होना आवश्यक है। न्यूयार्क के गवर्नर जॉर्ज विलन्टन ने 1782 ई0 में कहा था कि ''जहाँ सर्वोच्च नौकरियाँ प्रत्येक स्वाधीन राज्य की सरकार का यह विशेष कर्त्तव्य है कि उस स्तर के साहित्य का विद्यालयों तथा विशेष संस्थाओं द्वारा प्रचार होना चाहिए जो जन संस्थाओं की स्थापना के लिए आवश्यक है। अमेरिका क्रांति में यदि हम धर्म–निरपेक्ष के सम्बन्ध में बात करें तो धर्म–निरपेक्ष राज्य की स्थापना भी सर्वप्रथम अमेरिका में हुई थी। सभी को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गयी थी। अमेरिका क्रान्ति ने भविष्य में होने वाली अनेक महान क्रान्तियों को प्रेरणा दी। इसने उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और निरकुशतंत्र को एक खुली चुनौती दी। यह एक ऐसा उदाहरण था जो बहुत दिनों तक पराधीन राष्ट्रों को प्रेरित करता रहा। प्रजातांत्रिक आदर्श की स्थापना के लिए हर देश में आन्दोंलन होंने लगे। अतः यहा कहा जा सकता है कि अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम संसार के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। इसके द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका अस्तित्व में आया और वह वशांनुगत कुलीनतन्त्र को समाप्त करके गणतन्त्र की स्थापना करने वाला देश बन गया। अमेरिकी क्रान्ति ने इंग्लैण्ड को 'रक्तहीन राज्य क्रान्ति' द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का और अधिक विकास हुआ। यदि इंग्लैण्ड की क्रान्ति ने प्रतिनिधि सत्तात्मक प्रथा को जन्म दिया था, तो अमेरिकी क्रान्ति ने जनतन्त्रात्मक प्रथा को जन्म दिया, जिसमें पहली बार सर्वसाधारण को मताधिकार प्राप्त हुआ। अमेरिकी क्रान्ति को आधुनिक युग में गणतन्त्र की जननी कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस क्रान्ति के प्श्चात् ही विश्व में लिखित संविधानों की परम्पराओं का प्रचलन हुआ। संघीय शासन व्यवस्था का प्रयोग किया गया। धर्मनिरपेक्ष राज्य में रूप् में अमेरिका आधुनिक युग में विश्व का प्रथम देश बना। इस क्रान्ति ने साम्राज्यवाद को प्रथम पराजय दी तथा राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को मानव समाज के समक्ष रखा। अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम का महत्व इंग्लैण्ड के लिए चाहे जो कुछ भी क्यों न हो, परन्तु विश्व इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। धर्म–निरपेक्ष राज्य की स्थापना भी सबसे पहले अमेरिका में ही हुई। सभी को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गयी। अमेरिकी क्रान्ति ने भविष्य में होने वाली अनेक महान क्रान्तियों को प्रेरणा दी। उसने उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और निरंकुशतंत्र को एक खुली चुनौती दी। यह एक ऐसा उदाहरण था जो बहुत दिनों तक पराधीन राष्ट्रों को प्रेरित करता रहा। प्रजातंत्र के आदर्श की स्थापना के लिए हर देश में आन्दोलन होने लगे।

1.7 अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम के परिणाम

अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम की घटना इंगलैण्ड एवं अमेरिका के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए महत्वपूर्ण व शिक्षाप्रद घटना थी। लम्बे संघर्ष के बाद अमेरिका एक स्वतंत्र राष्ट्र बना था। संघर्ष के इस अवधि में तथा इसके पश्चात् विश्व की राजनीति में अनेक विस्मयकारी व महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इतिहासकार ग्रीन ने ठीक ही लिखा है – ''अमेरिका के स्वतंत्र संग्राम का इंगलैण्ड की राजनीति पर चाहे कुछ भी प्रभाव रहा हो वह इतिहास की एक अद्वितीय एवं महत्वपूर्ण घटना थी''।

1.7.1 जार्ज तृतीय की निरंकुश शासन का अंत

इस युद्ध में इंगलैण्ड की असफलता ने सम्राट जार्ज तृतीय की निरंकुश सत्ता को समाप्त कर दिया। इस घटना से पूर्व ब्रिटिश सम्राट, मन्त्रीमंडल व संसद को अपनी इच्छापूर्ति का साधन मात्र समझता था, किन्तु अब जार्ज तृतीय के व्यक्तिगत शासन का अंत हो गया तथा उसके स्थान पर मंत्रीमण्डलीय व्यवस्था और दलीय शासन प्रारम्भ हुआ। यह निश्चत है कि यदि अमेरिका के स्वतंत्र संग्राम का अंत इंगलैण्ड के लिए हानिकारक नहीं होता, तो जार्ज तृतीय का व्यक्तिगत व निरंकुश शासन स्थिर हो जाता और वहां पर संसदीय शासन प्रगति में अवरोध उत्पन्न हो जाता।

1.7.2 इंगलैण्ड द्वारा नवीन उपनिवेशों की स्थापना

अमेरिका के सभी 13 उपनिवेश इंगलैण्ड के अधिकार से निकल जाने के कारण इंगलैण्ड की औपनिवेशिक साम्राज्य तथा व्यापारिक प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा। इस प्रतिष्ठा को पुनः अर्जित करने, विश्व की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने तथा अपने व्यापारिक हितों की सुरक्षा करने के लिए इंग्लैण्ड में नवीन क्षेत्रों की खोज करने तथा वहां पर अपने उपनिवेश स्थापित करने का निर्णय लिया। आस्ट्रेलिया तथा अन्य में ब्रिटिश उपनिवेशों की स्थापना इसी निर्णय के परिणाम स्वरूप की गयी।

1.7.3 इंगलैण्ड की परम्परागत औपनिवेशिक नीति में परिवर्तन

अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम में मिली असफलता से ब्रिटिश सरकार ने शिक्षा प्राप्त की थी। उसे उपनिवेशों की प्रति अपनी त्रुटिपूर्ण नीति का अनुभव हुआ। ब्रिटेन के उपनिवेश सम्पूर्ण संसार में फैले हुये थे तथा ये उपनिवेश ब्रिटिश अर्थ व्यवस्था के आधार स्तम्भ थे। अतएव ब्रिटिश सरकार ने उपनिवेशों के संबंध में अपनी परम्परागत हटधर्मीपूर्ण व निरंकुश नीति को बदलने तथा उसके स्थान पर भ्रातृत्व भावना से युक्त सहानुभूतिपूर्ण व उदार नीति अपनाने का संकल्प लिया। अमेरिकी उपनिवेश के हाथ से निकल जाने से इंग्लैण्ड को यह शिक्षा मिली की वह अपने अन्य उपनिवेशों की जनता के अधिकारों और मांगों का सम्मान करते हुए उनके प्रति उदार व सहानुभूतिपूर्ण नीति का पालन करे। इंग्लैण्ड इस बात को भली–भांति समझता था कि उपनिवेशों की जनता इंगलैण्ड के स्वार्थों के लिए अपने हितों का बलिदान नहीं कर सकती। यदि इन उपनिवेशों को अपने साथ रखना है तो उसके साथ उदारता व सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना पड़ेगा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् ब्रिटेन ने अपनी परम्परागत उपनिवेशिक नीति को समाप्त कर दिया जिससे यह समझा जाता था, कि उपनिवेश केवल इंगलैण्ड के स्वार्थों की पूर्ति का साधन मात्र है। फलस्वरूप उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश सरकार ने उपनिवेशों के प्रति अत्यन्त उदारनीति को अपनाया तथा उसके साथ सहयोग तथा स्वशासन के आधार पर ब्रिटिश राष्ट्र मंडल (British Common Wealth of Nations) की स्थापना की।

1.7.4 आयरलैण्ड की जनता के अधिकारों में वृद्धि

आयरलैण्ड की राजनीतिक, धार्मिक, संवैधानिक स्थिति पर भी अमेरिका के युद्ध का व्यापक प्रभाव पड़ा। आयरलैण्ड की जनता भी अपने अधिकारों के लिए हेनरी ग्रेट के नेतृत्व में संघर्ष कर रही थी। वहां रोमन कैथोलिकों की संख्या अधिक थी जिन्हें किसी प्रकार के राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। आयरलैण्ड की अलग संसद थी, किन्तु उसके ऊपर ब्रिटिश सरकार सदैव अनुचित व वैधानिक नियंत्रण रखता था। अमेरिका की जनता

द्वारा स्वाधीनता की घोषणा करने तथा मुक्ति संग्राम प्रारम्भ करने से आयरलैण्ड की जनता का उत्साह बढ़ गया। उसने भी वैधानिक अधिकारों की मांग की। 1782 में इंगलैण्ड की सरकार ने आयरलैण्ड की संसद को विधि निर्माण का अधिकार दे दिया। 1800 ई0 में यूनियन एक्ट पारित करके आयरलैण्ड की संसद को ब्रिटिश संसद में विलय कर दिया गया।

1.7.5 फ्रांस की राजनीति पर प्रभाव

इतिहासकार हेज ने लिखा है कि ''स्वतंत्रता की यह मशाल जो अमेरिका में प्रज्ज्वलित की गई थी तथा जिसके फलस्वरूप वहां पर राजतंत्र की स्थापना हुई थी, फ्रांस की सीमा में भी प्रवेश कर गयी तथा उसने फ्रांस की जनता के विचारों को प्रभावित कर उसे क्रान्ति करने की प्रेरणा प्रदान की थी' फ्रांसिसी जनता भी अमेरिका के भांति स्वतंत्र होना चाहती थी''। वास्तव में अमेरिकी स्वतंत्र संग्राम की घटना ने फ्रांस के राजनीतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया था। इस युद्ध में फ्रांस ने अपने सैनिकों को इंग्लैण्ड के विरूद्ध तथा अमेरिका के स्वतंत्रता सेनानियों के समर्थन में लड़ने के लिए भेजा था। युद्ध काल में इन सैनिकों के हृदय व मस्तिष्क पर स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता, समानता, व जनतंत्र की भावनाओं का गहरा प्रभाव पड़ा। फ्रांस की जनता ने तत्कालीन बूर्वो वंश के निरंकुश शासन को उखाड़ फेकने का मन बना लिया था। वेबस्टर के शब्दों मे ''अमेरिका की क्रान्ति विश्व के देशों, विशेषकर यूरोप के देशों की ऑखें खोलने वाली घटना थी। इसने फ्रांस की राजक्रान्ति के लिए नेता प्रदान किये'।

1.8 सारांश

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि अमेरिका की क्रान्ति आधुनिक राष्ट्रीयता का जनक सिद्ध हुई। इसने उपनिवेशवाद के विरूद्ध लोगों को प्रेरित किया तथा उनमें राष्ट्रीयता एवं समानता की भावना भर दी। अमेरिकी क्रान्ति ने साम्राज्यवाद पर पहली करारी चोट की। अमेरिकी ने संघर्ष कर अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की इससे दूसरे देश की जनता भी प्रभावित हुई। अब वह अन्य पराधीन देशों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया। भविष्य में इसने निरंकुश राजतंत्र और सामन्तवाद का अन्त करने को भी प्रोत्साहन दिया। इस घटना ने नई दुनिया में एक नये युग का दिया और पुरानी दुनिया के लिए भी एक नये युग का मार्ग प्रशस्त कर दिया। अब स्वतंतत्रा एवं प्रजातांत्रिक आदर्शों की स्थापना के लिए अनेक देश व्याकुल हो उठे।

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

जैन एवं माथुर – विश्व का इतिहास (1500–1950)

पारसार्थी गुप्ता – विश्व का इतिहास

दीनानाथ वर्मा एवं शिव कुमार – विश्व इतिहास का सर्वेक्षण

कैलेश्वर राय – विश्व का इतिहास

खुराना एवं शर्मा – विश्व का इतिहास

वी0बी0 सिन्हा – आधुनिक विश्व का इतिहास

1.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

- अमेरिकी क्रान्ति के कारणों एवं प्रभावों की समीक्षा कीजिये।
- अमेरिकी क्रान्ति ने विश्व समुदाय को किस प्रकार प्रभावित किया।
- अमेरिकी क्रान्ति के तात्कालिक कारणों पर प्रकाश डालिये।
- अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में जार्ज वाशिंगटन की भूमिका का वर्णन कीजिये।
- अमेरिकी क्रान्ति के परिणामों का उल्लेख कीजिये।
- अमेरिकी क्रान्ति के आदर्श वाक्य क्या थे ? समीक्षा कीजिये।

ईकाई दो– फ्रांस की क्रान्ति (1789–1815)

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 फ्रांस की पुरातन व्यवस्था और क्रान्ति के कारण

2.3.1 सामाजिक स्थिति

2.3.2 राजनैतिक स्थिति

2.3.3 आर्थिक स्थिति

2.3.4 बौद्धिक क्रान्ति और क्रान्ति के अन्य कारण

2.3.5 तात्कालिक कारण– वित्तीय संकट और सामन्तों का विद्रोह

2.4 फ्रांस की क्रान्ति (1789) प्रमुख घटनायें

2.4.1 एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन और राष्ट्रीय सभा का गठन

2.4.2 सान्ज क्यूलात का विद्रोह और बास्तील का पतन

2.5 राष्ट्रीय संवैधानिक सभा(1789–91)

2.5.1 सामन्तीय विशेषाधिकारों का अन्त

2.5.2 मानव एवं नागरिक अधिकारों की घोषणा

2.5.3 पेरिस की स्त्रियों का वर्साय अभियान

2.5.4 आर्थिक सुधार

2.5.5 पादरियों का कानून और मठों का अन्त

2.5.6 1791 का संविधान

2.5.7 राष्ट्रीय सभा का मूल्यांकन

2.6 विधान सभा(1791–92)

2.6.1 विधान सभा में दलबन्दी

2.6.2 विधान सभा के समक्ष समस्याएं

2.6.3 यूरोपीय राष्ट्रों से युद्ध

2.6.4 राजतंत्र का अंत और अन्तरिम सरकार का गठन

2.6.5 सितम्बर हत्याकांड

2.7 नेशनल कन्वेंशन 'राष्ट्रीय सम्मेलन'(1792–1795)

2.7.1 प्रमुख समस्याएं

2.7.2 राजा को मृत्युदण्ड

2.7.3 यूरोपीय राष्ट्रों से युद्ध

2.7.4 आतंक का शासन

2.7.5 राष्ट्रीय सम्मेलन के अन्य कार्य

2.8 निदेशक मण्डल(1795–1799)

2.9 कौंसिल शासन 1799–1804

2.9.1 क्रान्ति के सिद्धान्तों पर आधारित सुधार

2.9.2 पुरातन व्यवस्था पर आधारित सुधार

2.9.3 क्रान्ति का अंत –नेपोलियन सम्राट के रूप में 1804–1815

2.10 मूल्यांकन–

2.10.1 क्रान्ति के विभिन्न चरण और स्वरूप

2.10.2 क्रान्ति के प्रमुख नेता

2.10.3 नेपोलियन– क्रांतिहंता या क्रांतिपुत्र

2.10.4 फ्रांस की 1789 की क्रान्ति के परिणाम और प्रभाव

2.11 सारांश

2.12 तकनीकी शब्दावली

2.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.14 उपयोगी पाठ्य पुस्तकें

2.15 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

18वीं सदी के अन्तिम दशकों में विश्व में राजनैतिक परिवर्तनों का जो दौर अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के रूप में प्रारम्भ हुआ था, उसकी अगली कड़ी फ्रांस की 1789 की क्रान्ति बनी, जिसने न केवल फ्रांस वरन् विश्व के कई देशों की जनता को भी राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में पूर्ण परिवर्तन हेतु प्रेरित किया। फ्रांस की 1789 की क्रांति द्वारा पुरातन व्यवस्था, जिसमें कुलीन वर्ग और कैथोलिक पादरियों का वर्चस्व था, को समाप्त कर समानता पर आधारित व्यवस्था स्थापित की गयी। इस नवीन व्यवस्था को स्थापित करने के लिए शासन व्यवस्था में संवैधानिक राजतंत्र, पूर्ण गणतंत्र तथा डायरेक्टरी आदि असफल प्रयोग किए गए। अंततः नेपोलियन बोनापार्ट ने प्रथम कौंसिल के रूप में फ्रांस की बागडोर संभाली। यद्यपि कई इतिहासकारों के अनुसार नेपोलियन ने फ्रांस की क्रांति की मूल भावना को आघात पहुँचाया, तथापि उसके कार्यों ने प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से क्रांति के सिद्धान्तों के प्रसार में योगदान किया और फ्रांस की क्रान्ति को यूरोप की क्रान्ति बना दिया।

फ्रांस की इस क्रांति को यूरोप की अगली शताब्दी की कई अन्य 1820, 1830 और 1848 की क्रांतियों की पहली कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। अगले सौ वर्षों तक यूरोप में होने वाली प्रमुख घटनाओं को यह क्रांति प्रभावित करती रही।

2.2 उद्देश्य

इस ईकाई में आप –

- फ्रांस की क्रांति के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों और क्रांति के दौरान घटित विभिन्न घटनाक्रमों को जान सकेंगे।
- फ्रांस की क्रांति के दौरान शासन सम्बन्धी विभिन्न असफल प्रयोगों तथा अंततः जनता द्वारा नेपोलियन के एकतंत्रीय शासन को स्वीकार करने के कारणों को समझ सकेंगे।
- फ्रांस की क्रांति के विभिन्न चरण और स्वरूप को जान सकेंगे।
- फ्रांस की क्रांति का प्रभाव और प्रसार तथा फ्रांस और यूरोप के इतिहास में उसके महत्व को जान सकेंगे।

2.3 फ्रांस की पुरातन व्यवस्था और क्रान्ति के कारण

फ्रांस की क्रान्ति कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। इसकी पृष्ठभूमि फ्रांस की पिछली सदियों की व्यवस्था में देखी जा सकती है, जिसे पुरातन व्यवस्था 'आसियां रिजीम' कहा जाता है। क्रान्ति के वास्तविक कारणों को समझने के लिए वहां की पुरातन व्यवस्था को जानना आपके लिए आवश्यक है। यहाँ हम पुरातन व्यवस्था के साथ साथ क्रान्ति के अन्य कारणों का भी विश्लेषण करेंगे।

2.3.1 सामाजिक स्थिति

फ्रांस का समाज पुरातन व्यवस्था पर आधारित श्रेणीबद्ध समाज था। समाज असमानता और विशेषाधिकारों के आधार पर विघटित था। प्रत्येक वर्ग के अन्दर भी श्रेणियां थीं, जिनके अधिकार और सुविधाओं में असमानता थी। उच्च पादरी वर्ग और कुलीन सामन्त वर्ग को विशेषाधिकार प्राप्त थे। मध्यम वर्ग, कृषक और मजदूर आदि सर्व साधारण वर्ग अधिकारहीन था।

विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग

पादरी वर्ग–

फ्रांस की अधिकांश जनता रोमन कैथोलिक थी। अतः पादरियों को समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। पादरियों में दो वर्ग थे– उच्च पादरी तथा सामान्य पादरी। उच्च पादरी वर्ग में आर्कबिशप, ऐबे आदि पद थे। पद खरीदे जाते थे। अतः उच्च पादरी सामान्यतः अमीर कुलीनों के पुत्र होते थे। इनकी आय बहुत अधिक थी। राज्य की दस प्रतिशत भूमि पर उनका अधिकार था, दो प्रतिशत उपहार के रूप में राजा को देते थे। इनकी रूचि धार्मिक कार्यों में नहीं थी तथा वह विलासपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे। सामान्य पादरी वर्ग में स्थानीय गिरजाघरों के वह पादरी थे, जो निम्न वर्ग या किसान परिवारों से आते थे। इन छोटे पादरियों की आय कम थी, परन्तु जनता के सभी धार्मिक कार्यों को यह छोटे पादरी ही सम्पन्न कराते थे। जनता के कष्टों से परिचित इन पादरियों ने क्रान्ति के समय जनता का सहयोग किया।

कुलीन वर्ग–

विशेषाधिकार प्राप्त दूसरा वर्ग कुलीन सामन्तों का था। राज्य, सेना और चर्च के सभी महत्वपूर्ण पदों पर इनका ही अधिकार था। यह वर्ग अनेक उपवर्गों में बँटा था–प्राचीन अभिजात वशों के सामन्त, सैनिक सामन्त, दरबारी सामन्त, नागरिक और न्यायिक प्रशासन के पोशाकधारी सामन्त, राजकृपा से बने नवोदित सामन्त। इनमें अभिजात सामन्त नवोदित सामन्तों को और दरबारी सामन्त प्रान्तीय सामन्तों को हेय दृष्टि से देखते थे। आर्थिक दृष्टि से भी सभी सामन्त सामान नहीं थे। परन्तु सभी सामन्तों को अनेक अधिकार प्राप्त थे। 1781 के बाद सेना में कमीशन केवल कुलीन वर्ग के लिए सुरक्षित कर दिए गए थे। सम्पूर्ण भूमि का पाँचवा भाग इनके पास था। यह स्वयं कोई कर नहीं देते थ, परन्तु जनता पर कर और जुर्माना लगाने, न्याय करने, शिकार करने, बेगार लेने आदि के द्वारा सभी सामन्त किसानों का शोषण करते थे।

लुई तेरहवें के समय रिशलू ने सामन्तों के बहुत से राजनैतिक अधिकारों में कटौती कर दी थी। सामन्त अपनी राजनैतिक प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करना चाहते थे। क्रान्ति से पूर्व लुई सोलहवें के सुधारों का पार्लमां में विरोध और एएस्टेट्स जनरल बुलाने की मांग इन सामन्तों की महत्वाकांक्षा का ही परिणाम था।

अधिकारहीन वर्ग –सर्वसाधारण वर्ग

फ्रांस की अधिकांश जनता को कोई अधिकार नहीं प्राप्त थे। देश की 94 प्रतिशत जनता इस वर्ग में थी। सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से इस वर्ग में बहुत असमानता थी, जिसके आधार पर इसको तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है।

'क' मध्यम वर्ग

इस वर्ग में व्यापारी, शिक्षक, वकील, डाक्टर, लेखक, सरकारी कर्मचारी आदि लोग सम्मिलित थे। इनके पास धन और योग्यता थी, किन्तु समाज और राजनीति में इन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। यह वर्ग पुरातन व्यवस्था का पूर्ण विरोधी था तथा सामाजिक व्यवस्था के साथ–साथ राजनीतिक व्यवस्था में भी परिवर्तन चाहता था। मध्यम वर्ग के अनेक पूँजीपतियों ने सरकार को कर्ज दे रखा था, लेकिन राज्य की दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण उन्हें अपना धन वापस न मिलने की चिन्ता सता रही थी। वह सुधारों के पक्षधर थे और अपने हित में कानून में परिवर्तन कराकर कुलीन वर्ग के समान अधिकार पाना चाहते थे। यह मध्यम वर्ग ही क्रान्ति का वाहक बना। **'ख' कृषक वर्ग**

फ्रांस में सबसे अधिक संख्या किसानों की थी। कुल जनसंख्या का अस्सी प्रतिशत किसान थे। यूरोप के अन्य देशों के किसानों से फ्रांस के किसान बेहतर स्थिति में थे। तथापि इनमें कुछ धनी किसानों को छोड़कर

अधिकांश किसानों की समाज के अन्य वर्गों की तुलना में स्थिति निम्न थी। स्वतंत्र और अर्द्ध दास दोनों प्रकार के किसान कुलीनों के शोषण के शिकार थे। उन्हें अपनी आमदनी का लगभग अस्सी प्रतिशत भाग राज्य, चर्च और कुलीनों को कर और नजराने के रूप में देना पड़ता था। उनमें अपनी निम्न सामाजिक और आर्थिक दशा के कारण असंतोष था। यह असंतोष शोषक सामन्तों के विरूद्ध क्रान्ति के रूप में प्रकट हुआ।

'ग' मजदूर वर्ग

यह वर्ग मध्यम वर्ग और पूंजीपतियों पर निर्भर था। इनकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। इस वर्ग में शहर में रहने और मध्यम वर्ग के सम्पर्क के कारण राजनैतिक चेतना का विकास हो गया था।

इस प्रकार आपने देखा कि असमानता पर आधारित फ्रांस की पुरातन सामाजिक व्यवस्था में समाज के प्रत्येक वर्ग में दूसरे वर्ग के प्रति संदेह और असंतोष व्याप्त था। अपनी पुस्तक 'द फ्रेंच रिवोल्यूशन एण्ड नेपोलियन' में लियो गर्शाय ने फ्रांसिसी क्रान्ति के कारणों में सामाजिक कारण को महत्वपूर्ण कारण माना है। सामन्तों की राजनैतिक अधिकार पाने की इच्छा, मध्यम वर्ग में जागरूकता, किसानों और मजदूरो में आक्रोश आदि क्रान्ति के कारण बने।

2.3.2 राजनीतिक स्थिति

सत्रहवीं और अठाहरवीं सदी में यूरोप में राजनैतिक चेतना का तीव्र प्रसार हो रहा था। मध्य पूर्व के शासक प्रबुद्ध शासन के द्वारा अपने राज्य में सुधारात्मक परिवर्तन कर रहे थे, परन्तु फ्रांस के शासक समय की मांग को समझ नहीं सके और पुरातन व्यवस्था में परिवर्तन करने के स्थान पर निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासन करते रहे। इसके परिणामस्वरूप फ्रांस में जनता का आक्रोश 1789 में क्रान्ति के रूप में प्रकट हुआ।

निरंकुश राजतन्त्र तथा अक्षम शासक –

फ्रांस में हेनरी चतुर्थ द्वारा स्थापित बूर्बा वंश का निरंकुश राजतंत्र लुई चौदहवें के समय अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। राजा को असीमित अधिकार प्राप्त थे। राजा ही कानून बनाता, वही कर लगाता, स्वेच्छ्छा से व्यय करता, किसी को भी कैद करके बिना मुकदमा चलाये सजा दे देता, अपनी इच्छा से ही वह विदेशी राज्यों से युद्ध अथवा सन्धि करता था। लुई चौदहवां कहता था ' मैं ही राज्य हूँ'।

लुई चौदहवें के समय जिस प्रकार केन्द्रीकरण और निरंकुश तंत्र का विकास हुआ था, उसको कायम रखने के लिए आवश्यक था कि शासक योग्य हो। परन्तु लुई चौदहवें के उत्तराधिकारी अयोग्य थे। उसके पश्चात लुई पंद्रहवाँ गद्‌दी पर बैठा, वह कमजोर और विलासी शासक था। वह किसी प्रकार का सुधार करने के पक्ष में नहीं था। उसका मानना था कि वर्तमान व्यवस्था में मेरा समय निकल जायेगा। उसकी विलासिता और युद्धों के कारण फ्रांस की बहुत बदनामी हुयी। उसके शासन को ' रखैलों की सरकार' कहा जाता था। लुई पंद्रहवाँ के बाद लुई सोलहवाँ शासक बना। उसमें निर्णय लेने और नेतृत्व करने की क्षमता का अभाव था। वह अपनी रानी मेरी अन्टायनेट के प्रभाव में रहता था। रानी मेरी अन्टायनेट आस्ट्रिया की रानी मारिया थेरेसा की पुत्री थी। आस्ट्रिया से पूर्व में शत्रुता होने के कारण फ्रांस की जनता उससे घृणा करती थी और उसे 'घृणित आस्ट्रियन' कहती थी। वह राजनीति में अत्यधिक हस्तक्षेप करती थी। लुई सोलहवाँ रानी के दबाव के कारण ही किसी प्रकार का सुधार करने में असफल रहा।

प्रतिनिधि सभाओं की शक्तिहीन स्थिति–

फ्रांस में राजा की शक्ति को सीमित करने के लिए **एस्टेट्स जनरल** नामक संस्था थी, परन्तु लुई तेरहवें के समय से यह अप्रभावी हो गयी थी। एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन 1614 के बाद बुलाया नहीं गया था। दूसरी संस्था **पार्लमां** थी, जो प्रतिनिधि संस्था न होकर उच्चतम न्यायालय के समान थी। इसका एक अन्य कार्य राजा के आदेशों को कानून के रूप में पंजीकृत करना था। फ्रांस में कुल तेरह पार्लमां थीं, जिनमें पेरिस की पार्लमां अधिक शक्तिशाली थी। पार्लमां के न्यायाधीश कुलीन वर्ग के होते थे। लुई सोलहवें के समय इस सभा की शक्तियों में वृद्धि हुयी और यह राजा का विरोध करने लगी। इसके विरोध ने जनता का ध्यान राजा की नीतियों के तरफ आकर्षित किया।

अक्षम प्रशासनिक व्यवस्था–

फ्रांस की शासन प्रणाली अत्यन्त अव्यवस्थित और अक्षम थी। शासन में राजा की सहायतार्थ पाँच समितियाँ थीं, जो कानून बनाने, आदेश जारी करने तथा अन्य घरेलू और विदेशी मामलों सम्बन्धी कार्य करती थीं।

सम्पूर्ण देश कई प्रकार की धार्मिक, प्रशासकीय और शैक्षणिक इकाईयों में बंटा था। प्रमुख रूप से फ्रांस में दो प्रकार के प्रशासकीय प्रान्त थे। प्राचीन प्रकार के प्रान्त गवर्नमेन्ट थे, जिनकी संख्या 40 थी। इनके गवर्नरों को राज्य से वेतन प्राप्त होता था, परन्तु शासन में इनका कोई योगदान नहीं था। दूसरे प्रकार के प्रान्त जेनेरालिते की संख्या 34 थी। राजा द्वारा नियुक्त एतादां इन प्रान्तों का शासन करते थे। राजा के आदेशों का पालन करना और उसकी आख्या भेजना इनका प्रमुख कार्य था। यह निरंकुश तरह से प्रशासन करते थे। उच्च वर्ग से नियुक्त किये गये यह एतादां केवल राजा के प्रति उत्तरदायी थे।

फ्रांस में स्थानीय शासन केन्द्र से ही संचालित होता था। स्थानीय कर्मचारियों को छोटी छोटी बातों के लिए राजधानी से आदेश प्रााप्त करना पड़ता था। केन्द्र की कमजोर स्थिति के कारण कर्मचारी भ्रष्ट और अनियंत्रित हो गये थे तथा मात्र अपने हित साधन में लगे रहते थे।

भ्रष्ट न्याय और कानून व्यवस्था–

शासन के अन्य अंगों की तरह कानून और न्याय के क्षेत्र में भी अव्यवस्था और भ्रष्टाचार फैला था। सम्पूर्ण देश में 385 प्रकार के न्याय विधान प्रचलित थे। एक क्षेत्र में जो कानून था वह दूसरे क्षेत्र में गैर कानूनी माना जाता था। न्यायालय भी कई प्रकार के थे और उनके क्षेत्राधिकार भी स्पष्ट नहीं थे। न्यायिक पदों को बेचा जाता था। व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं थी। एक वारंट 'लेत्र द काशे' द्वारा किसी को कभी भी गिरफ्तार किया जा सकता था।

इस प्रकार फ्रांस का राजनैतिक जीवन भ्रष्ट, गतिहीन और जर्जर हो गया था। फ्रांस की अराजकता पूर्ण स्थिति के सम्बन्ध में मादलें ने कहा था, 'बुरी व्यवस्था का तो प्रश्न नहीं, कोई व्यवस्था ही नहीं थी।'

2.3.3 आर्थिक स्थिति

बूर्बा वंश के अधीन फ्रांस की अर्थव्यवस्था पतनोन्मुख थी। शासकों की विलासिता, अपव्ययता,

वित्त नीति, दोषपूर्ण कर प्रणाली और कृषि, उद्योग तथा व्यापार के विकास के प्रति उदासीनता ने फ्रांस को आर्थिक रूप से खोखला कर दिया था।

शासकों की विलासिता तथा बजट का अभाव

राज्य की वित्तीय नीति दोषपूर्ण थी। आय के अनुसार व्यय करने के स्थान पर व्यय के अनुसार आय निश्चित की जाती थी। राजा की व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा राजकोष में कोई अन्तर नहीं था। राजा और उसका परिवार शानशौकत तथा विलासिता पर मनमाना धन व्यय करता था। राज्य की समस्त आय का तीन चौथाई भाग युद्धों और राजनयिक सम्बन्धों पर व्यय किया जाता था। लुई चौदहवें और पंद्रहवें द्वारा लड़े गये युद्धों ने फ्रांस की आर्थिक स्थिति को पहले ही कमजोर कर दिया था। इसके बावजूद लई सोलहवें ने अमेरिका स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया। रानी अपने दास दासियों पर बहुत अधिक धन व्यय कर देती थी। क्रान्ति से पूर्व फ्रांस को प्रति वर्ष लगभग ढाई करोड़ घाटा हो रहा था। सरकार अपने खर्चों के लिए पूंजीपति वर्ग से ऋण लेती रही और अन्त में स्थिति इतनी खराब हो गयी कि राष्ट्रीय आय का आधा भाग कर्ज के ब्याज को चुकाने में ही खर्च होने लगा।

दोषपूर्ण कर प्रणाली

अधिकांश जमीन सामन्तों के पास थी। परन्तु अधिकांश भूमि का मालिक होने के बावजूद विशेषाधिकार प्राप्त सामन्त और पादरी वर्ग प्रत्यक्ष करों से मुक्त था। करों का अधिकांश भार किसानों और सामान्य जनता को उठाना पड़ता था। किसानों की उपज का अधिकांश भाग भूमिकर (ताय) के रूप में चला जाता था। इसके अतिरिक्त उनको उपज का दसवाँ भाग धर्मकर (टाइथ) के रूप में चर्च को तथा कई अन्य प्रकार के कर सामन्तों को देने पड़ते थे। 1778 के पश्चात मंदी का दौर में सामन्तों ने अपनी हानि की पूर्ति हेतु सामन्तीय करों में वृद्धि कर दी थी। अप्रत्यक्ष कर विशेषरूप से नमक कर (गैबेल्ल) अत्यंत कष्टदायी था। कानून के अनुसार सात वर्ष से अधिक आयु वाले प्रत्येक व्यक्ति को वर्ष में सात पौण्ड नमक अवश्य खरीदना पड़ता था। करों को ठेके पर वसूल करने की प्रथा थी। ठेकेदार अधिक मात्रा में कर वसूल कर एक हिस्सा स्वयं रख लेते थे तथा राज्य को मात्र 60–65 प्रतिशत ही राजस्व प्राप्त होता था। करों की दरों में भी असमानता थी।

कृषि तथा उद्योगों की उपेक्षा

राज्य की ओर से कृषि के विकास हेतु कोई ध्यान नहीं दिया गया। राज्य के अयोग्य और कड़े नियन्त्रण के कारण उद्योग और व्यापार की भी प्रगति नहीं हो रही थी। राज्य में गरीबी और बेरोजगारी बढ़ने लगी। उत्पादित वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने पर प्रत्येक प्रान्त की सीमा पर चुंगी देनी पड़ती थी, जिससे वस्तु की कीमत बढ़ जाती थी। इसी दौरान सन् 1788 में फ्रांस तथा यूरोप के बहुत बड़े भाग में अकाल पड़ा। आधुनिक शोधों के अनुसार इस व्यापक अकाल के लिए 'अल नीनो' प्रभाव उत्तरदायी थे। इससे फ्रांस में खाद्य पदार्थों की अत्यधिक कमी हो गयी तथा रोगों और कुपोषण में वृद्धि हुयी। फ्रांस में गरीब किसान और मजदूर वर्ग के सम्मुख भुखमरी की स्थिति उत्पन्न हो गयी।

फ्रांस दिवालिया होने को था। 1774 से 1776 के मध्य वित्त मंत्री तुर्गो ने आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए भूमि के उपयोग, मुक्त व्यापार नीति आदि कई सुधार करने का प्रयास किया तो उसे पद से हटा दिया गया। अगले वित्तमंत्री नेकर ने भी तुर्गों की भांति राज्य का व्यय कम करने और कुलीनों पर कर लगाने का प्रयास किया तो रानी और कुलीनों के दबाब में उसे भी 1781 में पद से हटा दिया गया। रानी और दरबारी सामन्तों के षड़यन्त्रों और सामन्तों के द्वारा सहयोग न करने के कारण आर्थिक सुधार के सभी प्रयास असफल रहे।

2.3.4 बौद्धिक क्रान्ति तथा क्रान्ति के अन्य कारण

फ्रांस में शासन के प्रति असन्तोष लुई 15वें के शासनकाल से ही दिखने लगा था। अठाहरवीं सदी में यहाँ अनेक दार्शनिकों और लेखकों ने हजारों वर्षों से चले आ रहे विचारों पर प्रश्नचिहन लगाया और नये विचार प्रस्तुत

किए। इन दार्शनिकों को फिलॉजाइस कहा जाता था। इन्होंने राजनीति, धर्म, समाज आदि से सम्बन्धित विचारों को नए आयाम दिए। इनके विचारों ने परिवर्तन के लिए जनता को प्रेरित किया। इनका नारा तर्क, सहिष्णुता और मानवता' था तथा इन्होंने उदार प्रगतिशील और आदर्श समाज की स्थापना पर जोर दिया। यह इंग्लैण्ड की शासन व्यवस्था से प्रभावित थे। इनका अत्यधिक प्रभाव फ्रांस की जनता पर पड़ा। इनके प्रभाव से समाज में तर्क का महत्व बढ़ा और नगरों में गोष्ठियों (सैलो) और संस्थाओं (कारदीलिए) में समाज में व्याप्त बुराइयों पर विचार विर्मश किया जाने लगा।

इन दार्शनिकों में प्रमुख **मान्टेस्क्यू** ने राजा के दैवीय अधिकारों के सिद्धान्तों की तीव्र आलोचना की। उसने अपनी पुस्तक **'द स्पिरिट ऑफ लॉज'** में शक्ति के पृथक्करण का सिद्धान्त प्रस्तुत करते हुए लिखा कि शासन के तीनों अंगों कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका को अलग अलग कार्य करना चाहिए। वह संवैधानिक शासन पद्धति के पक्ष में था। **वाल्टेयर** ने प्राचीन रूढ़ियों, कुप्रथाओं और अंधविश्वासों का विरोध किया। विशेषरूप से कैथोलिक चर्च और पादरियों के विलासमय जीवन को जनता के समक्ष रखा। उसका मानना था कि राजनीति तथा धर्म एक दूसरे से पृथक पृथक होने चाहिए। **रूसो** ने **'सोशल कांट्रैक्ट'** नामक पुस्तक में स्पष्ट किया कि शासक को जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। रूसो ने लिखा कि 'मनुष्य स्वतंत्र उत्पन्न हुआ, किन्तु सर्वत्र जंजीरों से जकड़ा है।' रूसो की यह पुस्तक क्रांति की बाइबिल कहलाती है। नेपोलियन का कथन था कि यदि रूसो न होता तो फ्रांस की क्रान्ति न होती। **दिदरों** ने एक **विश्वकोष** की रचना की, जिसमें विभिन्न विचारकों के भ्रष्टाचार, निरंकुश शासन आदि पर आलोचनात्मक विचार प्रस्तुत किए। इनके अतिरिक्त **क्वेस्ने, हॉलबैक, हैल्वेशियस** आदि ने अपनी लेखनी से असमानता, शोषण, धार्मिक असहिष्णुता, भ्रष्ट और निरंकुश राजतंत्र, प्रशासनिक दोष आदि के प्रति जनता को जाग्रत किया।

फ्रांस की क्रान्ति के लिए बौद्धिक आन्दोलन कितना उत्तरदायी था? इसमें मतभेद हैं। उपन्यासकार शातोब्रियां का मानना था कि बौद्धिक आन्दोलन ने ही भौतिक दुखों का अधिक व्यापक रूप से विरोध किया था। डेविड थॉमसन ने लिखा कि फ्रांस के दार्शनिकों और क्रान्ति के मध्य परोक्ष सम्बन्ध था, दार्शनिकों ने क्रान्ति का प्रत्यक्ष उपदेश नहीं दिया। इन्हें क्रान्ति का जन्मदाता नहीं कहा जा सकता। तथापि फ्रांस में परिवर्तन हेतु वैचारिक आधार प्रदान करने का कार्य इन दार्शनिकों ने किया।

समकालीन विश्व की कुछ घटनाओं ने भी फ्रांस की जनता को क्रान्ति हेतु प्रभावित किया। इंग्लैण्ड की गौरवशाली क्रान्ति के पश्चात वहां लागू संवैधानिक शासन व्यवस्था तथा अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम ने फ्रांस की जनता को व्यवस्था परिवर्तन हेतु प्रेरित किया।

फ्रांस में क्रान्ति पूर्व परिस्थितियों को जाननें के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि अक्षम शासन व्यवस्था, दोषपूर्ण आर्थिक नीति, सामाजिक असमानता तथा बौद्धिक क्रान्ति ने फ्रांस की क्रान्ति के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। यद्यपि यूरोप के अन्य देशों में भी फ्रांस की तरह की पुरातन व्यवस्था थी, परन्तु **क्रान्ति फ्रांस में ही क्यों हुयी, इसके पीछे कुछ मूलभूत कारण थे।** –

- फ्रांस में बहुत पहले ही राष्ट्रीय राज्य तथा केन्द्रीकृत सत्ता की स्थापना हो गयी थी। फ्रांस की जनता वंशानुगत निरंकुश शासकों की मनमानी और स्वार्थी रवैये से परेशान थी, जबकि यूरोप के अन्य शासक प्रबुद्ध निरंकुश शासन द्वारा जनहित के कार्य कर रहे थे।
- सामन्त निरंकुश राजतंत्र द्वारा छीन ली गयी अपनी राजनैतिक शक्तियों को पुनः प्राप्त करना चाहते थे।
- फ्रांस में क्रान्ति में मध्यम वर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका रही, जबकि यूरोप के अन्य देशों में प्रगतिशील और जागरूक मध्यम वर्ग का अभाव था।

- फ्रांस के किसान अन्य देशों के किसानों से अधिक सम्पन्न और स्वतंत्र थे, उन्हें अपने जीवन यापन की समस्याओं की अपेक्षा सामन्तीय अधिकारों से अधिक परेशानी थी।

2.3.5 तात्कालिक कारण– वित्तीय संकट और सामन्तों का विद्रोह

आप को जैसा कि पहले ही बताया गया है कि अमेरिका के स्वतंत्रता युद्ध में भाग लेने के कारण फ्रांस की आर्थिक स्थिति अत्यधिक खराब हो गयी थी। 1788–89 में आए अकाल के कारण फ्रांस में वित्तीय संकट उत्पन्न हो गया। सरकार को अपना ऋण भुगतान करने के लिए धन की आवश्यकता थी, परन्तु कोई नया ऋण देने को तैयार नहीं था। पहले से ही अत्यधिक करभार उठा रही जनता अकाल के कारण नया कर देने की स्थिति में नहीं थी। अब एकमात्र विकल्प बचा था कि विशेषाधिकार वर्ग पर कर लगाया जाए। संकट के निवारण के लिए वित्त मंत्री कोलोन ने अनाज के मुक्त व्यापार और नए कर लगाने का प्रस्ताव कुलीन वर्ग की सभा में रखा तो सुधारों के विरूद्ध कुलीन सामन्त वर्ग संगठित हो गया। उनके विरोध के कारण लुई 16वें को कोलोन को पहले के वित्तमंत्रियों की भांति पद से हटाना पड़ा। नए मंत्री ब्रीन के सुझाव पर राजा ने प्रस्ताव को पार्लमां के समक्ष पंजीकरण करने के लिए भेज दिया।

पेरिस की पार्लमां, जिसके सदस्य सामन्त वर्ग के थे, ने कर लगाने सम्बन्धी कानूनों को पंजीकृत करने से इंकार कर दिया। उसने स्पष्ट किया कि राजा को नया कर लगाने का अधिकार नहीं है, केवल राज्य को ही 'एस्टेट्स जनरल' के माध्यम से कर लगाने का अधिकार है। इस प्रकार विशेषाधिकार सम्पन्न सांमत वर्ग ने राजा का विरोध करके फ्रांस को क्रान्ति की ओर धकेल दिया।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. पुरातन व्यवस्था से आप क्या समझते हैं?
2. 1789 की फ्रांस की क्रान्ति से पूर्व फ्रांस की सामाजिक स्थिति का वर्णन करो।
3. फ्रांस की क्रान्ति के लिए उत्तरदायी राजनैतिक और आर्थिक कारणों पर प्रकाश डालिए।
4. फ्रांस की क्रान्ति में दार्शनिकों के योगदान का वर्णन करिए।

2.4 फ्रांस की क्रान्ति (1789) प्रमुख घटनायें

क्रान्ति की निश्चित प्रारम्भिक तिथि के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ इतिहासकारों ने सामन्तों द्वारा 1787– 1789 तक कर लगाने का विरोध और पार्लमां द्वारा एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने की मांग के साथ ही क्रान्ति का प्रारम्भ माना है। क्रान्तिकाल मे राब्सपियरे और बाद में कार्ल मार्क्स ने माना है कि क्रान्ति अभिजात वर्ग द्वारा प्रारम्भ हुयी और उसे जनसाधारण ने पूरा किया। एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाना सामन्तों के विद्रोह के कारण सम्भव हुआ। 1789 से 1799 के मध्य फ्रांस में जो कुछ घटित हुआ, वह सभी क्रान्ति का ही हिस्सा था।

2.4.1 एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन एवं टेनिस कोर्ट की शपथ

एस्टेट्स जनरल की बैठक बुलाने की पार्लमां की मांग का जनता द्वारा भारी समर्थन किया गया। राजा ने पार्लमां को भंग करना चाहा, तो कई शहरों में प्रत्यक्ष विरोध प्रदर्शन हुआ। अंततः विवश होकर राजा को एस्टेट्स जनरल की बैठक बुलानी पड़ी। आपको बताया जा चुका है कि 1614 में एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन अन्तिम बार हुआ था। एस्टेट्स जनरल के चुनाव के लिए पादरी ,सामंत और तृतीय वर्ग की अलग अलग बैठक होती थी तथा तीनों के अलग अलग निर्णय लिए जाते थे। तीनों मतों में दो मत एक होने पर प्रस्ताव पारित होता था।

1789 में एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाते समय प्रतिनिधि चुनने की इस पुरानी पद्धति के विरूद्ध तृतीय वर्ग ने विरोध किया। विशेष रूप से यह विरोध जनता द्वारा हजारों की संख्या में अपने प्रतिनिधियों को सुझाव पत्र समस्याओं की सूची **'काहिया'** ('बुक्स ऑफ ग्रिवेंसेस') भेजकर व्यक्त किया गया। तृतीय वर्ग के सदस्यों की संख्या तो बढ़ा दी गयी, लेकिन उनके तीनों सदनों की संयुक्त बैठक कर सभी प्रतिनिधियों के बहुमत से निर्णय लेने की मांग को अस्वीकार कर दिया गया। 25 वर्ष से अधिक आयु का जो व्यक्ति राज्य को कर देता था या किसी विशेष कार्य में दक्ष था, मत दे सकता था।

5 मई को एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन वर्साय में हुआ, परन्तु मतदान प्रणाली को लेकर मतभेद उत्पन्न हो गया। लगभग डेढ़ माह तक गतिरोध चलता रहा। तृतीय वर्ग ने अन्य वर्गों को अपने साथ बैठने के लिए आमंत्रित किया। विरोध के बावजूद प्रथम वर्ग से कुछ छोटे पादरियों ने तृतीय सदन के साथ बैठना स्वीकार किया। अंततः 17 जून,1789 को तृतीय सदन ने अपने को राष्ट्रीय सभा घोषित कर दिया। 20 जून, 1789 को जब तृतीय वर्ग के प्रतिनिधि सभा भवन में पहुँचे तो राजा ने सभा भवन बंद करा दिया। तृतीय वर्ग ने समीप स्थित टेनिस कोर्ट में सभा करने का निर्णय किया।

टेनिस कोर्ट में एकत्र होकर प्रतिनिधियों ने शपथ ली कि राष्ट्रीय सभा देश के लिए नया संविधान बनाने तक भंग नहीं की जायेगी। इस प्रकार पहली बार एक संविधान सभा का गठन स्वतः हो गया। 23 जून, 1789 को राजा ने तीनों वर्गों के प्रतिनिधियों को सम्बोधित किया तथा पृथक–पृथक सदन में बैठकर निर्णय करने को कहा तो राष्ट्रीय सभा ने इसे मानने से इंकार कर दिया। दो दिन बाद पादरी और कुलीन भी राष्ट्रीय सभा में सम्मिलित हो गए। अंत में 27 जून,1789 को राजा ने तीनों सदनों की संयुक्त बैठक करने की अनुमति दे दी और राष्ट्रीय सभा को वैधानिक मान्यता मिल गयी। यह जनता की महत्वपूर्ण विजय थी।

टेनिस कोर्ट की शपथ

2.4.2 पेरिस में 'सान्ज क्यूलात द्वारा विद्रोह और बास्तील का पतन

पेरिस के लोग वर्साय में एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन करने से नाराज थे। पेरिस में अकाल के कारण बेरोजगार हुए लोग एकत्र हो गए थे। इन बेरोजगार और गरीब लोगों, जिनको सांज क्यूलोत कहा जाता था, ने धीरे धीरे अपनी आवाज उठानी शुरू कर दी। उन्होंने 27 जून को कारखाना मालिकों और व्यापारियों पर हमला कर दिया और दंगे बढते गये। इसी समय राजा ने लोकप्रिय मंत्री नेकर को भी बर्खास्त कर दिया। वह तृतीय वर्ग का समर्थन कर रहा था। 1781 में पद से हटाने के बाद मई, 1789 में उसे पुनः वित मंत्री बनाया गया था। रानी और राज परिवार के कई सदस्य उसके विरोधी थे। 11 जुलाई को नेकर ने जब सुझाव दिया कि राजपरिवार को अपने व्यय को सीमित करना चाहिए, तब उसे पद से हटा दिया। इससे पेरिस की जनता को यह विश्वास हो गया कि राजा कोई कठोर कदम उठाने जा रहा है।

13 जुलाई,1789 को यह अफवाह फैली कि विद्रोहियों का दमन करने के लिए पेरिस में सैनिकों को भेजा जा रहा है। कामील देमूलैं नामक पत्रकार ने अपने उत्तेजित भाषण में जनता को हथियार जमा करके सैनिकों का सामना करने के लिए तैयार रहने का आहवान किया। इससे उत्तेजित होकर लोगों की भीड़ ने पहले पेरिस में हथियारों को लूटा और तत्पश्चात अधिक हथियार पाने के उद्देश्य से 14 जुलाई, 1789 को बास्तील के किले की ओर बढ़ी। लोगों का मानना था कि यहाँ बारूद और हथियार बहुत मात्रा में एकत्र हैं। बास्तील के किले के

प्रशासक दलोने ने अपने सैनिको के साथ भीड़ को हथियार लेने से रोकने का प्रयास किया। उत्तेजित भीड़ ने किले पर हमला कर दिया। चार पाच घंटे चले संघर्ष में कई लोग मारे गये। भीड़ ने किले के अधिकारियों को मार कर सभी बन्दियों को रिहा कर दिया तथा किले में स्थित हथियारों को लूटकर किले को पूरी तरह नष्ट कर दिया।

फ्रांस की क्रांति का यह निर्णायक मोड़ था। बास्तील का किला पेरिस से कुछ दूरी पर स्थित था। इस किले में राजनीतिक कैदियों को बंदी बनाकर रखा जाता था। वाल्टेयर, मिराबो जैसे लोकप्रिय नेताओं को यहाँ बंदी बनाकर रखा गया था। जनता इस किले को निरंकुशता और अत्याचार का गढ़ मानती थी। इस किले का पतन निरंकुशता पर विजय का प्रतीक थी। क्रांतिकारियों ने 14 जुलाई को फ्रांस का राष्ट्रीय दिवस घोषित किया तथा पुराने झंडे के स्थान पर क्रांति का नया तिरंगा झंडा अपना लिया। पेरिस में नयी सरकार 'पेरिस कम्यून' का गठन किया गया, जिसमें जीन सिल्वेन बैली को मेयर बनाया गया। लाफायते के नेतृत्व में एक राष्ट्रीय सुरक्षा दल की स्थापना की गयी। सेना पर मध्यम वर्ग का अधिकार हो गया। राजा लुई 16वें को इन परिवर्तनों को स्वीकारने के लिए कहा गया तो उसने 17 जुलाई को पेरिस आकर इन परिवर्तनों को स्वीकार कर लिया। इस घटना को एकतंत्र की पराजय और स्वतंत्रता की विजय माना गया। पेरिस के समान अन्य स्थानों पर भी कम्यून और सुरक्षा दल गठित किये गये।

बास्तील की घटना का विशेष महत्व है। इस घटना के पश्चात जनता को सामन्तों और विरोधियों पर सीधी कार्यवाही करने का मौका मिल गया। शीघ्र ही फ्रांस में पुरातन व्यवस्था और उसके प्रतीकों कों समाप्त किया जाने लगा। ग्रामीण क्षेत्र में भी किसानों ने सामंतों के निवास स्थानों पर आक्रमण करके सामंती करों के अभिलेखों में आग लगा दी। व्यवहार में सामन्ती व्यवस्था का अन्त कर दिया गया।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. 1789 में एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन हेतु तृतीय वर्ग क्या बदलाव करना चाहता था ?
2. टेनिस कोर्ट की घटना पर प्रकाश डालते हुए बताइए कि तृतीय एस्टेट ने क्या शपथ ली ?
3. बास्तील के पतन का महत्व बताइये।

2.5 राष्ट्रीय संवैधानिक सभा (1789–91)

आपने देखा कि कैसे तृतीय एस्टेट ने अपने को राष्ट्रीय सभा घोषित किया और टेनिस कोर्ट की सभा में नवीन संविधान का निर्माण करने का निश्चय किया। 27 जून को जब राष्ट्रीय सभा को मान्यता प्रदान की गयी तो पादरी और कुलीन भी राष्ट्रीय सभा में सम्मिलित हो गए। राष्ट्रीय सभा ने अगस्त, 1789 से सितम्बर, 1791 तक शासन में सुधार और कई महत्वपूर्ण कार्य किए और फ्रांस का पहला लिखित संविधान तैयार किया ।

2.5.1 सामन्तीय विशेषाधिकारों का अन्त

उस समय सम्पूर्ण देश में क्रान्ति अपने चरम पर थी। बास्तील के पतन के पश्चात फ्रांस के नगरों और ग्रामीण क्षेत्र में सामन्तों के विरूद्ध जनता आन्दोलित हो गयी थी। राष्ट्रीय सभा में 4 अगस्त को एक समिति ने राज्य की अशान्ति और अराजक दशा पर एक रिर्पोट प्रस्तुत की तो नोआइय नामक एक कुलीन ने यह कह कर कि इसका कारण सामन्तों के विशेषाधिकार हैं,अपने विशेषाधिकारों को त्याग दिया। उसका समर्थन करते हुए कई अन्य सामन्तों ने भी अपने अधिकारों को त्यागने की घोषणा की। तब राष्ट्रीय सभा ने प्रस्ताव पारित करके सभी नागरिकों पर एक सामान कर व्यवस्था लागू की और विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया। सदियों पुरानी व्यवस्था,

जो क्रान्ति का प्रमुख कारण थी, का अन्त हो गया। इस घटना के बाद कुछ असन्तुष्ट सामन्त और राजा के सम्बन्धी विदेश भाग गये और क्रान्ति के विरूद्ध षडयन्त्र रचने लगे।

2.5.2 मानव एवं नागरिक अधिकारों की घोषणा

राष्ट्रीय सभा ने अमेरिकी क्रान्ति से प्रेरित होकर तथा रूसो की पुस्तक 'सोशल कांट्रेक्ट' से प्रभावित हो 27 अगस्त, 1789 को मानव अधिकारों की घोषणा की। इसमें उन सभी सिद्धान्तों को सम्मिलित किया गया जिसके आधार पर राष्ट्रीय सभा सम्पूर्ण शासन प्रणाली में सुधार करना चाहती थी। इस घोषणानुसार –

- प्रत्येक मनुष्य को समानता का अधिकार प्राप्त है।
- मुआवजा दिए बिना किसी की सम्पत्ति को जब्त नहीं किया जायेगा।
- सरकारी पदों पर योग्यता के आधार पर नियुक्ति की जायेगी।
- सभी को धार्मिक स्वतंत्रता के साथ साथ लेखन, भाषण तथा प्रकाशन की स्वतंत्रता प्रदान की गयी।
- समस्त जनता को समान न्याय और समान कानून का अधिकार दिया गया। किसी को गैर कानूनी ढ़ंग से कैद नहीं किया जायेगा।

इस घोषणा ने क्रान्ति को व्यापकता प्रदान की और समस्त विश्व को प्रभावित किया।

2.5.3 पेरिस की महिलाओं का वर्साय अभियान

4 अगस्त के निर्णय तथा मानव अधिकारों के घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर करने में राजा लुई 16वाँ देरी कर रहा था। जनता को भय था कि लुई 16वाँ क्रान्ति विरोधियों के साथ मिलकर क्रान्ति दमन करना चाहता है और इसके लिए पेरिस में सेना भेज सकता है। 1 अक्टूबर को वर्साय में शानदार दावत का आयोजन किया गया, जबकि पेरिस में अन्न की कमी थी। अतः 5 अक्टूबर, 1789 को पेरिस की कई हजार स्त्रियों ने वर्साय जाकर राजा के महल को घेर लिया। वह 'हमें रोटी दो' नारे लगा रही थीं। इनके साथ कई आन्दोलनकारी भी मिल गए। 6 अक्टूबर को इन लोगों ने वर्साय के महल पर अधिकार कर लिया और राजा तथा उसके परिवार को पेरिस में चलकर रहने पर विवश किया। राजा को तुईलरी के महल में रखा गया। 16 अक्टूबर को राष्ट्रीय सभा को भी पेरिस ले आया गया।

2.5.4 आर्थिक सुधार

राष्ट्रीय सभा के सामने आर्थिक समस्या सबसे बड़ी समस्या थी। तालिरॉ नामक एक विशप ने राष्ट्रीय सभा में प्रस्ताव रखा कि चर्च की सम्पत्ति को समाप्त कर दिया जाए। चर्च के पास फ्रांस की भूमि का पाँचवाँ हिस्सा था। वाद विवाद के पश्चात यह प्रस्ताव 22 वोटों से पारित हुआ। 3 नवम्बर, 1789 को चर्च की भूमि का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। चर्च की भूमि का भुगतान करने के लिए बॉन्ड (असिगनेट) का प्रयोग किया गया जो शीघ्र ही कागज की नियमित करेंसी बन गए। आर्थिक स्थिति सुधारने हेतु निर्धनों के लिए 'चैरिटी वर्कशाप' स्थापित किए। किसानों से भूमिकर के अतिरिक्त कोई भी कर लेना बन्द कर दिया। व्यापार और उद्योग धन्धों पर कर लगाए गए। अनाज के व्यापार को कर मुक्त किया और स्थानीय चुंगीयां और श्रेणियां समाप्त कर दी गयीं। देश छोड़कर गये कुलीन लोगों की सम्पत्ति को राष्ट्रीय सम्पत्ति घोषित किया।

2.5.5 पादरियों का कानून और मठों का अन्त

जुलाई, 1790 में पादरियों का कानून पारित किया गया, जिसके अनुसार पादरियों और विशपों का निर्वाचन अब जनता द्वारा किया जायेगा तथा प्रत्येक प्रान्त में एक विशप नियुक्त होगा, जो पोप के अधीन न होकर राज्य का वैतनिक कर्मचारी होगा। इस लौकिक संविधान की शपथ फ्रांस के सभी पादरियों को लेनी थी। इससे पोप पायस छठा और कैथोलिक जनता नाराज हो गये। पोप ने घोषणा की कि कोई भी पादरी या विशप शपथ न ले। कई पादरियों ने इसे मानने से इंकार कर दिया और क्रान्ति विरोधी हो गए । लियो गर्शाय के अनूसार क्रान्तिकारी विचारों को इससे अधिक हानि किसी घटना से नहीं हुयी। इससे फ्रांस दो भागों में बँट गया। 6 फरवरी, 1791 को एक अन्य घोषणा द्वारा सन्यासियों के मठों का अन्त करके उन्हें सांसारिक जीवन व्यतीत करने को कहा गया।

2.5.6 1791 का संविधान

राष्ट्रीय सभा ने 1791 का संविधान, जो फ्रांस के इतिहास में पहला लिखित संविधान था, बनाया। इसके द्वारा फ्रांस में संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना की गयी। इसमें जनता की इच्छा और अनुमति को सरकार की सभी शक्तियों का स्रोत माना गया।

- कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका को पूर्णतः अलग–अलग कर दिया गया।
- एक सदन वाली प्रतिनिधि सभा को कानून बनाने का अधिकार दिया गया। इसकी सदस्य संख्या 745 और कार्यकाल दो वर्ष रखा गया।
- व्यवस्थापिका के गठन के लिए निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था की गयी। नागरिकों को मतदान के अधिकार के आधार पर दो श्रेणियों में बाँटा गया। सक्रिय नागरिक और निष्क्रिय नागरिक।
- राजा तथा उसके मंत्री व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानून के आधार पर ही शासन कर सकते थे। परन्तु राजा को निषेधाधिकार दिया गया जिससे वह व्यवस्थापिका के प्रस्ताव को कार्यान्वयन करने से रोक भी सकता था।
- विदेश नीति भी राजा के हाथ में रही ,लेकिन युद्ध और सन्धि के समय अन्तिम निर्णय का अधिकार व्यवस्थापिका को दिया गया।
- राज्य का पुर्नगठन किया गया । उसे विभागों, जिलों और कम्यून में बाँटा गया। प्रशासन का विक्रेंदीकरण कर दिया गया। सबसे छोटी इकाई कम्यून थी।
- न्याय सस्ता और सुलभ बनाया गया और जूरी व्यवस्था लागू की गयी।
- राजा के व्यक्तिगत व्यय हेतु एक निश्चत राशि भी निर्धारित कर दी गयी।

21 सितम्बर, 1791 को राजा ने नए संविधान को स्वीकार करके उसके अनुसार कार्य करने का वचन दिया। 30 सितम्बर, 1791 में राष्ट्रीय सभा विसर्जित कर दी गयी। अपने विसर्जन से पहले सभा ने प्रस्ताव पारित किया कि इस सभा का कोई भी सदस्य विधान सभा का सदस्य नहीं हो सकेगा।

2.5.7 राष्ट्रीय सभा का मूल्यांकन

इतिहासकार हेज का मत है कि फ्रांस के तूफानी वातावरण में राष्ट्रीय संवैधानिक सभा ने देश में शान्ति एवं सुव्यवस्था के लिए जो कार्य अल्पकाल में पूरे किए वह अन्य सभाएं वर्षों तक पूरा करने में सफल नहीं हो पातीं। राष्ट्रीय सभा ने पुरातन व्यवस्था और सामन्तवाद का अंत करके मानवाधिकारों की घोषणा की और एक लिखित संविधान बनाया।

राष्ट्रीय सभा के कार्यों में कई दोष भी थे। – इसने नागरिकों को मताधिकार के आधार पर दो वर्गों सक्रिय नागरिक और निष्क्रिय नागरिक में बाँट दिया और गरीबों को मताधिकार से वंचित कर दिया।

व्यवस्थापिका और कार्यपालिका अलग करने से वह एकदूसरे की सहायक न होकर विरोधी बन गयीं। अत्यधिक विकेन्द्रीयकरण करने के कारण केन्द्र सरकार का स्थानीय अधिकारियों पर नियंत्रण नहीं रहा जिससे प्रशासन कमजोर हो गया। दूसरी बार विधान सभा का सदस्य नहीं बनने के निर्णय ने अनुभव की उपेक्षा की। इतिहासकार एच. जी. वेल्स के अनुसार इस सभा के बहुत से कार्य रचनात्मक तथा चिरस्थायी प्रवृत्ति का थे किन्तु इस सभा के बहुत से कार्य प्रायोगिक थे और अस्थायी सिद्ध हुए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. राष्ट्रीय सभा द्वारा मानव अधिकारों की घोषणा पर टिप्पणी लिखिए।
2. राष्ट्रीय सभा ने आर्थिक सुधार हेतु क्या कार्य किए?
3. पेरिस के स्त्रियों के वर्साय अभियान पर टिप्पणी लिखिए।
4. राष्ट्रीय सभा ने चर्च और पादरियों के सम्बन्ध में जो कानून बनाए उनका वर्णन कीजिए।

2.6 विधान सभा (1791—92)

1791 के संविधान अनुसार फ्रांस में संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना हेतु व्यवस्थापिका सभा का निर्वाचन किया गया। नई विधान सभा का पहला सत्र 1 अक्टूबर, 1791 को प्रारंभ हंआ। इसकी सदस्य संख्या 745 थी। यह सभी सदस्य नए और अधिकांश मध्यम वर्ग के थे। विधान सभा के प्रारम्भ के साथ जनता ने खुशी मनाई कि अब क्रान्ति समाप्त हो गयी है और फ्रांस में अब शान्ति स्थापित होगी। परन्तु विधान सभा के गठन से पूर्व जब राष्ट्रीय सभा अपना कार्य कर रही थी तब ही 20 जून, 1791 को राजा और रानी ने नौकरों के वेष में विदेश भागने का प्रयत्न किया। सीमा पार करने से पूर्व ही उन्हें पहचान लिया गया और उन्हें पेरिस लाया गया। इस घटना से लोगों का राजा पर से विश्वास कम हो गया । इसका लाभ गणतंत्रवादियों को मिला और वह अपना प्रभाव बढ़ाने में सफल रहे।

2.6.1 विधान सभा में दलबन्दी

इस सभा में कई दलों के प्रतिनिधि विजित हुए—

- राजतंत्रवादी— इनकी संख्या 100 थी और यह लुई 16वें के समर्थक थे।
- संविधानवादी— यह संवैधानिक राजतंत्र के समर्थक थे। फेइयां चर्च में एकत्र होने के कारण फेइयां भी कहा जाता था। इनकी संख्या 164 थी।
- सेण्टर पार्टी — यह स्वतंत्र सदस्य थे सभा में बीच में बैठने के कारण सेण्टर पार्टी कहलाये। यह 245 थे।
- गणतंत्रवादी— राजतंत्र को पूर्ण समाप्त करना चाहते थे। इनकी संख्या 236 थी। गणतंत्रवादियों में भी दो गुट थे— जिरोंदिस्त ,जो उदारवादी था और जैकोबिन, जो उग्रवादी था। विधान सभा में जिरोदिस्त दल का मंत्रीमंडल था।

2.6.2 विधान सभा के समक्ष समस्याएं

इस सभा को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

1.फ्रांस में राजतंत्र के समर्थक बहुत से सामन्त और राजा के भाई विदेश भाग गये थे, जहां वह यूरोप के अन्य राजतंत्रों के साथ मिलकर क्रान्ति विरोधी षड़यन्त्र रच रहे थे। व्यवस्थापिका सभा ने विदेश गए सामन्तों को दो माह के अन्दर लौट आने अन्यथा देशद्रोही घोषित करने का आदेश दिया। राजा ने इस आदेश पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया।

2. संविधान सभा द्वारा बनाए गए लौकिक संविधान की शपथ न लेने वाले पादरियों को सभा ने यह आदेश दिया कि यदि वह शपथ नहीं लेंगे तो उनको पद से हटा दिया जायेगा और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जायेगी। राजा ने इस आदेश को भी अस्वीकार कर दिया।

राजा के इन कार्यों को क्रान्ति विरोधी प्रचारित करके गणतंत्रवादियों ने राजतंत्र के विरूद्ध प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया।

2.6.3 यूरोपीय राष्ट्रों से युद्ध

फ्रांस के राजा के समर्थन में 27 अगस्त, 1791 को आस्ट्रिया और प्रशा के शासकों ने पिलनित्स की घोषणा की जिसमें कहा कि फ्रांस की समस्या सभी राज्यों की समस्या है और हम इसको समाप्त करने के लिए फ्रांस में सशस्त्र हस्तक्षेप करेंगे। यह घोषणा विधान सभा को भयभीत करने के लिए की गयी थी। किन्तु गणतंत्रवादियों ने राजतंत्र को समाप्त करने के लिए युद्ध को आवश्यक मानकर युद्ध करने का प्रस्ताव रखा, जो बहुमत से पास हुआ। 20 अप्रैल, 1792 को आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी गयी।

2.6.4 राजतंत्र का अंत और अन्तरिम सरकार का गठन

प्रशा के सेनापति ने ब्रुन्सविक की घोषणा की कि यदि फ्रांस की जनता ने लुई 16वे तथा उसके परिवार को कोई क्षति पहुंचाई तो पेरिस को नष्ट कर दिया जायेगा। फ्रांस की जनता इससे उत्तेजित हो गयी और लुई 16वें को देशद्रोही मानकर तुइलरी के महल पर धावा बोल दिया। व्यवस्थापिका सभा ने 11 अगस्त, 1792 को राजा लुई 16वें को निलम्बित कर दिया तथा गणतंत्र की स्थापना करने के लिए नवीन संविधान का गठन करने हेतु राष्ट्रीय सम्मेलन का चुनाव करने का निश्चय किया। तत्पश्चात पेरिस की नागरिक सभा पेरिस कम्यून को अन्तरिम सरकार चलाने का कार्यभार सौंप दिया।

2.6.5 कम्यून और सितम्बर हत्याकांड

पेरिस कम्यून की अन्तरिम सरकार ने 11 अगस्त से 20 सितम्बर तक राज्य किया। इस पर जैकोबिन नेताओं राब्सपियरे, दांतों और मारा आदि का प्रभाव था। उसने प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को मतदान करने का अधिकार दिया। कम्यून ने लुई 16वें तथा उसके परिवार को बन्दी बना लिया। मारा ने विचार रखा कि बाहरी शत्रु से पूर्व देश में स्थित क्रान्ति विरोधियों का दमन करना चाहिए। परिणामस्वरूप 2 सितम्बर से 6 सितम्बर, 1792 में हजारों की संख्या में राजतंत्र के समर्थकों और क्रान्ति विरोधियों को मौत के घाट उतार दिया गया। सितम्बर हत्याकाण्ड का असर चुनावों पर भी पड़ा। 20 सितम्बर, 1792 को फ्रांस ने आस्ट्रिया और प्रशा की सेनाओं को वाल्मी के युद्ध में पराजित किया। इसी दिन विधान सभा भंग कर दी गयी और राष्ट्रीय सम्मेलन का चुनाव हुआ।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. फ्रांस की 1791 में गठित विधान सभा के समक्ष उपस्थित प्रमुख समस्याओं पर टिप्पणी लिखिए।
2. फ्रांस में राजतंत्र का अंत क्यों हुआ?

2.7 नेशनल कन्वेंशन ' राष्ट्रीय सम्मेलन(1792–1795)

राष्ट्रीय सम्मेलन फ्रांस की तीसरी क्रान्तिकारी सभा थी तथा इसका चुनाव आतंक और भय के माहौल में 20 सितम्बर, 1792 को हुआ । इसमें कुल 782 सदस्यों में से 200 जिरोंदिस्त, 100 जैकोबिन तथा 482 स्वतंत्र

सदस्य निर्वाचित हुए। 20 सितम्बर, 1792 को इसकी प्रथम बैठक हुयी। इनमें प्रमुख जिरोंदिस्त नेता ब्रिसट, कन्डोरसे तथा प्रमुख जैकोबिन नेता रोबस्पियरे, दाँतो, मारा, कार्नो , कामिल आदि थे।

2.7.1 राष्ट्रीय सम्मेलन की प्रमुख समस्याएं

कन्वेंशन ने क्रान्ति के विषम दौर में विकट समस्याओं के मध्य अपना कार्य सितम्बर, 1792 से अक्टूबर, 1795 तक सम्पादित किया। इसके सामने प्रमुख समसयाएं थीं।–

फ्रांस में शान्ति स्थापित करना, विदेशी आक्रमण का सामना करना,, आर्थिक दशा में सुधार करना तथा धार्मिक समस्याओं का सुलझाना। इनके अतिरिक्त सबसे बड़ी समस्या गणत्रंवादियों के आपसी मतभेद, विशेष रूप से राजा के दण्ड के सम्बन्ध में आपसी मतभेद थे।

2.7.2 राजा को मृत्युदण्ड

लुई सोलहवें के विरूद्ध उसके महल से प्राप्त गुप्त पत्रों से उसके राष्ट्रद्रोह के प्रमाण मिले थे।

अतः अब औपचारिक मुकदमें के बाद राजा को अपराधी घोषित कर दिया गया। 16 जनवरी, 1793 को राजा को मृत्युदण्ड देने के प्रश्न पर मतदान हुआ और सम्मेलन ने राजा को बहुमत के आधार पर मृत्युदण्ड दे दिया। राजा लुई 16वें को देशद्रोही घोषित किया तथा 21 जनवरी, 1793 को उसे गिलोटिन पर चढ़ाकर मृत्युदण्ड दिया।

2.7.3 यूरोपीय राष्ट्रों से युद्ध

राजा को प्राणदण्ड देने के कारण कई यूरोपीय देश फ्रांस के विरोधी हो गये। आस्ट्रिया, प्रशा के साथ इंग्लैण्ड, स्पेन, हालैण्ड, सार्डिनिया ने मिलकर फ्रांस के विरूद्ध संगठन बनाया और फ्रांस पर आक्रमण कर दिया। विदेशी आक्रमणों का सामना करने के लिए तीन लाख सैनिकों की एक विशाल सेना का गठन किया गया। प्रारम्भ में फ्रांस को पराजित करने के बाबजूद यह प्रथम संगठन फ्रांस का अहित करने में असफल रहा।

2.7.4 आतंक का शासन

इस समय बाहरी और आन्तरिक विरोध के कारण सम्पूर्ण देश में अराजकता फैली थी। सम्मेलन के अन्दर भी दलगत संघर्ष व्याप्त थे। जिरोंदिस्त और जैकोबिन के मध्य संघर्ष में अन्ततः जैकोबिन विजयी हुए। उन्होंने पेरिस की जनता की सहायता से 2 जून, 1793 को जिरोंदिस्त दल के 31 प्रमुख सदस्यों को बन्दी बनाकर शासन पर पूर्ण अधिकार कर लिया। क्रान्ति के विरोधियों में भय उत्पन्न करने और गणतंत्र को स्थायी बनाने के लिए जैकोबिनों ने आतंक के राज्य की स्थापना की। यह शासन जून,1793 से जुलाई,1794 तक चलता रहा। इसका प्रमुख दाँते था।

इस आतंकी सरकार ने दो महत्वपूर्ण समितियाँ गठित कीं– **जन सुरक्षा समिति** और **सामान्य सुरक्षा समिति**। जन सुरक्षा समिति का प्रमुख रोबस्पियरे था। यह समिति व्यवहारिक रूप से सबसे शक्तिशाली संस्था बन गयी। राष्ट्रीय सम्मेलन के नेता उसके पूर्ण नियंत्रण और आतंक के अधीन हो गये। इस समिति ने अपने विरोधियों पर अनेक अत्याचार किये और हजारों लोगों को गिलोटिन पर चढ़ा दिया। सामान्य सुरक्षा समिति पुलिस का कार्य करती थी। उसने अगणित लोगों को जेलों में डाला, जहाँ से उन्हें न्यायाधिकरण के समक्ष पेश किया जाता था। क्रान्ति विरोधियों को दंडित करने के लिए क्रान्तिकारी न्यायालय की भी स्थापना की। इसके द्वारा **आतंक का शासन** स्थापित किया गया। इस दौरान राज परिवार के सदस्यों, हजारों की संख्या में क्रान्ति विरोधियों तथा

अन्त में प्रमुख जिरोंदिस्त सदस्यों को भी गिलोटिन पर चढ़ाया गया। 28 जुलाई, 1794 को राब्सपियरे की मृत्यु के साथ आतंक के शासन का अन्त हुआ।

2.7.5 राष्ट्रीय सम्मेलन के अन्य कार्य

राष्ट्रीय सम्मेलन ने गणतंत्र की घोषणा करके देश के लिए नया कैलेण्डर बनाया। राष्ट्रीय सम्मेलन ने फ्रांस में दास प्रथा तथा वर्ग भेद समाप्त करके सामाजिक और आर्थिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया। फ्रेंच को राष्ट्रभाषा घोषित किया तथा स्कूलों और पुस्तकालयों की स्थापना की। बुद्धि पूजा को महत्व दिया गया। विवाह और तलाक के नियम सरल बनाये गए। वित्तीय समस्या के समाधान हेतु वित्त विशेषज्ञ परिषद का गठन किया।

राष्ट्रीय सम्मेलन की स्थापना का उद्देश्य संविधान का निर्माण करना था। अतः उसने 1795 में संविधान तैयार किया, जिसे तृतीय वर्ष का संविधान कहा जाता है। तत्पश्चात 26 अक्टूबर, 1795 को राष्ट्रीय सम्मेलन को भंग कर दिया गया।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रमुख कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. आतंक के शासन का वर्णन कीजिए।

2.8 निदेशक मण्डल(1795–1799) और नेपोलियन का उदय

राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा निर्मित तृतीय वर्ष के संविधान में दो सदन वाली विधान सभा और पाँच सदस्यों के निदेशक मण्डल वाली कार्यपालिका का प्रावधान रखा गया था। उसके अनुसार पाँच सदस्यों –बर्रास, कार्नो, एबेसिया, रूबेल और ला रिबेलियरे का चयन करके निदेशक मण्डल का गठन किया गया। इस डायरेक्टरी ने 27 अक्टूबर,1795 से 19 अक्टूबर, 1799 तक शासन किया।

डायरेक्टरी का चार वर्ष का कार्यकाल अनिश्चितता और संकटपूर्ण रहा। इसके सदस्य अयोग्य और भ्रष्ट तथा अपने स्वार्थों में निहित थे। फलतः शासन व्यवस्था कमजोर पड़ने लगी और डायरेक्टरी के विरूद्ध षड़यन्त्र रचे जाने लगे। पेन्थियन विद्रोह जिसे बेबुफ द्वारा प्रारम्भ करने के कारण बेबुफ षड़यन्त्र कहा जाता है, डायरेक्टरी के समय की प्रमुख घटना है। इसका उद्देश्य सर्वहारा वर्ग के हितों को स्थापित करना तथा मध्यमवर्ग के प्रभुत्व वाली डायरेक्टरी का विरोध करना था। इस षड़यन्त्र का दमन कर दिया गया। लेकिन जनता में डायरेक्टरी के शासन के प्रति आक्रोश फैल गया।

डायरेक्टरी का कार्यकाल यूरोपीय देशों के साथ लड़े गये युद्धों और उनमें तेजी से उभरते सेनापति नेपोलियन की प्रारम्भिक सैनिक सफलताओं के कारण याद किया जाता है। नेपोलियन की सैनिक योग्यता से प्रभावित हो डायरेक्टरी ने उसे इटली के अभियान का सेनाध्यक्ष नियुक्त किया। इटली का अभियान अप्रैल,1796 से अप्रैल,1797 तक चला। नेपोलियन ने आस्ट्रिया की सेना को परास्त किया। आस्ट्रिया के सम्राट ने सन्धि करने का प्रस्ताव रखा और युद्ध रोक दिया गया। अंत में नेपोलियन ने **आस्ट्रिया** के साथ 17 अक्टूबर, 1797 को **कैम्पो फोर्मियो की संधि** की। इस सन्धि के अनुसार–आस्ट्रिया द्वारा फ्रांस को बेल्जियम प्रदान कर दिया गया। लोम्बार्डी पर फ्रांस का अधिकार स्वीकार कर लिया गया। राइन का प्रदेश भी फ्रांस को दे दिया गया। वेनिस के इरिट्रिया और डाल्मेशिया क्षेत्र आस्ट्रिया को देकर वेनिस के पश्चिमी भाग को सिसएल्पाइन में मिलाकर फ्रांस के अधीन कर दिया गया।

नेपोलियन ने इटली के विजित क्षेत्रों को मिलाकर **सिसएल्पाइन** गणतंत्र और जिनोआ तथा उत्तर पश्चिम के प्रदेशों को मिलाकर **लिगूरियन** गणतंत्र बना दिया। 1799 में उसने दक्षिणी इटली के क्षेत्रों नेपल्स आदि में **पार्थेनोपियन** गणतंत्र की स्थापना की। इस अभियान से अधिकांश इटली पर आस्ट्रिया का प्रभाव खत्म हो गया और फ्रांस का प्रभाव कायम हो गया।

फ्रांस के विरूद्ध बने प्रथम गुट में अब इग्लैण्ड ही शेष रह गया था, नेपोलियन का विचार था कि मिश्र पर अधिकार करके वह इंग्लैण्ड के भूमध्यसागरीय और एशियायी व्यापार को बाधा डालकर उसकी आर्थिक शक्ति को क्षीण कर सकता है। फ्रांस के डायरेक्टर भी नेपोलियन की लोकप्रियता से भयभीत होकर उसे फ्रांस से दूर रखना चाहते थे। अतः उसकी **मिश्र अभियान** की योजना को स्वीकृति मिल गयी। प्रारम्भ में वह मिश्र में भी सफल रहा लेकिन अंत में **नील नदी के युद्ध** में अंग्रेज सेनापति नेल्सन के हाथों बुरी तरह पराजित हुआ।

नेपोलियन की प्रारम्भिक सैनिक उपलब्धियाँ विशेषरूप से इटली की सफलता ने फ्रांस में उसको लोकप्रिय बना दिया था। इस समय डायरेक्टरी (निदेशक मण्डल) के भ्रष्ट शासन और देश में व्याप्त अराजकता से फ्रांस की जनता तंग आ गयी थी। महत्वाकांक्षी नेपोलियन ने सत्ता पर अधिकार करने हेतु उचित समय जानकर डायरेक्टरी के विरूद्ध षडयन्त्र रचा। इस षडयन्त्र में उसने ऐबेसीये, तालिरां और फूशे आदि को अपने साथ मिला लिया। तीन प्रमुख निदेशकों पर दबाब डालकर इस्तीफा ले लिया गया और दो निदेशकों को नजरबंद कर दिया गया। दोनों सदनों के अधिवेशन में विरोधियों को अपने सैनिकों के द्वारा भयभीत कर नेपोलियन ने संचालक मण्डल को समाप्त करने का प्रस्ताव पास करा लिया। सीये को संविधान बनाने का कार्य सौंपा गया। इस प्रकार 10 नवम्बर, 1799 को 19वें ब्रूमेयर के आठवें कूप द इतात द्वारा सत्ता परिवर्तन कर दिया गया।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नेपोलियन के द्वारा डायरेक्टरी का अन्त कर सत्ता प्राप्ति में सफल होने में कौन से कारण उत्तरदायी थे?

2.9 कौंसिल शासन 1799–1804

1799 ई0 से 1804 ई0 के युग में फ्रांस की क्रान्ति के सिद्धान्तों का सम्पूर्ण यूरोप में प्रसार हुआ। नेपोलियन के कार्यों ने प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से इन सिद्धान्तों के प्रसार में योगदान किया और फ्रांस की क्रान्ति को यूरोप की क्रान्ति बना दिया।

कौंसिल शासन में सत्ता तीन कौंसिल– नेपोलियन, सीये और ड्यूको के अधीन थी। प्रथम कौंसिल को समिति का अध्यक्ष बनाया गया और यह पद नेपोलियन को दे दिया गया। शासन की सम्पूर्ण शक्ति प्रथम कौंसिल में केन्द्रित थी। फ्रांस की आन्तरिक व्यवस्था स्थापित करते समय उसने एक ओर क्रान्ति के सिद्धान्तों को स्थिरता प्रदान की तो दूसरी ओर बूर्बा राजवंश द्वारा स्थापित परम्परागत व्यवस्था को भी नवीन रूप देकर पुनर्स्थापित किया।

2.9.1 क्रान्ति के सिद्धान्तों पर आधारित कार्य

फ्रांस में व्याप्त अव्यवस्था को दूर करने के लिए प्रथम कौंसिल बनने के पश्चात नेपोलियन ने अनेक सुधार किए। उसके प्रशासनिक कौशल को प्रकट करने वाले यह सुधार उसकी स्थायी उपलब्धियाँ सिद्ध हुये।

- संविधान का निर्माण किया गया, जो फ्रांस की क्रांति के पश्चात चौथा संविधान था। कार्यपालिका के लिए तीन सदस्यों की कौंसिल समिति का प्रावधान रखा गया, जिसकी कार्यावधि दस वर्ष रखी गयी। इनमें संविधान में चार सदनों वाली व्यवस्थापिका का प्रावधान रखा गया। इन सभाओं के सदस्यों का चुनाव सूची तैयार करके अप्रत्यक्ष चुनाव द्वारा किया जाता था। नेपोलियन ने कुछ वर्ष पश्चात इस संविधान पर जनमत संग्रह कराया और फ्रांस की जनता ने भारी बहुमत से संविधान को स्वीकार कर लिया।
- नेपोलियन की सेनाएँ क्रान्ति के नारे 'स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व' के ध्वज को लेकर विजित क्षेत्रों में गयीं। 1801 में आस्ट्रिया और फ्रांस के मध्य ल्यूनेविल की सन्धि हुयी, जिसमें केम्पोफोर्मिया की शर्तों को ही दुहराया गया। फ्रांस का बेल्जियम और राइन नदी के बाएँ किनारे पर पुनः अधिकार हो गया और इटली के गणतंत्रों बटेवियन, हेल्वेटिक और सिसएल्पाइन का वह स्वयं राष्ट्रपति हो गया। विजित क्षेत्रों में उसके प्रशासनिक सुधारों से क्रान्ति के सिद्धान्त स्वतः विकसित होने लगे।
- फ्रांस का इंग्लैण्ड के साथ लगभग दस वर्ष से युद्ध चल रहा था। दोनों ही देश शान्ति चाहते थे। फलतः 1802 ई. में दोनों देशों ने **आमियां की सन्धि** कर ली। इस सन्धि के अनुसार–इंग्लैण्ड ने फ्रांस की कौंन्स्यूलेट सरकार को मान्यता प्रदान की।
- नेपोलियन का धर्म के सम्बन्ध में स्पष्ट मत था कि फ्रांस का एक धर्म होना चाहिए, जो राज्य के नियंत्रण में रहे।1801 में नेपोलियन ने पोप पायस सप्तम के साथ एक समझौता किया, जिसको **कोन्कोर्दा** कहा गया। इस समझौते के अनुसार–कैथोलिक धर्म को फ्रांस की बहुसंख्यक जनता का धर्म स्वीकारा गया तथा फ्रांस के सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गयी। चर्च को राज्य के अधीन माना गया और चर्च के अधिकारी राज्य के कर्मचारी माने गये। चर्च के बिशपों की नियुक्ति का अधिकार प्रथम कौंसिल को मिला, पोप को मात्र औपचारिक स्वीकृति का अधिकार दिया गया। राज्य बिशपों और पादरियों को वेतन देता था और उनको देशभक्ति की शपथ लेनी होती थी। चर्च को स्थायी सम्पत्ति खरीदने का अधिकार भी नहीं रहा। इस समझौते से नेपोलियन ने उन सभी बातों को पोप से स्वीकार करा लिया, जिसका प्रारम्भ में पोप ने विरोध किया था। पोप की अनुमति के बिना नेपोलियन ने प्रोटेस्टेंटो के अधिकारों को स्पष्ट करने के लिए अधिकार पत्र दिया और फ्रांस में धर्मनिरपेक्ष राज्य का संस्थापक बन गया।
- नेपोलियन ने कानूनी क्षेत्र में व्याप्त असंगतियों को दूर करने और एकरूपता स्थापित करने की ओर प्राथमिकता से ध्यान दिया। इसके लिए उसने चार सदस्यों की एक समिति गठित की, जिसके द्वारा तैयार की गयी कानूनी संहिता को नेपोलियन कोड कहा गया। इसमें पाँच तरह के कानूनों का संकलन हुआ।–

1. नागरिक संहिता (सिविल कोड)
2. नागरिक प्रक्रिया की संहिता (कोड ऑफ सिविल प्रोसीजर)
3. फौजदारी कानून (पीनल कोड)
4. अपराधमूलक प्रक्रिया की संहिता (कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसीजर)
5. व्यवसाय सम्बन्धी कानून (कॉमर्शियल कोड)

इन कानूनों को तीन स्रोतों – फ्रांस के परम्परागत कानून, रोमन कानून और क्रान्ति के अनुभवों से संकलित किया गया। उसकी 1804 में बनी नागरिक संहिता (सिविल कोड) उसके सभी कानूनों मे सबसे अधिक प्रभावशाली थी। इनमें समानता के सिद्धान्त को स्वीकारा गया, स्वतंत्रता को नियंत्रित किया गया तथा विशेषाधिकार और सामन्ती नियम समाप्त कर दिये गये।

नागरिक संहिता के अनुसार–परिवार को एक पवित्र इकाई माना गया और उसमें पिता को सर्वोपरि माना गया। पैतृक सम्पत्ति पर सभी पुत्रों का सामान अधिकार माना गया। विवाह एक पवित्र एवं स्थायी बन्धन माना गया। सिविल मैरिज और तलाक को स्वीकारा गया। लेकिन स्त्रियों को पुरूषों की अपेक्षा कम महत्व दिया गया। उनको पूर्णतया अपने पति के अधीन कर दिया गया। व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त को मान्यता दी गई और भूमि

पर स्वामी के अधिकार को सख्त बनाया गया। ब्याज की दरें निश्चित कर दी गयीं। एकमात्र सरकार ही सम्पत्ति का अधिग्रहण कर सकती थी। औद्योगिक समूह और धार्मिक संस्थान सम्पत्ति का संग्रह नहीं कर सकते थे।

- नेपोलियन ने शिक्षा को राष्ट्र के विकास और प्रशासनिक व्यवस्था सुव्यवस्थित करने का प्रमुख साधन माना। उसने शिक्षा के विकास हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाई, जिसके द्वारा शिक्षा पर राजकीय नियंत्रण लगा कर उसे राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष बनाया गया। नेपोलियन ने शिक्षा को तीन स्तरों पर विभाजित किया।–प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा। प्रत्येक नगर में प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय स्थापित किये गये। प्रीफेक्टों और उप प्रीफेक्टों की देख रेख में शिक्षा का कार्य सौंपा गया।
- आर्थिक क्षेत्र में सरकारी नियन्त्रण और मुद्रा के विकास हेतु नेपोलियन ने पेरेगो के सहयोग से 1800 में बैंक ऑफ फ्रांस की स्थापना की। इसे नोट जारी करने का एकाधिकार दिया गया। साथ ही इस बैंक से ऋण प्राप्त करने की व्यवस्था भी की गयी। बैंक ने फ्रांस की मुद्रा स्थिति को दृढ़ बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। कृषि के विकास हेतु बंजर और रेतीले इलाकों को उपजाऊ बनाने का प्रयास किया गया। नहरों की व्यवस्था ठीक की गयी। परन्तु भू सुधार और उत्पादन वृद्धि हेतु कोई मौलिक सुधार नहीं किये गए। राजस्व और करों की वसूली केन्द्रिय सरकार के अधीन रखी गयी। इससे करदाता और सरकार दोनों को लाभ हुआ। करों को व्यक्ति की आर्थिक स्थिति के आधार पर निर्धारित किया गया।
- मजदूरों और किसानों की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति का वह विशेष ध्यान रखता था।
- प्रमुख नदियों पर पुल बनाये गये और नहरों का निर्माण किया गया। सीन नदी पर मजबूत पुलों को बनाया गया। पेरिस का पुननिर्माण किया गया और उसे यूरोप के सबसे सुन्दर और भव्य नेपोलियन ने लगभग 229 अच्छी सड़कों का निर्माण कराया था। तीस सड़कें पेरिस को फ्रांस के नगर के रूप में स्थापित किया गया। नेपोलियन स्वयं इटली और मिश्र से कला कृतियां पेरिस को सजाने के लिए लाया था। पेरिस में ला मादलैन का गिरजाघर का निर्माण किया गया। थियेटर, म्यूजियम और बेघर लोगों के लिए आवास गृहों का निर्माण किया गया। भवनो और फर्नीचर निर्माण में एक नई शैली का विकास हुआ, जिसे साम्राज्य की शैली कहा जाता है। नेपोलियन ने शिक्षा और संस्कृति के विकास के लिए जनता पुस्तकालय भी स्थापित किये। तुलों और शेरब्रुग बन्दरगाहों का विकास भी किया गया।

इस प्रकार उसके द्वारा किए गए कार्यों से फ्रांस में आधुनिक राज्य और समाज के सिद्धान्तों की स्थापना हुयी। धर्मनिरपेक्ष राज्य, धर्म और कानून की समानता, लोक सेवाओं और व्यवसाय में सामान्य रूप से समस्त नागरिकों की भागेदारी आदि सभी सुधारों के मूल में समानता के सिद्धान्त को अधिक महत्व दिया गया।

2.9.2 पुरातन व्यवस्था पर आधारित कार्य

प्रशासनिक व्यवस्था का केन्द्रीकरण, प्रेस पर प्रतिबन्ध आदि द्वारा उसने बूर्बा कालीन व्यवस्था के कुछ क्रान्ति विरोधी तत्वों को भी शासन में समाहित किया। उसका मानना था कि फ्रांस की जनता समानता चाहती है स्वतंत्रता नहीं।

- संविधान की रूपरेखा नेपोलियन द्वारा इस तरह तैयार की गयी कि सारी शक्ति उसी के अधिकार में रहे। गणतंत्र केवल दिखावा मात्र था, वास्तविक सत्ता नेपोलियन के ही हाथ में थी। चुनाव हेतु नामांकन की सूचियां इस तरह से तैयार की जाती थी कि इनका सदस्य वही हो सकता था, जिसको नेपोलियन चाहे।

- नेपोलियन ने प्रथम कौंसिल का पद ग्रहण करते ही स्थानीय प्रशासन की समस्त व्यवस्था को केन्द्रित कर दिया। उसने देश के प्रशासकीय विभाजन को पूर्ववत रहने दिया। 1800 में उसने पुरातन व्यवस्था के इन्टैंडेंटों के सदृश अधिकारियों की नियुक्ति करके पुरातन व्यवस्था में थोड़े संशोधन के साथ केंद्रीकृत शासन स्थापित किया। अब केन्द्र द्वारा प्रत्येक विभाग में प्रीफेक्ट और जिलों में उप प्रीफेक्ट तथा नगरों और कम्यून में मेयर

नियुक्त किये जाने लगे। यह अधिकारी निरन्तर केन्द्र के सम्पर्क में रहते थे। केन्द्र सरकार नीति निर्धारण करती थी, इनका कार्य केन्द्र की नीतियों को समान रूप से सम्पूर्ण राज्य में लागू करना था। इनकी सहायतार्थ निर्वाचित परिषदों की स्थापना भी की गयी, जिनका कार्य अपने स्थानों के लिए राष्ट्रीय करों को तय करना था। नेपोलियन ने सचिवालय का भी विकास किया और मारे के नियंत्रण में राज्य मंत्रालय बनाया, जो देश का केंद्रीय लेखा कार्यालय बन गया। स्थानीय प्रशासन और नौकरशाही की यह व्यवस्था थोड़े परिवर्तनों के साथ आज भी फ्रांस में प्रचलित है।

- नागरिक संहिता के अतिरिक्त जो अन्य संहिताये लागू की गयीं, वह निरंकुशता की भावना से प्रभावित थीं। दण्ड संहिता में राजनीतिक अपराधों को रोकने के लिए मृत्यु दंड, उम्र कैद, देश निर्वासन, संपत्ति जब्त जैसे कानून लागू किए गए। फौजदारी मामलो में जूरी प्रथा समाप्त कर दी गयी। व्यवसाय संहिता साधारण व्यापार, समुद्री व्यापार, दिवालियापन तथा अन्य व्यापारिक मामलों का नियमन करती थी।
- उच्च शिक्षा के लिए पेरिस विश्वविद्यालय का पुनर्गठन किया गया। विश्वविद्यालय पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण लागू किया गया। पेरिस विश्वविद्यालय के प्रमुख शिक्षकों और अधिकारियों की नियुक्ति नेपोलियन स्वयं करता था। विश्वविद्यालय स्वायत्त संस्था के स्थान पर शिक्षा विभाग का एक अंग बना दिये गए। विश्वविद्यालय के प्रमाणपत्र के बिना नया स्कूल खोलने या सार्वजनिक रूप से शिक्षा देने का किसी को अधिकार नहीं था। नेपोलियन ने नारी शिक्षा ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उनके लिए प्राथमिक स्तर तक ही शिक्षा की व्यवस्था की गयी, जो धार्मिक संस्थाओं के अधिकार में रखी गयी।
- उसने मजदूर संघों को गैर कानूनी घोषित कर मजदूरों पर कड़ा नियन्त्रण स्थापित किया।
- नेपोलियन मुक्त व्यापार के सिद्धान्त के विपरीत व्यापार पर राज्य का पूर्ण नियन्त्रण चाहता था। उसके अनुसार कोष पर नियन्त्रण और व्यापार में संतुलन के लिए राज्य का हस्तक्षेप आवश्यक है। उसने पुरातन व्यवस्था के अनुसार कुछ व्यापार श्रेणियों को स्थापित किया।
- नेपोलियन ने साहित्य और पत्रकारिता पर कई प्रतिबन्ध लगा कर उसकी स्वाभाविक प्रगति को रोक दिया था। फलतः फ्रांस में साहित्य का अधिक विकास नहीं हो सका। उस समय के प्रमुख फ्रांसीसी साहित्यकार शातोब्रियां और मैडम द स्ताएल उसके विरोधी थे।
- एक सम्मान 'लीजियन ऑफ ऑनर' की स्थापना की, जिसके द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियों के लिए लोगों को सम्मान देकर एक नया विशिष्ट वर्ग बनाया।
- क्रान्ति के विचारों के विपरीत न चाहते हुए भी कैथोलिक फ्रांस का राज्य धर्म बन गया था।
- पुराने राजप्रसादों तुइलरी और फौंतैब्लो को पुनः सुसज्जित किया गया। जोसेफिन के लिए मालमेजों नामक सुन्दर महल का निर्माण कराया गया। नेपोलियन के समय में प्रमुख चित्रकार दावी और ऐंग्र ने नेपोलियन के युद्धों की सुन्दर कलाकृतियों द्वारा उसको महिमा मंडित करने का कार्य किया।

2.9.3 क्रान्ति का अंत –नेपोलियन सम्राट के रूप में (1804–1815)

नेपोलियन अत्यन्त महत्वाकांक्षी था। 1802 में उसने जनमत संग्रह कराकर अपने को जीवन पर्यन्त प्रथम कौंसिल नियुक्त करा लिया। 1804 में पुनः जनमत संग्रह कराकर वह फ्रांस का सम्राट बन गया। 2 दिसम्बर, 1804 को नाट्रडम के प्रसिद्ध चर्च में उसका राज्याभिषेक किया गया। उसने राजमुकुट पोप के हाथ से लेकर स्वयं धारण कर लिया। फ्रांस में नेपोलियन का एकतंत्र शासन स्थापित हुआ। सम्राट बनने के बाद नेपोलियन निरन्तर युद्धरत रहा।

नेपोलियन की साम्राज्यवादी नीति के विरूद्ध यूरोप के देशों ने भी इंग्लैण्ड के नेतृत्व में गुट की स्थापना की। फ्रांस के विरूद्ध यूरोपीय देशों के इस **तृतीय गुट** में इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, रूस और स्वीडन थे तथा इसका लक्ष्य फ्रांस को उसकी मूल सीमाओं के अन्दर रखना था। नेपोलियन ने इस गुट के विरूद्ध अपने अभियान का

प्रारम्भ 20 अक्टूबर, 1805 ई0 को आस्ट्रिया पराजित करके किया। तत्पश्चात 21 अक्टूबर, 1805 में इंग्लैण्ड के साथ उसका **ट्रैफेलगर का युद्ध** हुआ। नेल्सन के कुशल नेतृत्व में इंग्लैण्ड की सेना ने फ्रांस और स्पेन के संयुक्त नौसैनिक बेड़े को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया।

2 दिसम्बर, 1805 को **आस्टरलित्स के युद्ध** में आस्ट्रिया और रूस की संयुक्त सेनाओं के साथ उसका भंयकर युद्ध हुआ। इसे 'तीन सम्राटों का युद्ध' कहा जाता है। इस युद्ध में नेपोलियन को अपने जीवन की महानतम विजयी प्राप्त हुयी। उसके विरूद्ध बना तृतीय गुट भंग हो गया। आस्ट्रिया ने विवश होकर **25 दिसम्बर, 1805** में उसके साथ **प्रेसबर्ग की सन्धि** की।

इस युद्ध से इटली के अधिकांश क्षेत्र पर उसका अधिकार हो गया। जर्मन क्षेत्र में नेपोलियन ने पवित्र रोमन साम्राज्य का अंत और राइन संघ की स्थापना की। तत्पश्चात प्रशा और रूस को पराजित किया। रूस के साथ की गयी **टिलसिट की सन्धि (1807)** के समय वह अपने उन्नति के शिखर पर था।

सन् 1807 के पश्चात उसके युद्ध और कार्यों विशेषरूप से इंग्लैण्ड के विरूद्ध महाद्वीपीय व्यवस्था और उसके परिणामस्वरूप यूरोप के अन्य देशों के साथ उसके कटु सम्बन्धों ने उसे पतन की ओर अग्रसर कर दिया। पुर्तगाल पर अधिकार, स्पेन से प्रायद्वीपीय युद्ध में पराजय, मास्को अभियान की असफलता, यूरोप में फैलती तीव्र राष्ट्रीयता की भावना ने नेपोलियन की सत्ता को अंत के निकट पहुँचा दिया। उसके विरूद्ध यूरोपीय राष्ट्रों ने चतुर्थ गुट की स्थापना की और 1813 में लिप्जिग तथा 1814 में लाओं के युद्ध में नेपोलियन को पराजित कर दिया। पराजित नेपोलियन को फाउन्टेनब्ल्यू की संधि के अनुसार एल्बा द्वीप का शासक बनाया गया। 1815 में नेपोलियन पुनः फ्रांस लौट आया और 100 दिन शासन करने के पश्चात मित्र राष्ट्रों की सेना द्वारा वाटरलू के युद्ध में बुरी तरह पराजित हुआ। उसे सेंट हेलेना के द्वीप में बन्दी बना दिया गया।

इस प्रकार नेपोलियन का अन्त हुआ। उसके समय में राष्ट्रीयता का विकास और पुरातन प्रथाओं का अन्त हुआ और एक नवीन यूरोप का उदय हुआ। उसकी विजयों ने नवीन यूरोप की पृष्ठभूमि का निर्माण किया। उसके सुधारों ने पुरातन व्यवस्था की जड़े नष्ट कर दीं। नेपोलियन के पश्चात इन क्षेत्रों की जनता पुनः कुलीन और सामन्तवादी व्यवस्था को स्वीकारने को तैयार नहीं हुयी और संघर्ष का दौर प्रारम्भ हुआ। मध्य तथा दक्षिण जर्मनी के राज्य, नेपिल्स, स्पेन आदि नेपोलियन के अधीनस्थ राज्यों में सामन्तवाद तथा अर्द्ध दास प्रथा समाप्त कर दी गईं तथा धार्मिक सहिष्णुता और प्रजातन्त्रीय शासन के सिद्धान्त स्थापित हुए।

उसने इटली और जर्मनी के राज्यों की जो व्यवस्थायें कीं, उससे इन राज्यों में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत हुयी और इटली तथा जर्मनी के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ। उसकी साम्राज्यवादी और निरंकुश प्रवृत्ति के प्रतिक्रियास्वरूप प्रशा, स्पेन, नार्वे, स्वीडन, नेपल्स आदि में राष्ट्रीयता की भावना विकसित हुयी।

नेपोलियन ने आधुनिक यूरोप के निर्माण की प्रक्रिया को तीव्र गति प्रदान की। नेपोलियन के पश्चात राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और उदारवादी शक्तियों का पुरातनवादी और राजतंत्रवादी शक्तियों से संघर्ष का युग प्रारम्भ हुआ।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नेपोलियन के उन कार्यों का वर्णन कीजिए, जिन्होन क्रान्ति की भावना को आघात पहुँचाया।
2. कौंसिल के प्रमुख सुधारों पर प्रकाश डालिए।
3. नेपोलियन की फ्रांस और यूरोप को प्रमुख देन क्या रहीं, उनका महत्व बताइये।

2.10 मूल्यांकन

2.10.1 क्रान्ति के विभिन्न चरण और स्वरूप

फ्रांस की क्रान्ति में कई चरणों में हुई और इसका स्वरूप भी बदलता रहा। यदि क्रान्ति के घटनाक्रम को देखा जाए तो पार्लमां द्वारा राजा का विरोध और सामन्तों द्वारा एस्टेट्स जनरल की मांग के साथ ही क्रान्ति प्रारम्भ हो गयी थी। इस संस्था को पुनर्जीवित कर सामन्त राजतंत्र के ऊपर अपना प्रभाव स्थापित करना चाहते थे। लुई 14वें के समय से उपेक्षित एस्टेट्स जनरल बुलाने की मांग ने जनता को भी अपने अधिकारों के प्रति आन्दोलित किया। मध्यम वर्ग और साधारण जनता एस्टेट्स जनरल में अपनी संख्या बढ़ाने और संख्या के आधार पर मतदान करने को लेकर आन्दोलित हुई।

क्रान्ति का दूसरा चरण तीसरे वर्ग द्वारा अपने को राष्ट्रीय सभा घोषित करने से लेकर राष्ट्रीय सभा द्वारा सामन्तवाद और पुरातन व्यवस्था के अंत से प्रारम्भ होता है। सामन्तवादी प्रतीकों का अन्त, मानवाधिकारों की घोषणा और राष्ट्रीय सभा द्वारा किए गए कार्यों के पश्चात जनता ने संतोष और सुख की सांस ली। समानता के अधिकार को पाने के पश्चात किसान और मजदूर भी शान्त हो गए। विधान सभा की स्थापना के द्वारा संवैधानिक राजतंत्र स्थापित हो गया। यह लगा कि अब क्रान्ति समाप्त हो गयी है।

क्रान्ति का तीसरा चरण विधान सभा के निर्णयों का राजा द्वारा समर्थन न करने से प्रारम्भ होता है। राजा के असहयोग के कारण मध्यम वर्ग राजतंत्र का विरोधी हो गया और गणतंत्र की स्थापना के प्रयास किए जाने लगे। राजा के समर्थन में विदेशी सहायता और यूरोपीय देशों द्वारा फ्रांस के विरूद्ध युद्ध प्रारम्भ हो जाने से गणतंत्रवादियों के प्रयासों में अधिक तेजी आयी। विधान सभा को भंग करके गणतंत्र की स्थापना हेतु राष्ट्रीय सम्मेलन का गठन किया गया। राजतंत्र समर्थकों का दमन करने के लिए उग्र गणतंत्रवादियों द्वारा आतंक का शासन स्थापित किया । इसने क्रान्ति की बाहरी और आन्तरिक शत्रुओं से रक्षा की।

क्रान्ति का चौथा चरण संचालक मण्डल की स्थापना से प्रारम्भ हो कर कौंसिल शासन और नेपोलियन के एकतंत्रीय शासन स्थापना तक जाता है। इस युग में क्रान्ति के सिद्धान्त यूरोप के अन्य देशों में फैले।

इस प्रकार क्रान्ति सामन्तवादियों के स्वार्थ से प्रारम्भ हुयी फिर जन क्रान्ति में बदल गयी। बाद में क्रान्ति का नेतृत्व मध्यम वर्ग के हाथ में हो गया। अंत में सैनिक तानाशाह द्वारा इसका अंत हो गया, लेकिन क्रान्ति की मूल भावना समाप्त न हो सकी और न ही पुरातन व्यवस्था फिर से कायम हो सकी।

2.10.2 क्रान्ति के प्रमुख नेता

फ्रांस में क्रान्ति को दिशा देने का कार्य विभिन्न नेताओं द्वारा किया गया। फ्रांस की क्रान्ति के प्रमुख नेताओं चाहे वह उदारवादी ला फायत, एबे सिए, मिराबो आदि हों या उग्रवादी मारा, कार्नो, दांते, राब्सपियर आदि सभी ने फ्रांस की क्रान्ति के सिद्धान्तों के लिए प्रतिक्रियावादियों से संघर्ष किया और फ्रांस में पुरातन व्यवस्था का अन्त कर एक नए युग का सूत्रपात किया। इनमें प्रमुख नेताओं की पृष्ठभूमि और कार्यों के बारे में जानने से क्रान्ति पर उनके प्रभाव को ठीक से समझ सकेंगे।

- **लाफायत–** यह कुलीन वर्ग का था और इसने अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था। यह रूसों के स्वतंत्रता और समानता के विचारों से भी प्रभावित था। फ्रांस की क्रान्ति के दौरान इसने 'मानव अधिकारो का घोषणा' का मसविदा तैयार किया था। क्रान्ति के समय अराजकता फैलने पर इसने राष्ट्रीय सुरक्षा दल की

स्थापना कर शान्ति स्थापित करने का प्रयास किया। क्रान्ति समर्थक हाने पर भी वह राजा का समर्थन करता था। पेरिस की जनता पर गोली चलाने के कारण लाफायत बदनाम हो गया।

- **मिराबो**–सामन्त वर्ग का था लेकिन 1789 में तीसरे एस्टेट का सदस्य चुना गया। टेनिस कोर्ट की शपथ में उसका प्रमुख योगदान थां उसने ही राजा को पेरिस से सेना हटाने को विवश किया। मतदान भवन के स्थान पर उसने प्रतिनिधि की संख्या के अनुसार मतदान कराया। उसके प्रयत्नों से ही जनता से लिए जाने वाला टाइथ कर समाप्त हुआ।
- **ऐबे सिए**– यह मध्यमवर्गीय परिवार का था तथा दस वर्ष तक पादरी भी रहा। एस्टेट्स जनरल से पूर्व इसके द्वारा लिखे लेख ने ही तृतीय सदन को आन्दोलित किया। उसके इस लेख को राष्ट्रीय सभा की आधार शिला भी माना जाता है। टेनिस कोर्ट की शपथ में यह मिराबो के साथ था। 1795 में जन रक्षा समिति का सदस्य बना। डायरेक्टरी और कौंसिल शासन में भी सक्रिय रहा। इसे मौलिक विचारक कहा जाता है।
- **दाँतों** – साधारण परिवार का कुशल वकील और वक्ता था। जैकोबिन दल का प्रमुख नेता था। इसने तुइलरी के महल पर आक्रमण करके राजा को बंदी बनाया और गणतंत्र प्रणाली की स्थापना में योगदान दिया। राजतंत्र समथर्कों का दमन करने के लिए आंतक के राज्य की स्थापना की। फ्रांसीसी सेना का पुर्नगठन किया। 1794 में फ्रांस के बाहरी और आन्तरिक शत्रुओं से निपटने के बाद जब उसने अपने साथियों के समक्ष आतंक का शासन समाप्त करने का प्रस्ताव रखा तो उसको ही गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया।
- **मारा**– यह चिकित्सक था और राजतंत्र का कट्टर विरोधी था। ' द फ्रेन्डस ऑफ द पीपुल' समाचार पत्र का प्रकाशन कर लोगों में चेतना का प्रसार किया। सितम्बर, 1792 के भयंकर रक्तपात में उसका बड़ा हाथ था।
- **राब्सपियरे**– यह एक वकील, लेखक और प्रभावशाली वक्ता था। रूसो से प्रभावित तथा जैकोबिन दल का नेता था। 1789 में एस्टेट्स जनरल का सदस्य चुना गया। राष्ट्रीय सम्मेलन के दौरान दांतों आदि के साथ मिलकर आतंक का राज्य । आतंक का राज्य कायम रखने के लिए इसने बाद में दांतो की भी हत्या कर दी। इसके प्रमुख कार्यों में राष्ट्रीय कैलेन्डर तथा क्रान्तिकारी न्यायलयों की स्थापना करना था। उसने ईसाई धर्म के प्रभाव को कम करने और नया धर्म लादने का भी प्रयास किया। पेरिस की जनता में वह लोकप्रिय था, परन्तु उसके आतंकी कार्यों से भयभीत होकर राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा 26 जुलाई, 1794 में उसे बंदी बनाकर गिलोटीन पर चढ़ा दिया गया।
- **कार्नो**– यह राष्ट्रीय सम्मेलन के समय फ्रांस का युद्ध मंत्री था। विदेशी शक्तियों के विरूद्ध सेना का गठन किया और प्रशा स्पेन तथा हालैण्ड को अपमान जनक सन्धियां करने को बाध्य किया। फ्रांस की जनता उसे विजय का संगठनकर्ता कहती थी।

2.10.3 नेपोलियन क्रांतिपुत्र या क्रांतिहंता

नेपोलियन स्वयं को क्रान्ति पुत्र कहता था। किन्तु इतिहासकारों में इस विषय में मतभेद है कि वह क्रान्ति पुत्र था कि नहीं। इस मत के पक्ष और विपक्ष में इतिहासकारों द्वारा कई तर्क प्रस्तुत किये गए हैं, जो इस प्रकार हैं।–

पक्ष–

- फ्रांस में क्रान्ति ने विषमता और विशेषाधिकारों का अन्त कर समानता की प्रतिष्ठा की थी। परिणामस्वरूप साधारण परिवार में उत्पन्न नेपोलियन को सर्वोच्च स्थान तक पहुँचने का अवसर प्राप्त हो सका।
- नेपोलियन ने जिस क्षेत्र को विजित किया ,वहाँ उसकी सेनाएँ क्रान्ति के सिद्धान्तों को लेकर गयीं। उसने विजित क्षेत्र में प्राचीन संस्थाओं को समाप्त कर नवीन संस्थाओं की स्थापना की।
- उसने जिस संविधान का निर्माण कराया था, वह गणतंत्रीय था तथा इस संविधान को जनमत संग्रह द्वारा उसने जनता से अनुमोदित कराया था।
- नेपोलियन ने सामाजिक भेदभावों को मिटाकर सामाजिक समानता की स्थापना की और सामन्तीय प्रथा का अन्त किया। सबके लिए समान कर अदायगी, राजकीय पदों पर नियुक्ति का आधार योग्यता करना

एवं सबके लिए समान कानूनों का निर्माण करना आदि कार्य क्रान्ति के प्रमुख सिद्धान्त समानता पर ही आधारित थे।

- क्रान्ति के पश्चात उत्पन्न अव्यवस्था को दूर करके नेपोलियन ने एक सुदृढ़ शासन स्थापित किया।
- क्रान्ति के दौरान उठायी गयी सामाजिक और आर्थिक सुधारों की मांगों को नेपोलियन ने पूर्ण किया। उसने क्रान्तिकाल में भूव्यवस्था में किये गए परिवर्तनों को कायम रखा।
- फ्रांस को गौरव दिलाया और यूरोप का प्रमुख देश बना दिया।

विपक्ष—

- फ्रांस की क्रान्ति ने जिस स्वतंत्रता के सिद्धान्त को स्थापित किया था, नेपोलियन ने उसके विरूद्ध कार्य किए। उसने फ्रांस और यूरोप की जनता की स्वतंत्रता का दमन कर अपनी इच्छा को थोपा। समाचारपत्रों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाये तथा आलोचकों और विरोधियों को कुचल दिया।
- नेपोलियन ने बन्धुत्व के सिद्धान्त की भी अवहेलना की, उसने विजित देशों में क्रान्ति के लाभों को पहुँचाया लेकिन वहाँ बन्धुत्व के सिद्धान्त के स्थान पर फ्रांस की सर्वोच्चता का सिद्धान्त कार्यान्वित किया।
- नेपोलियन ने राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की पूर्ण उपेक्षा की। प्रजा की इच्छा के विरूद्ध उसने अपने रिश्तेदारों को विजित प्रदेश में शासक नियुक्त किया।
- उसने जिस संविधान की स्थापना की थी, वह नाममात्र का गणतंत्र था, वास्तविक शक्ति नेपोलियन के हाथों में थी। केन्द्रीकरण की नीति अपनाकर, उसने उत्तरदायी शासन के स्थान पर प्रबुद्ध तानाशाह की तरह शासन किया।
- नेपोलियन ने समानता के सिद्धान्त को भी केवल मध्य वर्ग तक ही सीमित रखा।
- उसने कई पुरानी परम्पराओं जैसे —सम्राट की उपाधि धारण करना, लिजियन का सम्मान करना आदि को पुनः स्थापित किया।

इतिहासकार ग्रान्ट और टेम्परले के अनुसार—' नेपोलियन को क्रान्ति ने जन्म दिया था पर अनेक रूपों में उसने उस आन्दोलन के उद्‌देश्यों और सिद्धान्तों को उलट दिया, जिनसे उसका उत्थान हुआ था। '

2.10.4 फ्रांस की 1789 की क्रान्ति के परिणाम और प्रभाव

अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध की जिन घटनाओं ने उन्नीसवीं सदी को एक दिशा प्रदान की, उनमें एक प्रमुख घटना फ्रांस की 1789 की क्रांति थी। इसने यूरोप में राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तनों का दौर शुरू किया। जीवन का कोई भी क्षेत्र उससे प्रभावित हुए बिना नही रह सका।

- फ्रांस की क्रान्ति ने पुरातन व्यवस्था का अंत कर दिया। सामन्ती व्यवस्था और विशेषाधिकारों का अन्त करके समानता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
- क्रान्ति ने लोकतंत्र की भावना का विकास और प्रसार किया। मानवाधिकारों की घोषणा ने इस तथ्य पर जोर दिया कि कानून जनसाधारण की सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति मात्र है। क्रान्ति ने राजा के दैवीय अधिकार के सिद्धान्त का अन्त कर दिया और लोकप्रिय सम्प्रभुता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
- क्रान्ति के समय किसानों ने सामन्तों से भूमि छीन कर उस पर खेती की, जिससे न केवल उनकी स्थिति में सुधार हुआ, वरन् फ्रांस की आर्थिक दशा में भी परिवर्तन आया। क्रान्तिकाल में समाज में कृषि दासता और निरंकुशता का अन्त हुआ। यूरोप के अन्य देशों में भी कृषि दासता और निरंकुशता के अन्त हेतु क्रान्तियां होने लगीं।
- क्रान्तिकाल में नागरिक स्वतंत्रता का उदय हुआ। क्रान्ति के बाद जो कानून बने उनमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता विशेष रूप से सम्पत्ति का अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रमुख स्थान दिया गया।

- फ्रांस की क्रान्ति ने राष्ट्रीयता की भावना का विकास किया। राजतंत्रात्मक प्रतीकों का स्थान राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय कैलेण्डर, राष्ट्रीय गीत आदि ने ले लिया। जैकोबिनों ने उग्र राष्ट्रवाद को जन्म दिया। यूरोप के अन्य देश राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित और आन्दोलित हुए।
- फ्रांस की क्रान्ति ने चर्च के पुराने स्वरूप को समाप्त कर धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की। शिक्षा को भी चर्च के बन्धन से मुक्त करके राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष बनाया।
- समानता की भावना के प्रसार ने मध्यम वर्ग की शक्ति में वृद्धि की और अगले वर्षों में यह मध्यम वर्ग ही उदारवादी, प्रजातान्त्रिक तथा राष्ट्रवादी तत्वों के संवाहक बना।

यूरोप पर प्रभाव

फ्रांस की क्रान्ति के सिद्धान्तों स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व की भावना ने न केवल फ्रांस वरन् सम्पूर्ण यूरोप को प्रभावित किया। नेपोलियन की सेना के साथ यूरोप के देशों में क्रान्ति के सिद्धान्त पहुंचे और वहां की जनता को स्वतंत्रता और समानता हेतु संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। नीदरलैण्ड, राइन प्रदेश तथा इटली का अधिकांश क्षेत्र, जो नेपोलियन के प्रत्यक्ष अधिकार में था, की प्रशासनिक व्यवस्था समानता पर आधारित थी। नेपोलियन के अधीनस्थ राज्यों में सामन्तवाद तथा अर्द्ध दास प्रथा समाप्त कर दी गईं तथा धार्मिक सहिष्णुता और प्रजातन्त्रीय शासन के सिद्धान्त स्थापित हुए।

यूनान का स्वतंत्रता संग्राम को क्रान्ति के सिद्धान्तों से ही बल मिला। इटली के राज्यों में एकीकरण की भावना का प्रसार हुआ। राष्ट्रीयता की भावना से जर्मनी के छोटे–छोटे राज्य भी प्रभावित हो जर्मनी के एकीकरण के लिए प्रयासरत हुए। इंग्लैण्ड में फ्रांस की क्रान्ति का स्वागत किया गया। मानव अधिकारों के घोषणापत्र से वहां के साहित्यकार वर्डसवर्थ, कालरिज, वायरन, शैली आदि प्रभावित हुए। थामस पेन ने फ्रांस की क्रान्ति को एक शुभ सन्देश बताया। इंग्लैण्ड के शासकों को फ्रांस की क्रान्ति के प्रभाव को अपने देश में फैलने से रोकने के लिए समाचारपत्रों, हड़तालों आदि पर प्रतिबन्ध लगाने पड़े। एडमंड बर्क आदि कुछ लेखकों ने क्रान्ति का विरोध किया। क्रान्ति के बाद यूरोप के शासक प्रतिक्रियावादी बन गये तथा उनका उद्देश्य क्रान्ति के प्रसार को अपने क्षेत्र में रोकना था।

क्रान्ति के विषय में इतिहासकार एक मत नहीं हैं। वेबस्टर और एच.जे. रैंदाल आदि क्रान्ति को अप्रगतिशील और अराजकतावादी बताते हैं जबकि क्रोपोटकिन ने इसे आधुनिक विचारधाराओं की नींव रखने वाली कहा। डेविड थॅामसन ने भी फ्रांस की क्रान्ति को 1914 ई. तक यूरोपीय जीवन की महत्वपूर्ण घटना माना।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. फ्रांस की क्रान्ति के प्रमुख नेताओं के कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. नेपोलियन क्रान्तिपुत्र या क्रान्तिहंता, स्पष्ट कीजिए।
3. फ्रांस की क्रान्ति के परिणामों का उल्लेख करते हुए यूरोप पर उसके प्रभाव पर प्रकाश डालिए।

2.11 सारांश

फ्रांस की क्रान्ति पुरातन व्यवस्था के विरूद्ध थी। विशेषधिकारों के आधार पर विघटित और विषम समाज, कमजोर नेतृत्व और अक्षम शासन व्यवस्था, राज्य की दयनीय आर्थिक स्थिति और बौद्धिक चेतना का मध्यम वर्ग में विकास आदि क्रान्ति के प्रमुख कारण थे। इन परिस्थितियों में अकाल और शासकों के अनियंत्रित खर्चों ने वित्तीय संकट उत्पन्न कर दिया। इससे निपटने के लिए जब सामन्त वर्ग पर कर लगाने का प्रस्ताव रखा गया तो सामन्तों ने इसका विरोध किया और कहा नया कर लगाने का अधिकार प्रतिनिधि सभा स्टेटस जनरल को है। सामन्तों ने स्टेटस जनरल बुलाने की मांग रखी, इसके साथ ही क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ।

स्टेटस जनरल का प्रथम सदन पादरियों का, द्वितीय सदन सामन्तों का तथा तृतीय सदन जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करता था। तृतीय सदन ने सदस्यों की संख्या के आधार पर मत गणना हेतु संयुक्त अधिवेशन की मांग रखी, जिसे राजा द्वारा अस्वीकार करने पर तृतीय सदन ने टेनिस कोर्ट में सभा कर अपने को राष्ट्रीय सभा घोषित कर दिया। अंततः 27 जून को तीनों सदनों को एक साथ बैठने की अनुमति के साथ राष्ट्रीय सभा को वैधानिक मान्यता मिल गयी। राष्ट्रीय सभा ने संवैधानिक राजतंत्र स्थापित करने के लिए संविधान बनाने की घोषणा की। राजा ने दमन करने का प्रयास किया तो पेरिस की भीड़ ने क्रान्ति का नेतृत्व किया और 14 जुलाई को बास्तील के दुर्ग को नष्ट कर दिया। तत्पश्चात समस्त देश में क्रान्ति फैल गयी। अगले दो वर्षो तक राष्ट्रीय सभा ने सामन्तवाद का पतन, मानवाधिकारों की घोषणा, चर्च के अधिकारों में कटौती, मठों का अन्त, आर्थिक सुधार आदि कार्य किया तथा फ्रांस के लिए 1791 के नये संविधान का निर्माण किया। नये संविधान के आधार पर व्यवस्थापिका सभा का गठन हुआ। इस सभा में विभिन्न दलों के लोग निर्वाचित हुए, लेकिन गणतंत्रवादियों का प्रभाव बढ़ता गया। कई राजतंत्र समर्थक विदेश भाग गए और क्रान्ति के विरूद्ध विदेशी शक्तियों की सहायता से षड़यन्त्र रचने लगे। संवैधानिक राजतंत्रात्मक व्यवस्था में व्यवस्थापिका सभा द्वारा लिए गए निर्णयों पर राजा द्वारा हस्ताक्षर न करने तथा उसके विदेश भागने का प्रयास करने से क्रान्तिकारी नाराज हो गए। आस्ट्रिया और प्रशा के धमकी देने पर क्रान्तिकारियों ने राजा को देशद्रोही माना और उसे पद से निलम्बित कर दिया। फ्रांस विदेशी युद्धों में फंस गया। व्यवस्थापिका सभा ने फ्रांस में गणतंत्रात्मक शासन स्थापित करने के लिए 1792 का संविधान बनाया।

1792 के संविधान के द्वारा व्यवस्थापिका सभा के स्थान पर फ्रांस का शासन राष्ट्रीय कन्वेंशन के अधीन हो गया। प्रारम्भ में गणतंत्रवादी उदार दल जिरोंदिस्त शासन में प्रभावी था। इसने फ्रांस में कई सामाजिक और आर्थिक सुधार किए। राजा पर मुकदमा चलाकर उसको मृत्यु दण्ड दिया, जिससे यूरोप के अन्य देश इंग्लैण्ड, हालैण्ड और स्पेन भी प्रशा और आस्ट्रिया के साथ फ्रांस के विरूद्ध युद्ध में शामिल हो गए। उग्रवादी जैकोबिनों ने अक्षमता का आरोप लगा जिरोंदिस्त को सत्ता से बाहर कर दिया और आतंक का राज्य स्थापित किया। हजारों लोंगों को गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया। अंत में जनता के विद्रोह के द्वारा आतंक के शासन का अन्त हुआ। उदारवादियों ने 1795 का संविधान बनाया, जिसके आधार पर फ्रांस में निदेशक मण्डल का शासन स्थापित हुआ। उनके भ्रष्ट शासन में फ्रांस में पुनः अराजकता का माहौल हो गया। इस दौरान विदेशी सेनाओं को पराजित करके सेनापति नेपोलियन फ्रांस में लोकप्रिय हो गया था। 1799 में उसने निदेशक मण्डल का पतन कर सत्ता पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार फ्रांस में नेपोलियन युग का सूत्रपात हुआ।

फ्रांस की क्रान्ति और नेपोलियन के युग में फ्रांस यूरोपीय राजनीति की धुरी बन गया था। क्रान्ति के सिद्धान्तों ने सम्पूर्ण यूरोप को प्रभावित किया। यूरोप के कई देशों में राष्ट्रीयता का विकास और पुरातन प्रथाओं का अन्त हुआ और एक नवीन यूरोप का उदय हुआ।

2.12 तकनीकी शब्दावली एवं प्रमुख कथन

- **आसियां रिजीम**– फ्रांस में सोलहवीं शताब्दी से लेकर क्रान्ति से पूर्व 1789 तक रही राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था।
- **लेत्र द काशे**– 1789 से पूर्व किसी भी व्यक्ति को बिना आरोप से बंदी बनाने हेतु वारंट।
- **सान्ज क्यूलोत**– नगर के छोटे दुकानदार, कारीगर, मजदूर और गरीबों का समूह।
- **कूप द इतात**– राज्य पर अथवा शासन सत्ता पर शक्ति अथवा छल से अधिकार करना अथवा हिंसात्मक क्रान्ति द्वारा सरकार को पलट देना।

- **कम्यून**—फ्रांस में शासन की न्यूनतम इकाई, नगर सभा।
- **आसिग्नेट**— फ्रांस की क्रान्तिकारी सरकार द्वारा चलाए गए कागजी नोट।
- मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ, फिर भी वह जंजीरों से जकड़ा हुआ है।—**रूसो**
- अगर रूसो न होता तो क्रान्ति भी न होती।'— **नेपोलियन बोनापार्ट**
- यदि रोटी नहीं मिलती तो लोग केक क्यों नहीं खा लेते।—**मेरी अन्टायनेट**
- **ब्रूमेयर**— कोहरा पड़ने का माह ''22 अक्टूबर से 20 नवम्बर तक'', फ्रांस मे 1793 से 1806 तक प्रयोग में लाए गए कैलेण्डर का माह।
- 'मुझे फ्रांस का राजमुकुट धरती पर पड़ा मिला और तलवार की नोंक से मैंने उसे उठा लिया।'— **नेपोलियन बोनापार्ट**
- 'फ्रांस के लोग समानता चाहते हैं, स्वतंत्रता नहीं।'— **नेपोलियन बोनापार्ट**

2.13 संदर्भग्रंथ सूची

1. गर्शाय, लियो— द फ्रेंच रिवोल्यूशन एण्ड नेपोलियन
2. रोज, जे. होलैन्ड— द रिवोल्यूशनरी एण्ड नेपोलियनिक एरा
3. हाब्सबॉम, इ. जे.—'सम्पादित' द ऐज ऑफ रिवोल्यूशन्स, यूरोप 1789—1848, 1992
4. फेलीक्स, मारखम—नेपोलियन एण्ड द अवेकनिंग ऑफ यूरोप
5. रूड,जॉर्ज—रिवोल्यूशनरी यूरोप,1784—1814, फोन्टाना प्रेस,लन्दन, 1989
6. हेज, सी.जे.एच.—ए पोलिटिकल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ मार्डन यूरोप, भाग 1एवं 2
7. फिशर, एच.ए.एल.— बोनापार्टिज्म

2.14 सहायक और उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वर्मा, लाल बहादुर—यूरोप का इतिहास,भाग—2, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली,1998
2. गुप्ता, पार्थसारथी (सम्पादक)—यूरोप का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली,1987
3. हेजन, सी.डी.— आधुनिक यूरोप का इतिहास (अनुवादक—सत्यनारायण दुबे)
4. केटलबी, सी.डी.एम —हिस्ट्री ऑफ मार्डन टाइम्स
5. ग्रान्ट एण्ड टेम्परले—उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी के यूरोप का इतिहास (अनु0—बाबूराम गुप्त)
6. जैन और माथुर — विश्व का इतिहास(1500—1950), जैन प्रकाशन मन्दिर,जयपुर, 1999

2.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. सन् 1789 की फ्रांस की क्रान्ति के प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालिए।
2. सन् 1789 की फ्रांस की क्रान्ति के पूर्व स्थितियों का वर्णन करते हुए विश्लेषण कीजिए कि क्रान्ति फ्रांस में ही क्यों हुयी।
3. फ्रांस की राष्ट्रीय संवैधानिक सभा के कार्यों का बताते हुए उसकी उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।
4. फ्रांस की क्रान्ति की प्रमुख घटनाओं को बताते हुए क्रान्ति के विभिन्न चरणों को स्पष्ट कीजिए।
5. 'नेपोलियन क्रान्ति का पुत्र था' व्याख्या कीजिए।

कृषि क्रान्ति और औद्योगिक क्रान्ति

3.1. प्रस्तावना

3.2. उद्‌देश्य

3.3. कृषि क्रान्ति से अभिप्राय, विशेषताएं तथा समय

3.4 कृषि क्रान्ति के कारण और पृष्ठभूमि

3.5. कृषि क्षेत्र में नवीन प्रयोग

3.6 कृषि क्रान्ति का प्रभाव एवं प्रसार

3.7. औद्योगिक क्रान्ति से अभिप्राय

3.8. औद्योगिक क्रान्ति का काल

3.9. औद्योगिक क्रान्ति के कारण और पृष्ठभूमि

3.10. औद्योगिक क्रान्ति के इंग्लैण्ड में उदय के कारण

3.11. औद्योगिक क्रान्ति –नवीन आविष्कार

3.12. औद्योगिक क्रान्ति का यूरोप में प्रसार

3.13. औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव

3.14. सारांश

3.15. तकनीकन शब्दावली और उद्धरण

3.16. संदर्भ ग्रंथ

3.17. सहायक और उपयोगी पाठ्‌य पुस्तके

3.18. निबन्धात्मक प्रश्न

3.1. प्रस्तावना

सोलहवीं शताब्दी में यूरोप में प्रारम्भिक पूँजीवाद के उदय, उपनिवेशों की स्थापना, वाणिज्यवाद के विकास आदि ने आर्थिक क्षेत्र में धीरे–धीरे बदलाव करना प्रारम्भ कर दिया था। वाणिज्यवादी व्यवस्था में दीर्घकाल से उत्पादन पद्धति का आधार रही कृषि की उपेक्षा कर व्यापार को महत्व देने के कारण सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में खाद्यान्न संकट उत्पन्न हुआ। लेकिन शीघ्र ही इस संकट से उभरने के लिए कृषि व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन किए गए। वाणिज्यवादी विचारधारा के स्थान पर नई आर्थिक मान्यतायें उभरने लगीं। सामंतवादी व्यवस्था का अंत होने लगा और पूँजीवादी व्यवस्था अपना प्रभाव स्थापित करने लगी। इन परिर्वतनों से आर्थिक विस्तार का नया युग प्रारम्भ हुआ। इंग्लैण्ड से प्रारम्भ होकर यह परिवर्तन धीरे–धीरे सम्पूर्ण यूरोप में फैल गए। प्रारम्भ में कृषि और उसके पश्चात उद्योग के क्षेत्र में आए अभूतपूर्व परिवर्तनों को उनकी व्यापकता और विस्तार के कारण क्रान्ति कहा जाने लगा। कृषि क्रान्ति और औद्योगिक क्रान्ति एक दूसरे के पूरक बन कर आए और उस समय की अन्य क्रान्तियों से मौलिक, स्थायी और दूरगामी साबित हुए।

3.2. उद्‌देश्य

इस इकाई का उद्‌देश्य आपको पश्चिमी यूरोप में आर्थिक क्षेत्र में हुए तीव्र विकास से परिचित कराना है, जिसने धीरे–धीरे विश्व के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और विचारधारात्मक स्वरूप को परिवर्तित कर आधुनिकता के विकास को गति प्रदान की। इस इकाई में आप –

- कृषि क्रान्ति और औद्योगिक क्रान्ति से तात्पर्य, उनकी विशेषताएं, उनके उदय का समय तथा उनके क्षेत्र विस्तार के विषय में जान सकेंगे।
- उन परिस्थितियों और कारणों को जान सकेंगे, जिन्होने इन दोनों क्रान्तियों को जन्म दिया।
- कृषि और औद्योगिक क्रान्ति इंग्लैण्ड से ही क्यों प्रारम्भ हुयी और अन्य यूरोपीय देश में इनके विकास का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे। ।
- दोनों क्रान्तियों को गति प्रदान करने वाले प्रमुख अविष्कारों और तकनीकों के विषय में जान सकेंगे।
- कृषि और औद्योगिक क्रान्ति के यूरोप और विश्व के अन्य क्षेत्रों में प्रसार और प्रभाव को जान सकेंगे।

3.3. कृषि क्रान्ति से अभिप्राय/विशेषतायें और उसका समय

अठारहवीं शताब्दी में हुए कृषि से सम्बन्धित परिवर्तनों को कृषि क्रान्ति शब्द से सम्बोधित किया गया है। सत्रहवीं शताब्दी तक कृषि परम्परागत तरीके से और पुराने उपकरणों से की जाती थी। सत्रहवीं शताब्दी के अंत में कृषि प्रणाली में नए प्रयोग किए गए, जिन्होंने उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि की। कृषि के अत्यधिक विकास और उत्पादन की अधिकता के कारण इसे कृषि क्रान्ति कहा गया।

कृषि के क्षेत्र में परिवर्तन सबसे पहले इंग्लैण्ड में किए गए। इतिहासकार फ़िलिस डीन के अनुसार कृषि क्रान्ति की चार विशेषताएं थीं।

1. मध्यकालीन बिखरे और खुले खेतों के स्थान पर विशाल संयुक्त भूमि पर खेती किया जाना।
2. बंजर और परती भूमि पर खेती का विस्तार करके सघन खेती तथा पशुपालन को अपनाना।
3. स्थानीय जरूरत के स्थान पर दूरस्थ बाजारों के लिए उत्पादन करना।
4. तकनीक का प्रयोग कर कृषि उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि करना।

इंग्लैण्ड, हालैण्ड और बेल्जियम में 1715 से 1750 तक कृषिगत क्रान्ति हो गयी थी। फ्रांस में 1750 से, जर्मनी और डेनमार्क में 1790 से, आस्ट्रिया, इटली और स्विट्जरलैण्ड में 1820 तथा रूस और स्पेन में 1860 से कृषि व्यवस्था में परिवर्तन दिखने लगे।

3.4 कृषि क्रान्ति के कारण/ पृष्ठभूमि

सोलहवीं शताब्दी से ही यूरोपीय समाज में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होने लगे थे। जैसा कि आपको पहले बताया जा चुका है कि इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम कृषि क्रान्ति हुयी। इस क्षेत्र में कुछ ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हुयीं, जिन्होंने कृषि क्रान्ति के लिए पृष्ठभूमि तैयार की।

- **परम्परागत कृषि के दोष**– 1660 तक इंग्लैण्ड की कृषि व्यवस्था में कई दोष थे। मध्यकाल में यहां दो खेत प्रणाली के स्थान पर तीन खेत प्रणाली प्रचलित हुयी, जिससे उस समय तो उत्पादन में वृद्धि हुयी और जनता का भरण पोषण भी आसानी से किया जा सका। लेकिन

प्रथम वर्ष	गेहूँ	जौ	परती
द्वितीय वर्ष	परती	गेहूँ	जौ
तृतीय वर्ष	जौ	परती	गेहूँ

तीन खेत प्रणाली

सोलहवीं शताब्दी तक आते आते इस तीन खेत प्रणाली में कई कमियां स्पष्ट दिखने लगीं। –तीन खेत प्रणाली में प्रति वर्ष भूमि को बारी बारी से खाली छोड़ने की प्रथा से खाद्यान्न उत्पादन बढ़ती हुयी जनसंख्या की जरूरतों को पूरा नहीं कर पाता था। पशु पालन की व्यवस्था भी अत्यंत खराब थी, जिससे दुग्ध उत्पद और मीट आदि भी खाद्यान्न की कमी को पूरा नहीं कर पा रहे थे । जाड़ों में पशुओं के चारे की अत्यन्त कमी हो जाती थी, जिस कारण जाड़ों में पशुओं को मारने का प्रचलन था। अतः 17वीं शताब्दी के अंत तक यह आवश्यक हो गया था कि कृषि उत्पादों को बढ़ाने हेतु प्रयास किए जायें।

- **व्यापारिक क्रान्ति**– भौगोलिक खोजों और राष्ट्र राज्यों के उदय ने व्यापार का इतना अधिक विकास किया कि उन्हें वाणिज्यिक क्रान्ति कहा गया। वाणिज्यवाद के समर्थकों ने उद्योग धन्धों और व्यवसायों के अधिकतम विकास पर बल दिया इससे कृषि का क्षेत्र अविकसित और पिछड़ा रह गया। व्यापारिक क्रान्ति के दौरान कृषि के विकास की उपेक्षा की गयी। आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि कृषि और उद्योग धन्धों का संतुलित विकास हो।

● **पूँजीवादी व्यवस्था का उदय**– 16वीं शताब्दी तक आते आते सामन्तवादी व्यवस्था के स्थान पर पूँजीवादी व्यवस्था अपने जड़ जमाने लगी थी। पूँजीवादी व्यवस्था में कृषि उपज को पूँजी उत्पाद के रूप में बदलने के प्रयास किए जाने लगे। लगान कृषि उपज के स्थान पर नकद लिया जाने लगा। लगान की दर भी काफी अधिक थी, जिसे देने में असमर्थ होने पर किसान भूमि बेचने लगे। उत्तरी इंग्लैण्ड में भूमि की कीमतें बढ़ गयीं। सामन्तों के स्थान पर पूँजीवादी व्यापारी वर्ग भूमि क्रय करने लगा और भूमि का उपयोग पूंजी के विस्तार के लिए किया जाने लगा। इन पूँजीपतियों ने ही कृषि विकास के लिए नए प्रयोगों और अविष्कारों को करने में धन लगाया।

● **बाड़बन्दी आन्दोलन**–उत्तरी इंगलैण्ड में भेड़ पालन मुख्य व्यवसाय बन गया था, जिस कारण ऊन काफी मात्रा में होता था। यह दक्षिणी यूरोप और उत्तर सागर के पार बेचा जाता था। यहां ऊन का उत्पादन अन्न उत्पादन से अधिक महत्वपूर्ण हो गया था। भेड़ों को तितर–बितर होने से रोकने के लिए जमींदारों ने 16वीं शताब्दी से भूमि की घेराबन्दी या बाड़बन्दी करनी प्रारम्भ कर दी थी। इसे बाड़बन्दी आन्दोलन कहा गया। ऊन के व्यापार का लाभ उठाने के लिए यह भूमि पूँजीपतियों ने खरीद ली। बाद में जब उत्तरी यूरोप के छोटे देशों नार्वे, डेनमार्क, स्वीडन और प्रशा आदि में ऊन का उत्पादन होने लगा और इंग्लैण्ड का ऊनी वस्त्र का व्यापार कम हो गया, तब इस भूमि में बड़े फॉर्म बनाए गए।

● इंग्लैण्ड में जनसंख्या अठारहवीं शताब्दी में अत्यन्त तेजी से बढ़ रही थी, जिस कारण कृषि उत्पादों की मांग भी बढ़ी। उद्योगों के लिए कच्चे माल की आवश्यकता ने भी कृषि जन्य वस्तुओं की मांग को बढ़ाया। फलतः कृषि के विकास हेतु प्रयत्न तेजी से किए जाने लगे।

3.5. कृषि क्षेत्र में नवीन प्रयोग एवं अविष्कार

इंग्लैण्ड में उपरोक्त परिस्थितियों ने कृषि का विकास करने के लिए पृष्ठभूमि तैयार की, परन्तु वहाँ के किसानों द्वारा नये प्रयोग करने और अविष्कारों को अपनाने से ही कृषि क्रान्ति सम्भव हो सकी। इनमें प्रमुख हैं।

- इंगलैण्ड के किसान जेथरो टल ने 1701 में बीज बोने के लिए ड्रिल नामक एक यंत्र का प्रयोग किया, जिससे उचित मात्रा में तथा निश्चित कतार में बीज बोए जा सकते थे। इससे बीज बोने का कार्य अत्यन्त व्यवस्थित हो गया तथा बीज बर्बाद भी नहीं होते थे।

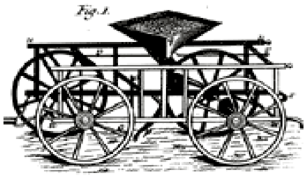

सीड ड्रिल

जेथरो टल (1674–1738)

- अंग्रेज जमींदार चार्ल्स टाउनशेंड द्वारा भूमि का अधिकतम उपयोग करने के लिए चार खेत प्रणाली का प्रयोग किया गया। इस प्रणाली में किसी भूमि को परती नहीं छोड़ा जाता था। गेहूँ, शलगम, जौ और क्लोवर घास को बारी बारी बोकर भूमि की उर्वरता बनाए रखने के साथ साथ अधिक उपज प्राप्त की जाने लगी। शलगम जैसी नाइट्रोजन युक्त फसल लगाने से भूमि की उर्वरता बढ़ायी गयी। घास के रूप में पशुओं के लिए चारा प्राप्त होता था, जिससे चारागाह की भूमि का उपयोग भी खेती हेतु किया जाने लगा। इस प्रणाली ने प्रति एकड़ पैदावार को दुगना कर दिया।

● 1770 में राबर्ट बेकवैल ने वैज्ञानिक प्रजनन पद्धति के द्वारा भेड़ों और गायों की नस्ल सुधारने का प्रयोग कर पशुपालन को लाभदायक व्यवसाय बना दिया। इससे खाद्यान्न की समस्या से निपटने के लिए दूध और गोश्त प्राप्त हुआ। भेड़ पालन से ऊनी वस्त्र का व्यापार विकसित हुआ, जिसने औद्योगिक क्रान्ति के

लिए पूँजी उपलब्ध करायी। चार्ल्स कालिंग ने भेड़ों की नई नस्ल तैयार की। जड़ों वाली सब्जियों और घास के उत्पादन ने चारे की कमी को समाप्त कर दिया। पशुपालन ने खेती के लिए खाद भी उपलब्ध करायी।

- आर्थर यंग ने तत्कालीन कृषि प्रणालियों का गहन अध्ययन किया और एक नयी प्रणाली का प्रचार किया। उन्हें 'नयी खेती का मसीहा' कहा गया। नयी खेती के अन्तर्गत छोटे खुले खेतों को मिलाकर बड़े–बड़े कृषि फार्म में बदला गया। छोटे बिखरे खेतों में काफी भूमि बेकार चली जाती थी और नयी मशीनों का प्रयोग भी कठिनाई से होता था।
- आपको पहले बताया गया कि इंग्लैण्ड में खुली भूमि की बाड़बन्दी की जाने लगी थी। इसके द्वारा कृषि उत्पादन पूँजीवादी व्यवस्था की ओर अग्रसर हुआ। 1710 से कानून द्वारा इस व्यवस्था को अधिक मजबूती से लागू किया गया। 1750 से 1760 ई0 के मध्य लगभग 156 बाड़बन्दी अधिनियम (एनक्लोजर एक्ट) बनाये गए। यह क्रम आगे भी जारी रहा और अठारहवीं सदी के अंत तक लगभग 900 अधिनियम लागू करके कई लाख एकड़ भूमि की बाड़बन्दी की गयी।

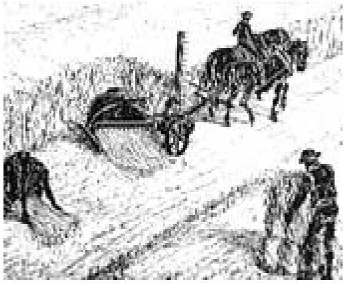

- 1840 में जस्टन वॉन लीबिग नामक जर्मन रसायनशास्त्री ने शोध किया कि पौधों के लिए पोटाश, नाइट्रोजन और फास्फोरस आवश्यक हैं। अतः पुरानी पद्धति से खाद देने के स्थान पर इन रासायनिक तत्वों को मिट्टी में मिलाकर उसकी उर्वरता को बढा़या जाने लगा।
- औद्योगिक क्रान्ति के दौरान उद्योगों के लिए कृषि उत्पादों की आवश्यकता ने कृषि में मशीनों के प्रयोग को बढ़ावा दिया। 1793 ई. में अमेंरिका में हिवटने ने अनाज को भूसे से अलग करने वाली मशीन बनायी। 1834 में साइरस एच. मैककोरमिक ने फसल काटने की मशीन बनाई। भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए लोहे के हल, घोड़े से खींचने वाला पाटा आदि यंत्रों का प्रयोग किया जा रहा था, जिससे श्रम और समय दोनों की बचत होती थी।

3.6 कृषि क्रान्ति का प्रसार एवं प्रभाव

यूरोप में नीदरलैण्ड में भी कृषि क्रांति इंग्लैण्ड के साथ साथ हुयी, लेकिन अन्य देशों में थोड़ी देर में प्रारम्भ हुयी। अन्य यूरोपीय देशों में इसके प्रसार और विकास के कारण अलग अलग थे। –

- नीदरलैण्ड में भी सत्रहवीं शताब्दी के अन्त से ही नये प्रयोग किए जाने लगे थे। दक्षिणी नीदरलैण्ड में फैल्डर्स तथा ब्राबांत कृषि संबंधी प्रयोगों का केन्द्र माने जाते थे। यहां अधिकतम उत्पादन के आंकड़ें देखे गए। यहां खुली भूमि की बाड़बन्दी करने, बदल बदल के फसल बोने तथा चारा फसल तथा वाणिज्य फसलों उगाने के प्रयोग किए गए।
- फ्रांस में कृषि का स्वरूप सामंतवादी था। छोटे किसानों की वजह से धन एकत्र करना कठिन होता था। अतः पूँजीवादी कृषि व्यवस्था का उदय धीमी गति से हुआ। यद्यपि अठारहवी सदी के अंत में पेरिस तथा उसके आसपास पूँजीवादी उत्पादन पद्धति का प्रारम्भ हो गया था। तथापि उन्नीसवीं सदी के तीसरे दशक में औद्योगिकीकरण, पूंजी के एकत्रीकरण तथा रेल आगमन से गांवों से नगरों के जुड़ने के बाद ही सही मायने में वहां कृषि का विकास हुआ।
- जर्मनी में भी वास्तविक परिवर्तन उन्नीसवीं सदी में ही देखा गया। यहां कृषि विकास जनसंख्या के तेजी से बढ़ने के कारण हुआ। यहां सरकारी प्रयत्नों से कृषि का विकास सम्भव हुआ। सरकार ने ऐसी भूमि जो अनाज उगाने योग्य नहीं थी उस पर आलू की खेती करायी। पूर्वी प्रशा में कई पानी से भरे क्षेत्रों को कृषि प्रयोग के लिए तैयार किया गया। नाइट्रोजन यूक्त पौधे लगाने और भूमि का अधिकतम उपयोग पर विशेष

ध्यान दिया गया। यहां फ्लैक्स, अम्बारी, कासनी, तम्बाकू और अंगूर जैसी वाणिज्यिक फसलों को लगाया जाने लगा। कृषि में विकास ने जर्मनी के औद्योगीकीकरण में योगदान दिया।

दक्षिणी यूरोप में पुर्तगाल, स्पेन, इटली, दक्षिणी फ्रांस आदि में अंगूर के बागानों को स्थापित करने में अधिक जोर दिया गया, क्योंकि उत्तरी यूरोप और अमेरिका में वाइन की मांग बढ़ रही थी। इन क्षेत्रों के पूँजीपति अगूंर से बनी वाइन का निर्यात करके लाभ उठाना चाहते थे। इससे अनाज उत्पादन और छोटे किसानों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। पूर्वी यूरोप और रूस में भी कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ। उन्नीसवीं सदी के अंत में सामंतवाद के विघटन के बाद ही वहां नए प्रयोग किए गए।

कृषि कान्ति का प्रभाव

इंग्लैण्ड में सत्रहवीं शताब्दी में ही पूँजीवादी कृषि व्यवस्था का आगमन हो गया था तथापि जनसंख्या का अधिकांश कृषि पर ही निर्भर था। अठारहवीं शताब्दी तक कृषि क्षेत्र पर निर्भरता कम होकर 80 से 40 प्रतिशत हो गयी।

कृषि क्रांति होने के पश्चात जनसंख्या में भी अत्यधिक वृद्धि भी हुयी। अठारहवीं शताब्दी तक जनसंख्या और खाद्य सामग्री की उपलब्धता के मध्य उतार चढ़ाव का सम्बन्ध रहा। कृषि प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर थी, जिससे कृषि उत्पादन एक सीमा से अधिक नहीं हो पाता था। जनसंख्या अधिक होने पर खाद्यान्न का संकट उत्पन्न हो जाता था। कृषि क्रांति होने पर अधिक आबादी के लिए पौष्टिक भोजन उपलब्ध हो सका, जिससे जनता का स्वास्थ्य और रहन सहन के स्तर में सुधार हुआ और मृत्यु दर भी कम हो गयी।

कृषि क्रान्ति ने औद्योगिक क्रान्ति के उदय में विशेष भूमिका अदा की। कृषि अधिशेष बचने से अन्य क्षेत्रों में लगाने के लिए पूँजी उपलब्ध होने लगी। इससे उद्योगों के लिए कच्चा माल प्राप्त हुआ तथा कृषि उपज से प्राप्त धन ने मशीनों के निर्माण में मदद की। खेती में तकनीक के प्रयोग के कारण बेरोजगार हुए किसानों के रूप में उद्योगों के लिए सस्ते मजदूर मिल सके तथा कृषि उत्पादन बढ़ने से नगरीय जनसंख्या के लिए पर्याप्त भोजन भी उपलब्ध हो सका।

कृषि क्रान्ति ने कृषि विज्ञान के अध्ययन का विकास किया। 1645 में राबर्ट वेस्टर्न ने अपनी पुस्तक 'डिस्कोर्स ऑन हसबैण्ड्री' में बतलाया था कि 1/3 भूमि को परती छोड़े बिना भी भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकता है। आर्थर यंग ने 'एनल्स ऑफ एग्रीकल्चर' नामक पत्रिका और कई लेख प्रकाशित किए। अठारहवीं शताब्दी तक कृषि विज्ञान का अत्यधिक विकास हो गया। इस सदी में केवल फ्रांस में ही कृषि से सम्बन्धित 1214 पुस्तकें प्रकाशित हुयीं। नयी पद्धतियों और अविष्कारों का ज्ञान यूरोप के अन्य देशों में प्रसार हेतु कई देशों के पूँजीपतियों ने कृषि संघों और सभाओं की स्थापना भी की।

कृषि क्रांति और जनसंख्या के विकास ने कुछ वर्गों को लाभ पहुंचाया तो कुछ को नुकसान भी उठाना पड़ा। भूमिहीन किसान मजदूरों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही थी। इंग्लैण्ड में सम्पन्न जमींदारों के द्वारा छोटे किसानों से भूमि खरीदने की प्रक्रिया लगातार चल रही थी। आयरलैंड में पाँच एकड़ से कम भूमि वाले किसानों की भूमि अधिग्रहण किया जाने लगा। फ्रांस और इटली में भागीदार किसानों को जमींदारों की शर्तों पर कार्य करने पर विवश होना पड़ा। छोटे किसान काम की तलाश में नगरों में जाकर बसने लगे। इंग्लैण्ड के अतिरिक्त अन्य यूरोपीय देशों मे अमीर और गरीब का अन्तर निरन्तर बढ़ता गया। अनुपस्थित जमींदारी वाले क्षेत्रों में महाजनों, सूदखोरों, दलाल आदि ने अपना प्रभाव बढ़ा लिया।

अभ्यास प्रश्न

1. अठारहवीं शताब्दी में कृषि क्षेत्र में हुए परिवर्तनों को स्पष्ट कीजिए।
2. कृषि क्रान्ति की प्रमुख विशेषताएं बताइए।
3. कृषि क्रान्ति के परिणामों पर प्रकाश डालिए।

3.7. औद्योगिक क्रान्ति से अभिप्राय

औद्योगिक क्रान्ति से अभिप्राय 18वीं सदी में आर्थिक क्षेत्र में किए गए ऐसे प्रयोगों से है, जिन्होंने मनुष्य के आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और सांस्कृतिक स्वरूप में परिवर्तन कर मानव एवं पशु श्रम पर आधारित कृषि समाज को मशीनों पर आधारित औद्योगिक समाज में बदल दिया। घरेलू उद्योग और हस्तशिल्प के स्थान पर कारखाना पद्धति का विकास और शक्ति संचालित मशीनों का प्रयोग किया गया। आधुनिक व्यापार तंत्र का विकास हुआ। विशाल मात्रा में उत्पादन हुआ, जिसने मानव जीवन पर अत्यंत गहरा और स्थायी प्रभाव डाला। इसे ही औद्योगिक क्रान्ति कहा गया।

औद्योगिक क्रान्ति शब्द का प्रयोग सबसे पहले 1837 में फ्रांस के समाजवादी लुई ब्लांक ने किया। फ्रेडिक एंगेल्स ने 'द कंडीशन ऑफ द वर्किंग क्लास इन इंग्लैण्ड इन 1844' में कहा – औद्योगिक क्रान्ति एक ऐसी क्रान्ति है जिसने उस समय सम्पूर्ण समाज को बदल दिया।' इतिहासकार अर्नाल्ड टॉयनबी द्वारा 1888 में आर्थिक परिवर्तनों के लिए इस शब्द का प्रयोग करने के पश्चात यह शब्द लोकप्रिय हो गया। अर्नाल्ड टॉयनबी ने कहा कि 18वीं शताब्दी में हुए यह परिवर्तन इतने पूर्ण थे, इतने तीव्रगामी थे कि उन्हें औद्योगिक क्रान्ति कहना उचित है। एन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज में औद्योगिक क्रान्ति की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है ''वह आर्थिक और तकनीकी विकास, जो अठारहवीं शताब्दी में अधिक सशक्त और तीव्र हो गया था तथा जिसके फलस्वरूप आधुनिक उद्योगवाद का जन्म हुआ, को औद्योगिक क्रान्ति कहा जाता है।'' लेकिन इनके विपरीत बीसवीं सदी के इतिहासकार जॉन क्लेफान और निकोलस क्राफ्ट तर्क देते हैं कि आर्थिक और सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया धीरे धीरे स्थान ग्रहण करती है इसके लिए क्रान्ति शब्द उपयुक्त नहीं है।

औद्योगिक क्रान्ति के अन्तर्गत जो परिवर्तन हुए उनमें प्रमुख रूप से तकनीक का विकास, लोहे का निर्माण, वाष्प और जल शक्ति का प्रयोग, रसायन उद्योग का विकास, खनन उद्योग और संचार तथा परिवहन का विकास सम्मिलित है। इन परिवर्तनों के कारण ही मशीनी युग का प्रारम्भ हुआ और औद्योगिक क्रान्ति सम्भव हो सकी।

3.8 औद्योगिक क्रान्ति का काल

तकनीकी विकास के आधार पर औद्योगिक क्रान्ति की चार अवस्थायें मानी जाती हैं–1750 से 1860 तक प्रथम औद्योगिक क्रान्ति कहा जाता है, जब इंग्लैण्ड में वस्त्र उद्योग, लौह उत्पादन और भाप शक्ति का विकास हुआ। 1860 के पश्चात द्वितीय विश्व युद्ध तक बड़े पैमाने पर हुए औद्योगिक विकास को द्वितीय औद्योगिक क्रान्ति कहा जाता है। इसमें इस्पात, बिजली और ऑटोमोबाइल आदि का विकास हुआ और यूरोप के अन्य देशों के साथ–साथ अमेरिका और एशिया के देशों तक इसका विस्तार हुआ। 1969 में सूचना प्रोद्योगिकी के उदय से उद्योग जगत में हुए परिवर्तनों को तथा 1990 में भौतिक, जैविक और डिजीटल के विलय से विकसित नवीन तकनीकों के उदय से उत्पादन में हुए विकास को क्रमशः तीसरी और चौथी औद्योगिक क्रान्ति कहा जाता है।

यहां हम आपको प्रथम औद्योगिक क्रान्ति के विषय में बतायेंगे।

3.9 औद्योगिक क्रान्ति के कारण और पृष्ठभूमि

औद्योगिक क्रान्ति यूरोप में उस समय हुयी चार अन्य क्रान्तियों का परिणाम थी। यह आपको बताया जा चुका है कि कृषि क्रान्ति ने औद्योगिक क्रान्ति के विकास में किस प्रकार योगदान दिया। कृषि क्रान्ति के अतिरिक्त जो अन्य परिवर्तन हुए जिन्होंने औद्योगिक क्रान्ति के लिए जमीन तैयार की उनमें प्रमुख हैं।

जनांकिकीय क्रान्ति– आपको बताया जा चुका है कि अठारहवीं शताब्दी में यूरोप में जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुयी। यूरोप में जनसंख्या लगभग 45 प्रतिशत बढ़ गयी थी। इंग्लैण्ड में 1751 से 1821 के मध्य जनसंख्या दुगनी हो गयी थी। बढ़ती हुयी जनसंख्या से वस्तुओं की मांग बढ़ी, जिससे उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रयोग करने की प्रेरणा मिली। बढ़ी जनसंख्या के कारण उद्योगों के लिए सस्ते में मजदूर भी प्राप्त हो सके।

व्यापारिक क्रान्ति–सत्रहवीं शताब्दी से व्यापार और वाणिज्य का काफी विकास हो चुका था। उपनिवेशों की स्थापना से नये बाजार मिल रहे थे। विदेशी व्यापार के विकास ने माल की मांग उत्पन्न की। उद्योगों के लिए पूंजी तथा कच्चा माल उपलब्ध कराया। विस्तृत बाजार ने उत्पादन बढ़ाने के लिए नए साधन खोजने को प्रेरित किया। फलतः मशीनों का अविष्कार किया गया और औद्योगिक क्रान्ति ने जन्म लिया।

परिवहन क्रान्ति– बाजार तक पहुँचने के लिए परिवहन और संचार साधनों का विकास आवश्यक था। जल और स्थल मार्ग दोनों का विकास किया गया। इंग्लैण्ड 16वीं शताब्दी से ही सामुद्रिक शक्ति के रूप में अपना विकास कर चुका था तथा 18वीं सदी में यहां सड़कों और रेलवे का विकास किया गया। इससे कारखानों में कच्चा माल लाने और विस्तृत क्षेत्र तक तैयार माल पहुँचाने में सुविधा हुयी। यातायात के विकास ने औद्योगिक क्रान्ति की गति में वृद्धि की।

इन क्रान्तियों की पृष्ठभूमि में औद्योगिक क्रान्ति ने जन्म लिया। इनके अतिरिक्त सामंती अर्थव्यवस्था के अंत ने उत्पादन, व्यापार और व्यवसाय पर सामंती प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया था । इंगलैण्ड की गौरवशाली क्रान्ति और फ्रांस की क्रान्ति ने शाही प्रतिबन्धों को भी समाप्त कर दिया। तकनीकी अविष्कारों ने परिवर्तन को तीव्र किया और उत्पादन का विकास कर औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया।

3.10. इंग्लैण्ड में उदय के कारण

विश्व में सबसे पहले औद्योगिक क्रान्ति इंग्लैण्ड में हुयी। इस समय फ्रांस में भी उद्योग, व्यापार, जनसंख्या ,कच्चा माल और लौह तथा जल शक्ति के प्रचुर साधन थे। हॉलेण्ड में भी औद्योगिक क्रान्ति हेतु आवश्यक परिस्थितियां मौजूद थीं। परन्तु औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ इंग्लैण्ड से ही क्यों हुआ ? आपने देखा कि कृषि, व्यापार, यातायात और जनसंख्या वृद्धि के क्षेत्र में सबसे पहले इंग्लैण्ड में ही क्रान्ति हुयी। इसके अतिरिक्त आप देखेंगे कि वहां ऐसे कई अन्य कारण उत्पन्न हो गये थे, जिन्होंने उत्पादन के स्वरूप में परिवर्तन कर दिया। यह कारण निम्न हैं।

1. इंग्लैण्ड का समाज स्वतंत्र समाज था। अन्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार रखने और कार्य करने की स्वतंत्रता थी। श्रेणी व्यवस्था और कृषि दासता समाप्त हो गयी थी। आर्थिक जीवन में भी सरकार का हस्तक्षेप नहीं था। नये प्रयोग करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था।
2. इंग्लैण्ड की जनता में अन्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा आर्थिक समानता भी थी। फ्रांस में अमीर–गरीब का अन्तर 1ः 60 से 1ः 90 था, जबकि इंग्लैण्ड में यह केवल 1ः 30 था। जीवन स्तर उच्च होने के कारण जनता की क्रय शक्ति भी अधिक थी। इसने वस्तुओं की मांग को बढ़ाया।
3. इंग्लैण्ड चारों ओर से समुद्र से घिरा होने के कारण बाहरी आक्रामणों से सुरक्षित रहा। अन्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा युद्ध जनित हानियों से बचा रहने के कारण औद्योगिक क्रान्ति के विकास के लिए

एक शान्तिपूर्ण माहौल मिल सका। उसके सामुद्रिक तटों में बन्दरगाह बनाने की सुविधा थी। खुला समुद्र होने के कारण उसके व्यापारिक जहाज आसानी से दूसरे देशों के साथ व्यापार कर पाते थे।

4. इंग्लैण्ड की जलवायु कपड़े के उत्पादन के लिए उपयुक्त थी। प्राकृतिक संसाधनों की अधिकता विशेषरूप से लोहा और कोयले की खानें पास–पास होने से पक्के लोहे का निर्माण सुविधा से होता था। लोहे की उपलब्धता ने मशीनों के निर्माण को आसान कर दिया।
5. इंग्लैण्ड के पास एक विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य था, जो उसके तैयार माल के लिए विस्तृत बाजार बने। इन उपनिवेशों से उसे कच्चा माल भी प्राप्त होता था।
6. इंग्लैण्ड उन वस्तुओं का उत्पादक था जिनकी बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती थी, जबकि फ्रांस विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन करता था। औद्योगिक क्रान्ति की गति लाने के लिए यह आवश्यक था कि देश के अन्दर आम उपभोग की चीजों का निर्माण हो, जिसकी मांग निरन्तर रहे। दैनिक वस्तुओं की मांग अधिक होने के कारण इंग्लैण्ड के व्यापारी निरन्तर उत्पादन वृद्धि हेतु नये प्रयोग करते रहे।
7. व्यापार के कारण इंग्लैण्ड में अत्यधिक मात्रा में पूंजी एकत्र हो गयी थी, जिसका प्रयोग उद्योगों और कारखानों को स्थापित करने में किया गया।
8. इंग्लैण्ड में बैंकिंग प्रणाली स्थापित हो गयी थी। बैकिंग प्रणाली के विकास से इंग्लैण्ड के उद्योगपतियों को ऋण प्राप्त करने और पूंजी जमा करने में सुविधा मिली। असीमित पूंजी और असीमित बाजार और संयुक्त पूंजी कम्पनियों की स्थापना ने व्यापार पर इंग्लैण्ड का एकाधिकार स्थापित कर दिया था।
9. इंग्लैण्ड की सरकार की नीति उद्योग और व्यापार को संरक्षण प्रदान करने वाली थी। अन्य देशों में व्यापार पर अनेक कर और स्थानीय चुंगी लगाई जाती थी, लेकिन इंग्लैण्ड में इस तरह की बाधाऐं नहीं थीं।
10. इंग्लैण्ड में सामन्ती व्यवस्था खत्म होने पर बहुत से लोग, जो सामन्तों के यहां काम करते थे, कस्बों में आकर बस गये और हस्त शिल्प का कार्य करने लगे। औद्योगिक क्रान्ति प्रारम्भ हुयी तो यह लोग मशीनों में काम करने के लिए उपलब्ध हो गये।
11. उद्योग क्रान्ति का मूल कारण मशीनों का अविष्कार और उनका उद्योगों में प्रयोग था, जिसका प्रारम्भ इंग्लैण्ड से हुआ। यहां 17वीं शताब्दी के अन्त तक हस्त कौशल पर आधारित उत्पादन अपने चरम पर था। इससे अधिक उत्पादन का स्तर को बढ़ाने के लिए नए उपकरणों की आवश्यकता थी। इंग्लैण्ड में कृषि कार्यों में तकनीक का प्रयोग करके कृषिगत क्रान्ति हो चुकी थी। इससे प्रेरित होकर उद्योगों में भी उत्पादन बढ़ाने के लिए तकनीक का प्रयोग करके मशीनें बनाई गयीं । वस्त्र उद्योग से प्रारम्भ होकर तकनीक का प्रयोग धीरे–धीरे अन्य उद्योगों में भी किया गया।

इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति के लिए महत्वपूर्ण कारक–प्राकृतिक साधन, अत्यधिक धन और कुशल कारीगर, विस्तृत बाजार, राजनैतिक शान्ति तथा सामाजिक सहयोग, वाणिज्यवादी दृष्टिकोण और आविष्कारों के प्रति रूचि इंग्लैण्ड में मौजूद थी।

3.11. नवीन आविष्कार

इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति का प्रमुख आधार विभिन्न प्रकार की मशीनों का अविष्कार था। इन मशीनों का प्रयोग विभिन्न उद्योगों में किया गया। आपको बताया जा चुका है कि इंग्लैण्ड में 17वीं शताब्दी के अन्त तक उपलब्ध साधनों का उनकी क्षमता के अनुरूप अधिकतम प्रयोग किया जा चुका था। असीमित बाजार और बढ़ती मांग के लिए उत्पादन बढ़ाने हेतु नए साधनों की जरूरत थी। प्रयोग करके नए साधनों के रूप में

मशीनों का अविष्कार किया गया, जिसने उद्योगों का मशीनीकरण कर औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया। शीघ्र ही इंग्लैण्ड 'विश्व की उद्योगशाला' कहा जाने लगा। आपको हम विभिन्न उद्योगों के लिए किए गए प्रमुख अविष्कार के विषय में बताते हैं।–

वस्त्र उद्योग– सर्वप्रथम सूती वस्त्र उद्योग के लिए अविष्कार किए गए। सत्रहवीं शताब्दी तक सूती वस्त्र का आयात एशियायी देशों से किया जाता था। इससे यूरोप में बुनकरों और उत्पादकों को नुकसान होता था। अतः यूरोपीय सरकारों ने सूती वस्त्र के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया। यूरोप के कुलीन और उच्च वर्ग में सूती वस्त्र अत्यंत लोकप्रिय थे। इन वस्त्रों की मांग की पूर्ति हेतु यूरोप में सूती वस्त्र उद्योग पनपा और स्तर सुधारने तथा अधिक उत्पादन के लिए मशीनों का प्रयोग किया जाने लगा।

- 1733 ई. में जोहन के ने फ्लाइंग शटल का अविष्कार किया, जिसकी सहायता से कपड़ा दोगुनी गति से बुना जा सकता था।
- 1764 ई. में जेम्स हारग्रीब्ज ने स्पिनिंग जैनी नामक यन्त्र का अविष्कार किया, जिसमें आठ तकुए लगे थे।
इससे एक ही साथ आठ सूत के धागे काते जा सकते थे।

स्पिनिंग जैनी

- 1769 ई. में रिचर्ड आर्कराइट ने स्पिनिंग जैनी में सुधार करके जल शक्ति से चलने वाली वाटर फ्रेम नामक सूत कातने की मशीन बनाई।
- 1779 ई. में सेमुअल क्राम्पटन ने म्यूल नामक यन्त्र बनाया , जिससे बारीक सूत तेज गति से काता जा सकता था। इससे अच्छा धागा काफी मात्रा में उपलब्ध हो गया।

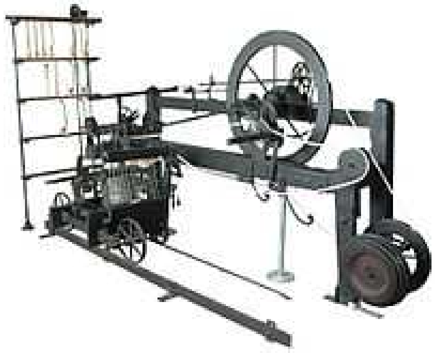

स्पिनिंग म्यूल

- 1785 ई. में एडमण्ड कार्टराइट ने पावरलूम का अविष्कार किया। इस मशीन को जल और वाष्प शक्ति दोनों से चलाया जा सकता था। इसके द्वारा बढ़िया किस्म का कपड़ा शीघ्रता से बुना जाने लगा।
- 1785 ई. में वस्त्रों को छापने के लिए रोलर प्रणाली का अविष्कार हुआ, जिससे कपड़ों की प्रिन्टिंग का कार्य तेजी से और अच्छा होने लगा।

- 1793 ई. में अमेरिकी ऐली व्हिटने ने कपास से बिनौला अलग करने की मशीन बनाई , जिसे कॉटन जिन कहा गया। यह पचास मजदूरों के बराबर काम अकेले कर सकती थी।
- 1825 ई. में रिचर्ड रॉबर्ट्स ने पहली स्वचालित बुनाई मशीन बनाई।
- 1846 ई. में अमेरिका के एलियास होव ने सिलाई मशीन का अविष्कार किया, जिससे बढ़िया सिले हुए कपड़े बड़े पैमाने पर तैयार होने लगे।

वाष्प शक्ति

यंत्रों को चलाने के लिए जल शक्ति और पवन शक्ति का प्रयोग किया जाता था। लेकिन अब शक्ति के नए साधन के रूप में वाष्प शक्ति का विकास हुआ। 1712 ई. मे टामस न्यूकोमेन ने एक वाष्प से चलने वाले इन्जन को बनाया, जो खानों से पानी बाहर निकालने का काम करता था। लेकिन यह इन्जन ईंधन का अधिक खर्चा करता था और भारी भी था। 1769 ई. में जेम्स वाट ने न्यूकोमेन के इंजन के दोषों को दूर करके एक नया वाष्प इंजन बनाया। उसने 1775 में एक उद्योगपति के साथ मिलकर इंजन बनाने का कारखाना भी खोला। 1776 में विलकिन्स ने लोहे के कारखानों की भट्टियों को तेज रखने के लिए वाष्प इंजन का प्रयोग किया। इसके बाद जेम्स वाट के वाष्प इंजन का प्रयोग आटे की चक्की चलाने तथा सूती कारखानों की मशीनों को चलाने के लिए किया गया। 1814 में इस इंजन का सुधरा रूप छापेखाने की मशीनों को चलाने के लिए किया जाने लगा।

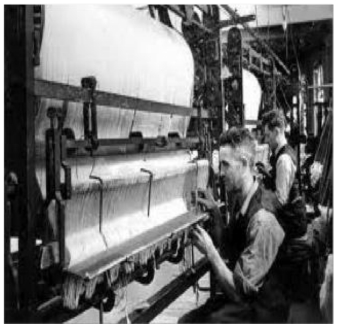

लोहा और कोयला उद्योग

मशीनों को बनाने के लिए लोहे की मांग बढ़ रही थी, लेकिन लोहे को पिघलाने और साफ करने की तकनीक पुरानी, महँगी और कठिन थी। लकड़ी का कोयला, जो लोहा पिघलाने में प्रयोग किया जाता था, भी कम होता जा रहा था। अतः ईंधन के अन्य साधनों की खोज की गयी। अब्राहम डर्बी तथा जॉन रोबक ने खोज की कि पत्थर के कोयले से बने कोक का प्रयोग लोहा पिघलाने में किया जा सकता है। पत्थर के कोयले को प्राप्त करने के लिए खनन कार्य का विकास हुआ। खनन कार्य को आसान बनाने के लिए नयी मशीनें बनाई गईं। 1760 में जान स्टीमन ने कोक की आग को तेज रखने के लिए एक पम्प का अविष्कार किया। हम्फ्री डेवी ने खनन कार्य में सुविधा हेतु सुरक्षा लैम्प बनाया। 1784 में हेनरी कोर्ट ने एक ऐसी विधि पडलिंग का अविष्कार किया, जिसके द्वारा अधिक शुद्ध और अच्छा लोहा बनाना सम्भव हुआ। सीमेन्स मार्टिन ने इस्पात बनाया। परन्तु हेनरी बैसमेर ने 1856 में शीघ्रता से और सस्ते में इस्पात तैयार करने की तकनीक खोजी। इससे इस्पात का उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगा।

यातायात और परिवहन में तकनीकी प्रयोग

उद्योगों के मशीनीकरण ने यातायात और परिवहन साधनों के विकास को भी आवश्यक बना दिया। स्कॉटलैण्ड के इंजीनियर मैकडेम ने 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में सड़क बनाने का नया तरीका खोज निकाला। उसने छोटे पत्थर के टुकड़ों और मिट्टी का प्रयोग करके मजबूत सड़क बनाईं। टेलफोर्ड ने तारकोल का प्रयोग करके इसमें सुधार किया। ये सड़कें इंग्लैण्ड में हजारों मील तक बनाई गईं। ब्रिजवाटर के ड्यूक के द्वारा जेम्स ब्रिंडले नामक इंजीनियर को नहर बनाने को प्रोत्साहित किया गया। 1761 में ब्रिजवाटर नहर बनी तो माल लाने–ले जाने का खर्चा पहले से आधा रह गया। 1830 तक इंग्लैण्ड में 40 हजार मील लम्बी नहरों का निर्माण किया जा चुका था।

ब्रिजवाटर नहर

1869 में फ्रांसीसी इंजीनियर फर्दिनांद द लैस्सैप ने स्वेज नहर का निर्माण कर भूमध्यसागर को लाल सागर से जोड़ा। इससे यूरोप और भारत की दूरी एक तिहाई से कम हो गयी। 1807 में पहली भाप से चलने वाली नाव का अविष्कार हुआ। उसके बाद वाष्प शक्ति से चलने वाले जहाज विकसित हुए। 1814 में जॉर्ज स्टीवेंसन ने रेल इंजन का अविष्कार किया ,जो भाप की शक्ति से लोहे की पटरियों पर चलकर माल से लदी गाडियों को खीच सकता था। 1830 में मेनचेस्टर से लिवरपूल तक पहली रेलवे लाइन का निर्माण हुआ। रेल के द्वारा कोयला, लोहा आदि को एक स्थान से लाने ले जाने का काम कम खर्च और कम समय में होने लगा।

प्रथम रेल मार्ग

स्टीम इंजन

संचार साधनों का विकास –

संचार साधनों का भी विकास हुआ। 1840 में पेनी पोस्टेज द्वारा डाक व्यवस्था लागू हुयी, जिससे देश में कहीं भी पत्र भेजा जा सकता था। 1844 में सैमुअल मौर्स ने टेलीग्राफ प्रणाली का अविष्कार किया। उत्तरी अमेरिका और यूरोप को अटलांटिक केवल द्वारा जोड़ा गया। 1876 में ग्राहम बैल ने टेलीफोन का अविष्कार किया।

19वीं सदी के प्रारम्भ में विभिन्न वैज्ञानिक खोजों ने औद्योगिक क्रांति के नवीन क्षेत्रों का विकास किया। वैज्ञानिकों माइकल फेराडे, जेम्स यंग, सीमेन्स, बुन्सेन आदि के अविष्कार बहुत लाभदायक सिद्ध हुए। मशीनों को बनाने के लिए यान्त्रिकी तकनीक का विकास, रसायन के क्षेत्र में नयी खोजों विशेषरूप से क्लोरिन, सोडियम कारबोनेड, कैल्सियम सल्फाइड, पोटाश, ब्लीचिंग पाउडर, सीमेंट, काँच, पेपर, गैस का प्रकाश आदि ने औद्योगिक क्रांति का अत्यधिक विकास किया।

3.12. यूरोप में प्रसार

औद्योगिक क्रान्ति ने 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में इंग्लैण्ड को उद्योग प्रधान देश बना दिया था, लेकिन यह क्रान्ति इंग्लैण्ड तक सीमित नहीं रह सकी। 19वीं सदी का अन्त होते–होते इसका विस्तार सम्पूर्ण यूरोप और विश्व के कुछ प्रमुख देशों में दिखाई देने लगा। यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के शीघ्रता से प्रसार के लिए प्रमुख कारण फ्रांस की क्रांति से स्थापित स्वतंत्रता एवं समानता की भावना, पुरातन व्यवस्था का अन्त, मध्यम वर्ग और उदारवादी विचारधारा का विकास, जनसंख्या वृद्धि और इंग्लैण्ड के औद्योगिकीकरण का प्रभाव आदि थे। इंग्लैण्ड के बाद इसका प्रसार सबसे पहले पश्चिमी यूरोप के देशों बेल्जियम, फ्रांस और जर्मनी में हुआ।

बेल्जियम– बेल्जियम वह पहला देश था, जिसने इंग्लैण्ड की औद्योगिक तकनीक का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया। 1850 तक यह एक उद्योग प्रधान देश बन गया। इंग्लैण्ड से मशीनें मंगाकर इसने अपने यहां कारखाने स्थापित किये। वस्त्र उद्योग, लौह उत्पादन और रेल मार्ग के निर्माण में इसने विशेष प्रगति की। प्रारम्भ में यूरोप के अन्य देशों की कोयले की जरूरत को यह ही पूरा करता था।

फ्रांस– 1789 की क्रांति के पश्चात फ्रांस में जो राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हुए, उसने वहां औद्योगिक क्रान्ति हेतु एक माहौल बनाया। प्रारम्भ में इंग्लैण्ड से मशीनें आयात की गयीं और वस्त्र उद्योग का मशीनीकरण किया गया। 1830 तक यहां वाष्प इंजन का प्रयोग होने लगा। 1830 से 1841 के मध्य फ्रांस ने स्वयं मशीनों का निर्माण करना शुरू कर दिया। परन्तु यहां कोयले की कमी और जनता की औद्योगिकीकरण में रूचि न होने के कारण विकास की गति धीमी रही। 1857 से 1870 के मध्य यहां की सरकार को औद्योगिक क्रान्ति हेतु स्वयं प्रयास करने पड़े। संचार साधनों का विकास, बैंकों की स्थापना और गैर सरकारी कम्पनियों की सहायता की गयी। 1850 के बाद रेलों का विकास हुआ। 1870 तक फ्रांस के रेशम वस्त्र और लौह उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुयी। 1830 की अपेक्षा 1870 तक उत्पादन और व्यापार तिगुना हो गया।

जर्मनी– जर्मनी का एकीकरण 1870 ई. में हुआ, परन्तु यहाँ के राज्यों में औद्योगिक क्रान्ति का असर 1848 के पश्चात ही दिखने लगा था। 1839 ई. में यहाँ ड्रेसडेन और लिपजिग के मध्य रेलमार्ग का निर्माण किया गया। 1848 तक बर्लिन, हैम्बर्ग, प्राग और लाइबेख तक रेलमार्गों का निर्माण हो गया। रूर क्षेत्र में कोयले और लोहे की खानें प्राप्त होने के बाद 1850 से 1880 के मध्य यहाँ कोयले का उत्पादन दस गुना बढ़ गया। साइलेशिया और वेस्टफेलिया में सूती वस्त्र उद्योग का विकास हुआ। 1870 ई. में एकीकरण के बाद जर्मनी में तेजी से औद्योगिक विकास हुआ। इस्पात उद्योग में वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग, रसायनों का प्रयोग, यान्त्रिक तकनीक का विकास के साथ–साथ जर्मनी में तकनीकी शिक्षा के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया। इससे यह औद्योगिक विकास में इंग्लैण्ड से आगे निकल गया।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक यूरोप के अन्य देशों डेनमार्क, स्वीडन, हालैण्ड, इटली और आस्ट्रिया में भी औद्योगिकीकरण प्रारम्भ हो गया। स्वीडन में 1850, इटली में 1860 और आस्ट्रिया तथा उत्तरी स्पेन में 1870 से औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ। रूस में औद्योगिक क्रान्ति सबसे बाद में प्रारम्भ हुयी। फ्रांस और इंग्लैण्ड के सहयोग से इसने 19वीं सदी के अन्तिम वर्षों में पर्याप्त औद्योगिकीकरण किया।

3.13. प्रभाव

अभी तक आपने जाना कि औद्योगिक क्रान्ति का सम्बन्ध आर्थिक क्षेत्र में किए गए परिवर्तनों से था, परन्तु अब आप जानेंगे कि इसके प्रभाव से आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं वरन् समाज, राजनीति और विचारों में भी व्यापक परिवर्तन हो गया। मानव समाज जितना औद्योगिक क्रान्ति से प्रभावित हुआ, उतना शायद ही किसी ओर परिवर्तन से।

आर्थिक प्रभाव– औद्योगिक क्रान्ति से बहुत समय से चली आ रही कम उत्पादक और विकासहीन अर्थव्यवस्था का अंत हुआ। इसका सबसे पहला प्रभाव उत्पादन पर पड़ा। 1760 से 1830 के मध्य इंग्लैण्ड का उत्पादन 10 से 40 गुना तक बढ़ गया था। आपको बताया जा चुका है कि पुरानी कुटीर उद्योग प्रणाली का स्थान कारखना पद्धति ने ले लिया था। फलतः घरेलू उद्योग समाप्त होने लगे और उससे जुड़े कारीगर बेरोजगार हो गये तथा वे काम की तलाश में शहरों की ओर जाने लगे। औद्योगिक नगरों का विकास हुआ और तेजी से जनसंख्या का शहरीकरण हुआ। ग्राम के स्थान पर शहर अर्थव्यवस्था का आधार बन गए। उत्पादन करने वालों और उपभोग करने वालों के मध्य सीधा सम्बन्ध समाप्त हो गया। पुराने सरल बाजार के स्थान पर बाजार जटिल हो गया। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का उदय हुआ, जिसमें अपने देश के उद्योग को बढ़ाने और दूसरे देश के उद्योगों से टक्कर लेने के लिए संरक्षित बाजार बनाए गए। पूंजी और श्रम के मध्य अन्तर बढ़ने लगा। बड़े स्तर पर उत्पादन, असमान वितरण और एकाधिकार की प्रवृत्ति ने औद्योगिक पूंजीवाद का जन्म हुआ। प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि हुयी। बैंकों और वित्तीय संगठनों का विकास हुआ। संयुक्त पूंजी कम्पनियों और औद्योगिक निगमों की स्थापना की गयी। शेयर बाजार का गठन हुआ। व्यापार का स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय हो गया। बाजार की आवश्यकता ने उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद को जन्म दिया।

सामाजिक प्रभाव– समाज पर मध्यम वर्ग विशेष रूप से व्यापारियों, वैज्ञानिकों, कुशल और प्रशिक्षित शिल्पियों, महाजनों, प्रबन्धकों और वकीलों आदि का प्रभाव बढ़ गया। समाज नये स्वरूप में पूंजी के आधार पर विभाजित होने लगा। सामन्तों और पादरियों का महत्व कम हो गया। रूढ़िवाद, अन्धविश्वास, जातीयता और कुलीनता आदि का प्रभाव भी समाज पर कम होने लगा। उद्योगपति अत्यधिक धनी और मजदूर अधिक गरीब हो गये। कारखाना प्रणाली में मजदूरों और मालिकों के मध्य संघर्ष हुआ और मजदूरों के शोषण और उनकी स्वतंत्रता का अन्त हुआ। शहर में मजदूरों के पास जीवका चलाने के लिए मजदूरी के अतिरिक्त कोई साधन नहीं रहा, जिस कारण उनका उद्योगपतियों द्वारा अत्यधिक शोषण किया जाने लगा। मजदूरों को 14 से 16 घंटे काम करना पड़ता था। महिलाओं और बच्चों से भी कम पारिश्रमिक में अधिक काम कराया जाता था। उद्योगों में काम करने के लिए गांव से बड़ी संख्या में लोग शहर आ गए, जिसने संयुक्त परिवार प्रणाली को काफी नुकसान पहुंचाया। सामुदायिक भावना का पतन हुआ और सामाजिक तथा नैतिक बन्धन टूटने लगे। शहरों में जनसंख्या बढ़ने से सफाई और स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याऐं उत्पन्न हुयीं। हैजा और प्लेग जैसी महामारियां फैलने लगीं।

राजनैतिक प्रभाव–औद्योगिक क्रान्ति के कारण नयी राजनैतिक समस्याएं उत्पन्न हुयीं। इंग्लैण्ड में उद्योगपति और मजदूर वर्ग संसद पर अपने आर्थिक हितों की रक्षार्थ अपना प्रतिनिधित्व चाहते थे। आर्थिक समस्याओं को लेकर आन्दोलन हुए और आन्दोलनकारी व्यापक मताधिकारों और वार्षिक संसद की मांग करने लगे। 1816 में स्पाफील्ड, 1817 में लंकाशायर एवं डर्बीशायर और 1819 में सेण्ट पीटर्सबर्ग में आन्दोलन हुए। फलतः इंग्लैण्ड में संसद में भूस्वामी और कुलीन वर्ग के स्थान पर मध्यम व्यापारी वर्ग को प्रतिनिधित्व देने के लिए सुधार किए गए। कई सुधार बिल प्रस्तुत करने के पश्चात 1832 में प्रथम सुधार अधिनियम द्वारा लोक सदन के 143 स्थान नये निर्वाचन क्षेत्रों में बांटे गये। मजदूरों ने भी व्यापक मताधिकार, काम के घण्टे, न्यूनतम मजदूरी आदि के लिए चार्टिस्ट आंदोलन किया। 1867 और 1884 के अधिनियमों के द्वारा अधिकांश जनता को मतदान का अधिकार दिया गया। नगरों के व्यवसायी और मजदूरों को राजनीतिक जीवन में भाग लेने का अधिकार मिला और इंग्लैण्ड की संसदीय व्यवस्था अधिक प्रजातान्त्रिक हो गयी।

यूरोप के अन्य राज्यों ने भी उद्योग और व्यापार के विकास हेतु नए कानून बनाए। यूरोप के जिन देशों में उद्योगीकरण देरी से हुआ, वहाँ उद्योगों को प्रोत्साहित करने में सरकार ने बड़ी भूमिका निभाई। 1820 में व्यापार को संरक्षण दिया और प्रारम्भ में सार्वजनिक धन और व्यय पर सरकारी नियंत्रण लगाया। लेकिन

1840–60 में उद्योगपतियों के दबाव में सरकारों ने मुक्त व्यापार नीति को अपनाया। कई देशों की राजनैतिक शक्ति पूंजीपतियों के हाथों में केन्द्रित हो गयी। 1870 के पश्चात मजदूर अपने शोषण के विरूद्ध एकजुट हो मजदूर संघ और ट्रेड यूनियन बनाने लगे थे। फलतः पुनः संरक्षण नीति का अनुसरण किया गया और मजदूरों के पक्ष में लोक कल्याणकारी तथा समाजवादी व्यवस्था का विकास हुआ।

औद्योगिक क्रान्ति ने संसार के अन्य देशों में उपनिवेश स्थापित करने की होड़ को बढ़ावा दिया। फ्रांस, हॉलैण्ड, बेल्जियम आदि यूरोपीय देशों में औपनिवेशिक और व्यापारिक प्रतिद्वन्दिता प्रारम्भ हुयी। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इससे साम्राज्यवाद का विकास हुआ और साम्रज्यवाद की प्रवृत्ति ने राज्यों के मध्य संघर्ष और वैमनस्य उत्पन्न किया।

वैचारिक प्रभाव– औद्योगिक क्रान्ति ने आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में कई नवीन विचारधाराओं को जन्म दिया। उच्च मध्यम वर्ग विशेषरूप से उद्योगपतियों के प्रभाव से उदारवादी विचारधारा का उदय हुआ, जिसका सिद्धान्त था अहस्तक्षेप की नीति। इसमें व्यापार को राज्य के नियंत्रण से मुक्त रखा गया, उद्योगीकरण का लाभ उद्योगपतियों को मिला और मजदूर वर्ग का शोषण हुआ। इस पूंजीवादी व्यवस्था के प्रतिक्रियास्वरूप समाजवाद की विचारधारा का उदय हुआ, जिसमें समस्त जनता के लिए आर्थिक और राजनैतिक समानता और संपति के समान वितरण की बात की गयी। समाजवादी उद्योगपति राबर्ट ओवन ने अपने कारखानों में सहकारी संस्थाएं स्थापित कीं। फ्रांस में सेंट साइमन, फाउरिये और लुई ब्लांक आदि प्रारम्भिक समाजवादियों ने निजी सम्पत्ति का विरोध किया और राष्ट्रीय कारखानों की आवश्यकता बताई। कार्ल मार्क्स ने समाजवाद को व्यवहारिक रूप प्रदान किया। मार्क्स और एंगेल्स के विचारों ने वैज्ञानिक समाजवाद का रूप लिया, जिसे साम्यवादी विचारधारा कहा गया। इसके अनुसार पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त किए बिना समाजवादी व्यवस्था की स्थापना नहीं की जा सकती। इस विचारधारा ने मजदूरों को पूंजीवाद का विरोध करने को प्रेरित किया। अनेक देशों में समाजवादी और साम्यवादी व्यवस्था स्थापित हुयी। सम्पूर्ण विश्व में दो गुटों में बँट गया –साम्यवादी और पूंजीवादी।

अभ्यास प्रश्न

1. औद्योगिक क्रान्ति ने समाज और आर्थिक जगत को किस तरह प्रभावित किया?
2. औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप राजनैतिक और वैचारिक क्षेत्र में क्या–क्या परिवर्तन हुए?

3.14 सारांश

18वीं सदी में इंग्लैण्ड में आर्थिक क्षेत्र में उत्पादन प्रक्रिया, स्वरूप और क्षेत्र में परिवर्तन हुए जिन्होंने न केवल आर्थिक वरन् सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी बदलाव कर दिया। सर्वप्रथम कृषि व्यवस्था में परिवर्तन आए, जिन्हें कृषि क्रान्ति कहा गया। सत्रहवीं शताब्दी के अंत से ही कृषि क्षेत्र में कई प्रयोग किए जाने लगे थे। फसलों को बदल बदल कर बोना, अधिक से अधिक भूमि को कृषि योग्य बनाना, छोटे खेतों के स्थान पर बड़े फार्मों में कृषि करना, नकदी फसलों को उगाना, जड़ो वाली सब्जियों को उगाकर भूमि की उत्पादकता को बनाए रखना तथा पशुपालन एवं कृषि में नयी तकनीक के प्रयोग ने कृषि उत्पादन का अत्यधिक विकास किया। इंग्लैण्ड और नीदरलैण्ड के बाद जर्मनी, फ्रांस आदि क्षेत्रों में कृषि का विकास हुआ।

कृषि के विकास की उपलब्धियों ने ही इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के लिए जमीन तैयार की। हस्त और कुटीर उद्योग के स्थान पर बड़े पैमाने पर मशीनों से कारखानों में उत्पादन से जो परिवर्तन आया, उसे औद्योगिक क्रान्ति कहा गया। औद्योगिक क्रान्ति अग्रगामी चार क्रान्तियों के कारण सम्भव हुयी– कृषि क्रान्ति, जनसंख्या में वृद्धि, व्यवसायिक क्रान्ति और परिवहन क्रान्ति।

औद्योगिक क्रान्ति 1760 से 1860 तक इंग्लैण्ड में विकसित हुयी और 1860 ई के पश्चात यूरोप तथा विश्व के अन्य क्षेत्रों में फैली। इंग्लैण्ड से औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भ होने के प्रमुख कारण थे– प्रचुर प्राकृतिक साधन, औपनिवेशिक साम्राज्य, राजनैतिक स्थिरता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, दैनिक उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन, पूंजी की उपलब्धता, नगरीय जनसंख्या में वृद्धि आदि। इग्लैण्ड में अन्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा पूंजी, श्रम, तकनीक, संसाधन, यातायात के साधन और विस्तृत बाजार थे, जिसने तीव्रता से औद्योगिकीकरण का विकास किया।

औद्योगिक क्रान्ति के अन्तर्गत प्रारम्भ में तकनीक का विकास, लोहे का निर्माण, वस्त्र उद्योग में भाप तथा जल शक्ति का प्रयोग, रसायन का विकास, कोयले की खानों का विकास और यातायात के साधनों का विकास आदि परिवर्तन हुए।

औद्योगिक क्रान्ति ने सर्वप्रथम वस्त्र उद्योग को प्रभावित किया। विभिन्न मशीनों का प्रयोग कपास के बिनौले से रूई को अलग करने, धागा बनाने, कपड़ा बुनने, सिलने और रंगने आदि सभी कार्यों में होने लगा। इन मशीनों का निर्माण जॉन के, जेम्स हरग्रीव्ज, आर्कराइट, कार्टराइड आदि ने किया। मशीनों को चलाने के लिए वाष्पशक्ति की जानकारी और उसका मशीनों को चलाने में प्रयोग ने उद्योगीकीकरण को तेज किया। मशीनों के निर्माण के लिए लोहे को पिघलाने और शुद्ध लोहा प्राप्त करने के लिए नये प्रयोग किए गए। लोहा पिघलाने के लिए कोयल के प्रयोग ने खनन उद्योग का भी विकास किया। कच्चे माल को कारखानों तक लाने के लिए यातायात के क्षेत्र में सुधार किए गए। स्टीफैन्सन ने रेल इंजन का अविष्कार किया। मैकडम ने सड़क निर्माण के तरीके में सुधार किया। संचार साधनों का भी विकास हुआ। नयी तकनीक और मशीनों का प्रयोग धीरे–धीरे अन्य क्षेत्रों में भी होने लगा।

औद्योगिक क्रान्ति इंग्लैण्ड के पश्चात सर्वप्रथ्म बेल्जियम में हुयी और धीरे–धीरे फ्रांस और जर्मनी में भी औद्योगिक विकास हुआ। 19वीं सदी के अन्त तक पश्चिमी यूरोप के अधिकांश क्षेत्रों तथा अमेरिका के उत्तरी भाग में औद्योगिक विकास हो गया। यूरोप के पूर्वी क्षेत्रों और रूस में मशीनीकरण की गति धीमी रही।

औद्योगिक क्रान्ति ने आर्थिक क्षेत्र में उत्पादन में वृद्धि, घरेलू उद्योग के स्थान पर कारखाना उद्योग का विकास और मशीनों का बड़ी संख्या में उपयोग, शहरीकरण और पूंजीवाद का विकास किया। समाज में नये श्रम बेचने वाले मजदूर वर्ग और तकनीक जानने वाले मध्यम वर्ग का उदय हुआ। पूंजीवाद के विकास ने वर्ग संघर्ष उत्पन्न किया। राजनैतिक क्षेत्र में कारखानों और मजदूरों से सम्बन्धित कानून बनाए गए। संसदीय सुधारों द्वारा अधिक से अधिक जनता को मताधिकार प्राप्त हुआ। उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की भावना का विकास हुआ, जिससे देशों के मध्य वैमनस्य बढ़ा। नवीन विचारधाराओं उदारवाद, समाजवाद और साम्यवाद का उदय हुआ। वर्ग संघर्ष बढ़ा और समस्त विश्व दो गुटों में बंट गया–पूंजीवादी और साम्यवादी।

3.15. तकनीकी शब्दावली और उद्धरण

1. **हेजन**–औद्योगिक क्रांति का अर्थ है कुटीर उद्योग का मशीनीकरण।
2. **एडवर्ड**–औद्योगिक प्रणाली तथा श्रमिकों के स्तर में होने वाले परिवर्तनों को ही औद्योगिक क्रांति कहा जाता है।
3. **स्वेन**– आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तनों की शुरूआत ही औद्योगिक क्रांति है।
4. **एच.ए.एल.फिशर**– ब्रिटेन को औद्योगिक पूंजीवाद के अग्रणी होने में जिस कारण ने योगदान दिया, उसमें प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता का सर्वाधिक योगदान है।
5. **जी.टी.वाट्स**– यदि हम अन्य देशों के साथ व्यापार न करते हुए केवल अपने उपनिवेशों के साथ ही व्यापार करते, तब भी इंग्लैण्ड विश्व का सर्वोच्च व्यापारिक देश होता।

6. **नोबेल्स**– ब्रिटेन की राजनीतिक सुरक्षा इतनी अच्छी थी कि लोग बड़े उद्योगों में आवश्यक पूँजी लगाने में बिल्कुल भी संकोच नहीं करते थे।

7. **रजनी पामदत्त**–यदि प्लासी की लूट का माल और भारत की सम्पदा इंग्लैण्ड की ओर उन्मुख न हुई होती– तो मेनचेस्टर, आर्कराइट, कार्टराइट, क्रोम्पटन–जैसे आविष्कारक और उनके आविष्कार समुद्र में फेंक दिए जाते।

8. **एल.सी.ए.नोल्स**–यदि फ्रांस में राज्य क्रांति ने फ्रांस के औद्योगिक ओर आर्थिक जीवन को अस्त–व्यस्त नहीं कर दिया होता, तो इंग्लैण्ड के बजाय फ्रांस ही औद्योगिक क्रांति का प्रणेता होता।

9. **नोबेल्स**– क्रान्ति का परिणाम था– नई जनता, नये वर्ग, नई नीतियाँ, नयी समस्याएँ और नये साम्रज्य।

10. **सिडनी बेव**–औद्योगिक क्रान्ति ने मजदूरों को अपने ही देश में एक भूमिहीन परदेशी बना दिया था।

3.16. संदर्भ ग्रंथ

1.नोल्स, एल.सी.ए.–द इण्डस्ट्रियल एण्ड कॉमर्शियल रिवोल्यूशन इन ग्रेट ब्रिटेन डयूरिंग द नाइनटिंथ सेन्चुरी

2.वाट्स,जी.टी.–लैण्डमार्क इन इण्डस्ट्रियल हिस्ट्री

3.पोलार्ड,सिडनी–पीसफुल कान्क्वेस्टःद इण्डस्ट्रियलाइजेश्न ऑफ यूरोप,1760–1970

3.17. सहायक और उपयोगी पाठ्य पुस्तकें

1.वर्मा, लाल बहादुर–यूरोप का इतिहास,भाग–2, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली,1998

2.गुप्ता, पार्थसारथी (सम्पादक)–यूरोप का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली,1987

3.हेजन, सी.डी.– आधुनिक यूरोप का इतिहास (अनुवादक–सत्यनारायण दुबे)

4.केटलबी, सी.डी.एम –हिस्ट्री ऑफ मार्डन टाइम्स

5.ग्रान्ट एण्ड टेम्परले–उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी के यूरोप का इतिहास (अनु0–बाबूराम गुप्त)।

6. जैन और माथुर – विश्व का इतिहास(1500–1950), जैन प्रकाशन मन्दिर,जयपुर, 1999

3.18. निबन्धात्मक प्रश्न

1. कृषि क्रान्ति से आप क्या समझते हैं? इसके उदय के कारणों का वर्णन कीजिए।
2. कृषि क्रान्ति के दौरान हुए प्रमुख परिवर्तनों और नवीन प्रयोगो पर प्रकाश डालिए।
3. औद्योगिक क्रान्ति से क्या तात्पर्य है? इसके उदय के कारणों पर प्रकाश डालिए।
4. औद्योगिक क्रान्ति इंग्लैण्ड से क्यों प्रारम्भ हुयी? विस्तार से बताइये।
5. औद्योगिक क्रान्ति के यूरोप में प्रसार का वर्णन करिये।
6. औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम और प्रभाव को विस्तार से बताइये।

इकाई एक : इटली और जर्मनी का एकीकरण

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 इटली का एकीकरण

1.2.1 एकीकरण के पूर्व इटली की स्थिति

1.2.2 इटली के एकीकरण में फ्रांसीसी क्रान्ति एवं नेपोलियन की भूमिका

1.2.3 वियना व्यवस्था (1815) के उपरान्त इटली

1.3 इटली के एकीकरण के मार्ग में बाधाएँ

1.4 एकीकरण का विकास क्रम

1.4.1 कार्बोनरी

1.4.2 जोसेफ मात्सिनी (मैजिनी) एवं तरूण इटली (यंग इटली)

1.4.3 1848 की फ्रांसीसी क्रान्ति और इटली

1.4.4 विक्टर इमेन्युल द्वितीय (1820—1870 ई0)

1.4.5 काउण्ट कावूर (1810—1861 ई0)

1.4.5.1 कावूर की गृह—नीति

1.4.5.2 कावूर की विदेश—नीति

1.4.5.3 क्रीमिया का युद्ध

1.4.5.4 फ्रांसीसी शासक नेपोलियन तृतीय का सहयोग एवं लोम्बार्डी की प्राप्ति

1.5 मध्य इटली का विलय

1.6 नेपल्स और सिसली का विलय

1.7 गैरी बाल्डी (1807—1882)

1.7.1 सिसली में विद्रोह

1.7.2 नेपल्स पर अधिकार

1.7.3 गैरीबाल्डी की महानता

1.8 कावूर का मूल्यॉकन

1.9 इटली के एकीकरण का अन्तिम चरण

1.9.1 वेनेशिया की प्राप्ति

1.9.2 रोम की प्राप्ति

1.10 जर्मनी का एकीकरण

1.11. एकीकरण से पूर्व की जर्मनी

1.12 आधुनिक जर्मनी का जन्मदाता नेपोलियन

1.13 वियना कांग्रेस (1815 ई0) और जर्मनी की राष्ट्रीय भावना

1.14 जर्मनी के एकीकरण में बाधक तत्व

1.15 जर्मनी के एकीकरण में सहायक तत्वों का योगदान

1.15.1 बौद्धिक चिन्तन का योगदान

1.15.2 जालवरीन

1.15.3 बुर्जुआवर्ग का उदय

1.15.4 रेल लाइनों का निर्माण

1.16 1830 ई0 एवं 1848 ई0 की फ्रांसीसी क्रान्ति व जर्मनी के एकीकरण के प्रयास

1.17 विलियम प्रथम एवं उसके सैनिक सुधार

1.18 बिस्मार्क का उदय और जर्मनी का एकीकरण

1.18.1 प्रथम चरणः डेनमार्क से युद्ध (1864 ई0) एवं गेस्टाइन समझौता

1.18.2 द्वितीय चरणः आस्ट्रिया–प्रशा युद्ध (1866 ई0) एवं प्राग की सन्धि

1.18.3 तृतीय चरणः फ्रांस–प्रशा युद्ध (1870 ई0) एवं फ्रेंकफर्ट की सन्धि

1.19 जर्मन साम्राज्य की घोषणा

1.20 टिप्पणी

1.21 सारांश

1.22 शब्दावली **(Glossary)**

1.23 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.24 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं इस खण्ड के लिए उपयोगी पाठ्य–पुस्तकेंः–

1.24 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

राष्ट्रीयता की उत्कृष्ट भावना से ओत–प्रोत होकर उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप के दो महान देशों इटली एवं जर्मनी में राष्ट्र निर्माण का अभियान प्रारम्भ हुआ। पुनर्जागरण के बाद यूरोप में जब राष्ट्रीय राजतन्त्र की प्रतिष्ठा हुई और राष्ट्रीय भाषा तथा साहित्य का विकास हुआ तो राष्ट्र और देश पर्यायवाची बनने लगे। फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने राष्ट्रवाद को न केवल सफल बल्कि गरिमामय भी बनाया। नेपोलियन ने इसके सहारे शक्ति अर्जित की और सम्पूर्ण यूरोप को विजित करने का प्रयास करने लगा, प्रतिक्रिया स्वरूप यूरोपीय देशों में राष्ट्रीय चेतना सबल होने लगी। जिन क्षेत्रों में राष्ट्रीय चेतना का उस काल में प्रसार हुआ उनमें इटली और जर्मनी प्रमुख थे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई में आप मध्य यूरोप के दो देशों इटली एवं जर्मनी के एकीकरण के विषय में अध्ययन करेगें।

- अध्ययन की सुविधा के लिए इस इकाई को दो खण्डों में विभाजित किया गया है–
- (खण्ड–अ) में आप इटली के एकीकरण के विषय में तथा खण्ड–ब में जर्मनी के एकीकरण के बारें में पढ़ेगे।
- इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–
- इन दोनों राष्ट्रों के एकीकरण के पूर्व की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों की जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- उन ऐतिहासिक तत्वों के विषय से आप अवगत् हो पायेंगे, जिनके कारण इन दोनों राष्ट्रों का एकीकरण सम्भव हो सका।
- इटली के एकीकरण में मेजिनी, कावूर तथा गैरीबाल्डी के योगदान की आप व्याख्या कर पायेगे।
- जर्मनी के एकीकरण में बिस्मार्क की भूमिका का वृहद अध्ययन कर पायेगें।
- आप इटली और जर्मनी के एकीकरण के विभिन्न चरणों का वर्णन कर पायेगें।

1.2 इटली का एकीकरण

इटली का एकीकरण उन्नीसवीं शताब्दी की महान राजनीतिक परिघटना थी। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इटली एक प्रतिष्ठित राष्ट्र के रूप में नहीं, वरन् सांस्कृतिक एकता की धरोहर के रूप में विख्यात थी। इटली के एकीकरण को इटालवी भाषा में 'इल रिसोर जिमेंतो' कहते है। 19 वीं सदी में इटली में एक राजनैतिक और सामाजिक अभियान की शुरूआत हुई, जिसने इटली राज्य के विभिन्न प्रायद्वीपों को संगठित करके एक इटालवीं राष्ट्र बना दिया। इसे इटली का एकीकरण कहा गया। इटली का एकीकरण सन् 1815 ई0 में इटली पर नेपोलियन बोनापार्ट के राज्य के अंत पर होने वाले वियेना कांग्रेस के साथ आरम्भ हुआ और 1870 में राजा वित्तोरियो इमानुएले की सेवाओं द्वारा रोम पर कब्जा होने तक चला।

1.2.1 एकीकरण से पूर्व इटली की स्थिति

आस्ट्रिया का चांसलर मेटरनिख इटली को 'एक भौगोलिक अभिव्यक्ति' कहा करता था। वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी में इटली का कोई देश नहीं था। उस समय इटली 13 छोटे–छोटे एकतन्त्रात्मक लघु स्वायत्त राज्यों में विभक्त था। इटली के उत्तर पश्चिम में सार्डीनिया–पीडमेन्ट का राज्य था, जहाॅ सेवाय वंश शासन कर रहा था। उसके उत्तर–पश्चिम में लोम्बार्डी और वेनीशिया के प्रदेश थे, जिन पर आस्ट्रिया का आधिपत्य था। परमा, मेडेना और टस्कनी यद्यपि स्वतन्त्र राज्य थे, तथापि उन पर आस्ट्रिया का प्रभाव था। मध्य में पोप का अपना स्वतन्त्र राज्य था। दक्षिण मे नेपल्स और सिसली थे, जहाँ बूर्बो वंश का शासन था।

उत्तर में आल्पस पर्वत और तीन तरफ से सागरों से घिरे यूरोप के मध्य दक्षिण में स्थित यह प्रायद्वीप पूर्णतः सुरक्षित था। यहाँ सास्कृतिक एकता मौजूद थी जो इटली को एक जीवन्त नाम बनाये रखती थी। इटली का समृद्ध और गरिमामय प्राचीन इतिहास था। सम्पूर्ण पश्चिमी यूरोप के साहित्य और धर्म की भाषा 'लातिन' इटली की भाषा थी। इटली में धर्म के स्तर पर भी एकता थी। पोप का निवास रोम में होने के कारण सम्पूर्ण इटली कट्टर रूप से कैथोलिक धर्म का अनुयायी हो गया था। इस प्रकार इटली में हर तरह से सुसंगठित इकाई के तत्व मौजूद थे। इन्हीं तत्वों से इटली में संगठन और एकीकरण के बीज प्रस्फुटित हुए।

1.2.2 इटली के एकीकरण में फ्रांसीसी क्रान्ति एवं नेपोलियन की भूमिका

इटली के राष्ट्र–निर्माण में फ्रांसीसी–क्रान्ति (1789 ई0) का उल्लेखनीय महत्व है। सामन्तवाद का पतन एवं जनतांत्रिक सिद्धान्तों में साक्षात्कार इसी क्रान्ति की देन कही जाती है। कानून की दृष्टि में सबको समान अधिकार, धर्म के विषय में सभी को स्वतंत्रता, प्रेस की स्वाधीनता और स्वायत्त शासन प्रणाली आदि फ्रांसीसी क्रान्ति के वसीयत थे, जिनसे राष्ट्रीय शासन स्थापित करने में इटली को प्रत्यक्ष लाभ हुए। सामन्तवादी व्यवस्था की समाप्ति तथा आन्तरिक व्यापार पर प्रतिबन्धों का अन्त इटलीवासियों को फ्रांस की सबसे बड़ी देन थी।

नेपोलियन ने इटलीवासियों को अपने गौरवपूर्ण अतीत का पुनः स्मरण करवाया। किन्तु जब स्वयं नेपोलियन ने ही इटली का उपनिवेश के रूप में प्रयोग करना शुरू किया, तो इटलीवासियों की राष्ट्रवादी भावनाएं भड़क उठी। इन्हीं कारणों की वजह से यह कहा जाता है कि नेपोलियन ही इटली में राष्ट्रवाद का जन्मदाता था।

1.2.3 वियना व्यवस्था (1815) के उपरान्त इटली

1815 के वियना–व्यवस्था के जन–इच्छा और राष्ट्रीयता की भावना की उपेक्षा कर इटली के विभिन्न राज्यों का पुनरूद्धार किया गया जिसमें इटली की जो नवीन व्यवस्था का प्रारूप तैयार किया गया वह इस प्रकार था–

1. उत्तरी–इटली में लोम्बार्डी और वेनेशिया के प्रान्त आस्ट्रिया के अधीन कर दिए गए।
2. मध्य–इटली में पोप के शासन को बनाये रखा गया।
3. दक्षिण–इटली में नेपल्स और सिसली के राज्य सम्मिलित थे, जहाँ बूर्बो वंश का शासन कायम रहा।

इटली की राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण से वियना कांग्रेस की यह व्यवस्था अनुकूल नहीं थी, इसलिए प्रबुद्ध लोगों ने सम्पूर्ण इटली को एक राष्ट्र का दर्जा प्रदान करने हेतु अथक प्रयास आरम्भ किया। लेकिन इटली के राष्ट्र–निर्माण में अनेक बाधाऐं थीं, जिन्हें दूर करना अति आवश्यक था।

1.3 इटली के एकीकरण के मार्ग में बाधाएँ

इटली के एकीकरण के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा यह थी कि इटली की जनता गरीब, अशिक्षित और पिछड़ी हुई थी। उसे एकीकरण से कुछ लेना–देना नहीं था। उसकी मूल समस्या रोजी–रोटी की थी। प्रबद्ध लोग और मध्यम वर्ग के लोग, जो एकीकरण में देश का और अपना लाभ देख रहे थे, बिना जनता को साथ लिए कुछ कर नहीं सकते थे।

विभिन्न राज्यों का शासक वर्ग एकीकरण का विरोध था क्योंकि उसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता समाप्त हो जातीं इटली के एकीकरण में सबसे बड़ी बाधा आस्ट्रिया का चांसलर मेटरनिख था क्योंकि इटली में हुए परिवर्तन की लहर निश्चित ही आस्ट्रिया भी पहुँचती। पोप भी एकीकरण का विरोधी था क्योंकि इटली के शासक के रूप में सारे इटली की राजनीतिक सत्ता सिमट जाती और पोप का प्रतिद्वन्दी पैदा हो जाता। उसमें धार्मिक सत्ता का भय बनाए रखना था। इस कारण यूरोप के अन्य कैथोलिक देश भी पोप के समर्थक और इटली में परिवर्तन के विरूद्ध

थे। मेटरनिख के नेतृत्व में इन सभा शासकों ने हर तरह की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति पर प्रतिबन्ध लगा रखा था, लेकिन बावजूद इसके धीरे–धीरे परिवर्तन हो रहा था।

1.4 एकीकरण का विकास क्रम

इटली के एकीकरण में विभिन्न बाधाओं के बावजूद वहाँ के कतिपय देश भक्तों और लोकतंत्र के समर्थकों ने मिलकर स्वतत्रंता और उदारवाद की प्राप्ति के लिए संघर्ष करने का निर्णय किया, जिसमें कार्बोनरी नामक गुप्त संस्था प्रमुख थी।

1.4.1 कार्बोनरी

इटली के कोयला झोंकने वालों की इस गुप्त संस्था की स्थापना 1810 ई0 में नेपल्स में हुई थी। जिसके दो मुख्य उद्देश्य थे– विदेशियों को इटली से बाहर निकालना और वैधानिक स्वंतत्रता की स्थापना करना। इस संस्था के तिरंगे– काला, लाल और नीले रंग वाले झण्डे ने शीघ्र ही लोकप्रियता प्राप्त कर ली और लोग इसकी पूजा करने लगे।

1.4.2 जोसेफ मात्सिनी (मैजिनी) एवं तरूण इटली (यंग–इटली)

जोसेफ मैजिनी इटालवीं राष्ट्रवाद का मसीहा था। वह महान व्यक्ति दार्शनिक चिन्तक, दूरदर्शी राजनेता तथा कर्मठ कार्यकर्त्ता था। मैजिनी ने राष्ट्रवाद में कभी संकीर्णता नहीं आने दी। एकीकृत गणतंत्र के रूप में इटली के उदय का सपना देखनें वाले इटालवीं छात्रों एवं बुद्धिजीवियों के लिए वह एक अक्षय प्रेरणास्रोत था। मेजिनी का जन्म सार्डेनिया स्थित जिनोवा के नगर में हुआ था। तरूणावस्था में वह गुप्त क्रांन्तिकारी दलों के कार्यकलापों में सक्रिय भाग लिया करता था। 1821 ई0 में उसे नेपुल्स के विद्रोह का दमन किये जाने पर असंख्य विस्थापितों को उत्तर की ओर जाते देखकर इटली की दुरावस्था की वास्तविक जानकारी हुई। देश की इस दुर्दशा के प्रतीक के रूप में मेजिनी ने काले कपड़े पहनना शुरू किया, जीवन–भर वह काले वस्त्र धारण करता रहा। 1830–31 के विद्रोह में उसने सक्रिय भाग लिया तथा छह महीने कारावास में भी बिताये। रिहा करते समय उस पर यह शर्त लगा दी गयी कि वह जिनोवा में कभी प्रवेश नहीं करेगा। मेजिनी ने इसके बदले स्वदेश छोड़ने का संकल्प किया। तदुपरान्त अपने जीवन के शेष चालीस वर्ष उसने स्विट्जरलैंड, ब्रिटेन और फ्रांस में बिताये। विदेशों मे रहते हुए भी मेजिनी बराबर अपने प्रेरणा–भरे लेखों, पुस्तिकाओं तथा इश्तिहारों से इटली के नौजवानों में स्वतन्त्रता का बिगुल फूँकता रहा। वहीं उसने 'युवा इटली' की स्थापना की, जो इटालवी स्वतन्त्रताकर्मियों की पार्टी थी। इस पार्टी में चालीस वर्ष या उससे कम के नौजवान भर्ती किये जाते थे। इटालवी प्रायद्वीप से विदेशी आधिपत्य समाप्त करना तथा संयुक्त गणतन्त्र स्थापित करना इनका लक्ष्य था। प्रचारक के रूप में मेजिनी बेमिसाल था, किन्तु अपने देश में विद्रोह कराने में वह सफल नहीं हो सका।

मेजिनी को जन–संप्रभुता के सिद्धान्त में गहरी आस्था थी। उसका ख्याल था कि फ्रांसीसी क्रान्ति के दरम्यान मानव के अधिकारों पर तो अत्यधिक जोर दिया गया था, किन्तु मानव के कर्तव्यों पर बहुत कम। उसका दृढ़ विश्वास था कि आदमी तभी सुखी रह सकता है जब वह सामूहिक उद्योग में लगा रहे। 'ड्यूटीज ऑफ मैन' नामक पुस्तक में उसने लिखा था कि आदमी के सामने सबसे महान उद्यम, जिसके लिए वह अपना जीवन उत्सर्ग कर सकता है, राष्ट्र की सेवा है।

मेजिनी की दृष्टि राष्ट्र के दायरे तक ही सीमित नहीं थी, राष्ट्र के आगे भी जाती थी। उसके अनुसार राष्ट्र के प्रति निष्ठा मानवता के प्रति उच्चतर कर्त्तव्यों का एक अंश थी। मेजिनी के शब्दों में, "पहले तुम आदमी हो, उसके बाद किसी देश के नागरिक या अन्य कुछ।" उसकी दृष्टि में राष्ट्र मानवता के प्रति व्यक्ति का अपना कर्त्तव्य पूरा

करने का एक साधन था। मेजिनी ने 1834 ई0 में 'यंग यूरोप' की स्थापना की थी। यह अन्य राष्ट्रों के प्रति उसके अनुराग का एक परिणाम था। जर्मनी, पोलैंड तथा स्विट्जरलैंड में राष्ट्रवादी आंदोलन का संचालन करने हेतु राष्ट्रीय समिति का गठन करना इसका उद्देश्य था। मेजिनी की धारणा थी कि खंडित राष्ट्रों के एकीकरण अथवा अन्य राष्ट्रों के आधिपत्य में पड़े हुए लोगों की मुक्ति के लिए काम करना उस मंगल प्रभाव को समीप लाना था जब अपनी राष्ट्रीय आकांक्षाएँ हासिल करने के बाद प्रत्येक राष्ट्र एकजुट होकर समग्र मानवता के लिए काम करेगा। इन्हीं कारणो से मेजिनी को उन आदर्शों का मसीहा माना जाता है, जिन्हें प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त अमेरिकी राष्ट्रपति विल्सन ने वर्साय सन्धि में जोड़ने की पहल की थी। ये आदर्श थे–राष्ट्रीय आत्मनिर्णय तथा हर राष्ट्र को एक मंच पर लाना।

1.4.3 1848 की फ्रांसीसी क्रान्ति और इटली

फ्रांस में 1848 की क्रान्ति का विस्फोट होने पर उसकी सफलता का समाचार सुनकर इटली की जनता का उत्साह बढ़ गया। आस्ट्रिया के चान्सलर मेटरनिख के पतन की घटना के विषय में जब इटलीवासियों को ज्ञात हुआ तो उनके हर्ष एवं उत्साह की सीमा न रही । लम्बार्डी, वेनेशिया, नेपिल्स, टस्कनी, पीडमॉण्ट एवं पोप के राज्य की जनता ने विद्रोह कर दिया। सभी राज्यों के शासकों ने निरंकुशता का मार्ग छोड़कर उदार संविधानों को लागू कर दिया।

इटली की जनता अपने राज्यों के शासकों से माँग की कि आस्ट्रिया को सदैव के लिए इटली से बाहर निकालने के लिए वे संगठित होकर संघर्ष करें। अन्ततः पीडमॉण्ट–सार्डीनिया के राजा चार्ल्स ऐल्बर्ट के नेतृत्व में इटली के राज्यों ने आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। प्रारम्भ में लगभग सभी राज्यों के शासकों ने चार्ल्स को पूर्ण सहयोग प्रदान किया जिसके फलस्वरूप आस्ट्रिया की सेना को अनेक स्थानों पर पराजित होना पड़ा। किन्तु शीघ्र ही शासकों की एकता भंग हो गयी। सर्वप्रथम पोप ने अपनी सेना को रणक्षेत्र से वापस बुलाने का आदेश दिया। तत्पश्चात् नेपिल्स, टस्कनी व अन्य राज्यों ने भी पोप के मार्ग का अनुसरण किया। फलस्वरूप अकेला चार्ल्स ऐल्बर्ट आस्ट्रिया के विरूद्ध अधिक समय तक प्रतिरोध नहीं कर सका और 23 मार्च, 1849 को नोवारा के युद्ध में आस्ट्रिया द्वारा बुरी तरह पराजित हुआ। उसे इटली के राज्यों के शासकों के विश्वासघातपूर्ण व्यवहार से इतना अधिक दुःख हुआ कि उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया, तथा शासन की बागडोर अपने पुत्र विक्टर इमेन्युअल द्वितीय को सौंप दी।

1.4.4 विक्टर इमेन्युल द्वितीय (1820–1870 ई0)

विक्टर इमेन्युल द्वितीय एक वीर सैनिक, सच्चा देशभक्त और ईमानदार शासक था। वह यूरोप के राजनीतिक वातावरण से पूर्णतः परिचित नहीं था। तथापि वह एक समझदार राजनीतिज्ञ था। पीडमोन्ट की जनता उसे ईमानदार राजा कहा करती थी। मार्च 1849 ई0 में जब विक्टर पीडमोन्ट–सार्डीनिया का शासक बना, उस समय सार्डीनिया की सेना आस्ट्रिया से परास्त हो चुकी थी। अतः उसे आस्ट्रिया से सन्धि करनी पड़ी। विक्टर इमेन्युल को यह विश्वास था कि मध्य मार्ग नीति अपनाकर वह सार्डीनिया के नेतृत्व में वह इटली का एकीकरण कर सकता है। उसने इस हेतु प्रयत्न भी प्रारम्भ कर दिये थे। वह अपने गुणों के कारण जनता में लोकप्रिय हो गया। गैराबाल्डी जैसे गणतंत्रवादी भी उसकी प्रशंसा करते थे। इटली के सभी निर्वासित देशभक्त पीडमोन्ट की ओर आकर्षित होने लगे। विक्टर इमेन्युल के भाग्य से 1850 ई0 में काउन्ट कावूर जैसा योग्य मंत्री उसे मिला, जिसकी गणना उन्नीसवीं शताब्दीं के महानतम् राजनीतिज्ञों में की जाती है।

1.4.5 काउण्ट कावूर (1810–1861 ई0)

काउण्ट केमिलो–डी–कावूर का जन्म 1810 ई0 में ट्यूरीन के एक कुलीन परिवार में हुआ था। सैनिक शिक्षा प्राप्त कर वह सेना में इंजीनियर के रूप में भर्ती हुआ। किन्तु अपने उदार विचारों के कारण उसे सेना से 1841 ई0 में त्यागपत्र देना पड़ां 1841–1846 ई0 तक वह अपनी जमींदारी का कार्य करता रहा, इसी समय वह अपनी उदासी दूर करने के लिए कई बार फ्रांस और इग्लैण्ड की यात्रा पर गया। इग्लैण्ड में रहकर उसने संसदीय प्रणाली को नजदीक से देखा और उससे प्रेरित होकर अपने देश में भी उसी प्रकार की शासन प्रणाली स्थापित करने का प्रयत्न करने लगा। 1847 ई0 कावूर ने 'इल रिसार्जीमेन्टो' नामक समाचार पत्र का प्रकाशन शुरू किया था। इस पत्र के माध्यम से इटली के एकीकरण की बात कहीं जाने लगी। 1848 ई0 में वह सार्डीनिया–पीडमोन्ट की प्रथम संसद का सदस्य चुना गया। उसकी योग्यता के कारण उसे 1850 ई0 में वित्त एवं उद्योग मंत्री बना दिया गया। 1852 ई0 में डी. एज्रेग्लिओ के मंत्रिमण्डल के त्यागपत्र देने पर वह प्रधानमंत्री बना।

कावूर के प्रधानमंत्री नियुक्त होते ही इटली के इतिहास में एक नवीन अध्याय की शुंरूआत हुई। अपने इस काल में उसने एक कूटनीतिज्ञ एवं अद्वितीय राजनीतिज्ञ होने का परिचय दिया। मेजिनी और गैरीबाल्डी के समान कावूर भी सच्चा देशभक्त था और इटली को स्वतंत्र कर उसका एकीकरण करना चाहता था। वह चाहता था कि– (i) इटली का एकीकरण सार्डीनिया के नेतृत्व में ही सम्भव हो सकता है। (ii) एकीकरण के लिए यह आवश्यक है कि इटली के राज्यों को आस्ट्रिया से मुक्त कराया जाय और (iii) आस्ट्रिया से मुक्ति प्राप्त करने के लिए विदेशी सहायता आवश्यक है। यह कावूर के महान मस्तिष्क का कार्य था, जिसने मेजिनी के प्रेरणा को एक प्रबल कूटनीतिज्ञ शक्ति के रूप में गतिमान बनाया और गैरीबाल्डी की तलवार का एक राष्ट्रीय अस्त्र के रूप में प्रयोग किया। वास्तव में कावूर के बिना मैजिनी का आदर्शवाद और गैरीबाल्डी की वीरता निरर्थक होती। कावूर ने इन दोनों के विचारों में सामंजस्य स्थापित किया।

1.4.5.1 कावूर की गृह–नीति

कावूर ने राज्य की आर्थिक उन्नति के लिए विशेष प्रयत्न किए। उसने व्यापार वाणिज्य के विकास के लिए मुक्त व्यापार नीति अपनाकर विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन दिया। यातायात की सुविधाओं का विस्तार किया और बैंको की स्थापना की। सहकारी समितियॉ खोली तथा कृषि की उन्नति के लिए विभिन्न संस्थाएॅ स्थापित की। कावूर ने आर्थिक सुधारों की दिशा में एक बड़ा कदम उठाते हुए गिरिजाघरों की भूमि पर कर लगा दिया। कैथोलिक लोग इटली की एकता में बाधक थे। अतः चर्च के अनेक विशेषाधिकार छीन लिये गये। सेना में सुधार करते हुए उसने जनरल ला–मारमोरा को सेनाध्यक्ष नियुक्त किया। 90000 सैनिकों की उसने एक सुसज्जित सेना तैयार की। राज्य की सीमा पर दुर्ग बनवायें। नौसेना में भी सुधार कार्य किया। कावूर अपनी गृह–नीति में बहुत सफल हुआ। पीडमोन्ट जैसे छोटे एवं गरीब राज्य को उसने सुदृढ़, समृद्ध एवं एक आदर्श राज्य में परिणत कर दिया।

1.4.5.2 कावूर की विदेश–नीति

इटली के एकीकरण के लिये आस्ट्रिया के प्रभुत्व से मुक्त होना तथा पीडमोन्ट के शासक की अध्यक्षता में उसे संघटित करना कावूर की विदेश नीति का उद्देश्य था। बिस्मार्क की भॉति वह यथार्थवादी राजनीति में विश्वास रखता था। उसे युद्ध और सैन्यवाद की नीति में विश्वास था। उसे यह ज्ञान था कि इग्लैण्ड और फ्रांस उसके सहायक हो सकते थे। इग्लैंण्ड में इटली के प्रति सहानुभूति अवश्य थी किन्तु उससे सक्रिय मदद की आशा नहीं थी। दूसरी ओर फ्रांस का शासक नेपोलियन तृतीय महत्वाकांक्षी, साहसी और राष्ट्रीयता का समर्थक था इसलिए कावूर ने नेपोलियन तृतीय की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया।

1.4.5.3 क्रीमिया का युद्ध (1854–1857 ई0)

इटली के राज्यों से आस्ट्रिया का आधिपत्य समाप्त करने के लिए तथा इटली की समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उठाने के लिए कावूर यूरोप के किसी बड़े राष्ट्र का सहयोग प्राप्त करना चाहता था। वह ऐसे अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था जब इटली यूरोप के अन्य देशों को किसी प्रकार का सहयोग प्रदान कर सके। सौभाग्यवश क्रीमिया युद्ध में उसे यह अवसर प्राप्त हो गया। यह युद्ध मुख्य रूप से टर्की तथा रूस के मध्य लड़ा गया था। किन्तु इग्लैण्ड व फ्रांस ने अपने स्वार्थो के कारण टर्की को सैनिक सहयोग प्रदान किया था। पीडमोन्ट का इस युद्ध में कोई स्वार्थ नहीं था किन्तु दूरदर्शी नेता कावूर ने पीडमोन्ट की सेना को टर्की, इग्लैंण्ड व फ्रांस के समर्थन में क्रीमिया युद्ध में भाग लेने के लिए भेज दिया। क्रीमिया के युद्ध में इटली के भाग्य का निर्णय हुआ। 1856 ई0 की पेरिस सन्धि के समय कावूर को भी आमंत्रित किया गया था। वहॉ पर उसने इटली की समस्याओं को यूरोप के बड़े देशों के समक्ष प्रस्तुत किया तथा इन समस्याओं के लिए आस्ट्रिया को उत्तरदायी ठहराया। यह कावूर की महानतम् कूटनीतिज्ञ सफलता थी। इससे कावूर की व्यक्तिगत प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई और इग्लैण्ड तथा फ्रांस ने इटली के एकीकरण अभियान को मान्यता प्रदान करके उसे अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का स्वरूप प्रदान कर दिया। क्रीमिया का युद्ध कावूर के लिए देवप्रदत्त सुअवसर साबित हुआ। इसलिए कहा जाता है कि "क्रीमिया के कीचड़ में इटली का जन्म हुआ"।

1.4.5.4 फ्रांसीसी शासक नेपोलियन तृतीय का सहयोग एवं लोम्बार्डी की प्राप्ति

फ्रांसासी सहायता मिलने लगी, किन्तु 14 जनवरी 1858 में फेलिस आर्सिनी द्वारा नेपोलियन तृतीय की हत्या के प्रयास से फ्रांस–पीडमोन्ट–तनाव उत्पन्न हो गया। किन्तु कैदी आर्सिनी द्वारा इटली की स्वतंत्रता की माँग किये जाने पर फ्रांसीसी शासक प्रभावित हुआ। इसके बाद इस स्थिति का लाभ उठाते हुए कावूर ने जुलाई, 1858 में नेपोलियन के साथ प्लोम्बियर्स–समझौता कर लिया।

प्लोम्बियर्स का समझौताः– इस समझौते के अनुसार निम्नांकित तथ्य स्वीकार किये गये।

(i) नेपोलियन ने पीडमोन्ट–आस्ट्रिया के सम्भावित युद्ध में 2 लाख सैनिक भेजने का वादा किया।

(ii) आस्ट्रिया के निष्कासन पर लोम्बार्डी–वेनेशिया आदि का पीडमोन्ट में विलय की योजना बनायी गयी।

(iii) कावूर द्वारा फ्रांस को सेवाय व नीस देने का आश्वासन तथा पीडमोन्ट की राजकुमारी का जेरोम बोनापार्ट के साथ विवाह।

(iv) अम्ब्रिया–टस्कनी का इटली में विलय तथा उक्त भाग जेरोम को देने की बात।

(v) नेपल्स, सिसली व पोप के राज्य की पूर्ववत् व्यवस्था।

आस्ट्रिया–सार्डीनिया युद्ध

प्लोम्बियर्स समझौते के अनुसार कावूर के पास राज्य विभाजन के अलावा कोई विकल्प नहीं था, क्योंकि इसी शर्त पर नेपोलियन मदद देने के लिए तैयार था। सीमा पर पीडमोन्ट की सेना पहुँच गई, जो आस्ट्रिया की चेतावनी के बाद भी कायम रही। आस्ट्रिया स्थित ब्रिटिश राजदूत लार्ड काउले के प्रयास के बावजूद 29 अप्रैल, 1859 में आस्ट्रिया की सेना ने सार्डीनिया में प्रवेश किया और 03 मई को नेपोलियन ने युद्ध की घोषणा कर दी। 1859 ई0

के मई में मैटेबलो–पेलेस्ट्रो में 4 जून को मेगेन्टा और मिलान में 24 जून को सालफरीनों में आस्ट्रिया की हार हुई। इस अन्तराल में नेपोलियन ने अचानक युद्ध विराम घोषणा कर दी और 11 जुलाई 1159 ई0 में आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस जोसेफ से विलाफ्रेंका की सन्धि कर ली।

विलाफ्रेंका की सन्धि (11 जुलाई 1159 ई0)

इस सन्धि के अनुसार विराम की निम्नलिखित शर्ते तय कर ली गई–

(i) लोम्बार्डी सार्डीनिया को मिला, किन्तु वेनेशिया आस्ट्रिया के पास रहा।

(ii) परमा, मोडेना व टस्कनी में पूर्ववर्ती शासक पुनर्स्थापित हुए।

(iii) वेनेशिया सहित पोप के नेतृत्व में इटली संघ निर्माण की योजना बनी।

इस सन्धि से स्तब्ध हुआ असन्तुष्ट कावूर ने एमेन्युल द्वितीय को युद्ध जारी रखने की सलाह दी, जिसकी अस्वीकृति पर कावूर ने त्याग–पत्र दे दिया। विक्टर ने आस्ट्रिया फ्रांस के विलाफ्रेंका की पूरक सन्धि ज्यूरिख संधि (10 नवम्बर 1859 ई0) पर हस्ताक्षर किए। इससे इटली को लोम्बार्डी मिला और वेनेशिया पर इटली का नैतिक अधिकार स्थापित होने के बाद एकीकरण का प्रथम चरण समाप्त हुआ।

1.5 मध्य इटली का विलय

नेशनल सोसाइटी की सहायता से मध्य इटली में राष्ट्रीयता का जोर पकड़ने पर परमा, मोडेना, टस्कनी, वोलोग्ना व रोमाग्ना में देशभक्तों ने अस्थायी सरकार बना ली। इन्होंने प्रस्ताव द्वारा सार्डीनिया में सम्मिलित होना भी स्वीकारा। ब्रिटिश प्रधानमंत्री पामर्स्टन व विदेश मंत्री लॉर्ड जॉन रसेल के समर्थन पर भी विक्टर फ्रांस के भय से यह विलयन नहीं कर पा रहा था। इसी समय पुनः कावूर के प्रधानमंत्री बनते ही फ्रांस को सेवाय व नीस का प्रलोभन देकर उसका अहस्तक्षेप प्राप्त कर लिया, जिसकी आलोचना गैरीबाल्डी सहित कई लोगों ने की। 1860 ई0 में विलयन सम्बन्धी चुनाव हुए, जिसके परिणाम स्वरूप बहुमत से परमा, मोडेना एवं टस्कनी सार्डीनिया में मिल गये। इससे एकीकरण का द्वितीय चरण पूर्ण हुआ।

1.6 नेपल्स और सिसली का विलय

इन राजनीतिक घटनाओं का प्रभाव नेपल्स–सिसली पर पड़ा। 1860 ई0 में फ्रांसिस द्वितीय के कुछ सुधारों के बावजूद नेपल्स में विद्रोह बढ़ते गये। प्रसंगवश कावूर का कथन– "ये देश कूटनीति से नहीं क्रान्ति से मिलाये जा सकते हैं" पूर्णतः सही है, क्योंकि नेपल्स–सिसली के विद्रोह की सफलता का श्रेय संघर्षशीन सैनिक गेरीबाल्डी को जाता है।

1.7 गैरी बाल्डी (1807–1882)

ज्यूसप गैरीबाल्डी का जन्म 1807 ई0 में नीस नामक नगर में हुआ था। उसके पिता छोटे व्यापारिक जहाज के एक अधिकारी थे। उसके पिता चाहते थे कि गैराबाल्डी को उच्च शिक्षा मिले। लेकिन गैराबाल्डी का मन पढ़ने में नहीं लगा। वह केवल इतना पढ़ सका कि पुस्तकें पढ़ सकें और अपनी स्वतंत्र एवं साहसिक प्रवृत्ति को संतुष्ट कर सके। दस वर्षो तक गैराबाल्डी व्यापारिक जहाजों पर पर्यटन करता रहा। इस कारण उसे भूमध्यसागर का पर्याप्त अनुभव हो गया था। इन्हीं यात्राओं में उसका इटली के देशभक्तों और निवासियों से परिचय हुआ और उनके सम्पर्क से उसके मन में इटली की स्वतंत्रता की भावना जागृत हुई। वह मैजिनी के सम्पर्क में भी आया और उसके उच्चादर्शों से प्रभावित होकर युवा इटली का सदस्य बन गया। 1833 ई0 में उसने मैजिनी द्वारा संगठित नौ–सैनिक षड्यंत्र में भाग लिया। वह पकड़ा गया और उसे मृत्युदण्ड की सजा दी गयी लेकिन वह

किसी तरह भागकर दक्षिणी अमेरिका चला गया। चौदह वर्षों तक वह परीक्षण अमेरिका के क्रान्तिकारियों का सहयोग करता रहा। इस समय में उसने छापामार युद्ध का अच्छा प्रशिक्षण प्राप्त किया, जो आगे चलकर इटली के एकीकरण के युद्धों में सहायक हुआ। 1848 ई0 की क्रान्ति की सूचना पाकर वह पुनः इटली लौट आया और उसने चार्ल्स एल्बर्ट के नेतृत्व में आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध में भाग लिया। इसके पश्चात् वह रोम में मैजिनी के गणतंत्र की सहायता करने पहुँचा। उसने फ्रांसीसी सेनाओ के विरूद्ध रोम की रक्षा का अंत तक प्रयत्न किया किन्तु वह सफल न हो सका और किसी प्रकार बचकर टस्कनी पहुँचा। टस्कनी से वह पीडमोन्ट आया और वहाँ पुनः देश छोड़कर जाने की तैयारी करने लगा। जब वह जाने की तैयारी कर रहा था, तब उसके बहुत से अनुयायियों ने उनके साथ ही रहने की प्रबल इच्छा व्यक्त की। उस समय उसने अपने साथियों को सम्बोधित करते हुए कहा था– "मैं तुमको ने तो वेतन देता हूँ, न भोजन देता हूँ और न निवास के लिए मकान। मैं तुम्हें भूख, प्यास और जबरन आगे बढ़ना ही दे सकता हूँ। अतः जो केवल मुख से सहानुभूति प्रदर्शित करने वाले हैं, वे नहीं वरन् सच्चे ह्रदय से देश को प्यार करने वोल ही मेरा अनुगमन करें।" अन्ततः वह अपने कुछ साथियों के साथ पुनः अमेरिका चला गया। अमेरिका में वह छह वर्ष रहा और वहाँ से काफी धन कमाकर 1854 ई0 में पुनः इटली लौट आय। इटली आने पर उसने सार्डीनिया के निकट केप्रीरा नामक टापू खरीदा और वहाँ एक स्वतंत्र कृषक के रूप में रहने लगा। 1856 ई0 में उसका कावूर से प्रथम सम्पर्क हुआ। वह कावूर के विचारों से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने 1857 ई0 में सार्डीनिया के शासक को अपनी सेवाएँ अर्पित कर दीं। गैरीबाल्डी के जीवन की यह एक महत्वपूर्ण घटना थी क्योंकि गणतंत्रवादी अब वैधानिक राजतंत्रवाद का समर्थक बन गया था। उसी के कारण सार्डीनिया के गणतंत्रवादियों और राजतंत्रवादियों में समझौता हो सका। कैटबली ने लिखा है, "यदि यह समझौता नहीं होता और दोनों के मतभेद बने रहते, तो वे एक–दूसरे को नष्ट करने का प्रयत्न करते और इटली की एकता का प्रयत्न विफल हो जाता।"

1.7.1 सिसली में विद्रोह

सिसली की जनता बूर्बों राजाओं के निरकुंश शासन के विरूद्ध थी। यहाँ के देशभक्तों ने गैरीबाल्डी से प्रार्थना की कि वह उनका नेतृत्व करे। गैरीबाल्डी उनकी सहायता के लिए तैयार हो गया। किन्तु उसने यह शर्त रखी थी कि वे इटली और विक्टर इमेन्युअल के नाम पर विद्रोह करें। 4 अप्रैल 1860 ई0 को मसीना के निकट विद्रोह हो गया। यद्यपि आरम्भ मे विद्रोहियों को कुछ सफलता मिली लेकिन फ्रांसीसी सेनाओं ने इस उपद्रव को क्रूरता से दबा दिया। इस घटना के बाद गैरीबाल्डी सिसली की मदद को तैयार हो गया। 5 मई, 1860 ई0 को गैरीबाल्डी ने अपने प्रसिद्ध एक हजार 'लाल कुर्ती वाले स्वयंसेवकों' के साथ जेनेवा से सिसली की ओर प्रस्थान किया। 11 मई को गैरीबाल्डी सिसली द्वीप के पश्चिमी किनारे पर मार्सला पहुँच गया। वहाँ पर इंग्लैण्ड की सहायता से गैरीबाल्डी के सैनिक सिसली पर उतर गये। 15 मई को केल्टाफीमी नामक स्थान पर उसने नेपल्स की सेनाओं को परास्त किया। इसके बाद उसने पैलरमो पर अधिकार कर लिया। जून के अंत तक सिसली पर गैरीबाल्डी का अधिकार हो गया और उसने स्वयं को सिसली का अधिनायक घोषित किया। अपने अदम्य उत्साह, कौशल और राजा से असंतुष्ट जनता के अपूर्व सहयोग के कारण गैराबाल्डी को अभूतपूर्व सफलता मिली।

1.7.2 नेपल्स पर अधिकार

थोड़ी तैयारी के बाद गैरीबाल्डी ने अपनी सेना के साथ 19 अगस्त, 1860 ई0 को नेपल्स पर हमला कर दिया। पहले से ही उसकी स्थिति बेहतर थी क्योंकि उसे अपार–जनसमूह का समर्थन प्राप्त था और सफलता से उसकी सेना का मनोबल ऊँचा था। लेकिन विरोध में एक लाख सेना खड़ी थी, जिसमें कुछ असंतुष्ट सैनिक भी थे। असंतुष्ट सेना हमेशा नुकसान पहुँचाती रही है। ये सैनिक गैरीबाल्डी के साथ मिलने लगे। नेपोलियन तृतीय गैरीबाल्डी की प्रगति को रोकना चाहता था, लेकिन ब्रिटेन की सहानुभूति नीति के कारण गैरीबाल्डी को नेपल्स में

आगे बढ़ने का अवसर मिल गया। फ्रांसिस द्वितीय द्वारा गैरीबाल्डी को रोकने के प्रयत्न विफल हुए और उसके सेनापति विद्रोही हो गये। ऐसी स्थिति में शासक नेपल्स छोड़कर गेटा भाग गया। गैरीबाल्डी बिना किसी प्रतिरोध के आगे बढ़ता ही चला गया। लोगों ने उसका शानदार स्वागत किया और उसे दूसरा मसीहा माना। गैरीबाल्डी ने स्वयं को नेपल्स का अधिनायक घोषित किया और मैजिनी के समर्थक बर्तानी को राज्य का मंत्री नियुक्त किया। तदोपरान्त गैरीबाल्डी वेनेशिया और रोम की ओर बढ़ना चाहता था। इस अभियान में उसके समक्ष कुछ समस्याएं थीं–

(i) फ्रांस का प्रतिरोध हो सकता था व अर्न्तराष्ट्रीय संकट भी उत्पन्न होने की सम्भावना थी।
(ii) कावूर विजित प्रदेश में गैरीबाल्डी द्वारा गणतंत्र की स्थापना से संशकित था।
(iii) गैराबाल्डी द्वारा वेनेशिया पर सम्भावित आक्रमण से आस्ट्रिया के साथ भी तनाव बढ़ जाता, जिससे आस्ट्रिया और फ्रांस दो शत्रु हो जाते।

विक्टर इमेन्वुअल ने 7 नवम्बर 1860 ई0 को गैराबाल्डी के साथ नेपल्स में प्रवेश किया। इसके बाद नेपल्स के राजमहल में विक्टर इमेन्वुअल को संयुक्त इटली का शासक घोषित किया गया। दक्षिण के राज्यों के इटली में विलय के साथ ही इटली के एकीकरण का तृतीय चरण सम्पन्न हुआ।

18 फरवरी 1861 ई0 को ट्यूरिन में इटली की प्रथम संसद की बैठक हुई, जिसमें वेनेशिया और रोम को छोड़कर समस्त इटली के प्रतिनिधि थे। विक्टर इमेन्वुअल द्वितीय को इटली का विविधवत् शासक स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार सार्डीनिया का राज्य इटली का राज्य हो गया। संसद में कावूर का यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि रोम इटली की राजधानी होनी चाहिए।

1.7.3 गैरीबाल्डी की महानता

इटली को मुक्त कराने में गैराबाल्डी का योगदान अविस्मरणीय है। विक्टर इमेन्युअल के इटली का राजा घोषित होने के उपरान्त गैराबाल्डी को सम्मानित करने और उपाधियाँ देने का प्रस्ताव रखा गया। लेकिन उसने आदरपूर्वक उपाधियाँ और पुरस्कारों को लेने से इन्कार कर दिया। उसने कहा "देश सेवा स्वयं एक पुरस्कार है, मुझे कोई दूसरी चीज नहीं चाहिए। स्वतंत्र इटली अमर हो।"

1.8 कावूर का मूल्याकंन

इटली के एकीकरण से पूर्व ही महान देशभक्त कावूर का 6 जून 1861 ई0 को देहावसान हो गया। एलीसन फिलिप्स ने ठीक ही कहा है कि "एक राष्ट्र के रूप में इटली कावूर की देन है।" वस्तुतः कावूर के बिना मैजिनी का आदर्शवाद और गैराबाल्डी की वीरता निष्फल लड़ाई और निराशा के इतिहास में एक अध्याय और बढ़ा देते। कावूर प्रथम व्यक्ति था, जिसने इटली की समस्याओं के सभी पहलुओं को देखा। उसने कुशल राजनेता की भाँति यह जान लिया कि इटली की समस्याओं का समाधान अर्न्तराष्ट्रीय सहयोग, यूरोपीय कूटनीति तथा युद्ध द्वारा ही हो सकेगा। क्रीमिया के युद्ध में सार्डीनिया का भाग लेना कावूर की एक कूटनीतिक पहल थी। पेरिस के शान्ति सम्मेलन में इटली के प्रश्न को प्रस्तुत कर उसे एक यूरोपीय प्रश्न बना दिया। कावूर ने बड़ी बुद्धिमानी से सम्राट को सेना के साथ भेजकर गैराबाल्डी के जोश पर अंकुश लगाया। निःसदेह कावूर आधुनिक इटली का स्वप्नदृष्टा एवं जन्मदाता था।

1.9 इटली के एकीकरण का अन्तिम चरण

रोम और वेनेशिया को छोड़कर इटली का एकीकरण लगभग पूर्ण हो चुका था। रोम और वेनेशिया का भाग्य अब भी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के साथ जुड़ा हुआ था। इटली का शेष एकीकरण प्रशा के कारण हुआ। कावूर के बाद विक्टर इमेन्युअल ने इटली को अधीन लाने में उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा की।

1.9.1 वेनेशिया की प्राप्ति

आस्ट्रिया इटली के एकीकरण के समान जर्मनी के एकीकरण में भी बाधक था। बिस्मार्क आस्ट्रिया के विरूद्ध इटली का सहयोग प्राप्त करना चाहता था। अप्रैल 1866 ई0 में दोनों के बीच एक सन्धि हुई, जिसके अनुसार प्रशा के युद्ध में इटली की सैनिक सहायता के बदले वेनेशिया दिलाने का वादा किया। 14 जून 1866 ई0 को प्रशा ने आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इटली ने युद्ध में बड़े उत्साह से भाग लिया, किन्तु उसे आस्ट्रिया से कई स्थानों पर हारना पड़ा। इसके विपरीत 3 जुलाई 1866 ई0 को प्रशा ने सेडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया को निर्णायक पराजय देने में सफलता प्राप्त की। बिस्मार्क ने प्राग की सन्धि द्वारा वेनेशिया इटली को दिलवा दिया। जनमत संग्रह के द्वारा वेनेशिया का इटली में विलय संपन्न हुआ।

1.9.2 रोम की प्राप्ति

रोम को छोड़कर सम्पूर्ण इटली का एकीकरण 1866 ई0 में पूर्ण हो चुका था। रोम के बिना इटली स्थिति उसकी प्रकार थी जैसे हृदय के बिना शरीर। रोम पोप के अधीन था और रोम में फ्रांसीसी सेनाएं पोप की रक्षा के लिए मौजूद थी। रोम की प्राप्ति का कार्य तब पूर्ण हुआ जब प्रशा और फ्रांस के बीच 1870 ई0 में युद्ध हुआ। फ्रांस को प्रशा से उलझा देखकर विक्टर इमेन्युअल ने रोम पर आक्रमण कर दिया। 20 दिसम्बर 1870 ई0 को रोम पर इटली का अधिकार हो गया। रोम में जनमत संग्रह कराया गया, जिसमें 40 हजार से अधिक मत विक्टर इमेन्युअल के पक्ष में पड़े जबकि पोप के पक्ष में केवल 46 मत पड़े। फलस्वरूप रोम इटली में शामिल कर लिया गया और उसे संयुक्त इटली की राजधानी बनाया गया। 12 जून 1871 ई0 को विक्टर इमेन्युअल ने संसद का उद्घाटन करते हुए कहा कि ”जिस कार्य के लिए हमने अपना जीवन भेंट चढ़ा दिया था, वह आज पूर्ण हो गया है। हमारी राष्ट्रीय एकता स्थापित हो गयी है।“

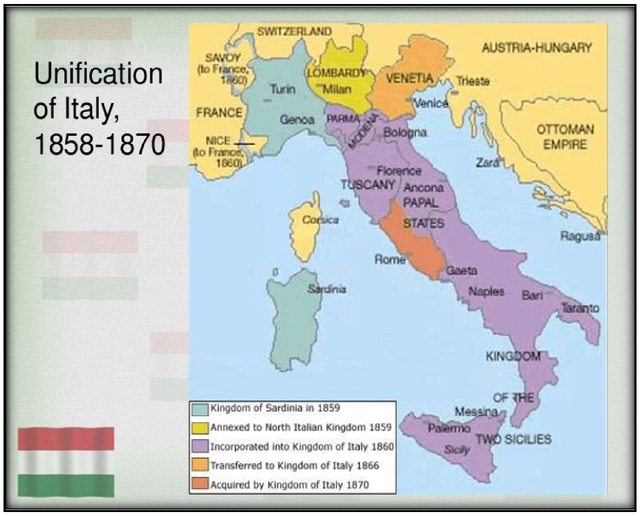

1.10 जर्मनी का एकीकरण

इटली के एकीकरण के समान ही जर्मनी का एकीकरण भी उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय इतिहास की प्रमुख घटना थी। ऐतिहासिक सन्दर्भ में जर्मन साम्राज्य के आधारीकरण को इतिहासकारों ने जर्मनी के एकीकरण के नाम से अभिहित किया है। वस्तुतः प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के राज्यों का इटली के राज्यों के समान विलय नहीं हुआ था। प्रशा के नेतृत्व में विभिन्न राज्यों को प्रारम्भ में केवल एक आधार प्रदान किया गया, जिससे शक्तिशाली जर्मन राष्ट्र का अभ्युदय हुआ। वस्तुतः जर्मनी एक देश का नाम नहीं बल्कि जर्मन भाषी राज्यों के एक समूह का नाम था। ऐसे विखण्डित जर्मन भाषी लोगों के लिए राष्ट्रवाद एक सर्वोपरि भावना बन गयी थी। अनेक कारणों से जर्मन राष्ट्रवाद में आरम्भ से ही दुराग्रह और असहिष्णुता की कुछ गन्ध आने लगी थी। जर्मन राष्ट्रवाद में व्यक्ति पर राज्य की सर्वोपरिता के सिद्धान्त पर जोर दिया जाता था। फलतः मेजिनी के राष्ट्रवाद के परिकल्पना से यह मूलतः भिन्न था।

1.11 एकीकरण से पूर्व जर्मनी

भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से जर्मनी के राज्य भिन्न–भिन्न प्रकार के थे। मोटे तौर पर जर्मनी के राज्यों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है– उत्तरी, मध्य तथा दक्षिणी। उत्तरी भाग में प्रशा, सैक्सनी, हनोवर, फ्रेंकफर्ट आदि राज्य थे, जबकि मध्य भाग में राइनलैण्ड और दक्षिण में वुर्टेम्बर्ग, बवेरिया, बादेन, पैलेटिनेट, हेस–डर्मेस्टाट आदि थे। आकार और सैनिक शक्ति की दृष्टि से प्रशा सबसे शक्तिशाली था। उन राज्यों की सामाजिक एवं आर्थिक प्रणालिया भी पिछड़ी हुई थी।

1.12 आधुनिक जर्मनी का जन्मदाता नेपोलियन

फ्रांसीसी क्रान्ति (1789 ई0) से पहले जर्मनी यूरोपीय देशों में राजनैतिक दृष्टि से सर्वाधिक विभक्त देश था, जिसमें लगभग तीन स्वराज्य थे। नेपोलियन ने जर्मनी में 39 राज्यों का एक संघ बनाकर राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त किया। इस संघ को राइन संघ कहा गया। नेपोलियन के इस कार्य से जर्मनी की जनता में एकता की भावना का संचार हुआ। लिप्सन के अनुसार– *'यह इतिहास के मजाकों में से एक है कि आधुनिक जर्मनी का जन्मदाता नेपोलियन था।'*

1.13 वियना कांग्रेस (1815 ई0) और जर्मनी की राष्ट्रीय भावना

नेपोलियन के पतनोपरान्त वियना कांग्रेस में जर्मन राष्ट्रों के एकीकरण का विरोध हुआ और जर्मन राज्यों को एक शक्तिहीन संघ राज्य के रूप में आस्ट्रिया के प्रभाव में रख दिया गया। आस्ट्रिया को इस संघ का अध्यक्ष बनाया गया। वियना व्यवस्था के अनुसार किसी भी शासक जर्मन सम्राट का पद नहीं दिया गया। जर्मनी में कोई केन्द्रीय संघीय व्यवस्था नहीं थी, जो राज्यों की शक्ति पर नियंत्रण कर सके। जर्मनी की संघीय डायट समझौता करने वाली एक संस्था मात्र साबित हुई। इस प्रकार वियना समझौते के अन्तर्गत जर्मनी के प्रशासन के लिए की गयी व्यवस्था दोषपूर्ण थी, साथ ही जर्मनी के एकीकरण में बाधक भी थी।

1.14 जर्मनी के एकीकरण में बाधक तत्व

जर्मनी के एकीकरण में मुख्य बाधाएँ थीं– (i) जर्मनी के राज्यों की धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक असमानताएँ (ii) जर्मनी की समस्याओं में आस्ट्रिया का हस्तक्षेप, (iii) अधिकांश जर्मन राज्यों की शिथिल सैनिक शक्ति (iv) जन सामान्य में जागृति का अभाव (v) विदेशी शक्तियों की जर्मनी के मामलों मे रूचि। इन सभी बाधाओं के अतिरिक्त आस्ट्रिया की यह नीति रही कि जर्मनी में राष्ट्रीय एकता स्थापित न हो पाये और हैप्सबर्ग राजवंश की प्रधानता बनी रहे।

1.15 जर्मनी के एकीकरण में सहायक तत्वों का योगदान

1815 ई0 से 1850 ई0 के मध्य जर्मनी में कतिपय ऐसी प्रवृत्तियों का विकास हो गया था, जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को गतिमय बनाया। राष्ट्रीयता और एकीकरण की विचारधार के प्रसार में निम्नलिखित तत्वों का योगदान रहाः—

1.15.1 बौद्धिक चिन्तन का योगदान

फ्रांसीसी क्रान्ति तथा नेपोलियन के युग में जर्मनी का महत्तम् सांस्कृतिक उत्थान हुआ था। गेटे, शीलर, हर्डर, कान्ट, फिक्टे, हीगेल, शीलरमैश्वर तथा अनेक अन्य चिन्तक और द्रष्टा इस युग में पैदा हुए जिस कारण से उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मनी को आमतौर पर चिन्तन के क्षेत्र में यूरोप का अग्रणी देश माना जाता था। परन्तु जर्मनी के चिन्तन की विशेषताएँ किसी न किसी रूप में राष्ट्रवाद से सम्बद्ध होती थी। सन् 1748 ई0 में जे0 सी0 हरडर की पुस्तक *'आइडिआज ऑन फिलॉसफी ऑफ हिस्टरी ऑफ मैनकाइण्ड'* प्रकाशित हुई। हरडर के विचार में एक भाषावाली जनता की अपनी विशिष्ट प्रकृति, चेतना या प्रतिभा होती है। उसकी राय थी कि पक्की सभ्यता वहीं होगी, जिसकी अपनी राष्ट्रीय आत्मा या राष्ट्रीय प्रकृति होगी। हरडर ने इसका नाम 'वोल्कजिस्ट' दिया। हर जनता की अपनी विशेष प्रकृति होती है। हरडर के दार्शनिक चिन्तन ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का उद्‌भव किया। हरडर की 'वोल्कजिस्ट' या राष्ट्रीय आत्मा की धारणा कुछ ही काल में जर्मनी के मन—प्राण पर छा गयी। 1800 ई0 के उपरान्त की पीढ़ी के हरडर के कतिपय शिष्यों के चिन्तन में जर्मनी के राष्ट्रवाद का स्वरूप बदलने लगा था। जोहान फिक्टे ने 1808 ई0 में राष्ट्र के नाम कई व्याख्यान दिये। *'एड्रेसेज दू द जर्मन नेशन'* नामक पुस्तक में संकलित इन भाषणों में उसने अपने देश में राष्ट्रीय शिक्षण—व्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया। फिख्टे का कहना था कि जर्मनी एक अमिट चेतना थी, चिरन्तन आत्मा थी, एक अविनश्वर राष्ट्रीय प्रकृति थी। उसे भारी से भारी मूल्य चुकाकर भी हर तरह के बाहरी प्रभावों से मुक्त रखना आवश्यक है, क्योंकि जर्मनी का राष्ट्रीय चरित्र अन्य सभी लोगों के राष्ट्रीय चरित्र से ऊँचा है, महान है। फ्रेडरिक हीगेल के इतिहास दर्शन के कई निष्कर्ष जर्मनी के राष्ट्रवादी आदर्शवाद की मुख्य स्थापनाएँ बन गयी। इनमें राज्य को सर्वोपरि स्थान दिये जाने का सिद्धान्त प्रमुख था। समग्र जर्मनी में प्रशा के राज्य तंत्र को प्रवर्द्धमान प्रतिष्ठा से मण्डित करने का कुछ हद तक श्रेय हीगेल को दिया जाता है। कार्ल मार्क्स पर हीगेल के प्रभाव के फलस्वरूप वैज्ञानिक समाजवादी सिद्धान्त पर उसका प्रभाव पड़ा था, मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त में हीगेल की स्थापनाएँ प्रतिबिम्बित हुई थी। इस बीच जर्मनी में अन्य चिन्तनधाराओं के साथ हीगेल के विचार—दर्शन ने दार्शनिक प्ररिप्रेक्ष्य में इतिहास के अध्ययन को कहीं अधिक सार्थक बना दिया। जर्मनी के प्रख्यात इतिहासकारों में लियोपोल्ड फॉन रैन्के का नाम लिया जाता है। रैन्के (1795—1886 ई0) राष्ट्रवादी अनुभूति से विशेष रूप से अनुप्रेरित था। उसके इतिहास की अन्तरधाराएँ फ्रांसविरोधी थीं।

1.15.2 जालवरीन

इस युग में जर्मनी के अर्थजगत् के सबसे महत्वपूर्ण घटना थी 'चुंगी संघ' या 'जालवरीन' (शोलवरीन) की स्थापना। अर्थशास्त्री फ्रेडरिक लिस्ट की विचारधारा इस अर्थनीति के पृष्ठभूमि में कार्यरत थी। वह राष्ट्रवादी होने के कारण आर्थिक राष्ट्रवाद में विश्वास रखता था। जालवरीन द्वारा चुंगी का एकीकरण हो गया। 1844 ई0 तक जर्मनी के अधिकांश राज्य इसके अन्तर्गत आ चुके थे। इन्होंने अपने सीमान्तों के भीतर एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश को माल लाने ले जाने पर सभी चुंगी वसूलियों को खत्म कर दिया। केवल आस्ट्रिया इस संघ से बाहर रहा। राजनैतिक एकीकरण के पहले देश का आर्थिक एकीकरण सम्पन्न हो गया। जालवरीन का नेतृत्व प्रशा कर रहा था। अतः, उसके नेतृत्व में एकीकरण की भूमिका तैयार होने लगी थी।

1.15.3 बुर्जुआवर्ग का उदय

1848 ई0 के पूर्व के कुछ दशकों में जर्मनी के औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप वहाँ पर प्रभावशाली और संवेदनशील बुर्जआ–वर्ग का उदय हुआ। यद्यपि इस वर्ग की संख्या अधिक नहीं थी फिर भी राजनीति पर इसका प्रभाव बढ़ता जा रहा था। नवोदित बुर्जुआ–वर्ग सभी आर्थिक नियत्रणों को दूर करने तथा जर्मनी की पुरानी पड़ गयी राजनैतिक व्यवस्था को बदल डालने की माँग करते थे। इसके फलस्वरूप एक उदारवाद और राष्ट्रवाद की लहर दौड़ पड़ी थी। यह नया वर्ग समाचार–पत्रों पर नियंत्रण रखता था तथा इनके द्वारा राष्ट्रीय एकीकरण के आन्दोलनों का जबरदस्त समर्थन कर सशक्त जनमत का निर्माण कर रहा था।

1.15.4 रेल लाइनों का निर्माण

जर्मनी के जीवन पर रेल लाइनों के निर्माण का भी क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा जिस प्रकार जालवरीन ने कृत्रिम आर्थिक बाधाओं को दूर किया था उसी प्रकार रेलों ने जर्मनी के एकीकरण तथा उसके समृद्धि के रास्ते में पड़ी प्राकृतिक बाधाओं को दूर कर दिया। इस परिस्थिति के विकास के अभाव में यह अविश्वसनीय लगता है कि बिस्मार्क मात्र अपने लौह और रक्त की नीति के बल पर जर्मनी का एकीकरण कर पाने में सफल होता। जर्मनी के राजनीतिक एकीकरण के रेल मार्ग सचमुच ही बड़ा महत्वपूर्ण था। रेल लाइनों के निर्माण में सैनिक उपयोगिता का पूरा ध्यान दिया गया। सामरिक महत्व के रेल मार्गो के निर्माण को राजकीय प्रोत्साहन दिया गया। जर्मनी के एकीकरण के लिए छेड़े गये तीन युद्धों में प्रशा की निर्णायक विजयों का राज इसी तथ्य में निहित था। रेल लाइनों के निर्माण ने जर्मनी के औद्योगिकीकरण का मार्ग सरल बना दिया था। इसी कारण 1850 ई0 के दशक में आर्थिक एकीकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से अनेक अखिल जर्मन संस्थाओं की स्थापना हुई।

1.16 1830 ई0 एवं 1848 ई0 की फ्रांसीसी क्रान्ति व जर्मनी के एकीकरण के प्रयास

1830 ई0 की फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रभाव–स्वरूप जर्मनी के कई राज्यों में भी क्रान्तियाँ हुई और कहीं–कहीं उदारवाद को तात्कालिक विजय भी मिली। 1832 ई0 में जर्मनी के हैमबैंक नगर में एक विराट जर्मन महोत्सव मनाया गया लेकिन तुरन्त ही मेटरनिख का दमन चक्र चला और एक–दो वर्षों के भीतर विरोध की आवाज शान्त हो गयी। जर्मनी की एकता के लिए हुये सारे प्रयास बेकार हो गये।

1848 ई0 में ज्यों ही फ्रांसीसी क्रान्ति की खबर जर्मनभाषी राज्यों में फैली, नरेशों के शासन डगमगाने लगे। बहुत सारे जर्मन नरेश गद्दी छोड़कर भाग खड़े हुए और उदारवाद की कई जगहों पर विजय हुई। ऐसी ही परिस्थिति में देश भर के उदारवादियों ने विभिन्न राज्यों को एक करके जर्मन राष्ट्र के निर्माण का प्रयत्न किया। वे फ्रेंकफर्ट एसेम्बली में एकत्र हुए और जर्मनी के एकीकरण के विभिन्न प्रस्तावों पर विचार करने लगे। अब प्रशा के नेतृत्व में रक्त और लौह की नीति से युद्ध के अग्निगर्भ से जर्मन राज्य के जन्म की भूमिका तेजी से तैयार होने लगी थी। प्रशा की शक्ति में बढ़ोत्तरी उसे आस्ट्रिया के प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी तथा जर्मन–एकीकरण आन्दोलन के प्रमुख नेता के रूप में स्थापित कर दिया था।

1.17 विलियम प्रथम एवं उसके सैनिक सुधार

प्रशा का नरेश विलियम प्रथम प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के एकीकरण में विश्वास रखता था। परन्तु इसका सबसे कट्टर विरोधी आस्ट्रिया था। यह निश्चित था कि केवल युद्ध में परास्त करके आस्ट्रिया को जर्मनी की राजनीति से निकाल बाहर करने के उपरान्त ही जर्मनी का एकीकरण सम्भव हो सकेगा। अतः उसने प्रशा की सैनिक शक्ति बढ़ाने की योजना बनायी। लेकिन, सैनिक खर्च को लेकर प्रशा की संसद में इस नीति का विरोध हुआ और एक

राजनैतिक गतिरोध उत्पन्न हो गया। प्रशा नरेश ने इस गतिरोध से निपटने के लिए ओटोवान बिस्मार्क को 1862 ई0 में अपना चांसलर नियुक्त किया।

1.18 बिस्मार्क का उदय और जर्मनी का एकीकरण

ऑटो एडवर्ड लियोपोल्ड का जन्म 1815 ई0 में ब्रेडनबर्ग के एक कुलीन परिवार में हुआ था। बिस्मार्क की शिक्षा बर्लिन में हुई थी। सन् 1847 ई0 में ही वह प्रशा की प्रतिनिधि सभा का सदस्य चुना गया। वह जर्मन राज्यों की संसद में प्रशा का प्रतिनिधित्व करता था। वह नवीन विचारों का प्रबल विरोधी था। सन् 1859 ई0 में वह रूस में जर्मनी के राजदूत के रूप में नियुक्त हुआ। सन् 1862 ई0 में वह पेरिस का राजदूत बनाकर भेजा गया। इन पदों पर रहकर वह अनेक लोगों के सम्पर्क में आया। उसे यूरोप की राजनैतिक स्थिति को समझने का अवसर मिला। सन् 1862 ई0 में प्रशा शासक विलियम प्रथम ने उसे देश का चांसलर (प्रधानमंत्री) नियुक्त किया। बिस्मार्क 'रक्त और लौह नीति' का समर्थक था, उसकी रूचि लोकतंत्र और संसदीय पद्धति में नहीं थी। वह सेना और राजनीति के कार्य में विशेष रूचि रखता था। इन्हीं पर आश्रित हो वह अपने उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहता था। वह प्रशा को सैनिक दृष्टि से मजबूत करके यूरोप की राजनीति में उसके वर्चस्व को कायम करना चाहता था। वह आस्ट्रिया को जर्मन संघ से बाहर निकालकर प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण करना चाहता था। वह सेना और शस्त्र द्वारा समस्याओं को सुलझाना चाहता था। वह अवैधानिक कार्य करने में भी नहीं हिचकता था। प्रशा की सैनिक शक्ति में वृद्धि करके तथा कूटनीति का सहारा लेकर उसने जर्मन राज्यों के एकीकरण के कार्यो को पूरा किया। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए बिस्मार्क को तीन प्रमुख युद्ध लड़ने पड़े। इन सभी युद्धों में सफल होकर उसने जर्मन राज्यों के एकीकरण के कार्यो को पूरा किया। इससे यूरोपीय इतिहास का स्वरूप ही बदल गया।

1.18.1 प्रथम चरणः डेनमार्क से युद्ध (1864 ई0) एवं गेस्टाइन समझौता

श्लेसविग तथा हॉल्सटाइन के प्रदेश डेनमार्क के अधीन थे, किन्तु डेनमार्क के राजा को इन प्रदेशों को अपने राज्य में विलीन करने का अधिकार नहीं था। हॉल्सटाइन की सम्पूर्ण जनता जर्मन थी जबकि श्लेसविग में जर्मन व डेन दोनों जातियों के लोग निवास करते थे। इस प्रकार डेनमार्क के राजा के संरक्षण में इन प्रदेशों का पृथक अस्तित्व स्वीकार किया गया था। सन् 1863 में डेनमार्क के राजा क्रिसचियन 9वाँ ने उपर्युक्त व्यवस्था का उल्लंघन करके श्लेसविग को डेनमार्क में विलीन करने की घोषणा कर दी। उपर्युक्त दोनों प्रान्तों की जनता ने डेनमार्क के राजा के इस कार्य का विरोध किया तथा आन्दोलन की तैयारी प्रारम्भ कर दी।

श्लेसविग–हॉल्सटाइन समस्या ने बिस्मार्क की इच्छा की अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी। उसने अवसर का पूरा लाभ उठाने का निश्चय किया। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के साथ एक सन्धि करके इस समस्या को हल करने में इसके सहयोग का आश्वासन प्राप्त कर लिया। आस्ट्रिया व प्रशा ने संयुक्त रूप से डेनमार्क के राजा को 48 घण्टे का अल्टीमेटम देकर उपर्युक्त घोषणा को वापस लेने की माँग की। डेनमार्क द्वारा उपर्युक्त माँग को ठुकरा दिया गया। फलस्वरूप फरवरी 1864 ई0 में आस्ट्रिया व प्रशा ने मिलकर डेनमार्क पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में डेनमार्क की पराजय हुई तथा उपर्युक्त दोनों प्रदेश उसकी अधीनता से मुक्त हो गये।

- **गेस्टाइन समझौताः–** इस समझौते के अनुसार श्लेसविग और हॉल्सटाइन के प्रदेश तो डेनमार्क से ले लिये गये, पर इस लूट के माल के बंटवारे के सम्बन्ध में प्रशा और आस्ट्रिया में मतभेद हो गया। अंततः दोनो के बीच 14 अगस्त 1865 ई0 को गेस्टाइन नामक स्थान पर समझौता हो गया, जो गेस्टाइन समझौता के नाम से जाना जाता है। यह समझौता इस प्रकार थाः–

(i) श्लेसविग प्रशिया को दिया गया।

(ii) हॉल्सटाइन पर आस्ट्रिया का अधिकार मान लिया गया

(iii) लायनवर्ग का प्रदेश प्रशा ने खरीद लिया जिसका मूल्य आस्ट्रिया को दिया गया।

यह समझौता बिस्मार्क की एक महान कूटनीतिक विजय थी।

1.18.2 द्वितीय चरणः आस्ट्रिया–प्रशा युद्ध (1866 ई0) एवं प्राग की सन्धि

वास्तव में बिस्मार्क की इच्छा आस्ट्रिया को युद्ध में परास्त कर उसे जर्मन संघ से बहिष्कृत करना था। इस दिशा में उसने तैयारी आरम्भ कर दी थी। इसके लिए उसने रूस, फ्रांस व पीडमोन्ट–सार्डीनिया से पृथक–पृथक सन्धियां करके युद्ध तटस्थ रहने का वचन प्राप्त कर लिया। सन् 1863 ई0 में बिस्मार्क ने पोलेण्ड के विद्रोह का दमन करने में रूस के जार को सहायता प्रदान की तथा बदले में रूस की सहानुभूति तथा आस्ट्रिया प्रशा युद्ध में तटस्थ रहने का आश्वासन प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार बिस्मार्क ने फ्रांस के सम्राट नेपोलियन तृतीय से सन् 1865 ई0 में एक सन्धि करके उसे तटस्थ रहने के लिए सहमत कर लिया। इस प्रकार वह आस्ट्रिया को मित्रविहीन कर दिया। अन्ततः जून 1866 ई0 में आस्ट्रिया तथा प्रशा के मध्य युद्ध आरम्भ हो गया। बिस्मार्क की कूटनीति के फलस्वरूप आस्ट्रिया को यूरोप के किसी अन्य देश से सहायता प्राप्त नहीं हो सकी। इस युद्ध केवल सात सप्ताह तक चला था, इसलिए इसे "सात सप्ताह का युद्ध" भी कहा जाता है। आस्ट्रिया की सैनिक शक्ति अत्यन्त कमजोर थी। इसके अतिरिक्त उसे प्रशा तथा पीडमोन्ट–सार्डीनिया की सेनाओं से दो पृथक मोर्चो पर लड़ना पड़ा। अन्तिम तथा निर्णायक युद्ध सेडोवा के मैदान पर लड़ा गया था। जिसमें 3 जुलाई 1866 ई0 को आस्ट्रिया की भीषण पराजय हुई थी। युद्ध की समाप्ति प्राग की सन्धि (23 अगस्त 1866 ई0) द्वारा हुई, जिसकी शर्ते इस प्रकार थीः–

(i) आस्ट्रिया के नेतृत्व में जो जर्मन संघ बना था, वह समाप्त कर दिया गया।

(ii) श्लेसविग व हॉलस्टाइन प्रशा को दे दिए गये।

(iii) दक्षिण के जर्मन राज्यों को स्वतंत्र मान लिया गया।

(iv) वेनेशिया का प्रदेश इटली को दे दिया गया।

(v) आस्ट्रिया को युद्ध का हर्जाना देना पड़ा।

- **जर्मन राजसंघ की स्थापना**

इस युद्ध के परिणामस्वरूप जर्मन राज्यों में आस्ट्रिया का वर्चस्व समाप्त हो गया। अब वह प्रशा का प्रभाव कायम हो गया। हैनोवर, हेसकेसल, नासो और फ्रेंकफर्ट प्रशा के राज्य में शामिल कर लिये गये। इसके बाद उसने जर्मन–राज्यों को नये सिरे से अपने नेतृत्व में संगठित करने का प्रयास किया। चार दक्षिणी जर्मन राज्यों– बवेरिया, बुटर्मवर्ग, बाडेन और हेंस को छोड़कर शेष जर्मन राज्यों का संगठन प्रशा के नेतृत्व में बना लिया गया। इस प्रकार बिस्मार्क ने उत्तरी राज्यों का गठन कर लिया। इसमें इक्कीस जर्मन राज्य सम्मिलित थे। इस नवीन संघ का अध्यक्ष प्रशा को बनाया गया। बिस्मार्क इस संघ का प्रथम चांसलर नियुक्त हुआ। इस प्रकार बिस्मार्क जर्मनी के एकीकरण की दिशा में काफी आगे बढ़ गया। अब उसके लिए अन्तिम कार्य करना ही शेष था।

1.18.3 तृतीय चरणः फ्रांस–प्रशा युद्ध (1870 ई0) एवं फ्रेंकफर्ट की सन्धि

जर्मनी के एकीकरण के लिए बिस्मार्क ने फ्रांस से अन्तिम युद्ध किया। क्योंकि उसे पराजित किये बिना दक्षिण के चार जर्मन राज्यों को जर्मन संघ शामिल करना असम्भव था। फ्रांस के राष्ट्रपति नेपोलियन तृतीय ने अपनी गिरी हुई प्रतिष्ठा को पुर्नजीवित करने के लिए फ्रांस की सीमा को राइन नदी तक विस्तृत करने का विचार किया किन्तु वह इस कार्य में सफल नहीं हो सका। बिस्मार्क अपनी कूटनीतिक चालों द्वारा फ्रांस की हर इच्छा को असफल करता रहा। नेपोलियन ने हालैण्ड से लक्जेमबर्ग ने चाहा, परन्तु बिस्मार्क के विरोध के कारण वह सम्भव नहीं हो सका। इसमें दोनों के बीच कटुता की भावना निर्मित हो गयी। परिणामस्वरूप दोनों देशों के अखबार एक–दूसरे के खिलाफ जहर उगलने लगे। ऐसी स्थिति में दोनों के बीच युद्ध आवश्यक प्रतीत होने लगा।

- **स्पेन की राजगद्दी का प्रश्न**

इस बीच स्पेन में उत्तराधिकार का प्रश्न उपस्थित हो गया। जिससे वहाँ गृहयुद्ध आरम्भ युद्ध हो गया। सन् 1863 ई0 में स्पेन की जनता ने विद्रोह करके महारानी इसाबेला द्वितीय को देश से बाहर निकाल दिया और उनके स्थान पर प्रशा के सम्राट के रिश्तेदार लियोपोर्ल्ड को वहाँ का नया शासक बनाने का विचार किया। नेपोलियन इसके लिए तैयार नहीं हुआ। फ्रांस के विरोध को देखते हुए लियोपोर्ल्ड ने अपने उम्मीदवारी का परित्याग कर दिया, किन्तु फ्रांस इससे संतुष्ट नहीं हुआ। यह नेपोलियन की मनमानी और प्रशा का अपमान था। अन्ततः 15 जुलाई 1870 ई0 को फ्रांस ने प्रशा के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

फ्रांस–प्रशा का यह युद्ध सेडान के मैदान में लड़ा गया, जिसमें नेपोलियन तृतीय परास्त हुआ। जर्मन सेनाएँ फ्रांस के अन्दर तक घुस गई। 20 जनवरी 1871 ई0 को पेरिस के पतन के पश्चात् युद्ध समाप्त हो गया। अन्ततः दोनों के बीच फ्रेंकफर्ट की सन्धि हुई, जिसकी शर्ते इस प्रकार हैः–

(i) फ्रांस को अल्सास और लॉरेन के प्रदेश जर्मनी को देने पड़े।
(ii) फ्रांस को युद्ध का हर्जाना 20 करोड़ पाउंड क्षतिपूर्ति के रूप में देना पड़ा।
(iii) हर्जाने की अदायगी तक जर्मन सेना फ्रांस में ही रहेगी।

यह सन्धि फ्रांस के लिए अपमानजनक सिद्ध हुई, और दोनों देशों के बीच दुश्मनी की जड़े और मजबूत कर दी।

1.19 जर्मन साम्राज्य की घोषणा

सेडान के युद्ध में फ्रांस की पराजय के पश्चात् जर्मनी के 04 दक्षिणी राज्यों– बवेरिया, बाडेन, बुटर्मबर्ग और हेंस को जर्मन संघ में शामिल करके उसे जर्मनी साम्राज्य का एक नया नाम दिया गया। प्रशा का राजा जर्मनी का शासक घोषित किया गया। इस प्रकार जर्मनी का एकीकरण पूर्ण हुआ। 18 जनवरी 1871 ई0 को वार्साय के शाही महल में विलियम प्रथम का राज्यारोहण उत्सव बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया।

1.20 निम्नलिखित पर 100–150 शब्दों में संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिएं।

1. यंग इटली
2. मेजिनी
3. कावूर की गृह–नीति
4. गैरीबाल्डी
5. कार्बोनरी

6. बिस्मार्क की लौह एवं रक्त नीति
7. विलियम प्रथम
8. जालवरीन
9. गेस्टाइन समझौता
10. फ्रेंकफर्ट की सन्धि

1.21सांराश

वस्तुतः इटली का एकीकरण लम्बे संघर्ष के उपरान्त स्थापित हुआ था। इटली के एकीकरण और स्वतंत्रता का इतिहास उस कूटनीति की कहानी है, जिसमें दूसरों के झगड़ों का लाभ उठाया गया, इस महान उपलब्धि का नायक कावूर था। इटली के एकीकरण में मैजिनी, कावूर, विक्टर इमेन्युअल एवं गैराबाल्डी के अथ्क प्रयासों तथा इटली की जनता के त्याग एवं कष्टों की कहानी है। अन्ततः हम देखते है कि असंख्य देशभक्तों के बलिदान, मेजिनी के नैतिक बल, गैरीबाल्डी की तलवार, कावूर की कूटनीति एवं विक्टर इमेन्युअल की समझदारी ने छोटे–छोटे खण्डों में विभक्त इटली को एक कर दिया।

जर्मनी के एकीकरण को 'लौह और रक्त की नीति' के माध्यम से प्राप्त किया गया। बिस्मार्क को अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु 3 युद्ध लड़ने पड़े। शस्त्र प्रयोग और रक्तपात् राष्ट्रीय एकीकरण के सन्दर्भ में साधन के रूप में प्रयुक्त हुए। वस्तुतः बिस्मार्क के दृढ़ निश्चय, अदम्य साहस तथा कूटनीतिक कुशलता ही जर्मनी के एकीकरण की कहानी प्रस्तुत करती है।

1.22 शब्दावली (Glossary)

1. **राष्ट्रवाद**– अपने राष्ट्र के प्रति देश–प्रेम की भावना, अर्थात् राष्ट्रवाद लोगों के किसी समूह की उस आस्था का नाम है, जिसके तहत् वे खुद को साझा इतिहास, परम्परा, भाषा, जातियता और संस्कृति के आधार पर एकजुट मानते हैं।

2. **रिसार्जीमेन्टो (पुनरूत्थान)**— इटली का उन्नीसवीं शताब्दी का एक राष्ट्रवादी आन्दोलन था, 1847 ई0 में कावूर एवं बाल्बों ने रिसार्जीमेन्टों नामक समाचार—पत्र प्रकाशित किया। इससे इस आन्दोलन का यह नाम पड़ा।
3. **कार्बोनरी**— सन् 1810 ई0 में नेपल्स में स्थापित एक गुप्त संस्था।
4. **यंग—इटली**— मेजिनी द्वारा स्थापित एक संस्था, जिसने इटली में राष्ट्रीय आन्दोलन में अग्रणी भूमिका निभायी।
5. **रेड शर्ट्स (लाल कुर्ती वाला)**— सन् 1859—1867 ई0 के मध्य इटली के एकीकरण के दौरान हुए युद्धों में शामिल गैरीबाल्डी के अनुयायी सैनिक।
6. **जालवरीन (शोलवरीन)**— जर्मनी के अर्थजगत् की एक महत्वपूर्ण आर्थिक घटना, प्रशा ने 1819 ई0 में छोटे राज्यों से सीमा शुल्क सम्बन्धी सन्धि करके जालवरीन या सीमा शुल्क संघ का श्रीगणेश किया।
7. **बुर्जुआ (मध्यम—वर्ग)**— यह फ्रांसीसी भाषा के एक शब्द से बना है, जिसका अर्थ है नगरवासी। इस शब्द का प्रयोग मध्यम वर्ग के लिए किया जाता है।
8. **कल्तुर कैम्प (सांस्कृतिक संघर्ष)**— इस शब्द का प्रयोग बिस्मार्क के काल में जर्मन साम्राज्य तथा कैथोलिक चर्च के बीच चले सांस्कृतिक संघर्ष (1872—79 ई0) के लिए किया जाता है।

1.23 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.23.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्नः—

1. उन्नीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में इटली में कितने राज्य थे ?
   (अ) 11 (ब) 12 (स) 13 (द) 14

2. इटली के एकीकरण का जन्मदाता किसे माना जाता है ?
   (अ) नेपोलियन (ब) मेजिनी (स) कावूर (द) इनमें से कोई नहीं

3. इटली के एकीकरण का जनक किसे कहा जाता है ?
   (अ) जोसेफ मेजिनी (ब) कावूर (स) गैराबाल्डी (द) इमेन्युअल द्वितीय

4. यंग—इटली की स्थापना किसने की थी ?
   (अ) चार्ल्स एल्बर्ट (ब) मेजिनी (स) गैरीबाल्डी (द) कावूर

5. कार्बोनरी सोसाइटी का संस्थापक कौन था ?
   (अ) गिवर्टी (ब) कैटेनियो (स) कावूर (द) गैरीबाल्डी

6. कार्बोनरी नामक गुप्त संस्था की स्थापना किस वर्ष हुई थी ?
   (अ) 1825 ई0 (ब) 1815 ई0 (स) 1820 ई0 (द) 1810ई0

7. विक्टर इमेन्युअल द्वितीय कहाँ का शासक था ?
   (अ) पीडमोन्ट—सार्डीनिया (ब) आस्ट्रिया (स) प्रशा (द) नेपल्स

8. विलाफ्रेंका की सन्धि कब हुई थी ?
   (अ) 11 जुलाई 1859 ई0(ब)11 अगस्त 1859 ई0(स)11 सितम्बर 1859 ई0(द) 11 अक्टूबर 1859 ई0

9. इल रिसार्जीमेन्टों नामक समाचार—पत्र का संपादन किसने किया ?
   (अ) मेजिनी (ब) कावूर (स) गैरीबाल्डी (द) नेपोलियन

10. क्रीमिया का युद्ध कब लड़ा गया ?
(अ) 1854 ई0 (ब) 1855 ई0 (स) 1856 ई0 (द) 1857 ई0

11. इटली देश का जन्म कब माना जाता है ?
(अ) 2 अप्रैल 1860ई0 (ब) 4 अप्रैल 1860ई0 (स) 6 अप्रैल 1860ई0 (द) 8 अप्रैल 1860ई0

12. रोम को संयुक्त इटली की राजधानी कब घोषित किया गया?
(अ) 1870 ई0 (ब) 1871 ई0 (स) 1872 ई0 (द) 1875 ई0

13. जर्मनी के एकीकरण का श्रेय किसे दिया जाता है ?
(अ) विलियम प्रथम (ब) बिस्मार्क (स) मेटरनिख (द) कावूर

14. बिस्मार्क को किसने अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया ?
(अ)विक्टर इमेन्युअल (ब) चार्ल्स एल्बर्ट (स)प्रशा शासक विलियम प्रथम (द)इनमें से काई नहीं

15. जर्मनी का सबसे शक्तिशाली राज्य कौन सा था ?
(अ) प्रशा (ब) आस्ट्रिया (स) बवेरिया (द) बादेन

16. 1806 ई0 में राइन राज्य संघ का निर्माण किसने किया था ?
(अ) नेपोलियन (ब) बिस्मार्क (स) मेटरनिख (द) कावूर

17. बिस्मार्क किस राज्य के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण चाहता था ?
(अ) सैक्सनी (ब) बवेरिया (स) प्रशा (द) हनोवर

18. विलियम प्रथम को जर्मन संघ के सम्राट का ताज कब पहनाया गया ?
(अ) 8 जनवरी 1871 ई0 (ब) 8 फरवरी 1871 ई0 (स) 8 मार्च 1871ई0 (द) 8 अप्रैल 1871 ई0

19. जर्मनी में राष्ट्रीयता का संदेशवाहक किसे माना जाता है ?
(अ)बिस्मार्क (ब) विलियम प्रथम (स) नेपोलियन बोनापार्ट (द) इनमें से काई नहीं

20. बिस्मार्क प्रशा का चांसलर कब बना ?
(अ)20 सितम्बर 1862 ई0 (ब) 21 सितम्बर 1862 ई0 (स)22 सितम्बर 1863 ई0 (द)23 सितम्बर 1862 ई0

21. प्राग की सन्धि कब हुई ?
(अ) 23 अगस्त 1865 ई0 (ब) 23 अगस्त 1866 ई0 (स) 23 अगस्त 1867 ई0 (द) 23 सितम्बर 1862 ई0

22. फ्रांस और प्रशा के मध्य सेडान का युद्ध कब लड़ा गया ?
(अ) 15 जुलाई 1875 ई0 (ब) 15 जुर्ला 1880 ई0 (स) 14 जुलाई 1870 ई0 (द)इनमें से काई नहीं

23. सेडान के युद्ध के बाद फ्रांस और प्रशा के मध्य कौन सी सन्धि हुई थी ?
(अ) सेनस्टीफेनो की सन्धि (ब) फ्रेंकफर्ट की सन्धि (स) पेरिस की सन्धि (द)केम्पो फार्मियो की सन्धि

24. बिस्मार्क ने जर्मनी के सम्राट विलियम प्रथम का राज्याभिषेक कहाँ किया था ?
(अ) पेरिस (ब) वर्साय (स) रोम (द) इनमें से कोई नहीं

25. बिस्मार्क ने कौन सी पुस्तक लिखी ?
(अ) रिफ्लेक्शन्स एण्ड रेमेनिसेन्सेज (ब) इल रिसार्जीमेन्टों (स) मैन कैम्फ (द) इनमें से कोई नहीं

1.23.2 उत्तर–

1.(स) 2. (अ) 3.(अ) 4.(ब) 5. (अ) 6.(द) 7.(अ) 8.(अ) 9.(ब) 10.(अ) 11.(अ) 12.(ब) 13.(ब) 14.(स) 15.(अ) 16.(अ) 17.(स) 18.(ब) 19.(स) 20.(द) 21.(ब) 22.(स) 23.(ब) 24.(ब) 25(अ)

1.24 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं इस खण्ड के लिए उपयोगी पाठ्य–पुस्तकें:–

1. हेजन, सी. डी., 1977, आधुनिक यूरोप का इतिहास, रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा।
2. वर्मा, लाल बहादुर, 2005, यूरोप का इतिहास, भाग–2, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
3. वर्मा, दीनानाथ एवं सिंह, शिव कुमार, 1992, विश्व इतिहास का सर्वेक्षण, भारती भवन, पटना।
4. जैन, हुकुम चन्द एवं माथुर कृष्ण चन्द, 2006, आधुनिक विश्व का इतिहास, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर।
5. खुराना, के. एल. एवं शर्मा, आर. सी., 2009, विश्व की इतिहास, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
6. केटलबी, सी. डी. एम., 1993, आधुनिक काल का इतिहास, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
7. गुप्ता, पार्थसारथी, 2006, यूरोप का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

1.25 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इटली के एकीकरण में मेजिनी, कावूर एंव गैराबाल्डी के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
2. इटली के एकीकरण के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए।
3. जर्मनी के एकीकरण पर एक निबन्ध लिखिए।
4. बिस्मार्क की लौह एवं रक्त नीति की आलोचनात्क व्याख्या कीजिए।
5. जर्मनी के एकीकरण के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए।

इकाई दो : साम्राज्यवाद और अफ्रीका का विभाजन

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अफ्रीका में साम्राज्यवाद और अफ्रीका का विभाजन

2.3.1 पृष्ठभूमि

2.3.2 अफ्रीका में साम्राज्यवादी विभाजन का घटनाक्रम

2.3.3 बर्लिन सम्मलेन (1884—1885)

2.3.4 साम्राज्यवाद के विस्तार के सिद्धांत

2.3.5 साम्राज्यवाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया

2.3.6 अफ्रीका के पिछड़ने के कारण

2.3.7 अफ्रीका में साम्राज्यवाद का प्रभाव

2.4 सारांश

2.5 विशेष शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 अध्ययन सामग्री

2.8 प्रस्तावित अध्ययन सामग्री

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

शक्तिशाली देशों के चंद अल्पाधिकारी (वसपहंतबील), पूंजीवादीवर्ग, विस्तारवादी नीतियाँ, और उग्र राष्ट्रवाद का उन्माद कितना भयानक हो सकता है, इसका परिणाम इतिहास में दो विश्व युद्धों के रूप में हमारे सामने आए है। आज आणविक और जैविक हथियारों के रूप में पूरी मानव सभ्यता ही नहीं बल्कि पूरी पृथ्वी का विनाश संभव है। वैश्वीकरण के इस दौर में हम आजकल कार्बन उत्सर्जन की समस्याओं पर गहरी चर्चाएं सुनते हैं, और दिन प्रतिदिन गलोबल वार्मिंग से हो रहे बदलावों को प्रत्यक्ष महसूस करने लगे हैं। आज संसाधनों की कमी, प्रकृति का बदलता व्यवहार और आपदाओं की खबर विश्व के हर कोने से आ रही है। हमे यह सोचना चाहिए की भू–गर्भ, समुद्र और अंतरिक्ष को भी निचोड़ लेने की लालसा और प्रक्रिया हमारे किन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हो रहा है? क्या यह भी विकास के नाम पर भयंकर परिणामो की ओर विश्व को धकेलने का कदम तो नही?

इन समस्याओं का समाधान तो हमारी वर्तमान और भविष्य की नीतियों की दिशा और सकारात्मक प्रयासों में है, लेकिन अगर हम इतिहास के छात्र के रूप में भी विकास के नाम पर उत्पन्न समस्याओं की पड़ताल करें तो इतिहास से सही सबक लिया जा सकता है या सचेत रहा जा सकता है।

पश्चिमीकरण और तकनीकीकरण के नाम पर तथा तार्किक एवं वैज्ञानिक वर्चस्व के रूप में उपनिवेशिक और साम्राज्यवादी शक्तियों ने कथित तौर पर विश्व के आधुनिकीकरण का प्रयास किया तथा इस विचारधारा से उन्होंने अपने सभी कृत्यों को विकास की और अग्रसर प्रक्रिया के रूप में समझाने का प्रयास किया। उन्होंने बड़े ही दमनकारी तरीके से पूरे विश्व को अपनी संपत्ति मानकर अवश्यकताओं के अनुरूप संचालित करने का प्रयास किया। अतः इस पाठ में हम अफ्रीका में उपनिवेशी, साम्राज्यवादी शक्तियों की कार्यप्रणाली, नीतियों एवं उनके शासन के प्रभावों को संक्षिप्त में समझने का प्रयास करेंगे।

2.2 उद्देश्य

- इस पाठ को पढने के बाद आप अफ्रीका का 19वीं और 20वीं सदी में साम्राज्यवादी राष्ट्रों द्वारा शोषण और विभाजन समझ पाएंगे।
- आप यह जान पाएंगे कि कैसे पश्चिमी औद्योगिक शक्तियों ने पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत अधिक लाभ कमाने के लिए, अपनी औद्योगिक पूर्ति और विकास के लिए एवं आपसी स्पर्धा के कारण बड़े ही मनमाने तरीकों से अफ्रीका का विभाजन किया।
- यह पाठ आपको उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद पूँजीवाद के विमर्श को समझने में सहायक होगा।
- हम अफ्रीका पर साम्राज्यवाद एवं औपनिवेशीकरण के कारण हुए राजनातिक परिवर्तन को समझ सकेंगे।
- हम साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद को लेकर बीसवीं सदी के विश्व के मिजाज़ को भांप सकेंगे।

2.3 अफ्रीका में साम्राज्यवाद और अफ्रीका का विभाजन

2.3.1 पृष्ठभूमि

प्राचीन काल से ही हम जानते हैं, कि अफ्रीका विशाल संस्कृतियों का केंद्र रहा है। अफ्रीका प्राकृतिक रूप से बहुत प्रकार के संसाधनों से भरा हुआ हैद्य यहाँ बड़ी–बड़ी नदियां, झरने, लम्बे समुद्रीय तट, बड़े रेगिस्तान, घास के मैदान और घने जंगल हैद्य यहाँ बहुत सारे खनिज का भी भण्डार है। अफ्रीका के बारे में हम जानते हैं कि यहाँ से विश्व के अनेक भागों के साथ दास व्यापार होता था। यदि हम भारत के मध्यकालीन इतिहास को भी देखें तो पाएंगे कि कैसे (खासकर बहमनी साम्राज्य) अफ्रीका मूल के लोग आयुद्ध जीवी के रूप में भी हिन्दुस्तान

में आते रहे है। 19वीं सदी से पहले यूरोपीय देश इसे 'अंधमहाद्वीप' (क्ंता बवदजपदमदज) के नाम से संबोधित करते थे, क्योंकि उनका ज्ञान इस महाद्वीप के बारे में शुरू में बहुत सीमित था। यह महाद्वीप 15वीं सदी में यूरोप के संपर्क में आया, इस संपर्क का मुख्य कारण अमेरिका में नकदी फसलों की बागबानी में श्रम करने के लिए अफ्रीका से पकड़ कर लाये गए मजदूर पहुँचाना था, मुख्य रूप से दास व्यापार के चलते ही अफ्रीका पश्चिमी देशों के संपर्क में आया था।

उधर अफ्रीका के दक्षिण भाग में अंग्रेजों और डच (बोअरों) ने वाल और ऑरेंज नदियों तक के भू–भाग पर कब्ज़ा जमा रखा था। शुरुआत में दक्षिण अफ्रीका में बोअर लोगों का ही बोल–बाला था जो मूल निवासियों को अपने अधीन करके, उन पर राज कर रहे थे। 1650 ई० में डचों ने केप ऑफ़ गुड होप (सदाशा का अंतरीप) में पहुंचकर उसे अपने कब्ज़ा में किया। बाद में यूरोप की बदलती हुई राजनीति के कारण ऐसे उपनिवेशों पर कभी फ्रांस तो कभी अंग्रेज कब्ज़ा करने की कोशिश करते रहे।

अंततः दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों का ही कब्ज़ा हुआ, उन्होंने निरंतर (बोअर स्थानीय डच) निवासियों को निरंतर उत्तर की ओर धकेला। तंग आकर बोअर लोगों ने 1836 ई० में केप ऑफ़ गुड होप से उत्तर को नेटाल और ऑरेंज–फ्री स्टेट नामक बस्तियां बसाई। 1848 ई० में अंग्रेजों ने इन बसावटों को भी अपने कब्ज़े में ले लिया, हारकर बोअर लोगों को उत्तर की और वाल नदी को पार करके नयी बस्तियां बनानी पड़ी। 1854 ई० तक (ट्रांसवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट) दो उपनिवेश डच बोअर के और दो (नटाल और केप कॉलोनी) अंग्रेजों के हो गए थे। सोने तथा हीरे की खानों के कारण दक्षिण अफ्रीका उपनिवेशवादियों का ध्यान खींचता रहा।

बोअर तथा अंग्रेजों के बीच 1899–1902 ई० में युद्ध हुआ जिसे अंग्रेज़ जीत गए, लेकिन बोअर लोगों को स्वशासन दिया गया, 31 मई 1910 ई० केप कालोनी, नटाल, ट्रांसवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट को मिला कर दक्षिण अफ्रीकी संघ बनाया गया। 1914 ई० में यह संघ अंग्रेज़ साम्राज्य का प्रोटेक्टोरेट / संरक्षण में स्वशासित प्रदेश बन गया।

नव–उपनिवेशी काल में यूरोप के अंदर अनेक शक्तिशाली राष्ट्र आपस में स्पर्धा कर रहे थे, पुर्तगाल, डच, स्पेन, फ्रांस, इंग्लैंड के अलावा जर्मनी, इटली, बेल्जियम इत्यादि। वहीँ रूस और अमेरिका भी लगातार अपना प्रभाव क्षेत्र फैलाना चाहते थे।

उन्नीसवीं–बीसवीं सदी में यह साफ़ दिखता है कि पश्चिमी देशों का साम्राज्यवादी विस्तार और औपनिवेशीकरण तीव्र गति से विश्व के कोने–कोने में फैला। आधुनिक युग में पश्चिमी देश उपनिवेश और साम्राज्य विस्तार के लिए लालायित थे। साधारणतया इसके मूल में पश्चिमी देशों में बीती हुई सदियों में हुए कृषि विकास, सामाजिक सुधार, वैज्ञानिक क्रांति, और औद्योगीकरण को मूलभूत कारण माना जाता है, जिसके चलते यूरोपीय देशों का तीव्र विकास हुआ। इनके अलावा साम्राज्यवाद के विस्तारवादी स्वरुप को विभिन्न सिद्धांतों द्वारा समझने का प्रयास भी किया गया हैद्य पुर्तगाल, डच, स्पेन, फ्रांस, इंग्लैंड 19वीं सदी और 20वीं सदी के भी बहुत लम्बे समय तक अफ्रीका का बहुत सारा भाग यूरोपीय औपनिवेशिक राष्ट्रों के अधीन था। अफ्रीका का औपनिवेशीकरण तो पहले ही आरम्भ हो गया था, इस पाठ में हम साम्राज्यवादी नीतियों के चलते अफ्रीका के औपनिवेशीकरण को समझेंगे।

2.3.2 अफ्रीका में साम्राजवादी विभाजन का घटनाक्रम

1880ई० से 1935ई० विश्व में किसी भी महाद्वीप का साम्राज्यवादी शक्तियों ने इतना नाटकीय और तीव्रता से विभाजन नही किया था। उसमे भी 1880ई० से 1910 ई० का समयकाल अफ्रीका के लिए सबसे ज्यादा नाटकीय बदलाव का रहा। इस समय काल में अफ्रीका ने अपने आपको नव उपनिवेशवाद के पाश में पाया और लगभग सारे अफ्रीका का ही औपनिवेशीकरण हो गया था। साम्राज्यवादी शक्तियां अफ्रीका पर अपनी मनमानी व्यवस्थाएं लागू करने लगे थे। 1910ई० के बाद का समय अफ्रीका में साम्राज्यवादी शक्तियों के सुदृढ़ीकरण का काल रहा।

1880ई० तक अफ्रीका के अस्सी प्रतिशत भाग पर स्थानीय शासक शासन कर रहे थे, लेकिन इसके बाद के तीन दशकों में हालत तेजी से बदल गए। इथोपिया और लीबिया को छोड़कर बाकी सभी क्षेत्रों पर यूरोपीय औपनिवेशिक देशों का कब्जा हो गया था। राजनीती और शासन के तरीकों में बदलाव के साथ ही अफ्रीका के लोगों ने राजनीतिक संप्रभुता और आजादी को खोया ही नहीं बल्कि उन्हें अपनी संस्कृति पर भी आघात झेलने पड़े प्राचीन व्यवस्थाएं, विचार, विश्वास, परम्पराएं और जीवन शैली हाशिए की ओर धकेल दी गई।

2.3.3 बर्लिन सम्मलेन (1884–1885)

यूरोपीय राष्ट्रों के बीच की आपसी स्पर्धा के कारण कांगो क्षेत्र में उत्पन्न संकट से बचने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की राय सबसे पहले पुर्तगाल ने दी, बाद में बिस्मार्क ने इस विचार को संभव किया। 15 नवम्बर 1884 और 26 नवम्बर 1885 बर्लिन सम्मलेन हुआ, इस सम्मेलन में गंभीरता से दास व्यापार और मानवीय आदर्शों पर कोई चर्चा नही हुई थी, बल्कि इसमें दास व्यापार के अंत और अफ्रीका के कल्याण के लिए खोखले प्रस्ताव पारित किये गये। हालांकि इस सम्मेलन का वास्तविक प्रयास अफ्रीका का विभाजन नही था लेकिन इसकी नियति यही रही। ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस और पुर्तगाल इसमें सबसे प्रमुख शक्तिशाली राष्ट्र थे। इसके अलावा ऑस्ट्रिया–हंगरी, बेल्जियम, डेनमार्क, इटली, रूस, स्पेन, स्वीडन–नॉर्वे, नीदरलैंड और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका भी शामिल हुए थे।

बर्लिन अधिनियम के तहत किसी भी यूरोपीय देश को जो अफ्रीका के तटों पर अधिकार करे या उसे अपने संरक्षण में लाएगा, उसे इस बात की सूचना बर्लिन अधिनियम पर हस्ताक्षर करने वाली शक्तियों को देनी होगी ताकि उसके दावे को जायज़ माना जा सके, इसे यूरोपीय देशों के प्रभाव क्षेत्र के नियम के रूप में प्रस्तुत किया गया (doctrine of sphere of influence)। इस प्रस्ताव के चलते तटों से जुड़े क्षेत्रों को भी प्रभाव क्षेत्र में गिना गया, इस तरह यह प्रभाव क्षेत्र तटों और तटों से जुड़े क्षेत्रों के रूप में असीमित था। यह अधिनियम इन राष्ट्रों को अपने प्रभाव क्षेत्र में असरदार तरीके से अधिकार पाने के लिए उन्हें नियंत्रण की शक्ति देता था। (effective occupation) ताकि वह बर्लिन अधिनियम की शर्तों के अनुरूप अपने क्षेत्र में मुक्त व्यापार, हस्तांतरण और अपने हितों की रक्षा कर सकें।

इस तरह के नियम बनाकर यूरोपीय शक्तियों ने पश्चिमी महाद्वीप में रहते हुए विश्व के अन्य महाद्वीपों के विभाजन की नीति का निर्माण कर लिया था। इसने भविष्य में दुसरे महाद्वीपों के क्षेत्रों को प्राप्त करने और आखिरकार अफ्रीका के विभाजन की रुपरेखा तैयार कर ली थी।

1880 से 1919 के समय काल में अफ्रीका का कागज़ी बंटवारा, सैनिक टुकड़ियों की बिसात बिछाकर बंटवारे की प्रक्रिया को मूर्त रूप देना और विजित क्षेत्र को प्रभावी रूप से अपने कब्जे में लेने की प्रक्रिया और प्रशासनिक सुधार शुरू हो गए, संसाधनों की लूट के लिए सड़क, रेलवे और टेलीग्राफ लाइन्स बिछा दी गई। इस समय अंतराल में लगभग 28 मिलियन वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र को यूरोप के औद्योगिक राष्ट्रों ने आपस में बांट लिया।

2.3.4 साम्राज्यवाद के विस्तार के सिद्धांत

हमने देखा की कैसे अफ्रीका का विभाजन साम्राज्यवादी शक्तियों ने किया। हमारे लिए संक्षिप्त में यह जानना हितकर होगा कि, साम्राज्यवाद क्यों पनपा और इसके विस्तार के क्या कारण है? तथा विद्वानों के मत इसको लेकर क्या है?

मार्क्सवादी पूंजीवादी व्यवस्था को साम्राज्यवाद का मुख्य कारण मानते हैं। वह मानते थे की पूँजीवाद में निहीत अवसरवादी प्रवृत्ति का विस्तार ही साम्राज्यवाद था। यूरोप के बाज़ार मुनाफे के लिए अन्धाधुन्ध उत्पादन से भर गए थे, लेकिन मांग न होने से उत्पादित वस्तुओं से लाभ होने की सम्भावनाए नहीं थी। इसलिए पूंजी का

निवेश ऐसे बाजारों में करना जरुरी हो गया था, जहाँ मांग हो तथा प्रतिस्पर्धा में कोई न हो। साथ ही अधिक से अधिक मुनाफे के लिए सस्ते माल, भूमि, और श्रम चाहिए थे। साम्राज्यवादी देशों ने इसका उपाय विश्व के औपनिवेशिकरण में पाया, जहाँ वो परम्परागत उद्योग–धंधों को बंद कराकर, अपने कारखाने और उससे उत्पादित वस्तुओं को मुनाफे के लिए बेचें, उन्होंने इस तरह अपने उपनिवेशों को राजनैतिक और आर्थिक रूप से अपंग करके अपने लिए नये बाज़ार पैदा किये। वि.आई. लेनिन (V-I- Lenin) ने इस बात पर बल दिया कि नवीन साम्राज्यवाद में पूंजीवाद का स्वरूप बदल गया है अब वह मुक्त प्रतिस्पर्धा के दौर से होते हुए, एकाधिकार पूंजीवाद के साथ फाइनेंस कैपिटल के दौर में पहुँच गया, और विश्व में विभाजन की स्पर्धा गहन हो गयीद्य मार्क्सवादी विचारधारा के अनुरूप पूंजीवादियों के सिंडिकेट/व्यवसाय संघ ही देश की सत्ता और राजनीति चलाने लगे थेद्य विकास के नाम पर युद्ध, क्षेत्र–विस्तार और लोगों का दमन होने लगा था। व्यापारिक कंपनियों ने भी सबसे पहले आर्थिक हितों को ध्यान में रखते हुए, व्यापारिक केन्द्रों, बंदरगाहों और मार्गों को हड़पा। यह कहा जा सकता है की पूंजीवाद के चलते ही सैनिक, आर्थिक और वैचारिक तरीकों से पूंजीवादी राष्ट्रों ने विश्व का औपनिवेशीकरण किया।

सोशल डार्वनिस्म/ अल्बिनिज्म (Albinism)

सांकृतिक रूप से यूरोपीय राष्ट्र खुद को एशिया और अफ्रीकी राष्ट्रों से श्रेष्ठ समझते थे, और उन्होंने पश्चिमी संस्कृति की वर्चस्वता का मानस तैयार किया। उनकी राजनीति और विचारधाराएं उनके पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का ही अमल/कार्यान्वयन थी। अपनी नस्ल और राष्ट्र की श्रेष्ठता के मनोभाव से भी ग्रसित होने के कारण नए और ज्यादा से ज्यादा उपनिवेश कब्जे में करना, उनके लिए शक्ति और गौरव का विषय बन गया। इसके अलावा यूरोपीय राष्ट्र 'वाइट मेन्स बर्डन' के नाम पर अपने कब्ज़े और कु–शासन को वैध मनवाना चाहते थे, 1859 में चार्ल्स डार्विन के 'दी ओरिजिन ऑफ़ स्पीसीज बाइ मीन्स ऑफ़ नेचुरल सिलेक्शन' और 'दि प्रिजर्वेशन ऑफ़ फेवर्ड रेसेज इन दि स्ट्रगल फॉर लाइफ़' (the origin of species by means of natural selection or the preservation of favoured races in the struggle for life) से वैज्ञानिक आधार लेते हुए पश्चिमी यूरोपीय लोगों की नस्लीय रूप में श्रेष्ठ होने की मानसिकता को बल मिला। विश्व की संपदा पर विश्व के सबसे सक्षम लोगों का, सही उपयोग करने की क्षमता और अधिकार की बातकरके, वह अपने औपनिवेशीकरण को जायज़ ठहराते थे। इसी मानसिकता के आधार पर श्वेत (यूरोपीय) लोगों द्वारा विश्व की अन्य नस्लों के शोषण को सही मानती थी, जिसके चलते एशिया और अफ्रीका जैसे जगहों का औपनिवेशीकरण प्राकृतिक प्रक्रिया समझी गई।

इवैंजेलिकल क्रिस्चेनिटी (Evangelical Christianity)

कुछ लोग यह भी मत रखते हैं कि, इवैंजेलिकल ईसाई मत और प्रचार कभी कहीं न कहीं नस्लीय विभेद को अपनाते हुए अफ्रीका के साम्राज्यवादी विभाजन के कारक रहे, वह औपनिवेशीकरण को मानवतावाद और परोपकार के वृहद उद्देश्य के रूप में कार्यरत देखते प्रतीत होते है, खासकर जब वह औपनिवेशीकरण के उद्देश्य को अफ्रीका के लोगों के पुनरुत्थान और विकास से जोड़ते है। यह माना जाता है की, पूर्वी और मध्य अफ़्रीका के क्षेत्रों में ईसाई प्रचारक औपनिवेशीकरण का आधार बना। हालाकि यह बात स्पष्ट होनी चाहिए, कि इस तरह से सरसरी तौर पर हम इसाई मत प्रचारको को साम्राज्यवाद के विकास के कारक के रूप में नही देख सकते ना ही हम यह कह सकते हैं, कि जहाँ भी इसाई मत का प्रचार किया गया उसका असल उद्देश्य साम्राज्यवाद का विस्तार करना था। इस तरह का कोई सिद्धांत नही बनाया जा सकता है।

जोजफ शुम्पीटर (Joseph Schumpeter) ने साम्राज्यवाद को मनुष्य की मनोभावना के उस अनजाने तत्व के रूप में समझने का प्रयास किया है जो मनुष्य को दूसरों को अपने वर्चस्व के अधीन रखने को प्रोत्साहित करता है, एक स्वभाविक दमन की इच्छा होती है। यह कहा जा सकता है की साम्राज्यवाद एक अंतर्राष्ट्रीय अहम का परिणाम है जो अंतहीन बलपूर्वक विस्तार की और बढता है।

कूटनीति की दृष्टि से साम्राज्यवाद को पश्चिमी देशों के राष्ट्रीय अहम् और वर्चस्व के रूप में देखा गया है, फिर चाहे वो उनके बीच की आपसी स्पर्धा हो या शक्ति के संतुलन के लिए प्रयास अथवा विश्व की नीति के रूप में ही क्यों ना हो। यूरोप का राजनैतिक घटनाक्रम युरोपीय राष्ट्रों के शक्ति संघर्ष को एशिया और अफ्रीका की ओर मोड़ने के कारक रहे। जब अफ्रीका में इन औपनिवेशिक साम्राज्यवादी ताकतों का टकराव यूरोप की शांति को भंग करने का का कारण बनने लगा तो वह सब इसके निवारण के लिए अफ्रीका का विभाजन करने को तैयार हो गये ताकि यूरोप में उनके शक्ति का संतुलन बना रहे।

इन सब सिद्धांतो में हम पाएंगे की यूरोप केन्द्रित मत से साम्राज्यवाद के विस्तार को समझने का प्रयास किया गया है। यानी यूरोप की राजनीती और अर्थव्यवस्था और घटनाओ के आधार पर ही विश्व के इतिहास को समझने का प्रयास किया गया है।

अफ्रीका पर केन्द्रित होकर अफ्रीका में साम्राज्यवाद के विस्तार को समझना हितकर होगा, श्रै. ज्ञमसजपम के अनुसार 1880 में शुरू हुआ अफ्रीका का बंटवारा वस्तुतः अफ्रीकी महाद्वीप के पिछले 300 वर्षों से पिसने की प्रक्रिया का तर्कपूर्ण परिणाम था। यूरोप और अफ्रीका के बीच एक लम्बे समय तक संपर्क रहा इस दौरान अफ्रीका में बढते हुए विदेशी प्रभाव के कारण वहां विरोध उत्पन्न हुआ, इस विरोध के चलते ही वास्तविक विस्तार एवं नियंत्रण का संघर्ष उतपन्न हुआ। अफ्रीका में हो रहे आर्थिक बदलाव, व्यापार में गिरावट, और यूरोप का अफ्रीकी प्रतिरोध ही सैनिक नियंत्रण और विस्तार का करक थी।

अफ्रीकी आयाम का सिद्धांत यूरोप केन्द्रित विचार का पोषण करता प्रतीत होता है, यूरोप और अफ्रीकी देशों के बीच टकराव आर्थिक कारण से ही था, दासों के व्यापार से वैधानिक व्यापार तक और उसके बाद आयात और निर्यात दोनों में गिरावट के कारण आये आर्थिक बदलाव तथा अफ्रिकी प्रतिरोध के कारण ही अफ्रीका में यूरोपीय सैनिक विस्तार हुआ।

2.3.5 साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया

यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है की ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर अफ्रीकी शासक वर्ग ने क्या किया? उपनिवेशी ताकतों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया कैसी रही? इन प्रश्नों के उत्तर में यह अवश्य कहा जा सकता है कि, अफ्रीका के शासक वर्ग एवं नायकों ने पुरजोर तरीके से इन दमनकारी व्यवस्थाओं का विरोध किया। वह हर हाल में अपनी संप्रभुता को बनाये रखना चाहते थे, और वह यथास्थिति बनाये रखने के पक्षधर थे।

इसलिए हम पाएंगे कि कुछ शासकों ने विदेशी शक्तियों से भी सन्धियाँ/विलय किया ताकि उनकी शक्ति, प्रभाव और नियंत्रण किसी न किसी रूप में बना रहे। कुछ शासकों ने कूटनीति द्वारा स्थितियों को सुधारने का प्रयास किया उन्होंने महारानी विक्टोरिया के पास सन्देश भेजे अपनी अर्जियां भेजी। हालाकि इस प्रकार के घटजोड़ करने के बाद भी जब इन शासकों की संप्रभुता खतरे में पड़ी तो उन्होंने साम्राज्यवादी शक्तियों का विरोध शुरू कर दिया। यह देखा जा सकता है, की जिन्होंने भी यूरोपीय देशों के साथ संधियाँ की, वह बाद में यूरोपियों का विरोध करने लगे थे। हम यह भी देख सकते हैं की कुछ जगह इस विरोध प्रक्रिया को धार्मिक स्वरुप या धार्मिक भावनाओं से भी सामने प्रस्तुत किया गया।

कुछ शासकों ने अपनी सेना का आधुनिकीकरण करके भी साम्राज्यवादी ताकतों का सामना करना चाहे लेकिन तुलनात्मक रूप से उनकी तैयारी और सेना औपनिवेशिक शक्तियों के सामने बहुत

सीमित थी। उदहारण के लिए, (samori True) समोरीतुरे, (Mandini)मंदिंका, इथोपिया के शासक का नाम लिया जा सकता हैद्य औपनिवेशिक शासन कम दमनकारी हों, कम अमानवीय रहे और अफ्रीकी लोगों को भी लाभ पहुंचाए। अफ्रीकी नायकों, सुधारकों की मांग शुरू में कुछ चुनिंदा औपनिवेशिक क़दमों और दुराचार को हटाने पर केन्द्रित थी। वह बल पूर्वक श्रम दान लेना, अधिक कर, लोगों को भूमिहीन करना, स्वीकृति पत्र व्यवस्था से लोगों को नियंत्रित करना, कृषि उत्पादों की कम कीमत और निर्यात वस्तु की अधिक से अधिक कीमत तय करना,

नस्लीय भेदभाव (Apartheid) और लोगों को पृथक करने के खिलाफ थे। वह आवशयक फसलों की उपज करवाना, अस्पातल, जल और स्कूल जैसी सुविधाओं की मांग और अन्य अपूर्ण सुविधाओं का सुधार चाहते थे।

1800 से पहले ही दास व्यापार के अंत, नकदी फसलों की अर्थव्यवस्था और आधुनिक शिक्षा प्रणाली को अफ्रीकी लोग अपना चुके थे, अफ्रीका के अधिकतर क्षेत्रों में यह बदलाव यूरोपीय उपनिवेशी शक्तियों के प्रत्यक्ष हस्ताक्षेप के बिना ही आने लगे थे। पश्चिमी अफ्रीका में आधुनिक शिक्षा प्राप्त कर लोग नौकरशाही, व्यापार आदि क्षेत्रों में अच्छा कमाने लगे थे, इसलिए 1800ई० तक अफ्रीकी लोगों ने शायद ही भविष्य में होने वाले इस बंटवारे की कल्पना की हो। उन्हें ऐसा कभी नहीं लगा कि वह इन विदेशियों की बराबरी या उनका सामना नही कर सकते हैद्य ऐसे में इस संघर्ष में अफ्रीका की विफलता के कारण समझने जरुरी है।

2.3.6 अफ्रीका के पिछड़ने के कारण

यूरोपीय देश खोजकर्ताओं, प्रचारकों इत्यादि के माध्यम से अफ्रीका के बारे में बहुत जानकार होगए थेद्य उन्हें अफ्रीका के भूभाग, अर्थव्यवस्था और संसाधनों का ज्ञान था, जबकि अफ्रीकी लोग अपने यूरोपीय विरोधियों के बारे में तुलनात्मक रूप से बहुत कम जानते थे। चिकित्सा के क्षेत्र में भी यूरोपीय विकास ने उन्हें अफ्रीका की परिस्थितयों में टिके रहने में सहायता प्रदान की, यूरोप के देश युद्ध और हथियारों पर अपना धन व्यय कर सकते थे।

आधुनिक तकनीकि ज्ञान के अभाव में और यूरोपीय देशों का अफ्रीकी अर्थव्यवस्था पर निरंतर बढता नियंत्रण अफ्रीकी देशों को कमजोर करता गया। अफ्रीकी देश उनका सामना नही कर सकते थे, खासकर युद्ध के मैदान में उनके बीच के इस अंतराल को काफी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था। एक ओर तीर कमान, भालों से अफ्रीकी कबिले पश्चिमी शक्तियों की बंदूकों से लड़ रहे थे, जिनके पास बंदूके भी थी वह तकनीकि रूप से अब पुरानी हो गयी थी, वहीँ मैक्सिम गन, गैटलिंगगन ओर हवाईजहाजों से पश्चिमी साम्राज्यवादी ताकतें अफ्रीका पर टूट पड़ी थी।

अफ्रीका में अंतर्राज्य और अंतर्राज्यीय टकराव और शत्रुता के कारण वह पूर्ण रूप से साम्राज्यवादी देशो से संघर्ष में अपनी उर्जा नही लगा सकते थे। अफ्रीकी देशो के संघर्ष में किसी भी विदेशी शक्ति ने उनका साथ नही दिया यानी एक यूरोपीय शक्ति को हराने के लिए उन्हें किसी दुसरे अफ्रीकी देश का साथ नही मिला। इसके विपरीत अपनी संप्रभुता को बनाये रखने के लिए कुछ अफ्रीकी शासकों ने यूरोपियों के साथ संधि की थी। हलाकि अंततः वह भी अपने हितों की रक्षा नही कर पाए और उन्होंने भी यूरोपीय शक्तीयों का विरोध किया।

1914 में साम्राज्यवादी शक्तियों में विभाजित अफ्रीका का मानचित्र

1 फ्रांस, 2 ब्रिटेन, 3 बेल्जियम, 4 स्पेन, 5 इटली, 6 जर्मनी, 7 पुर्तगाल, 8 स्वतंत्र क्षेत्र

Jksr:http:@www.newworldencyclopedia.org@entry@Scramble-for-Africa (only unmarked outline map was used from this source)

2.3.7 साम्राज्यवादी औपनिवेशीकरण का प्रभाव

साम्राज्यवादी देशों का यह सदैव ही दावा रहा की वह प्रधान देश के रूप में अपने सभी उपनिवेशों के विकास के लिए ही कार्यरत रही है, उनका उद्देश्य सारी मानव सभ्यता का विकास ही रहा है। वह दावा करते रहे कि पुलिस सुधार, नया लोकतान्त्रिक क़ानून, शासन करने की नवीन प्रणाली, आधुनिकशिक्षा, यातायात, संचार माध्यम और औद्योगिक निर्माण उन्ही की देन है। इस बात को पूरी तरह नकारना मुश्किल लग सकता है। ऐसे में हमारे लिए यह भी जानना जरुरी है कि, इन सब बदलावों या विकास के पीछे साम्राज्यवादी शक्तियों की असली मंशा क्या थी? क्या उनके द्वारा किया गया विकास अफ्रीका के हितों के लिए था या उसके शोषण के लिए? इस पूरे दौर में अफ्रीका ने कितना खोया और कितना पाया?

अफ्रीका के अश्वेत इतिहासकार और मार्क्सवादी इतिहासकारों का मानना है कि, उपनिवेशवाद से अफ्रीका को कोई फायदा नही हुआ। इसका एक मात्र सकरात्मक बदलाव यह रहा कि इससे अफ्रीका में एक नवीन प्रकार के राष्ट्रवाद तथा पैन–अफ्रिकवाद के विचार और भावना अफ्रीका में उभरी, अब वह अपनी पहचान की राजनीती अथवा चेतना को लेकर गंभीर हो गये थे ।

यह बदलाव औपनिवेशिक व्यवस्थाओं या औपनिवेशिक सत्ता के सकरात्मक बदलाव का परिणाम नही था बल्कि यह उनके प्रति अफ्रीकी लोगों के क्रोध, निंदा एवं हताशा के कारण हुआ था क्योंकि औपनिवेशिक सरकार अत्यंत दमनकारी थी तथा हर स्तर पर भेदभाव करती थी। औपनिवेशिक बंटवारे द्वारा बनाये गये इन नये अफ्रीकी राष्ट्रों और औपनिवेशिक सरकार के प्रति अफ्रीकी लोगों की कोई वफादारी नही थी। यह राष्ट्रवाद मूलतः साम्राज्यवाद विरोधी था।

जैसा की हम जानते हैं कि मनमाने ठंग से अफ्रीका का बंटवारा हुआ था, इस तरह से उभरे हुए अफ्रीका के देश ज्यादातर असंतुलित थे। इस पूरी प्रक्रिया से कई सारी पुरानी सामाजिक व्यवस्थायें, समुदाय और राज्य अस्त–व्यस्त हो गए। अफ्रीका की अनेकता भरी संस्कृति, भाषा और अलग–अलग समय काल में उपजे समाजों का विस्थापन हुआ, तो कहीं असंतुलित रूप से यह मिश्रित हो गए। नए उभरते राष्ट्रों की समस्या यह थी कि, यह भौगोलिक सीमाओं और आकार में सामान रूप से व्यवस्थित नही किये गए थे। एक तरफ सूडान, नाइजीरिया, अलजीरिया और जाईरे जैसे अत्यंत विशाल देश बन गए तो दूसरी ओर गाम्बिया, टोगो और बुरांडी जैसे कुछ बहुत ही छोटे देश भी बन गये थे। कुछ राष्ट्रों के पास बहुत लम्बी तटरेखा वाला क्षेत्र था तो कुछ चारों तरफ से भूमि से ही जुड़े हुए थे। कुछ राष्ट्र सम्पदाओं को लेकर बहुत ही लाभदायक स्थिति में थे, तो कुछ देश बहुत सारे राष्ट्रों की सीमाओं से जुड़े हुऐ थे।

अफ्रीका के सफल बंटवारे को अमली जामा पहनाने के लिए इन औपनिवेशिक सत्ताओं ने विशाल सेनाए बनायीं थी जिसमे अधिक संख्या में अफ्रीकी मूल के ही लोग थे। इस तरह की सेनाओं का उपयोग कर न केवल अफ्रीका के विभिन्न क्षेत्रों को हासिल किया गया बल्कि इन सिपाहियों को विश्व युद्ध में भी झोंका गयाद्य अफ्रीका में हो रहे राष्ट्रवादी आंदोलनों को कुचलने के लिए भी इनका इस्तमाल किया गया।

साम्राज्यवाद का सबसे प्रमुख प्रभाव तो अफ्रीकी लोगों की आजादी और संप्रभुता का ह्रास था। साम्राज्यवादी शक्तियों ने अफ्रीकी देशों के भविष्य को अन्धकार में डाल दिया। अफ्रीकावासी अपनी इच्छा, हितों और विकास के लिए अफ्रीका को दिशा और आकार नही दे पाए। इसके उलट औपनिवेशिक ताकतें अपने हित साधने के लिए अफ्रीका का शोषण करती रही। उपनिवेशवाद के कारण अफ्रीका विश्व राजनीति अथवा कूटनीति में सक्रीय भूमिका से वंचित हो गया इसके उलट वह साम्राज्यवादी देशों का शिकार हो गया। औपनिवेशिक शासक मानव अधिकार, लोकतंत्र और विकास की दुहाई देकर अपने शासन को जायज ठहराते थे, जबकि अफ्रीका को मौलिक अधिकारों से वंचित रखा गया और अफ्रीका को साम्राज्यवादी शक्तियों ने पूर्णतः अपने पर आश्रित कर लिया था।

साम्राज्यवादी शक्तियों के अधीन अफ्रीका की भूमि का यथासंभव व्यवसायीकरण किया गया, जंगलों को संरक्षण के नाम पर नियंत्रित किया गया। अफ्रीका के बाजारों को भारी मात्रा में उपभोग की वस्तुओं से भरा गया। यहाँ पर मुद्रा अर्थव्यवस्था का संचार किया गया, बैंकों का निर्माण किया गया। साम्राज्यवादी शक्तियों ने अफ्रीका में सड़क, रेलमार्ग इत्यादि यातायात का विकास वहां के लोगों को आपस में मिलाने या उनके बीच सम्पर्क साधने के लिए नही किया था, और ना ही इसका लक्ष्य लोगों को सुख सुविधा प्रदान करना था। इसके उलट संसाधनों के ज्यादा से ज्यादा उपभोग, हस्तांतरण, नकदी फसलों के क्षेत्रों को अपनी पकड़ में लाना और अफ्रीका को विश्व के उपभोक्ता बाज़ार से जोड़ना था ताकि अफ्रीका में अपना माल बेचा जा सके। अफ्रीका में यातायात और जनसंचार के माध्यमों का विकास औपनिवेशिक शक्तियों ने अपने राजनैतिक और आर्थिक हितों के अनुरूप किया था। इस तरह उनका नियंत्रण और दमन भी अफ्रीका के विभिन्न क्षेत्रों में फैला।

इस बदलाव के कारण स्थानीय उद्योग और शिल्प पिछड़ गया उन्हें दर किनार किया गया। विश्व बाज़ार से आने वाली निर्मित वस्तुएं आयात होती रही, इस तरह की बाज़ार नीति के कारण अफ्रीका का खुद का तकनीकि विकास अवरुद्ध होता रहा, हस्तशिल्प और पारंपरिक उद्योग शैली का ह्रास होता रहा।
आजादी के बाद अफ्रीकी देशों ने खुद को एक ही प्रकार की फसल पर आश्रित अर्थव्यवस्था में जकड़ा पाया। नकदी फसलों की अर्थव्यवस्था के कारण यहाँ भुखमरी के हालत पैदा हो गए, कृषि उत्पादन में खाधान्न का उत्पादन कम होने के कारण खाद्यान्न बाहर से आयात करना पड़ा। उदहारण के लिए हम देख सकते हैं, की गाम्बिया (Gambia) में लोगों को मूंगफली की फसल उगाने के लिए धान की खेती छोड़नी पड़ी, बाद में धान की कमी के कारण देश को उसका आयात करना पड़ा।

खाद्यान्न पर ध्यान ना देना और बल पूर्वक श्रम लेने की उपनिवेशी नीति के कारण अफ्रीका में कुपोषण की स्थिति पैदा हुई, साथ ही आकाल और महामारी फैली।

हम यह कह सकते हैं कि, अगर बिना औपनिवेशिक शासन के अफ्रीकी देश अपनी अर्थव्यवस्था संचालित कर पाते तो वह बहुत ही संतुलित होती। औपनिवेशिक शासन के अधीन उपनिवेशों को उन वस्तुओं का निर्माण करना पड़ा जिसका वो शायद ही उपयोग करना चाहते थे तथा उन चीज़ों का उपभोग करना पड़ा जिसकी शायद ही कोई मांग थी। कम से कम इतने बड़े पैमाने पर तो शायद ही इन चीज़ों का उपभोग किया जा सकता था, यह उत्पादन अफ्रीका के निवासियों की जरूरतों के अनुरूप नही हो रहा था। इनके अलावा जिन चीज़ों का आयत अफ्रीका में हो रहा था, वह भी यहाँ के लोगों की सीधी जरुरत नही थी, असल में साम्राजवादी शक्तियां इन उपनिवेशों के संसाधनों का अपने मुनाफे के लिए निवेश कर रही थी तथा विदेशी सामग्री को अफ्रीका के बाज़ार में बेचकर और मुनाफा कमाना चाहती थी। इस पूरी मुनाफे से जुडी अर्थ व्यस्था में अफ्रीका के सामाजिक सरोकार पर कोई ध्यान नही था। साम्राज्यवादी अर्थवयवस्था में कृत्रिम मांगो का निर्माण किया गया। यह नीति इतनी अंधी और स्वार्थ परक थी कि इसके कारण अफ्रीका की आमजनता भुखमरी और अकाल की शिकार हुई और फटेहाल हो गयी थी।

अफ्रीका में यह देखने को मिलता है की उपनिवेशी शक्तियों ने यहाँ के मूलनिवासियों की जमीनों पर अपना कब्ज़ा कर लिया था। अधिकांश क्षेत्रों में श्वेत लोग अपनी जनसंख्या के अनुपात में बहुत ज्यादा क्षेत्र में अपना कब्ज़ा किये हुए थे। उनके अधीन ज्यादातर उपजाऊ भूमि थी। उदहारण के लिए दक्षिण अफ्रीका में 80ः भू–क्षेत्र श्वेतों के लिए आरक्षित था, जबकि उनकी जनसंख्या वहां पर केवल 20ः थी। अफ्रीका में व्यापारी फर्मो, कंपनीयों का निरंतर अल्पधिकारी (oligarch) के रूप में समेकन हो रहा था। इस तरह आयात और निर्यात को संचालित करने वाली यह अल्पधिकारी (वसपहंतबील) वर्ग ही सभी लाभ लेते रहे और अपने हितों के अनुरूप व्यवस्थाओं को मोड़ते रहे। इस साम्राज्यवादी व्यवस्था के कारण बड़े पैमाने पर अफ्रीका में लोगों का विस्थापन हुआ, उन्हें पलायन करना पड़ा। स्वीकृति पत्र (pass system) की व्यवस्था हो या खनन के क्षेत्र में, या बागानों में, अत्याचार ने अफ्रीकी लोगों की विकास यात्रा में बड़ी रुकावट पैदा की।

अभ्यास एवं बोध–प्रश्न

प्र– 1 दक्षिण अफ्रीका में श्वेत लोगों की जनसंख्या के अनुपात में उनका कितने प्रतिशत क्षेत्र पर कब्ज़ा था?
प्र– 2 बर्लिन सम्मेलन कब हुआ था? इसमें सबसे प्रमुख कौन से शक्तिशाली राष्ट्र थे?
प्र– 3 19वीं सदी से पहले किस महाद्वीप को 'अंधमहाद्वीप' (कंता बवदजपदमदज) के नाम से जाना जाता था?
प्र– 4 नीचे दी गयी जानकारी को पूरा करें?
बर्लिन अधिनियम के तहत किसी भी ..... 1 ..... को जो अफ्रीका के तटों पर अधिकार करे या उसे अपने संगरक्षण में लाएगा, उसे इस बात की सूचना बर्लिन अधिनियम पर हस्ताक्षर करने वाली शक्तियों को देनी होगी ताकि उसके दावे को जायज माना जा सके, इसे यूरोपीय देशों के .... 2 .... के नियम के रूप में प्रस्तुत किया गया। बर्लिन सम्मेलन के अधिनियम इन राष्ट्रों को अपने प्रभाव क्षेत्र में असरदार तरीके से अधिकार पाने के लिए उन्हें नियंत्रण की शक्ति देता था। ताकि वह बर्लिन अधिनियम की शर्तों के अनुरूप अपने क्षेत्र में ..... 3 ..... और ... 4 ...... तथा अपने ..... 5 .... कर सकें।

2.4 सारांश

हम ने जाना की विकास के नाम पर औपनिवेशिक शक्तियों ने सारे अफ्रीका महाद्वीप को आपस में विभाजित कर दिया था। अफ्रीका के लोगों की संप्रभुता और उनकी आजादी छीन ली गई, इन साम्राज्यवादी शक्तियों का मूल उद्देश्य केवल मुनाफा कमाना थाद्य वह अपने वर्चस्व को सब पर कायम करना चाहते थे, सर्वश्रेष्ट होने के लिए वे निरंतर मानव सभ्यता और प्राकृतिक संसाधनों को नुकसान पहुंचाते रहे। साम्राज्यवाद के अंतर्गत स्थानीय विकास कभी भी पूंजीवादी शक्तियों का प्रत्यक्ष लक्ष्य नही था, बल्कि उपनिवेशों में हुए विकास वस्तुतः शोषण और उपभोग की तीव्रता के लिए ही प्रस्तुत किये गए थे। इस पूरी प्रक्रिया में जहाँ आधुनिक तकनीक और हथियारों से विस्तारवाद संभव हो पाया वहीं दूसरी और इनके चलते पारंपरिक ज्ञान, जीवन निर्वाह के लिए पारिस्थितकी तंत्र से सामंजस्य बना कर जीने की शैली को अंधकार की छाया समझ के नकार दिया गया जबकि आज हमे संपोषित (ेनेजंपदंइसम) विकास पर आधारित व्यवस्थाओं की सबसे ज्यादा जरुरत है।

2.5 तकनीकी शब्दावली

1– **Doctrine of sphere of influence :** एक देश या क्षेत्र जिसमें किसी अन्य देश को वहां विकास को प्रभावित करने की शक्ति हो, चाहे उसकी वहां औपचारिक सरकार भी नही हो।

2–**Pass system:** ओपनिवेशिक सरकार द्वारा पारित वह क़ानून जिससे अफ्रीकी अश्वेत जनता की गतिविधियों को सीमित किया जाता था। यह एक आंतरिक पासपोर्ट प्रणाली की तरह था, अश्वेत लोगों को उनके लिए तय कर दिए गए क्षेत्र से बहार आने जाने के दौरान यह पास अथवा स्वीकृति पात्र होना अनिवार्य था।

3– **अपार्थाइड (Aparathied)/रंगभेद नीति–** जाती, नस्ल या रंग के आधार पर पृथक्करण करने के लिए दक्षिण अफ्रीका संघ में गोरे काले एवं अन्य वर्ण के लोगों को एक दूसरे से अलग करने के लिए व्यवहार में लायी गयी नीति को अपार्थाइड (Aparathied)/रंगभेद नीति कहते हैं।

4– **वाइट मैंस बर्डन:** यूरोपीय साम्राज्यवादी राष्ट्रों का तथाकथित नैतिक दायित्व या भार, जिसके अंतर्गत यूरोपीय श्वेत लोगों का श्रेष्ट होने के कारण, अन्य लोगो को सुधारने, संवारने और सभ्य बनाने का तथा स्वशासन के लिए उन्हें तैयार करने की जिमेदारी थी। वास्तव में अपने शासन, शोषण और नीतियों को जायज़ ठहराने के लिए यह शीगूफ़ा छोड़ा गया था।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उ–1 दक्षिण अफ्रीका में 80ः क्षेत्र श्वेतों के लिए आरक्षित था, जबकि उनकी जनसंख्या वहां पर केवल 20ः थी।

उ– 2 बर्लिन सम्मेलन 1884–85 ई० में हुआ था, इसमें प्रमुख शक्तिशाली राष्ट्र ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस और पुर्तगाल थे।

उ– 3 अफ्रीका महाद्वीप को अंध महाद्वीप (कंता बवदजपदमदज) कहा जाता था।

उ– 4 (1) यूरोपीय देश (2) प्रभाव क्षेत्र (3) मुक्त व्यापार (4) हस्तांतरण (5) हितों की रक्षा।

2.7 अध्ययन सामग्री

Boahen, A. Adu (ed). General History of Africa, Vol.vii, Africa Under Colonial Domination, 1880&1935, UNESCO, 1985.

Davidson, Basil. Modern Africa a Social and Political History, Longman, 1994.

J.Reid, Richard. A History of Modern Africa: 1800 to the Present, John Wiley & Sons, 2012 2nd edition (relevant section available online at google book)

2.8 प्रस्तावित अध्ययन सामग्री

Ajayi, F. Ade (ed-), UNESCO General History of Africa, Vol- VI, 1989.

Flint, E (ed-). Cambridge History Of Africa, Vol. V 1976.

Mazrui, A. (ed-). UNESCO General History Of Africa Vol. VIII (1993).

Crowder, Michael.(ed.), Cambridge History of Africa, Vol- VIII,1984.

Donald Crummey (ed.) Banditry, Rebellion and Social Protest in Africa 1986.

Magubane, Bernard. Political Economy of Race and Class in South Africa 1979.

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्र–1 अफ्रीका महाद्वीप के साम्राज्यवादी बटवारे की प्रक्रिया पर टिप्पणी कीजिये?

प्र–2 1880ई० के बाद क्या औपनिवेशिक शक्तियों ने अफ्रीका के प्रति अपनी नीति बदली? अपने उत्तर का समर्थन करते हुए साम्राज्यवादी नीतियों का आंकलन करें?

प्र–3 साम्राज्वाद के विस्तार को लेकर बहुत सारे विचार एवं सिद्धांत दिए गए हैं, अफ्रीका में साम्राज्यवादी उपनिवेशीकारण को उजागर करते हुए इन विचारों एवं सिद्धांतो की चर्चा करें?

इकाई तीन : जापान आधुनिक राज्य के रूप में उदय, जापानी साम्राज्यवाद

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्धेश्य

3.3. पृष्ठभूमि

3.3.2 पश्चिम से संपर्क

3.3.3 मिजी सुधार(1868ई.–1912ई.)फुकोकु–क्योहेई) समृद्ध देश–मजबूत सेना

3.3.3.1 आधुनिक शिक्षा

3.3.3.2 भू–सुधार

3.3.3.3 मिजी संविधान

3.3.3.4 आर्थिक और सैनिक बदलाव

3.4. साम्राज्यवादी जापान

3.4.1 कोरिया में उपनिवेशवाद

3.4.2 जापानी साम्राज्यवाद का पतन

3.5 सारांश

3.6 विशेष शब्दावली

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8 संदर्भ सामग्री

1.9 प्रस्तावित अध्ययन सामग्री

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

बीसवीं सदी के इतिहास में दुनिया के लिए दो विश्व युद्ध सबसे बड़ी घटनाएं थी। एक ओर तकनीकी,औद्योगिक,आर्थिक और सैन्य शक्ति के रूप में ज्यादा बलशाली राष्ट्र, खुद को श्रेष्ठ और सबसे अग्रिम राष्ट्र होने का दम भरते रहे। वह प्रयास करते रहे कि वह सारी दुनिया को संचालित करें तथा विश्व के सारे संसाधनों पर उनका कब्ज़ा हो। दूसरी ओर बहुत सारे ऐसे राष्ट्र थे जो साम्राज्यवादी उपनिवेशिक शक्तियों के दमन को झेल रहे थे। अपनी स्वतंत्रता, संप्रभुता और अस्तित्व को बनाये रखने के लिए बाकि सभी राष्ट्रों के पास यह विकल्प थे कि वह या तो खुद को इन राष्ट्रों के बराबर के स्तर पर लायें या इन दमनकारी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करें। यह जानना रोचक होगा की जापान ने कोन सा रास्ता अपनाया और यह रास्ता कितना सही था?

3.2 उद्धेश्य

- इस पाठ को पढ़ने के बाद हम जापान के मध्यकालीन व्यवस्थाओं के अंत और जापान के आधुनिकीकरण के सम्बन्ध को समझ पायेंगे।
- हम मिजी सुधारों को जान सकेंगे।
- हम जापान के सामाजिक और राजनीतिक बदलाव को समझ पायेंगे।
- हम जापान के साम्राज्यवाद को जान पाएंगे।

3.3. पृष्ठभूमि

प्रशांत महासागर के एक छोर पर अमेरिका जैसा भोगोलिक रूप में असीम देश है, तो दूसरी ओर जापान जैसा छोटा सा देश है । मध्यकालीन व्यवस्थाओं के अंत के साथ ही इन दोनों देशों ने औपनिवेशिक विस्तारवाद, औद्योगीकीकरण, आधुनिकता और गृह संकट अनुभव किये । सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सुधारों से विकासवाद की सीढीयाँ चढते हुए यह राष्ट्र साम्राज्यवादी नीति के चलते शत्रुओं की तरह आमने सामने आ खड़े हुए । एशियाई देशों में जापान एक मात्र ऐसा राष्ट्र उभर के सामने आता है, जो अपनी नीतियों में महत्वपूर्ण बदलाव कर एक तरफ औपनिवेशिक शक्तियों से अपने आप को सुरक्षित रखता है तो दूसरी तरफ वह खुद ही पूँजीवाद और पश्चिमीकरण की नीतियों को अपनाकर खुद को एक साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में स्थापित करने में सफल रहता है।

विश्व के मानचित्र में जापान पूर्व में एशिया के बड़े बड़े देशों के सामने भोगौलिक रूप से काफी छोटा दिखता है, इसके प्राकृतिक संशाधनो की पड़ताल करने पर हम पाएंगे कि जापान के पास कितनी सीमित संपदा है । ऊपर से जापान एक सक्रिय भूकंप–प्रभावी क्षेत्र है। जापान एक मात्र राष्ट्र है जिसने दो परमाणु हमलों को झेला जिसके चलते वहां मानव एवं अन्य संशाधनो की गहरी क्षति हुई, लोगो में अनुवांशिक दोष भी उत्पन्न हुए। तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद जापान ने एक बार फिर अपने आप को विकसित देशों की सूची में ला खड़ा किया। ऐसे में जापान के संघर्षों को और विकास के रहस्य को जानने की इच्छा उत्पन्न होती है। जापान के इतिहास का अध्ययन हमारी इस उत्सुकता और इच्छा को पूर्ण करने में सहायक हो सकता है क्योंकि जापान के हैरान करने वाले तथा निरंतर विकास करने की कुछ सार्थक जानकारी हमे इसके इतिहास में मिलती हैं।

प्राचीन काल में एक ओर तो जापान का भौगोलिक क्षेत्र हजारों कुल–जातियों में विभाजित था जिसके चलते वहां राजनैतिक एकता नहीं थी, दूसरी तरफ पूरे जापान में चीन के दर्शनशास्त्र का गहरा प्रभाव था। केवल दार्शनिक स्तर पर ही नहीं बल्कि जापान के लेखन एवं वास्तुकला पर भी चीन का प्रभाव साफ़तौर पर था। 11वीं –12वीं सदी से जापान में सामंतवाद शुरू हो गया था। कहने को तो राज्य के प्रशासनिक ढांचे में सबसे ऊपर सम्राट था,लेकिन वास्तविक शक्तियां भू–स्वामियों के पास ही थी। जिन्हें दैम्यो (क्ंपउलव) कहा जाता था, दैम्यो अपने वफादार समुराई–लड़ाकों की सैनिक साहयता से शासन चलाता था। शोगून के शक्तिशाली हो जाने से 1192 ई. से 1867 ई.

तक जापान में शोगून की सैनिक तानाशाई रही। 1560 ई. से 1600 ई. के काल में तीन शक्तिशाली शोगून ने जापान का एकीकरण किया। 1600 ई. में तोकुगावा लेयाशु ने जापान को एक कर वहां शासन की मजबूत शाखा तोकुगावा शौगनेत बनाई।

पन्द्रहवीं सदी में जापान में पश्चिम से व्यापारी और मिशनरी आने लगे थे, जापानियों को उनके साथ व्यापार अच्छा लगा, वह उनके हथियार और तकनीकी ज्ञान से प्रभावित हो गए थे। जापान में मिशनरीयों की गतिविधियों से और अन्य आंशिक लाभों के चलते बहुत से जापानियों ने धर्म परिवर्तन कर ईसाई धर्म अपना लिया।इसके प्रतिरोध में जापान में 1619 ई. में ईसाई धर्म को प्रतिबंदित किया गया, साथ ही यूरोपियन प्रभाव को रोकने के लिए यूरोपीय व्यापारियों और मिशनरीयों को जापान में आने से रोका गया। 1639 ई. में जापान ने 'क्लोज्ड कंट्री' नीति अपनाते हुए पश्चिमी देशों से सम्पर्क बंद कर दिया, केवल देशिमा बंदरगाह क्षेत्र डच और चीनी व्यापारियों के लिए खुला रहा। लगभग 250 सालों तक शांति और स्थिर शासन के चलते समुराई वर्ग केवल लोक सेवक अधिकारियों और लेखा जोखा देखने वाले अधिकारियों की तरह काम कर रहे थे। समुराई लगातार व्यपारियों के कर्जे के बोज से दब रहे थे। नई मुद्रा पर आश्रित अर्थव्यवस्था में व्यापारियों का रुतबा बढता जा रहा था।

3.3.2 पश्चिम से संपर्क

जापानियों ने पश्चिमी संपर्क से हुए सकारात्मक लाभों को खुले दिल से अपनाया था, उन्होंने पश्चिमी ज्ञान, विचारों को ग्रहण किया जिससे वह यूरोप की वैज्ञानिक एवं आधौगिक तकनीकों को सरलता से सीख पाए। 1774 ई. में जापानी में एनाटोमी की पुस्तक छप चुकी थी, 1787 में माइक्रोस्कोप,1840 ई. में इलेक्ट्रीक बैटरी, 1845 ई. स्टीम इंजन, स्टीमबोट और रेल मार्ग में जापान अनुभव कर रहा था। जब प्रमुख पश्चिमी उपनिवेशवादी देश अन्य एशियाई (भारत,चीन) उपनिवेशों की समस्यों को लेकर व्यस्त थे, तथा अफ्रीका जैसे बड़े महाद्वीप का बटवारा साम्राज्यवादी शक्तियां कर रही थी, जापान ने बड़ी होशियारी के साथ इस समय अंतराल का अपने विकास और आधुनिकीकरण के लिए उपयोग किया। जापान को छोड़ कर 1640 ई. से 1853 ई. तक सारे एशिया का उपनिवेशीकरण हो चुका था।

1853 ई. में यू.स कमोडोर मैथयु पैरी जब टोकियो आया तो उसने जापान के साथ यू.स.ए की व्यापार करने की इक्छा को सामने रखा,वह अपने जहाजों के लिए पानी और कोयला भी पाना चाहते थे। जापान यू.स.ए की समुंद्री ताकत को देख घबरा गया था, 1854 ई. में जब कमोडोर पैरी वापस आया तो जापान ने यू.स.ए के साथ कांगावा की संधि की, यू.स.ए के लिए जापान के दो बंदरगाह खोले गए। जापान के इस कदम के बाद अन्य उपनिवेशी देश जैसे इंग्लैंड, फ्रांस, डच और रूस ने यू.स.ए की तर्ज़ पर जापान के साथ गैर बराबरी वाली व्यापारिक संधियाँ की और जापान में एक्स्ट्रा–टेरीटोरिऐलिटी' विशेषाधिकार के साथ रहना शुरू किया। पश्चिमी लोगों को जाहिल और क्रूर समझा जाता था, शोगून सत्ता ने इन विदेशियों के किताबों की जांच पड़ताल करने के लिए एक संस्थान खोला ।

शोगून का पश्चिमी शक्तियों के साथ सम्बन्ध तथा जापान के ऊपर पश्चिमी वर्चस्व की इन संधियों को जापानी संस्कृति और परम्पराओं पर चोट के रूप में भी देखा गया था। जापान के पश्चिम में सात्सुमा (ैंजेनउं)और चोशु(बैवीन)क्षेत्र में पश्चिमी विचारों और शोगून के खिलाफ विद्रोह हो गया था। शीशी (ैीपेप) समुराई समूह ने शोगून शासकों को बिना सम्राट की अनुमति के विदेशियों के साथ संधि करने का दोषी घोषित किया। वह सम्राट को भगवान् और जापान को पवित्र भूमि के रूप में देखते थे। शोगून सत्ता का विरोध करते हुए नारा दिया गया कि ैददव–श्रवप' अर्थात सम्राट का सम्मान और विदेशियों को बहार निकालना है। इस बीच पश्चिमी व्यापारियों, अधिकारियों कूटनीतिज्ञों इत्यादि पर आक्रमण किये गए जिसके कारण जापान पर बदले की कारवाई करते हुए पश्चिमी सेनाओ ने सात्सुमा और चोशु जैसे विरोधी स्थानों पर बमबारी की और शीशी समुराई समूह को शांत कर दिया।

शोगून सत्ता ने जापानियों को सख्त हिदायत दी कि वह पश्चिमी जहाजों और निवास/कैंपो से दूरी बनाएं रखे, हालाँकि समुराई योशिदा शोइन (ल्वीपक ैवपद) पश्चिमी लोगों के रहस्यों को जानना चाहता था, वह चोरी छिपे पश्चिमी जहाजों के आसपास जाता रहा, आखिर कार उसे पकड़ के हगी (भ्हप) द्वीप में रखा गया जहाँ वह शिक्षक का कार्य

करता रहा। उसने यह बात समझाई कि अगर हमे पश्चिमी शक्तियों का सामना करना है तो हमे बंदूक की तकनीक को सिखना होगा। अब जापान वासियों को 'जापानी भावना और पश्चिमी तकनीक' का सुझाव दिया गया।

सात्सुमा और चोशु क्षेत्र में पश्चिमी हथियारों से लेस विद्रोहियों ने शोगून की सत्ता को ख़त्म करने के इरादे से उस पर सयुंक्त आक्रमण कर दिया। इस तरह जापान में भी 1860 का समय गृह युद्ध का रहा था। सगो ताकामोरीं(पहव जंउवतप) के नेतृत्व में विद्रोहियों ने शोगून की सेना को हरा दिया। विजेता सेना ने (म्कव) एडो को नया नाम टोक्यो (ज्वालव) पूर्व की राजधानी दिया तथा 16 साल के किशोर को सम्राट के रूप में स्थापित किया। सम्राट को मिजी के नाम से शासन करने का सन्देश यह था कि इसके साथ ही जापान में एक नई रौशनी/नवजागरण का शासन स्थापित हो गया है।

यह नया शासन सिर्फ नाम मात्र ही सम्राट की शक्ति का काल था, वास्तविकता में सम्राट के नाम पर नौकरशाही में प्रभावी समुराई वर्ग के एक छोटे गुट का शासन था। शोगून के अंत और मिजी सत्ता के शुरुआत से ही जापान को शुरू से एक नवीन राष्ट्र के रूप में उभारने की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी थी। सम्राट के नाम पर प्रभावशाली छोटा गुट नए नए आदेश पारित करता रहा शाही मोहर का वह मनमाने तरीके से प्रयोग करते रहे। शुरू के कुछ वर्षों में लोग बहुत ज्यादा दुविधा में थे। नयी सत्ता के लिए यह अनिवार्य था कि वह इस अराजकता की स्थिति को जल्द से जल्द अपने नियंत्रण में लाये, नई नई नीतियाँ लगातार कागजों में उतारी जा रही थी । इन नीतियों की सफलता जापान के जनता के सहयोग के बिना संभव नही थी, खासकर किसानो के समर्थन के बिना क्योंकि उन्ही के ऊपर इन बदलावों का आर्थिक भार पड़ने वाला था।

जापान के पुरुषों के लिए सेना में सेवा देना एक अनिवार्य नियम हो गया था तथा न्यूनतम स्तर तक की शिक्षा भी अनिवार्य कर दी गयी थी। एक और जनता पर ऊँची कर दर और ऊपर से उनकी संतानों को जबरन सेना में सेवा के लिए लेकर जाने वाली नित्यों के कारण जन आक्रोश बढ़ गया था, परिणामस्वरूप जापान में विद्रोह आरंभ हो गये थे। इन विद्रोहों के कारण मिजी नीति में थोडा बदलाव लाना आवश्यक हो गया था।

जापान की सरकार के पास एक रास्ता यह था कि वह ऊँची कर दरों को कम करें, रियायतें दे, और जनता को जापान के सुधार कार्यों (आधुनिकीकरण और विकास)में भागीदार बनाएं। इसके उलट जापान के शासन को चलाने वाले समुराई वर्ग के उस छोटे गुट ने समुराई के खिलाफ ही नीति लागु की, समुराई वर्ग एक लम्बे अंतराल से उत्पादन प्रक्रिया में शामिल नही था ऊपर से उन्हें चावल के रूप में दी जाने वाली वृति को काट दिया गया था। समुराई वर्ग के लिए आय और रोज़गार के नए स्रोत तलाशने का वक़्त आ गया था।

जनरल सगो तकामोरी ने समुराई वर्ग को संकट से उभरने के लिए कोरिया पर आक्रमण का प्रस्ताव रखा ताकि समुराई वर्ग युद्ध द्वारा अपनी पुरानी उपयोगिता साबित कर सके, और जापान के लिए नए क्षेत्र अर्जित कर सके। इस तरह समुराई वर्ग को एक रोज़गार मिल जाएगा। मिजी सम्राट ने यह प्रस्ताव खारिज कर दिया । सगो ने सरकार को त्याग कर उसके विरुद्ध संग्राम छेड़ दिया और कुमामोटो कैसल (ज्ञनउंउवजव बेंजसम) पर अधिकार कर लिया । बदले हुए समय में जहाँ पुरानी सामाजिक वर्गीकरण को नाकारा जा सका था और अस्त्र–शस्त्र हो या रण सभी वर्ग के लोगों को हथियार इस्तेमाल करने का अधिकार मिल गया था। नए हथियारों के साथ मेले कुचले किसान और आम लोगों की सेना ने विद्रोही समुराई वर्ग को हरा दिया था। जनरल सगो ने समुराई परंपरा सेप्पुकू (मचचनान) के अनुसार खुद को मृत्यु के घाट उतार लिया । इस परंपरा में हारे हुए समुराई को या किसी तरह विफल हुए समुराई को आत्महत्या का अधिकार था, ताकि वह खुद के लिए तुलनात्मक रूप से सम्मानित मृत्यु का चयन कर सके ना कि किसी दुश्मन के हाथो युद्ध में हार कर मारा जाए।

इसी के साथ समुराई युग का अंत हुआ और सम्राट के वर्चस्व के अधीन नवीन लोकतान्त्रिक विकास आरंभ हो गया था। सभी को जापान के आधुनिकीकरण का भागीदार बनाया गया था।

जापान को इस बात का एहसास था की अगर वह पश्चिमी देशों के सामने कमजोर बना रहा तो उसको भी चीन की तरह बुरे दिन देखने पड़ेंगे। 1867 ई. में तोकुगावा के सामंतवादी राज का अंत हुआ। सम्राट मूतसुहितो (डनजेनीपजव)को मिजी की उपाधि के साथ सरकार का नियंत्रण दिया गया।

3.3.3 मिजी सुधार(1868ई.–1912ई.)फुकोकु–क्योहेई) समृद्ध देश–मजबूत सेना

मिजी सम्राट के अधीन जापानियों ने पश्चिमी देशों के मनमाने हस्तक्षेप और प्रभाव को रोकने के लिए खुद ही आधुनिकीकरण करने की ठान ली, उनका मानना था कि शत्रु से युद्ध करने में नहीं बल्कि उसे धोखे में रखना और उसका अनुसरण करने में ही भलाई है। ऐसा करने पर वह उस मुकाम पर पहुँच जायेंगे जहाँ से वह दुबारा अपने हितो की रक्षा करते हुए पश्चिमी उपनिवेशी देशों से फायदेमंद व्यापारिक संधियाँ कर सके। इसके लिए उन्हें पश्चिमी तरीके से (लोकतंत्र, औदयोगीकरण, मजबूत सेना और साम्राज्यवाद) आधुनिकीकरण करना होगा।

फुकुज़वा युकिची (थ्नान्रूं ल्नापबीप) ने पश्चमी देशों में घूम कर वहां के बारे में बहुत सारा ज्ञान समेटा और वह पश्चिमी देशों की अच्छी आदतें और ज्ञान जापान में लागू करना चाहता था, जैसे की समय का हिसाब रखने के लिए घड़ी का उपयोग करना। फुकोजावा की पुस्तकें पश्चिमी ज्ञान का भण्डार थी। उन्हें एक दूत या रार्ष्ट्नायक के रूप में देखा जाता था। उन्होंने जापान में 'राष्ट्र की प्रगति और हरेक की सफलता' की भावना का संचार किया। जापान विदेशी सभ्यता से आधुनिक विकास सीखने को अत्याधिक समर्पित था।

सुधारवादी और विकास के लिए संकल्पित मिजी अधिकारी पुरजोर कोशिश करते रहे, किसी के विफल होने पर नए अधिकारी को जिम्मेदारी सौपीं जाती लेकिन, निजी लाभ और हानि के लिए किसी ने भी एक दूसरे के हाथ नहीं बांधे, वह निरंतर विकास को तत्पर थे। हालाकिं सम्राट की वास्तविक शक्ति में कोई खास बदलाव नहीं आया था, लेकिन सम्राट लोगों के विश्वास और राष्ट्रीय संवेदना को अपने पक्ष में बनाये रखने का माध्यम था ताकि तीव्र आधुनीकीकरण हो सके। जापान ने यूरोप और अमरीका में (1871 ई. से 1873 ई. 'इवाकुरा मिशन') शिष्टमंडल भेजा जिनका काम पश्चिमी आधुनिकीकरण के गुर सीखना और जापान के हित में माहौल बनाना था। जिन भी देशों के जापान के साथ संबंध थे वह जापान के बारे में क्या सोचते–समझते थे, इसका भी सही–सही अनुमान लगाना था।

3.3.3.1 आधुनिक शिक्षा

जापान में भले ही बहुत देर से आधुनिक शिक्षा आरंभ की गयी लेकिन यह बहुत तेजी से फैली और विकसित हुई थी। आधुनिक शिक्षा के मूल में सामाजिक समानता, ज्ञान और योग्यता के आधार पर लोगों को अवसर प्रदान करना था । आधुनिक शिक्षा द्वारा जापान में (ठनदउमप झंपां + थ्नावान ज्ञलवीमप) सभ्यता और जागरण के साथ–साथ देश को समृद्ध और सुदृढ़ करने का लक्ष्य था। 1871 में शिक्षा मंत्रालय का निर्माण हुआ और 1872 में शिक्षा व्यवस्था अधिनियम पारित किया गया।

जापान में अमेरिकी और फ्रांस शिक्षा नीति अपनाई गयी थी, शुरू में तीन स्तर पर शिक्षा देने का ढांचा अपनाया गया, (1) एलीमेंट्री, (2) मिडिल और (3) यूनिवर्सिटी, शिक्षा व्यवस्था पर केंद्र की मजबूत पकड़ थी। पूरे देश को 8 जिला विश्वविद्यालय क्षेत्रों में विभाजित किया गया था, सभी 8 जिला क्षेत्र में 8 यूनिवर्सिटी, 32 मिडिल स्कूल, और 210 एलीमेंट्री स्कूल खोलने की योजना थी।

प्रारंभिक शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य थी, (ब्वदनिबपंद) कंफूशियन शिक्षा को सर्वोच्च स्थान से हटा दिया गया था, उसकी जगह अब जापान पश्चिमी ज्ञान के विद्यालय खोल रहा था। 1872 में शिक्षा सुधार के लिए सयुंक्त राष्ट्र अमेरिका से विशेषज्ञ बुलाए गये, टोक्यो नॉर्मल स्कूल स्थापित किये गये। जापान ने विदेशी सलाहकार और विशेषज्ञयों को अच्छी खासी कीमत चुकाई थी, जापान अपने होनहार विद्यार्थियों को विदेश भी भेज रहा था, बाहर से प्रशिक्षित होकर आए इन जापानी लोगो ने विदेशी सलाहकार और विशेषज्ञयों का स्थान ले लिया।

शिक्षा में सुधार के लिए समय–समय पर समीक्षा, सुधार और निर्देश दिए गये, 1880 में शिक्षा नीति संशोधन हुआ और शिक्षा में मर्यादा के निर्माण पर भी बल दिया गया। 1885 में मंत्रीमंडल व्यवस्था वाली सरकार में मोरी

अरिनोरी (डवतप ।तपदवतप) को पहला शिक्षा मंत्री बनाया गया था। शिक्षा चार स्तर पर दिए जाने की व्यवस्था हुई, एलीमेंट्री,मिडिल , नॉर्मल स्कूल और इम्पीरियल यूनिवर्सिटी। इम्पीरियल यूनिवर्सिटी में नेताओं और तकनीकी विशेषज्ञयों के कौशल का विकास किया जाता था।

नॉर्मल स्कूल में भविष्य के शिक्षकों को आधुनिक एवं राष्ट्रवाद की विचारधारा दी जाती थी । 1890 में इम्पीरियल रिस्क्रिपसन एजुकेशन के तहत शिक्षा में सम्राट के प्रति निष्टा और राष्ट्रभक्ति की भावना को पुष्ट किया जाता था। इस समय शिक्षा में अब उपस्थिति दर बढ़ रही थी 1900 में एलेमेंट्री शिक्षा का शुल्क माफ़ कर दिया गया था। विद्यार्थियों को ग्रेड देकर अगले स्तर की शिक्षा के लिए भेजा जाने लगा था। 1907 में अनिवार्य शिक्षा का समय 4 साल से 6 साल कर दिया गया था। 1920 तक आधुनिक शिक्षा सफलता से लागू कर दी गयी थी।

3.3.3.2 भू–सुधार

मिजी सुधार के अंतर्गत भू–सुधार हुए थे, निजी सम्पति के रूप में भूमि दी जाने लगी थी, भूमि कर तय कर दिये गए थे, करों को केन्द्रीय व्यवस्था से एकत्रित किया जाने लगा। जापान में आर्थिक जरूरतों के लिए बैंकिंग और सहकारी संस्थानों का विस्तार किया गया था। ऐसा नही है कि शोगून काल में भी भूमि पर निजी अधिकार नही था और भूमि गिरवी नही रख सकते थे। लेकिन अधिकतर खेती में लगी जनता भूमि अधिकार होने के बावजूद जमीन से बंधे हुए थे, वह शायद ही भूमि को छोड़कर जा सकते थे। यानी राज्य उनका भूमि पर अधिकार उनके खेती में बने रहने के सम्बन्ध में देखता था । भूमि से उत्पादन पर शासक का विशेष अधिकार होता था।

मिजी सुधार के अंतर्गत सामंतो को उनकी वंशानुगत संपत्ति से अलग किया गया । किसान अब वास्तविक रूप से भी अपनी भूमि के स्वामी हो रहे थे, हर व्यक्ति की निजी संपत्ति के अनुरूप कर देना था। किसान स्वतंत्र रूप से प्रवास कर सकते थे । मिजी भू–सुधार को लोगों का समर्थन था, इसके अंतर्गत कुछ नियम जुड़े और भूमि एकीकरण और राष्ट्रीयकरण करने के प्रयास हुए। ऐसा माना जाता है कि मिजी भू–सुधार के कारण कृषि क्षेत्र में उपभोग कम हुआ परिणाम स्वरूप ज्यादा बचत हुई जो निवेश के रूप में उपयोग की गयी। शुरूआती बैंकों का पूंजीवादी स्वरुप उभारने में भू–स्वामी व्यापारियों की अहम् भूमिका रही।

3.3.3.3 मिजी संविधान

'दी कल्चर ऑफ़ मिजी' के लेखक दैकिची इरोकावा (क्ंपापबीप प्तवाू) मानते है कि मिजी कालीन जापान में राजनीतिक अधिकारों और लोकतंत्र की समझ कितनी प्रखर हो गयी थी इसका अनुमान हम इस बात से लगा सकते है कि जापान के ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों द्वारा संविधान लिखा गया, जिसमे 150 अनुछेद सिविल अधिकारों से सम्भंदित थे और लोगों ने संप्रभुता की शक्ति अपने आप को सौंपी थी न कि सम्राट को। इस तरह से समाज का आधुनिकीकरण केवल ऊपर से ही नहीं संचालित हो रहा था बल्कि जनसामान्य के प्रयासों में भी यह नीचे से फ़ैल रहा था। 1870 के अंतिम समय में लोकतान्त्रिक विचार ग्रामीण परिवेश में फ़ैल चुके थे।

हालाँकि मिजी सुधार के अंतर्गत जापान में जो संविधान लागू हुआ वह सम्राट की मोहर लगे आदेश का अनुसरण था। जापान में जर्मनी की सरकार से प्रेरित होकर उनकी तर्ज़ पर नए संविधान और संसद का निर्माण किया था, यह 1945 तक व्यवहार में रहा। सम्राट को सैधान्तिक रूप से बहुत शक्तिशाली बनाया गया था, लेकिन हम जानते हैं कि वह केवल नाम मात्र का सम्राट था, असल शक्तियां तो एक छोटे से गुट के पास थी जो सम्राट की मोहर का दुरूपयोग करती रही।

यह संविधान केवल नाम मात्र लोकतांत्रिक था, लेकिन फिर भी पुरानी व्यवस्थाओं के बदलने के बाद आम जनता के लिए यह एक प्रगतिशील कदम था। संविधान की रूपरेखा के अनुरूप सम्राट पूरी व्यवस्था में सर्वोच्च स्थान पर था, उसका सभी सेनाओं पर नियंत्रण था, वह संविधान का पुनरावलोकन कर सकता था, सम्राट हाउस ऑफ़ पीर के सदस्यों की नियुक्ति करता था, उसके पास डाइट को स्थगित करने का अधिकार था, वह डाइट के सत्र में ना होने के दौरान भी कानून बना सकता था।

डाइट वस्तुतः न्याय बनाए का काम करती थी, डाइट के दो अंग थे (1) हाउस ऑफ़ पीर तथा (2) प्रतिनिधि सदन जिसके सदस्यों का चुनाव जापानी जनता करती थी लेकिन बहुत कम प्रतिशत लोगों को मतदान का अधिकार था। डाइट प्रधानमंत्री और मंत्रीमंडल के ऊपर भी वित्तीय नियंत्रण रखती थी, हालाँकि प्रधानमंत्री और मंत्रीमंडल की जवाबदेही केवल सम्राट के प्रति थी।

प्रधानमंत्री और मंत्रीमंडल के अधीन ही न्याय तथा अन्य सभी मंत्रालय आते थे। प्रधान मंत्री और मंत्रीमंडल सेना पर वित्तीय नियंत्रण रखती थी, लेकिन आर्मी और नौसेना के वरिष्ट अधिकारियों को मंत्रीमंडल के ऊपर वीटो अधिकार दिए गए थे। यह सम्राट के सर्वोच्च सैनिक सलाहकार भी थे।

जेनरो (Genro) नामक एक सलाहकार इकाई थी जिसमें 1868 के पुनरुत्थान की प्रक्रिया में शामिल वरिष्ट व्यक्ति थे। प्रिवी कौंसिल, इम्पीरियल हाउसहोल्ड मिनिस्ट्री तथा आंतरिक मंत्री सम्राट के सलाहकार थे।

3.3.3.4 आर्थिक और सैनिक बदलाव

वास्तविकता में जापान की विकास गाथा उसके सामाजिक बदलाव ने लिखनी शुरू कर दी थी, समाज के सबसे निम्न स्तर में व्यापारियों को रखा गया था और उनके काम धंधों को बुरा माना जाता था, लेकिन व्यापारियों के निरंतर आर्थिक उन्नति और शांति के लम्बे अंतराल में सामुराईयों की गिरती साख के साथ—साथ पश्चिमी व्यापार और संपर्क ने समाज को नए मोड़ पर ला खड़ा किया था।

समुराई और व्यपारियों ने इस नए बदलाव के काल में जबदस्त रूप में अपने आप को महत्वपूर्ण बदलावों के साथ अहम् भूमिका में ला खड़ा किया था। अब व्यापारियों के रिश्ते नातें बड़े संभ्रांत वर्ग से होने लगे थे, कई सामुराइयों ने भी व्यापार को अपना लिया था। 'मिजी काल में ज़ाइबत्सू' (पइंजेन) व्यापारिक / औदयोगिक घराने (सुमितोमो, मित्सुई, मित्सुबिशी और यसुदा शरुआती चार सबसे महत्वपूर्ण ज़ाइबत्सू) सत्ता और देश में अहम् भूमिका निभा रहे थे। सरकार द्वारा इन ज़ाइबत्सू को ठेके दिए जाते थे, सरकार इन्हें रियायतें देकर उत्पादन करने का प्रोत्साहन देती रही। उदाहरण के लिए 1880 के दौर में मित्सुबुसी एक छोटा जहाज बनाने की औधोगिक इकाई थी जिसे सरकार ने जहाज बनने के लिए रियायतें दी थी। जापान में रेलमार्ग, कोयला खनन, गहन उद्योगीकरण हो रहा था

यह कहना गलत नही होगा कि रेशम के निर्यात से ही जापान के आधुनिकीकरण की कीमत चुकाई जा रही थी। कृषि क्षेत्र से अधिशेष लेकर उद्योग में निवेश किया जा रहा था। रेशम और कपडा उद्योग में 11 वर्ष की आयु से ही 19 घंटे लड़कियां कम करने लगी थी। बैटलशिप द्वीप जो की मित्सुबिशी कोयला खदान थी, वहां खदानों और कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की हालत तो अति दयनीय थी, यहाँ असहनीय गर्मी और घुटन थी, बच्चे भी माँ—बाप के साथ काम करते थे । यह खदाने तो नर्क के समान थी, यहाँ से भागने का प्रयास करने वालों को बुरे परिणाम भुगतने पड़ते थे। बैटलशिप द्वीप में महामारी फैलने के दौरान मित्सुबिशी ने सभी प्रभावित लोगों को जला के मार दिया था । यह कहा जा सकता है कि आधुनिकीकरण की जापान भारी कीमत चुका रहा था ।

1900 ई. तक जापान ने 7000 ई. मील लंबे रेलमार्ग का निर्माण कर लिया था। हजारों कारखाने लगा दिए गए थे तथा चाय, रेशम और जलपोत उद्योग में मुनाफा हो रहा था। जापान के पास आधुनिक थल और समुद्री सेना थी। जापान ने आधुनिकीकरण की राह पकड़ के अपने लिए शक्ति और सम्मान अर्जित कर लिया था। साथ ही जापानी राष्ट्रवाद की आंच ने पश्चिमी देशों के विशेषाधिकार को और गैर बराबरी वाली सभी संधियों को ख़त्म कर दिया था। जापान अब खुद साम्राज्यवादी नीतियाँ अपनाने लगा था। अन्य औद्योगिक देशों की तरह जापान ने भी सस्ते श्रम, कच्चे माल और बाज़ार के लिए तथा उग्र राष्ट्रवाद से पीड़ित होकर एशिया में अपना साम्राज्यवाद फैलाना शुरू कर दिया।

जापान ने संविधान के साथ—साथ सेना को भी जर्मनी की तरह संगठित किया था तथा समुद्री सेना को विश्व प्रसिद्ध ब्रिटिश नेवी की तर्ज़ पर तैयार किया। 1883 ई. में सैनिक भर्ती में यह नियम बनाया गया कि इक्कीस वर्ष की आयु होने पर, हर पुरुष को कम से कम तीन साल के लिए देश को सैनिक सेवा देनी पड़ेगी।

जापानी अधिकारियों ने औद्योगीकरण का समर्थन किया और नऐ कारखाने लगाए। ज़ाइबत्सू की भरपूर सहभागिता रही, शिक्षा के क्षेत्र में भी सुधार किये गए, प्रारम्भिक स्तर से ही पश्चमी शिक्षा मिलने लगी थी। शिक्षा को

फ्रांस, जर्मनी, और अमरीका के मॉडल पर सुधारा गया। अमेरिका की तरह जापान में सार्वभौमिक जन शिक्षा की योजना लागू की गई, जिसके अंतर्गत सभी बच्चों का विद्यालय जाना अनिवार्य था। सांस्कृतिक रूप से भी पश्चमी पहनावा, तौर तरीके यहाँ तक की बालों की बनावट भी अपनाई गयी। मिजी काल में हुए सुधारों ने जापान की काया पलट कर दी, जापान एशिया में सबसे पहले और सबसे अधिक औद्योगिक और सैनिक शक्ति वाला देश बन गया था।

यह कहा जा सकता है कि जापान मिजी सुधारों के चलते आधुनिकीकरण की ओर बढता गया। जापान ने सामंतवाद का पूर्ण अंत, भूमि का पुनर्वितरण, आधुनिक बैंक प्रणाली,नवीन आर्थिक नीति, मानव अधिकार और धार्मिक स्वतंत्रता,आधुनिक शिक्षा, आधुनिक सेना और लिखित संविधान (क़ानून) के साथ खुद को अग्रीम राष्ट्रों के श्रेणी में पहुंचा दिया।

3.4. साम्राज्यवादी जापान

1895 ई. में जब जापान ने चीन को हराया तो एशिया में उसके लिए साम्राज्यवाद के दरवाजे खुल गए, दक्षिण पूर्व एशिया में लगभग सभी देश चीन के आश्रय में रहे थे और जापान की भांति उन पर भी चीनी संस्कृति, और विचारों का प्रभाव था, वह भी सैधान्तिक रूप से ट्रिब्यूट सिस्टम के तहत चीन के भाग थे। अब पश्चिमी राष्ट्रों की तरह जापान ने भी चीन की खोखली ताकत को उजागर कर उपनिवेशीकरण शुरू कर दिया, जापान ने फरमोसा को अपने नियंत्रण में ले लिया ताकि कोरिया में उसका दबदबा बना रहे। साथ ही साथ ताइवान भी उसके प्रभाव क्षेत्र में आ गया।

1904–1905 ई. में पोर्ट आर्थर और मंचूरिया पर अधिकार को लेकर रूस और जापान में युद्ध हुआ, जिसमे जापान ने ज़ार शासित रूस को हरा दिया। जापान ने अचानक से रूसी जलपोत पर हमला किया, साथ ही उसने प्रशांत महासागर पर तैनात रुसी बेड़े को अपने कब्ज़े में ले लिया, और बाल्टिक के जहाज़ी बेड़े को नष्ट कर दिया। फलस्वरूप रूस को मंचूरिया से हटना पड़ा। इस युद्ध के परिणाम का असर सभी देशों पर पड़ा, एक ओर तो जापान का रुतबा पूरे विश्व में फैल गया, तो दूसरी ओर इस युद्ध ने औपनिवेशिक शक्तियों के भी हराने की सम्भावना को साकार कर दिया और शोषित देशों में भी राष्ट्रवाद की लहर को तेज़ किया। खुद रूस के लिए यह युद्ध सफल क्रांति की सीढ़ी बना। चीन के सुधारक और क्रन्तिकारी जापान में रहकर कारवाई करने लगे।

.3.4.1 कोरिया में उपनिवेशवाद

कोरिया भी अन्य कई दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों की तरह चीन का ही 'ट्रिब्यूटरी स्टेट'/सहायक देश था जिसको 1860 ई० में फ्रांस ने अपने कब्ज़े में ले लिया था। जापान में प्रवेश करने के बाद पश्चिमी देश कोरिया को भी उसी तरह अपने कब्जे में लाना चाहते थे, लेकिन कोरिया ने इसका विरोध करते हुए फ्रांस और अमेरिका से 1860 ई० में और 1870 ई० की शुरआत में नौ–सैनिक टकराव किया।

इस काम में जापान को सफलता मिली उसने ही कोरिया को अपने साम्राज्यवादी हितों के लिए शोषित किया। 1876 ई० जापान और इंडोनेशिया के बीच में गंघवा की संधि हुई यह संधि भी गैर–बराबरी अधिकारों से लिप्त थी, जिसके चलते शक्तिशाली जापानियों को कोरिया में सारे लाभ, अधिकार और छूट मिली जबकि कोरियाई लोगो को जापान में इसे कोई भी अधिकार, लाभ या रियायते नहीं मिलती थी।

यू.एस.ए और अन्य पश्चिमी देशो ने भी इस अवसर का लाभ उठाया और जापान का अनुसरण करने लगे। 19 वीं सदी के आख़िर तक वह भी इस प्रकार की संधियाँ करने लगे। कोरिया को लेकर बढ़ती हुई शत्रुता के चलते 1894–1895 ई० में चीन और जापान के बीच युद्ध हुआ। दस साल बाद रूस और जापान के मध्य 1904–1905 ई० का युद्ध हुआ जिसमे जापान विजय रहा। 1910 ई० में जापान ने यहाँ अपना विस्तार किया, साथ ही यहाँ के शाही वंश के राज का अंत हुआ। शुरू के दस सालों में जापान ने यहाँ दमनकारी सैन्य शासन किया। 1 मार्च 1919 ई० में राष्ट्रव्यापी विरोध के कारण जापान को स्थानीय निवासियों को अभिव्यक्ति की कुछ छूट देनी ही पड़ी। जापान ने भी अन्य साम्राजवादी राष्ट्रों की तरह कोरिया में जो आधुनिकीकरण हेतु नगरीकरण, निवेश, वाणिज्यवाद का विस्तार किया और

वहां जो औद्योगीकरण हुआ, उसका एक मात्र लक्ष्य जापान की शक्ति को बढ़ाना था। ताकि वो अन्य साम्राज्यवादी राष्ट्रों से मुकाबला कर सके और साम्राज्यवाद की लड़ाई मंर चीन और प्रशांत महासागरीय क्षेत्र में लड़ सके।

उपनिवेशी वर्षों में कोरियाई लोगों को जबरन जापानी कारखानों में काम के लिए भेजा जाता था, यहाँ तक की उन्हें सैनिक के रूप में युद्ध करने के लिए लड़ाई के मैदान में भेजा जाता था। जापानी सैनिकों के लिए कोरयाई महिलाओं को 'बवउवितज ूवउमद' के रूप में भेजा जाता था। यह वास्तव में जापानी सैनिकों के लिए वेश्याएं थी। कोरियाई लोगो पर इस बात का भी दबाब था की वो अपने नाम भी जापनी नामो की तरह रखे, 1939 ई० के नाम बदलो अधिनयम के चलते 80ः कोरियाई लोगो को अपना नाम बदलना पड़ा। जापान ने कोरिया को केवल आर्थिक और राजनैतिक रूप से ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक रूप से भी उसका उपनिवेशिकरण किया. लेकिन कभी भी उन्हें जापान के समान अधिकार और नागरिकता नहीं दी गयी.1905 ई. में कोरिया जापान का प्रोटेक्टोरेट (राजनीतिक संरक्षण अधीन) हो चूका था, जापानी सलाहकार कोरिया में स्थानीय सरकार को कमजोर और जापान की शक्तियां बढ़ाने की दिशा में निरंतर काम कर रहे थे। 1907 ई. में कोरिया के राजा ने हाथ खड़े कर दिए और शाही सेना को भी ख़त्म कर दिया गया, अंततः 1910 ई. में जापान ने कोरिया को अपने कब्ज़े में ले लिया। जापान ने वहां आर्थिक आधुनिकीकरण करने की प्रक्रिया को अपने हाथों में ले लिया। वास्तव में जापान ने अपने लाभ के लिए कोरिया की अर्थव्यवस्था को अपने औपनिवेशिक शक्ति के लिए इस्तेमाल किया। जापान ने वहां उद्योग तो लगाए लेकिन कोरियाई लोगों को व्यापार नहीं करने दिया, साथ ही कोरिया में जापानियों को बसाने के लिए उन्हें कोरियाई किसानों की भूमि भी दी गयी।

जापान ने कोरिया में मीडिया को नियंत्रित किया, समाचार पत्रों को बंद किया, तथा कोरियाई विद्यालयों को अपने नियंत्रण में ले लिया। कोरिया भाषा और इतिहास को पाठ्यक्रम से हटा के जापानी विषयों से बदल दिया। जापान के शक्तिशाली होने पर एशिया की राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था में जापान को अब नाकारा नहीं जा सकता था। दक्षिण पूर्व एशिया में जापान स्थितियां नियंत्रित करने लगा था और उसका इरादा एशिया में अपने साम्राज्य को और आगे फैलाने का था। वह चीन और भारत को भी अपने कब्जे में लेना चाहता था।

1931 ई. जापान ने मंचूरिया पर कब्ज़ा कर वहां मंचूकाओ राज्य का निर्माण किया। 1937 ई. में जापान ने चीन पर हमला कर दिया। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान जापान का साम्राज्यवादी चरित्र खुलकर सामने आया, 1940 ई. में जापान ने जर्मनी और इटली जैसे फ़ासिस्ट राष्ट्रों के साथ मिलकर बर्लिन रोम टोकियो धुरी का समझौता किया। जापान ने एशिया को पश्चिमी साम्राज्यवादी राष्ट्रों से आजाद करने के नाम पर अपने लिए 'एशिया – एशियाई के लिए' का उदेश्य बनाया और एशिया पर अपना साम्राज्यवाद थोपा। जापान ने डच ईस्ट इंडीज, बर्मा, फ्रेंच इंडो–चाइना, फिलीपींस, थाईलैंड इत्यादि एशियाई देशों पर हमला किया।

जापान के ऊपर किसी प्रकार के नियंत्रण न लगने से एक ओर यह दिखता है की पचास से भी कम वर्षों में जापान एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में उभरा, तो दूसरी ओर जापानी सेना, आर्थिक दबाव और 1930 ई. की विश्वव्यापी मंदी ने जापान के लिए एक ऐसे मंच का निर्माण कर दिया था, जहाँ से जापान अपने साम्राज्यवादी मनसूबों को साकार रूप दे सकता था। जापान अपने आप को चीन की बंदरबांट में सही हिस्सेदारी न मिलने के कारण परेशान था। इसलिए उसने 1937 ई. में चीन पर हमला कर विश्वयुद्ध के अंत 1945 ई. तक चीन पर कब्ज़ा जमाये रखा।

3.4.2 जापानी साम्राज्यवाद का पतन

सात दिसम्बर 1941 ई. को जब जापान ने अमरीका के जहाज़ी बेड़े पर्ल हार्बर में हमला किया तो अमरीका भी बदले की करवाई करते हुए प्रत्यक्ष रूप से विश्वयुद्ध में शामिल हो गया। 1945 ई. में अमरीका के परमाणु विस्फोटों के बाद ही दूसरा विश्वयुद्ध समाप्त हुआ। यह बम छः अगस्त हिरोशिमा और नौ अगस्त नागासाकी में डाले गए। जापान ने इसके बाद मित्रराष्ट्रों के सम्मुख बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दिया। इस तरह औपनिवेशीकरण और साम्राज्यवाद के लिए साम्राज्यवादी राष्ट्रों की आपसी लड़ाई में जर्मनी इटली और जापान की हार हुई। जापान जहाँ खेती के लिए भूमि ना के बराबर थी और संसाधनों की कमी थी वहां का विकास और औद्योगीकरण फिर से चरमरा गया। हालांकि जापान के

इतिहास का अध्ययन हमें यह समझाता है की कैसे अतीत में भी अपनी अनूठी प्रगतिशील सोच एवं संगठित प्रयत्नों से जापान विकास कर अग्रिम श्रेणी के राष्ट्रों में आ गया था।

अभ्यास एवं बोध प्रश्न

प्र.1 1939 ई० में जापान ने नाम बदलो अधिनियम कहाँ लागू किया था?

प्र.2 जापान को एक कर वहां शासन की मजबूत शाखा किसने बनाई थी?

प्र. 3 ज़ाइबत्सू क्या थे?

प्र.4 रूस और जापान में युद्ध क्यों हुआ था?

प्र.5 दिसम्बर 7, 1941ई. जापान ने किस पर हमला किया था?

3.5 सारांश

इस इकाई में हमने जाना कि पूंजीवादी नीतियों के चलते पश्चिमी देशों ने और बाद में जापान ने भी इस को अपनाते हुए एशिया के विभिन्न देशों का औपनिवेशीकरण किया। इस प्रक्रिया में सबसे पहले व्यापारिक हितों को लेकर ही टकराव हुआ था, स्थानीय व्यपार और उद्योग व्यवस्था को ख़त्म कर पूंजीवादी देशों ने अपना कब्ज़ा कर लिया। हमने देखा की कैसे विशेषाधिकार, राजनैतिक एवं व्यापारिक संधियों और नीतियों को मनवाकर दक्षिण एशिया के विभिन्न देशों को उपनिवेश बनाया गया। हमने यह भी देखा की केवल आर्थिक असमानता, शोषण, और पतन ही नहीं हुआ था बल्कि समाज और संस्कृति का भी यही अंजाम हुआ था। यहाँ आधुनिकीकरण के नाम पर (उद्योग, यातायात, शिक्षा इत्यादि) जो भी विकास किया गया था, वह भी केवल अपने मुनाफे और अपने शासन को सही साबित करने के लिए किया गया था.

हमने जाना कि जापान एशिया में एक मात्र देश था जिसने अपने आप को साम्राज्यवादी देशों से बचा के रखा, और साम्राज्यवादी शक्तियों की मंशा को पहचान अपने भविष्य को सुदृढ करने का सफल प्रयास किया। पश्चिमी आधुनिक विचार, विज्ञान, तकनीक, शिक्षा को सफलता से अपनाया और बाद में अपनी आर्थिक, संवैधानिक और सैनिक नीतियों एवं संस्थाओं कों पश्चिमी राष्ट्रों के अनुरूप विकसित किया। जापान की सबसे बड़ी खूबी उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति और राष्ट्रीय एकता थी। जापान की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में इसी समय बहुत से सुधार हुए थे, हालांकि पूंजीवादी मानसिकता को अपनाते हुए जापान भी साम्राज्यवाद और औपनिवेशिकरण की होड़ में लग गया तथा अपनी मजबूत सेना से जल्द ही उसने एशिया में उपनिवेश बना लिए। जापान की पूंजीवादी और फ़ासिस्ट चरित्र की सरकार ने जापानवासियों को न सिर्फ विश्वयुद्ध में घसीटा बल्कि परमाणु विस्फोटों को सहा, अंततः हम कह सकते हैं कि विश्व ने उपनिवेशिकरण और साम्राज्यवाद के चलते असमानता, गुलामी, अमानवीयता को देखा।

3.6 विशेष शब्दावली

कैपिटलिज्म/पूंजीवाद : पंद्रहवीं शताब्दी में सामंतवाद के बाद जो नयी व्यवस्था उभर रही थी, उसे पूंजीवाद कहा जाता है। इसके अंतर्गत उत्पादित वस्तुओं पर व्यक्तिगत स्वामित्व होता है और उत्पादन मुनाफ़ा कमाने के लिए होता है। इसके चलते सम्पूर्ण विश्व एक बाज़ार बन गया।

साम्राज्यवादः एक राष्ट्र या राज्य का किसी दूसरे राष्ट्र या राज्य की भूमि, संसाधनों, अर्थव्यवस्था, भाषा या संस्कृति पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण या वर्चस्व को साम्राज्यवाद कह सकते हैं। उन्नीसवीं– बीसवीं सदी में अनेक यूरोपीय देशों ने कच्चे माल की प्राप्ति एवं निर्मित माल के बाज़ार के लिए दूसरे देशों पर अधिकार करने की साम्राज्यवादी नीति को अपनाया था।

उपनिवेशवादः जब कोई राज्य या राष्ट्र दूसरे राज्य या राष्ट्र के किसी क्षेत्र या सम्पूर्ण हिस्से को अपने अधीन कर वहां स्थायी रूप से रहता या बस्तियां बसता है, साथ ही साथ अपने लाभ के लिए अपने उपनिवेश का दोहन करता है तो उसे उपनिवेशवाद कहते है।

प्रोटेक्टोरेटः जब कोई देश आंशिक रूप से किसी दुसरे देश के नियंत्रण और सुरक्षा पर आश्रित रहता है तो उसे प्रोटेक्टोरेट कहते हैं।

रोमदृबर्लिन–टोक्यो धुरीः 1940 ई. में जापान ने जर्मनी और इटली जैसे फ़ासिस्ट राष्ट्रों के साथ मिलकर बर्लिन रोम टोकियो धुरी का समझौता किया।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उ.1 1939 ई० कोरिया में यह अधिनियम लागू किया गया था।

उ.2 तोकुगावा लेयाशु ने जापान को एक कर वहां शासन की मजबूत शाखा तोकुगावा शौगनेत बनाई थी।

उ.3 यह व्यापारिक/औद्योगिक घराने थे, जैसे की सुमितोमो, मित्सुई, मित्सुबिशी और यसुदा शरुआती चार सबसे महत्वपूर्ण ज़ाइबत्सू थे, यह जापान के औद्योगीकरण, व्यापारिक एवं सैन्य विकास में अहम् भूमिका रखते थे।

उ.4 पोर्ट आर्थर और मंचूरिया पर अधिकार को लेकर रूस और जापान में युद्ध हुआ था।

उ.5 इस दिन जापान ने पर्ल हार्बर स्थित अमरीकी जहाज़ी बेड़े पर हमला किया था।

3.8 संदर्भ सामग्री

जैन, हुकुम चंद, माथुर, कृष्ण चंद. आधुनिक विश्व का इतिहास,(1500–2000ई.),पन्द्वाँ संस्करण, जैन प्रकाशन मंदिर,जयपुर, 2010.

Fairbank John K et al-, East Asia: Modern Transformation] Boston: Houghton Mifflin, 1965.

Nakamura, James , Meiji Land Reform, Redistribution of Income, and Saving from Agriculture. Economic Development and Cultural Change, Vol- 14, No- 4 (Jul-] 1966), pp- 428&439, Pub, The University of Chicago Press, URL: http:@www-jstor-org@stable@1152149

https:@@youtu-be@gURiHVTJX4A\t¾30

1.9 प्रस्तावित अध्ययन सामग्री

पाण्डेय धनपति, आधुनिक एशिया का इतिहास, प्रकाशक, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, 2005.

E-H- Norman, Japan's Emergence as a Modern State, New York: International Secretariat,Institute of Pacific Relations, 194.-

Michael J- Seth, A Concise history of Modern Korea, Rowman and Littlefield 2009.

Morinosuke Kajima, A Brief Diplomatic History of Modern Japan.

Ramon H. Myers and Mark R. Peattie (eds-), The Japanese Colonial Empire, 1895 – 1945.

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्र(1) जापान द्वारा कोरिया के उपनिवेशीकरण पर संक्षिप्त टिप्पणी करें, क्या यह पश्चिमी देशों की औपनिवेशिक नीतियों से अलग था ?

प्र(2) जापान के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की चर्चा करते हुए मिजी सुधारों पर टिप्पणी करें?

प्र(3) जापान एक साम्राज्यवादी शक्ति क्यों और कैसे बना?

इकाई एक : प्रथम विश्व युद्ध के कारण और परिणाम

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 युद्ध के कारण
   1.3.1 तात्कालिक कारणः
   1.3.2 गुप्त संश्रयों की कूटनीतिक व्यवस्था
   1.3.3 सैन्यवाद/हथियारों की होड़
   1.3.4 राष्ट्रवाद या संकीर्ण राष्ट्रवाद–
   1.3.5 बोस्निया का संकट ?
   1.3.6 बालकन युद्ध (1912–1913)
   1.3.7 आर्थिक साम्राज्यवादः
   1.3.8 प्रेस की भूमिका
   1.3.9 विभिन्न देशों की महात्वाकांक्षाएँ
      1.3.9.1 अलसेस–लॉरेन वापस पाने की फ्रांसीसी कसमसाहट
      1.3.9.2 विश्व शक्ति बनने की जर्मन महात्वाकांक्षा
      1.3.9.3 विस्तार की इटालवी महात्वाकांक्षा
   1.3.10 .वैश्विक अराजकता या अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की नियामक मशीनरी का अभाव
1.4 प्रथम विश्व युद्ध की कुछ व्याख्याएँ
1.5 युद्धकालीन घटनाक्रम
   1.5.1 1914 की रणनीति
      1.5.1.1 पश्चिमी मोर्चा
      1.5.1.2 पूर्वी मोर्चा
      1.5.1.3 पश्चिमी मोर्चाः
      1.5.1.4 पूर्वी मोर्चा
      1.5.1.5 इटली का केन्द्र शक्तियों के साथ मिल जाना
      1.5.1.6 1916 पश्चिमी मोर्चाः वर्दून और सोम की लड़ाइयाँ
      1.5.1.7 पूर्वी मोर्चा
      1.5.1.8 समुद्री युद्ध
      1.5.1.9 1917, पश्चिमी मोर्चा
      1.5.1.10 पूर्वी मोर्चाः
      1.5.1.11 मित्र खेमे में अमरीका
      1.5.1.12 युद्धविराम की अपील
1.6 विश्वयुद्ध के परिणाम
   1.6.1 शक्ति संतुलन में बदलाव
   1.6.2 राष्ट्रवाद और स्व–निर्धारण के सिद्धान्तों को स्थापना
   1.6.3 लोकतन्त्र का विस्तार–य
   1.6.4 लीग ऑफ नेशन्स की स्थापनाः
   1.6.5 वैज्ञानिक प्रगतिः
   1.6.6 औरतों की उन्नतिः
   1.6.7 धन–जन की भारी तबाहीः
   1.6.8 तानाशाहों का जन्मः
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
1.8 सहायक ग्रन्थ
1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

वर्तमान इकाई में हम प्रथम विश्व युद्ध के तात्कालिक और दूरगामी कारणों पर चर्चा करेंगे, जो आम जानकारी के लिहाज से महत्वपूर्ण हैं, साथ ही इतिहास और समाज को समझने के लिए जरूरी सैद्धान्तिक ढाँचा भी उपलब्ध कराते हैं।

प्रथम विश्वयुद्ध ने पूरी दुनिया, खासकर, यूरोप को दो विरोधी सैन्य खेमों में बाँट दिया था, और इसके दौरान मानवीय इतिहास की सबसे भीषण लड़ाइयाँ देखी गई थीं। युद्ध में हुआ जन–धन का नुकसान अकल्पनीय था।

इस युद्ध के शुरू होने के क्या कारण थे, इस विषय की व्याख्या, बहस, विश्लेषण इतिहासकारों और विद्वानों के बीच कभी खत्म नहीं हुईं। लेकिन, इतना जरूर कह सकते हैं कि 1914 की ग्रीष्म ऋतु में दुनिया पर कहर की तरह टूट पड़ने वाले प्रथम विश्व युद्ध के लिए कोई अकेला देश या व्यक्ति जिम्मेदार नहीं था। सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक, कूटनीतिक और मनोवैज्ञानिक– तमाम कारकों का जटिल संगम उन विस्फोटक परिस्थितियों के रूप में सामने आया, जिनसे महायुद्ध अवश्यम्भावी बन गया।

गुप्त कूटनीतिक संश्रय, संकीर्ण राष्ट्रवाद के विचार, साम्राज्यवादी होड़, सैन्यवाद, अखबार और प्रेस जैसे आम कारकों की भूमिकाएँ युद्ध के लिए उतना ही महत्व रखती हैं, जितना वह तात्कालिक घटना, जब आष्ट्रियाई राजगद्दी के वारिश आर्कड्यूक फ्रैन्ज फर्डिनान्ड और उनकी पत्नी एक स्लाव, गैव्रिलो प्रिन्सेप, के हाथों मार दिए गए थे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः

- प्रथम विश्व युद्ध के ऐतिहासिक सन्दर्भ को जान सकेंगे
- प्रथम विश्व युद्ध के तात्कालिक व दूरगामी कारणों को समझ सकेंगे
- प्रथम विश्व युद्ध के घटनाक्रम को जान सकेंगे
- प्रथम विश्व युद्ध के परिणामों को समझ जाएँगे

1.3 युद्ध के कारण

1.3.5 तात्कालिक कारण

28 जून 1914 को, सारायेवो में, आष्ट्रियाई राजगद्दी के वारिश आर्कड्यूक फ्रैंक फर्डिनैन्ड की हत्या युद्ध भड़कने का तात्कालिक कारण था। इस घटना से राष्ट्रों की तमाम रंजिशें घनीभूत होकर एक त्वरित व जटिल घटनाचक्र में बदल गईं, जिनकी परिणति महायुद्ध में हुई। आष्ट्रिया ने सर्बियाई सरकार को स्पष्ट कह दिया कि आर्कड्यूक की हत्या में उसी का हाथ है। अपने इसी आकलन के आधार पर आष्ट्रिया ने सर्बिया को एक कठोर चेतावनी जारी करते हुए कहा कि सर्बिया में आष्ट्रिया–विरोधी प्रचार को खत्म करने के लिए अब उसे आष्ट्रियाई अधिकारियों से संश्रय बनाना होगा। जाहिर है, आष्ट्रिया की ये माँगें अनर्गल थीं, और उनका असली मकसद बालकन क्षेत्र में सर्बिया के राजनीतिक अस्तित्व को कमजोर या फिर खत्म कर देना था। आष्ट्रिया ने अपनी माँग पूरा करने के लिए सर्बिया को महज 48 घन्टे दिए थे। इतना ही नहीं हुआ, इस अल्टीमेटम को खतरनाक बनाते हुए जर्मनी भी आष्ट्रिया के समर्थन में आ गया।

मदद की गुहार लिए सर्बिया रूस के दरवाजे गया, जहाँ उसे आष्ट्रियाई की वाजिब शर्तों को मान लेने की सलाह मिली, और रूस की तरफ से भी यूरोप की बड़ी हस्तियों से मामले की मध्यस्थता करने की अपील की गई। सर्बिया ने रूस की सलाह तो मान ली, लेकिन वह आष्ट्रिया के तुष्टीकरण के लिए तैयार नहीं था। नतीजतन, 28 जुलाई 1914 को आष्ट्रिया ने जबरदस्ती करते हुए सर्बिया के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। फिर, 29 जुलाई 1914 को, रूस ने भी अपनी सेनाओं को तैनात करना शुरू कर दिया, जो आष्ट्रिया पर युद्ध की घोषणा करने जैसा था। अब जर्मनी सामने आ गया और रूस को दिए अपने अल्टीमेटम में कहा कि वह 12 घन्टे के भीतर अपनी सेनाओं की तैनाती रोक दे, और फिर वह खुद अपनी सेनाओं को लामबन्द करने लगा। रूस ने जर्मनी की धमकी को नजरअन्दाज कर दिया, और फिर जर्मनी ने भी उसके खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। सहयोग के लिए रूस फ्रान्स के पास गया, और फ्रान्स ने उसे भरपूर सैनिक मदद देने का वचन दिया। जर्मनी ने फ्रान्स को तटस्थ रहने की चेतावनी दी, लेकिन जवाब में फ्रान्स ने अपने राष्ट्रीय हितों के अनुसार कार्यवाही करने की बात कही। जर्मनी ने फ्रान्स पर आक्रमण कर दिया, उसे आशा थी कि इंगलैन्ड तटस्थ रहेगा, लेकिन घटनाक्रम लगातार बदलता रहा। फ्रान्स पर आक्रमण के पहले जर्मनी ने बेल्जियम में आक्रमण किया, और बेल्जियम ने इंगलैन्ड से मदद की गुहार लगाई। इस तरह, अब इंगलैन्ड भी युद्ध में लपटों में घिर गया, क्योंकि दोनों देशों के बीच एक सन्धि के तहत इंग्लैन्ड बेल्जियम की तटस्थता की रक्षा के लिए वचनबद्ध था। 5 अगस्त 1914 को इंगलैन्ड भी युद्ध में शामिल हो गया, और, इस तरह, यह दिन, प्रथम विश्वयुद्ध के दोनों विरोधी खेमों के युद्ध में उतरने का दिन बन गया। इस तरह, राष्ट्रों के आपसी संश्रयों के परिणामस्वरूप आष्टिया–सर्बिया के बीच मामला तूल पकड़ते हुए समूचे यूरोप, यानी मित्र शक्तियों बनाम केन्द्रीय शक्तियों के बीच युद्ध में बदल गया

1.3.6 गुप्त संश्रयों की कूटनीतिक व्यवस्था

जर्मन चांसलर बिसमार्क ने राष्ट्रों के बीच गुप्त संश्रयों की कूटनीतिक पहल की थी, जो बाद में युद्ध का एक बड़ा कारण बनी। फ्रांसीसी–प्रशियाई युद्ध में फ्रांस के साथ अन्याय हुआ, फ्रैंकफर्ट की संधि के बाद उसकी एलसेस–लॉरेन की खदानें प्रशिया द्वारा हड़प ली गईं। इसी फ्रांसीसी–प्रशियाई युद्ध के बाद उत्तर और दक्षिण जर्मनी का आपस में विलीन हो गए और इस तरह 1871 में जर्मनी के एकीकरण की प्रक्रिया सम्पन्न हो गई।

बिसमार्क की रणनीति में फ्रांस एक स्थाई दुश्मन था। इसलिए, उसने एक तरफ जर्मनी की सुरक्षा के लिए राष्ट्रों के साथ संश्रयों की एक व्यवस्था बनाई, और, दूसरी तरफ, अपने खिलाफ राष्ट्रों के किसी शत्रुतापूर्ण संश्रय को न पनपने देने की कोशिश में लगा रहा। 1879 में जर्मनी और आष्ट्रिया का संश्रय रक्षात्मक किस्म का था, जिसकी शर्तों के अनुसार फ्रांस के आक्रमण की सूरत में दूसरे देश को तटस्थ रहना था, लेकिन यह भी शर्त थी कि अगर रूस दुश्मन को सहायता करेगा तो दोनों देश मिलकर उसका सामना करेंगे।

1882 में इटली भी आष्ट्रियाई–जर्मन संश्रय में शामिल हो गया, और इस तरह तीन राष्ट्रौं का प्रसिद्ध संश्रय कायम हो गया। इस संश्रय में शामिल किसी देश के खिलाफ दो या अधिक महाशक्तियों द्वारा कोई आक्रमण होने पर संश्रय के राष्ट्रों का साझा प्रतिरोध करने का वचन शामिल था। दूसरी तरफ, किसी महाशक्ति के खिलाफ संश्रय का कोई राष्ट्र अगर अकेले लड़े तो अन्य राष्ट्रों को मित्रवत तटस्थता का रवैया अपनाना था। संश्रय के राष्ट्रों ने इंगलैन्ड के खिलाफ अपनी संयुक्त ताकत का इस्तेमान न करने का निर्णय भी किया था। बहरहाल, 4 मई 1915 को आष्ट्रिया के साथ हुए इस तिहरे गठजोड़ की इटली ने ही भर्त्सना कर डाली।

तिहरे गठजोड़ के जवाब में फ्रांस, रूस और इंगलैन्ड ने भी संश्रय बनाया, जिसे ट्रिपल एन्टेन्टे कहा गया। इसके पहले, 1891 में, फ्रांस–रूस का संश्रय भी बन चुका था, जिसे जर्मनी या जर्मन सहयोग से इटली

का फ्रांस पर आक्रमण होने पर फ्रांस को रूस की सैनिक मदद का, और जर्मनी या जर्मन सहयोग से आष्ट्रिया का रूस पर आक्रमण होने पर फ्रांस की मदद का शर्त शामिल थी।

समुद्री महाशक्ति बनने की जर्मन महात्वाकांक्षा को देखकर इंगलैन्ड ने 4 मई 1904 को फ्रांस के साथ एक मित्रता संधि कर ली, जिसके तहत जरूरत पड़ने पर दोनों देशों ने एक दूसरे को कूटनीतिक सहायता देने का वचन दिया था। इस सन्धि से फ्रांस और रूस की मित्रता–संधि और ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई। इसके बाद, 3 अगस्त 1907 को, एक आंग्ल–रूसी कन्वेन्शन भी सम्पन्न हुआ, और इस तरह तमाम संधियों ने मिलकर एक त्रिराष्ट्रीय मित्रसंधि को अंजाम दिया।

इन संश्रयों के कारण धीरे–धीरे यूरोप में परस्पर अविश्वास का वातावरण बढत्रता गया और वह दो विरोधी गुटों में बँट गया। दोनों गुट अपनी थल व नौसेना के संवर्धन में जुट गए। गौरतलब है कि यूरोप का यह विभाजन और गुटबन्दी से तय हो गया था कियुद्ध होने पर समूचा यूरोप उसकी लपटों में घिर जाएगा। हरेक संश्रय के सदस्य राष्ट्र परस्पर सहयोग करने के लिए वचनबद्ध थे, भले सीधे तौर पर उनका लड़ाई से उन्हेंकोई लेना देना न हो, अन्यथा उनका संश्रय ही कच्चा हो जाता। इस तरह, बालकन में जर्मनी आष्ट्रिया–हंगरी का साथ देने के लिए वचनबद्ध था। इसी तरह, बालकन क्षेत्र की घटनाओं से फ्रान्स का सीधे तौर पर कोई जुड़ाव नहीं था, लेकिन वहाँ के मामले में रूस को मदद देना उसकी मजबूरी थी, अन्यथा जर्मन आक्रमण होने पर अपनी सुरक्षा की सर्वोत्तम गारन्टी उसके हाथ से फिसल जाती। इसी तरह, त्रिराष्ट्रीय संश्रय से खुद को बचाने और त्रिराष्ट्रीय मित्रता को कायम रखने के लिए ब्रिटेन भी रूस और फ्रांस का साथी बनने के लिए राजी हो गया। हालाँकि, इसका एक और कारण भी था। विश्व व्यापार पर वर्चस्व के लिए समुद्र में ब्रिटेन और जर्मनी की आपसी होड़ बढ़ रही थी।

प्रोफेसर सिडनी ब्रैडशॉ के अनुसार, ''गुप्त संश्रयों की व्यवस्था से यह बात पक्की हो गई थी कि युद्ध होने पर यूरोप की सारी महाशक्तियाँ उसमें घिर जाएँगी। संश्रय के सदस्य राष्ट्र आपसी एकता कायम रखने के लिए ही पारस्परिक मदद के लिए बाध्य थे।''

1.3.7 सैन्यवाद / हथियारों की होड़

हथियारों की होड़ फ्रैंको–प्रशिया युद्ध के फौरन बाद शुरू हो चुकी थी। नतीजतन, यूरोप की सभी शक्तिशाली देशों के हथियार और युद्ध सामग्री में लगातार वृद्धि होती गई। हथियारों की इस होड़ ने विभिन्न देशों के आपसी रिश्तों में भय, घृणा, शक और जासूसी का जहर भी फैला दिया। इन परिस्थितियों में सेना और नौसेना के अफसरों के ऐसे गिरोह को बढ़ावा मिला, जो 'राजनीतिक संकट' के दौरान राजनीतिक नेतावों पर हावी होने लगते थे। कोई देश जब अपनी युद्धक क्षमताओं को सवंर्धित कर लेता तो उसके भयाक्रान्त पड़ोसी उस होड़ में उतरने के लिए मजबूर हो जाते। इस तरह हथियारों की होड़ का दुष्चक्र अनवरत चलता रहा। खासकर, 1912–13 के बालकन युद्ध और उसके बाद राष्ट्रों के गुप्त संश्रय की खाद पाकर हथियारों की इस होड़ ने और भयावह रूप ले लिया। इटली की वफादारी से आश्वस्त न होने पर जर्मनी और आष्ट्रिया अपनी सुरक्षा के लिए हथियारों की ताकत बढ़ाने लगे। जवाब में, फ्रांस और रूस भी होड़ के इसी रास्ते पर बढ़ते चले गए।

सैन्यवाद के इस माहौल का स्वाभाविक परिणाम सेना व नौसेना के अफसरों की एक असरदार लॉबी के उभार में दिखा, जो मनोवैज्ञानिक तौर पर युद्ध की अवश्यम्भाविता अथवा संभावना में डूबा रहता था। इस लॉबी के आधारभूत सामान्य सिद्धान्त के मुताबिक आक्रमण सर्वाधिक सही रास्ता था, खासकर तब जबकि दुश्मन खुद को शांति से युद्ध के लिए तैयार करने में एड़ी चोटी एक किए है। सैन्यवाद और उसका यह पक्ष पूरब के तीनों

राजतन्त्रों, जर्मनी, आष्ट्रिया और रूस की रणनीति का एक अहम अंग था, और यह 1914 के महायुद्ध को भड़काने के लिए पर्याप्त जिम्मेदार था।

1.3.8 राष्ट्रवाद या संकीर्ण राष्ट्रवाद

संकीर्ण राष्ट्रवाद युद्ध का एक और कारण था। तात्कालिक यूरोप के राजनीतिक मानचित्र में न होने वाले और भविष्य में अपनी आजादी की महात्वाकांक्षा संजोए राष्ट्र भी शांति के लिए एक पुख्ता खतरा थे। सर्व–जर्मन, सर्व–स्लाविक राष्ट्रवाद और अपनी पुरानी सीमाओं तक विस्तार की वापसी के लिए लालायित फ्रांस का राष्ट्रवाद जर्मनी और रूस–फ्रांस जैसे उसके पूर्वी और पश्चिमी पड़ोसियों के बीच परस्पर घृणा का माहौल पैदा कर चुका था। बालकन क्षेत्र की ये जटिलताएँ इतना महत्वपूर्ण कारक थीं कि वे अन्ततः महायुद्ध की चिन्गारी का कारण बन गईं।

1.3.5 बोस्निया का संकट

(1908) आष्ट्रिया द्वारा बोस्निया के अधिग्रहण के कारण सर्व–स्लाव राष्ट्र बनाने का सर्बियाई सपना धराशाई हो गया था। स्वभावतया, सर्बिया के लोगों का खून खौलने लगा, उन्हें अब अपनी सीमाओं के जायज विस्तार की आकांक्षा मुश्किल लग रही थी। गौरतलब है कि बोस्निया की जनसंख्या में 30 लाख सर्बियाई मौजूद थे। मदद के लिए सर्बियारूस के पास गया, और उसने इस मामले पर एक यूरोपीय सम्मेलन भी आहूत किया। लेकिन यह स्पष्ट होने के बाद कि संभावित युद्ध में जर्मनी आष्ट्रिया का साथ देने वाला है, ब्रिटेन, फ्रांस और रूस सर्बिया की मदद करने से पीछे हट गए। इस तरह आष्ट्रिया बोस्निया पर अपना कब्जा बरकरार रखने में कामयाब रहा। हालाँकि, इस दौरान, रूस बड़े पैमाने पर अपनी सैनिक तैयारियाँ करता रहा, क्योंकि सर्बिया द्वारा दोबारा मदद माँगे जाने पर वह हस्तक्षेप करने में खुद को समर्थ बनाना चाहता था।

1.3.7 बालकन युद्ध (1912–1913)

प्रथम बालकन युद्ध में सर्बिया, ग्रीस, मान्टेनेग्रो और बुलगारिया की ` बालकन लीग ने तुर्की पर आक्रमण कर दिया और उसके अधिकांश यूरोपीय क्षेत्रों पर अपना कब्जा जमा लिया। उसके बाद आयोजित लंदन शांति सम्मेलन में आष्ट्रिया की जिद पर अलबानिया के बतौर एक स्वतन्त्र राष्ट्र अस्तित्व में आ गया, ताकि सर्बिया की पहुँच समुद्र तक न हो सके, और वह ज्यादा ताकतवर न बन पाए।

दूसरी ओर बल्गारिया भी नाखुश था। मैसीडोनिया पर काबिज होने का उसका सपना टूट चुका था क्योंकि उसका अधिकांश हिस्सा सर्बिया को मिल चुका था। बल्गारिया ने सर्बिया पर हमला कर दिया, और इस तरह द्वितीय बाल्कन युद्ध की शुरुआत हो गई। युद्ध में ग्रीस, रोमानिया और तुर्की सर्बिया के साथ थे, और बल्गारिया पराजित हो गया। नतीजतन, बुखारेस्ट शान्ति संधि में प्रथम बाल्कन युद्ध में हासिल अपने अधिकांश इलाकों का समर्पण करने के लिए बल्गारिया बाध्य हो गया। इस तरह युद्ध के पश्चात सर्बिया और ताकतवर हो गया, और वह आष्ट्रियाई–हंगरी साम्राज्य के क्रोएशियाइयों ओर सर्बियाई लोगों को भड़काने में लग गया। दूसरी ओर आष्ट्रिया सर्बियाई मंसूबों को चकनाचूर करने के लिए तैयार था। इस तरह 1913 के बाद बाल्कन समस्या ऐसे विस्फोटक कगार पर खड़ी हो गई थी, जहाँ से वापसी की संभावनाएँ शेष हो चुकी थीं, और युद्ध होने में केवल समय का इंतजार रह गया था।

1.3.7 आर्थिक साम्राज्यवाद

उन्नीसवीं सदी के अन्त में इंगलैन्ड, फ्रांस और रूस विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य के मालिक बन चुके थे। दूसरी तरफ, जर्मनी का औपनिवेशिक विस्तार यूरोप के बाहर न के बराबर था। उपनिवेशों के मामले में अपने

इस दोयम दर्जे को जर्मनी स्वीकार नहीं कर पा रहा था, और वह अधिक उपनिवेश, प्रोटेक्ट्रेट व प्रभाव क्षेत्र बनाकर अपनी प्रतिष्ठा व ताकत बढ़ाने के लिए कसमसा रहा था।

इसलिए, आर्थिक साम्राज्यवाद भी, कुछ हद तक, युद्ध का एक कारण बन गया। इस साम्राज्यवाद ने अन्तर्राष्ट्रीय होड़ को जन्म दिया, जिसके फल औद्योगिक क्रान्ति वाले क्षेत्रों पर अधिकाधिक कब्जा करने की कोशिशों के रूप में पहले इंगलैन्ड और फिर बाकी दुनिया के देशों के अन्दर दिखे। इन कोशिशों के परिणामस्वरूप, दुनिया में वस्तु उत्पादन काफी बढ़ गया, और कच्चे माल व बाजार सुरक्षित करने के नए संघर्ष होने लगे। यह परिघटना पूँजी के संकेन्द्रण को बढ़ाने लगी, जिसका अब पारदेशीय निवेश भी जरूरी हो गया था। इस नए किस्म के आर्थिक शोषण के अस्तित्व में आने के साथ उसके राजनीतिक विरोध का भी दौर शुरू हो गया। इन सबका परिणाम उपनिवेश बनाने की नई होड़ में दिखा, जो बीसवीं सदी की शुरुआत होते–होते राष्ट्रों की अधिकाधिक टकराहटों में बदल चुकी थी। यह कहना सर्वथा उचित होगा कि आर्थिक साम्राज्यवाद ने जिस अन्तर्राष्ट्रीय होड़, टकराहट और वैमनस्य को जन्म दिया था, उसके लिए यूरोप की बड़ी ताकतें सामूहिक रूप से जिम्मेदार थीं।

1.3.8 प्रेस की भूमिका

युद्ध से ठीक पहले अनेक देशों के अखबार अपने प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्र के खिलाफ वैमनस्यता का जहर उगलने में लगे थे। युद्धपूर्व के चालीस वर्षों में, राजनयिक आदान–प्रदान के दस्तावेज ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जब प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रों की सरकारें आपसी सुलह के लिए तत्पर थीं, लेकिन अपने देशों के मीडिया द्वारा पैदा युद्धोन्माद के दबाव में वे शान्ति और सुलह की राह पर आगे नहीं बढ़ सके। प्रेस कुछ मुद्दे उछाल कर तिल का ताड़ बना देते और फिर आरोप–प्रत्यारोप के बीच एक अखबारी युद्ध लड़ा जाता था। इस तरह जनमत उन्मादी बन गया था, जो असली युद्ध भड़काने में सहायक रहा।

1.6.6 विभिन्न देशों की महात्वाकांक्षाएँ

1.3.9.1 अलसेस–लॉरेन वापस पाने की फ्रांसीसी कसमसाहट

लौह अयस्क की बहुतायत वाला फ्रांस का अलसेस–लॉरेन इलाका 1871 में जर्मनी ने छीन लिया था। फ्रांस बदले की भावना में जल रहा था और अपने इलाके वापस पाने के लिए बेकरार था। फ्रांस के लोग मानते थे कि उसके इन इलाकों पर कब्जा करके ही जर्मनी इतनी औद्योगिक प्रगति करने में सफल हो सका है। इसके अलावा, मोरक्को के मामलों में जर्मन दखलंदाजी ने भी दोनों देशों के आपसी रिश्तों को तल्ख कर दिया था। अलसेस–लॉरेन इलाके के महत्व पर टिप्पणी करते हुए अमरीकी राष्ट्रपति वुडरो विलसन ने कहा थाः ''अलसेस–लॉरेन को छीनकर 1871 में प्रशिया द्वारा फ्रांस पर जो अत्याचार किया गया उसने विश्व शान्ति को अगले 50 सालों के लिए कोहरे की चादर से ढक दिया था।''

1.3.9.2 विश्व शक्ति बनने की जर्मन महात्वाकांक्षा

1890 में, बिसमार्क के सत्ताच्युत होने के बाद, जर्मन महात्वाकांक्षाएँ कुलाचें भर रही थीं, और अब जर्मनी अपनी साख और सत्ता बढ़ाने के लिए पूरी तरह बेकरार दिख रहा था। जर्मनी का शासक, विलियम काइजर द्वितीय नौसेना के मामले में भी इंगलैन्ड को मात देना चाहता था। इसके अलावा वह अपने औपनिवेशिक विस्तार के संवर्धन के लिए भी कटिबद्ध था।

1.3.9.3 विस्तार की इटालवी महात्वाकांक्षा

इटली ट्रेन्टीनो और ट्रीस्टे बन्दरगाह के इर्दगिर्द के इलाकों को अपने सीमाक्षेत्र में शामिल कर लेना चाहता था, जो तत्कालीन आष्ट्रिया–हंगरी साम्राज्य का अंग थे। ये इलाके कभी रोमन साम्राज्य का अंग रह चुके थे, इसलिए इटलीवासी ''इटली के अधूरेपन'' को राजनीतिक मुद्दा बना रहे थे।

1.3.10 .वैश्विक अराजकता या अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की नियामक मशीनरी का अभाव

दुनिया के विभिन्न देश अपने राजनयिक सम्बन्धों को गोपनीय बनाए हुए थे, इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय मामले रहस्यमय बन चुके थे। हालाँकि, हेग सम्मेलनों (1899 एवं 1907) के क्रम में अन्तर्राष्ट्रीय कानून और नैतिकता सम्बन्धी कतिपय सिद्धान्त आकार ग्रहण कर चुके थे, लेकिन इन दिशानिर्देशों को लागू करने वाली अधिकार सम्पन्न संस्था नहीं थी, जिसके कारण दुनिया के देश उन्हें ज्यादा तवज्जो नहीं देते थे। इस अराजकता की स्थिति में, मोरक्को के दोहरे संकट आए और बालकन के दो युद्ध हुए, जिनसे एक विकट परिस्थिति पैदा हुई जो भविष्य में और गंभीर हो गई।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर विजेता राष्ट्रों ने शांति संधि में जिदपूर्वक वह प्रावधान जोड़ा, जिसके अनुसार ''मित्र राष्ट्रों व उनकी सहयोगी सरकारों, उनके नागरिकों पर जर्मनी और उसके युद्ध सहयोगियों द्वारा थोपे युद्ध से जो नुकसान और विध्वंस हुआ उसकी जिम्मेदारी'' जर्मनी की थी। महायुद्ध को केवल जर्मन नीतियों और महात्वाकांक्षाओं का सीधा नतीजा बताने वाली विजेता राष्ट्रों की यह व्याख्या युद्ध पश्चता समस्त विवादों की जड़ सबित हुई।

बहरहाल, युद्ध की कोई एक व्याख्या करना भी अतिसरलीकरण होगा। यह सच है कि जुलाई 1914 में संकट की अंतिम घड़ियों में जर्मन सरकार के व्यवहार ने युद्ध की संभावनाओं को काफी बढ़ा दिया था। लेकिन युद्धोन्माद से ग्रस्त अनेक राष्ट्रों में व्यापक जनमत जिस तरह युद्ध का स्वागत कर रहा था, और हरेक सम्बन्धित सरकार जिस तरह अपने बुनियादी राष्ट्रीय हितों का संकट देख रही थी, ऐसी परिस्थिति सामाजिक–आर्थिक, बौद्धिक, राजनयिक और यहाँ तक कि मनोवैज्ञानिक कारकों के संगम से ही पैदा हो सकती थी। यही जटिल संयोग 1914 की उन परिस्थितियों में परिणत हुआ जो युद्ध से ठीक पहले की घटनाओं में जाहिर होती हैं। हम आष्ट्रिया, जर्मनी, इंगलैन्ड, रूस और फ्रांस जैसी पाँचों महाशक्तियों को युद्ध भड़काने के लिए जिम्मेदार कह सकते हैं।

अभ्यासः सही/गलत चिन्हत करें

क. जर्मन चांसलर कैवूर द्वारा शुरू गुप्त संश्रयों की व्यवस्था युद्ध का सबसे बड़ा कारण थी।
ख. लौह अयस्क की प्रचुरता वाले फ्रांस के अलसेस–लॉरेन के इलाके जर्मनी द्वारा 1871 में छीन लिए गए थे।
ग. 28 जून 1914 को, सारायेवो में, आष्ट्रियन राजगद्दी के वारिस आर्कड्यूक फ्रांज फर्डीनान्ड की हत्या प्रथम विश्व युद्ध का तात्कालिक कारण थी।
घ. त्रिराष्ट्रीय मित्रता में फ्रांस, इंगलैन्ड और आष्ट्रिया शामिल थे।

उत्तर

क. गलत, ख सही, ग. सही घ. गलत

प्रश्न 2. अभ्यासः खाली स्थान भरें

क. इटालवी ......और ....के बन्दरगाह के आसपास के उन इलाकों को पुनः हासिल करना चाहता था, जहाँ के बाशिन्दे इटालियन थे लेकिन वे अभी आष्ट्रिया–हंगरी साम्राज्य के अन्दर थे।

ख. प्रथम .....युद्ध के दौरान सर्बिया, ...मान्टेनेग्रो और ......वाली बालकन लीग ने तुर्की पर आक्रमण करके उसके अधिकांश यूरोपीय सीमा–क्षेत्र पर कब्जा कर लिया।

ग. आष्ट्रिया के कहने पर ....के शान्ति सम्मेलन में .... के बतौर एक स्वाधीन राष्ट्र का निर्माण किया गया, ताकि समुद्रतट तक पहुँच हासिल न हो और वह अधिक ताकतवर न बन पाए।

बल्गारिया ने ......पर हमला कर दिया और इस तरह 1913 के द्वितीय ......युद्ध की शुरुआत कर दी।

1.4 प्रथम विश्व युद्ध की कुछ व्याख्याएँ

युद्ध के दौरान यह धारणा आम थी कि युद्ध 'पुराने राजनय' और गुप्त समझौतों पर आधारित संश्रयों की व्यवस्था का परिणाम था।

जर्मनी के कुछेक शीर्ष इतिहासकारों ने वैदेशिक मामलों में सरकारों की अतिसक्रियता और युद्धकाल में राष्ट्रीय एकता की अपीलों को जटिल व अभेद्य घरेलू समस्याओं से ध्यान हटाने की अचेतन या जानबूझकर की गई कार्यवाही के बतौर व्याख्या की है।

जर्मनी के फ्रिट्ज फिशर समेत कुछ इतिहासकार दावा करते हैं कि जर्मनी ने सचेत और जबरदस्ती ब्रिटेन, फ्रांस और रूस पर युद्ध थोपा था, ताकि वह विश्वप्रभुत्व हासिल करने में कामयाब हो सके। दूसरी ओर, इतिहासकार यह भी कहते हैं कि जर्मनी इसलिए युद्ध में गया क्योकि ब्रिटेन के नौसैनिक प्रभुत्व औररूसी सेना के भारी विस्तार के चक्रव्यूह में वह खुद के घिरने का खतरा महसूस कर रहा था। जर्मन सेनाध्यक्ष सुरक्षा के लिए 'रक्षात्मक' युद्ध करना जरूरी समझने लगे, और उनकी धारणा थी कि यह युद्ध 1914 से पहले ही किया जाना चाहिए, क्योंकि उसके बाद रूस की सेना काफी ताकतवर हो जाएगी।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार जर्मनी किसी बड़े युद्ध में बिलकुल नहीं जाना चाहता था; कैसर विलियम द्वितीय और चान्सलर बेथमैन हॉल्वेग मानते थे कि उसे आष्ट्रिया का मजबूत समर्थन मिलने के बाद रूस मजबूरन तटस्थ हो जाएगा। अगर यह बात सच है तो इसे गलत मूल्यांकन एक वाकई बड़ी दुर्घटना कहना चाहिए।

एल.सी.एफ टर्नर ने के अनुसार यह युद्ध 'गलत अनुमानों की त्रासदी' थी; आष्ट्रिया यह समझने में गलत साबित हुआ कि रूस सर्बिया का साथ छोड़ देगा; जर्मनी से आष्ट्रिया को बिना शर्त समर्थन देने की भूल हुई; जर्मनी और रूस के नेताओं का यह आकलन गलत निकला कि उनके देशों की सैनिक तैयारियाँ युद्ध में नहीं बदलेंगी; सेना के जनरल, खासकर मोल्टके ने पूर्व निर्धारित योजनाओं से चिपके रहकर भारी भूल की, क्योंकि उन्हें मुगालता था कि वे तेज आक्रमण से जीत हासिल करके युद्ध खत्म देंगे।

ये सारे आकलन शासकों, राजनेताओं और सैन्य अधिकारियों को गलत निर्णय करने और युद्ध का जोखिम उठाने की ओर ले गए।

1.5 युद्धकालीन घटनाक्रम

सर्बिया पर आष्ट्रिया के हमले से जो युद्ध शुरू हुआ उसकी लपटें चारों ओर तेजी से फैलने लगीं। ब्रिटेन और जर्मनी के प्रारम्भिक आकलनों के विपरीत वह एक स्थानीय लड़ाई नहीं रही, बल्कि दुनिया के विभिन्न इलाकों में फैलती गई। रूस ने आष्ट्रिया–हंगरी पर आक्रमण कर दिया और, बदले में, जर्मनी रूस के साथ युद्ध में कूद पड़ा। बाद में, जब जर्मनी ने तटस्थ बेल्जियम और फ्रांस पर हमला किया, तो ब्रिटेन भी युद्ध में कूद पड़ा,

और, इस तरह, लड़ाई फैलकर बड़े युद्ध में बदल गई। युद्ध नभ, थल और जल में फैल गया। नए हथियारों, बख्तरबन्द टैंक, युद्धक विमान, जहरीली गैस जैसी नई खोजों, के इस्तेमाल ने युद्ध को अत्यन्त भयानक बना दिया।

1.5.1 1914 की रणनीति

1.5.1.1 पश्चिमी मोर्चा

फ्रांस के खिलाफ जर्मन युद्ध की योजना जर्मनी के जनरल स्टाफ के भूतपूर्व प्रमुख काउन्ट अल्फ्रेड वॉन श्लीफेन ने तैयार की थी।योजना इस आधारभूत मान्यता पर खड़ी थी कि रूस की सैनिक तैयारी कुछेक सप्ताह का समय लेगी, इसलिए जर्मनी तेज आक्रमण के जरिए छह सप्ताह में फ्रांस की सेना को परास्त कर देगा। लेकिन बेल्जियम में जर्मनी को इतने कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा कि वहाँ कब्जा जमाने में ही उसे दो सप्ताह से ज्यादा समय लग गया। इस तरह, जर्मन आक्रमण के पहले फ्रांस को कीमती वक्त मिल गया, ताकि वह खुद को संगठित और चैनेल के बन्दरगाह खाली कर सके, ताकि ब्रिटेन की सैनिक टुकड़ी वहाँ पहुँच सके। जर्मन सेना फ्रांस में अन्दर घुसते हुए पेरिस से 25 मील की दूरी पर पहुँच गई, फ्रांस ने अपनी सरकार बोर्दो में स्थानान्तरित कर ली। इस बीच जर्मन सेना ने एक बड़ी कार्यनीतिक गलती करते हुए अपने दक्षिणी अभियान से सेना को वापस बुला लिया , जबकि श्लीफेन ने फौजियों से स्पष्ट कहा था, ''अपने दक्षिणी अभियान को मजबूत बनाए रखो''। श्लीफेन के उत्तराधिकारी मौल्टके ने उनकी सलाह न मानकर गलती की। फ्रांस के सेनापति जॉफ्रे ने जर्मन सेना की यह कमजोरी भाँप ली और मजबूत जवाबी हमले में उतर पड़ी। इस तरह, मार्ने की लड़ाई में जर्मन सेना पीछे हटने पर मजबूर हो गई। इस लड़ाई में श्लीफेन की योजना ध्वस्त हो गई, हालाँकि, वह दुनिया के लिए ठीक ही था, क्योंकि जर्मनी के लिए अब फ्रांस को छह सप्ताह में हरा पाना संभव नहीं रह गया था। तेज युद्ध की जर्मन योजना धराशाई हो गई और वे पूर्वी और पश्चिमी मोर्चों पर एक लम्बी लड़ाई करने के लिए मजबूर हो गए। इस तरह, खुली लड़ाई का दौर खत्म हो गया, ट्रेन्च युद्ध शुरू हो गया।

1.5.1.2 पूर्वी मोर्चा

रूसियों ने एक साथ आष्ट्रिया और पूर्वी प्रशिया पर हमला करके अपने पैर पर कुल्हाड़ी मार ली थी। वे आष्ट्रिया के गैल्शिया प्रान्त पर आसानी से चढ़ गए। लेकिन टैनेनबर्ग की लड़ाई में जनरल हिन्डेनबर्ग और जनरल लुडनेड्रॉफ के नेतृत्व वाली सेना ने उन्हें पराजित कर दिया। यही नहीं, मसूरियन झीलों की लड़ाई में रूसी फौज बुरी तरह पिट गई। इन पराजयों में साजो–सामान और आयुध सामग्री का जो नुकसान हुआ, उसने रूसियों की कमर तोड़ दी थी।

1.5.1.3 पश्चिमी मोर्चाः

पश्चिमी मोर्चे पर गतिरोध जारी रहा। ब्रिटेन ने न्यू चैपेल और लूस पर हमला कर दिया, जबकि जर्मनी ईप्रेस और फ्लांडर्स की दूसरी लड़ाई लड़ रहा था। जर्मन सेना ने पहली बार पाइप और बमों के जरिए जहरीली गैस से हमला किया, लेकिन हवा का रुख बदल जाने से मित्र शक्तियों के बजाय जहरीली गैस से उन्हें ही ज्यादा नुकसान हुआ। गौरतलब है कि मित्र राष्ट्रों ने उसी वक्त युद्ध में प्वाइजन गैस का सफल इस्तेमाल किया था।

1.5.1.4 पूर्वी मोर्चा

जर्मनी के पक्ष से तुर्की के युद्ध में उतरने के बाद डार्डानले मित्र शक्तियों के जहाजों के लिए बन्द हो गया। डार्डानले पर कब्जे और काला सागर के रास्ते रूसी आपूर्ति के महत्वपूर्ण मार्ग को खोलने के लिए मित्र

शक्तियों ने गैलीपोली अभियान शुरू किया। अप्रैल माह में आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैन्ड की सेनाएँ गैलीपोली प्रायद्वीप पर उतर तो गईं, लेकिन उन्हें भारी नुकसान उठाना पड़ा। इन झटकों नें मित्र शक्तियों के हौसले पस्त कर दिए और शायद इसी कारण बुल्गारिया केन्द्रीय ताकतों के खेमे में चला गया। बाद में जर्मनी और बुल्गारिया की संयुक्त सेनाओं ने सर्बिया पर आक्रमण कर दिया।

1.5.1.5 इटली का केन्द्र शक्तियों के साथ मिल जाना

अब तक इटली ट्रिपल एलाएंस का सदस्य था, लेकिन वह अब पलटी मारते हुए केन्द्र शक्तियों के पाले में चला गया, क्योंकि लंदन के गुप्त समझौते में उसे एक बड़ा सीमाक्षेत्र देने का वादा किया गया था। बहरहाल, अभी तक युद्ध में इटली का योगदान नगण्य था और उसके प्रयासों का रूस की अन्ततः होने वाली हार पर कोई प्रभाव नहीं था।

1.5.1.6 1916 पश्चिमी मोर्चाः वर्दून और सोम की लड़ाइयाँ

फालकनहैन के नेतृत्व में जर्मन सेना हजारों गोलों और इन्फैन्ट्री के अनवरत हमलों के साथ वर्दून पर टूट पड़ी। लेकिन पेटेन के नेतृत्व में फ्रांसीसियों ने गजब का प्रतिरोध किया। इस लड़ाई में 7 लाख लोगों ने जान गँवाई और दोनों तरफ की सेनाओं को भारी नुकसान हुआ।

सोम की लड़ाई में आक्रमण का मोर्चा मुख्यतया ब्रिटेन ने सँभाल रखा था। रणनीति के अनुसार फ्रांसीसी सेना को जर्मन आक्रमण से राहत देना और जर्मन सेना को पूर्वी मोर्चे पर रूस के खिलाफ नई सैनिक टुकड़ी भेजने से रोकना था। यह लड़ाई युद्ध के इतिहास में पहली बार ब्रिटिश टैंकों के इस्तेमाल के कारण खास बन गई थी। लड़ाई में दोनों पक्षों को भारी नुकसान हुआ, लेकिन जर्मन मनोबल को ज्यादा झटका लगा था और ब्रिटेन अपनी ताकत का लोहा मनवा चुका था।

1.5.1.7 पूर्वी मोर्चा

रूसी सेनाओं ने आष्ट्रियाई सैन्य टुकड़ी पर हमला करके 4 लाख आष्ट्रियाई सैनिकों को बन्दी बना लिया। उसने यह आक्रमण फ्रांस और ब्रिटेन की सलाह और संयुक्त रणनीति के तहत किया था, क्योंकि मित्र शक्तियाँ वर्दून पर जर्मन सेनाओं का दबाव कम करना चाहती थीं। रूसी हमले के बाद रूमानिया मित्र शक्तियों के खेमे में दाखिल हो गया और उसने भी आष्ट्रिया पर आक्रमण कर दिया। लेकिन जर्मन और बुलगारिया की फौजों ने रूमानिया पर पलटवार करते हुए उसके तेल व गेंहूँ की आपूर्तियों पर कब्जा कर लिया।

1.5.1.8 समुद्री युद्ध

31 मई से 1 जून 1916 तक चली जटलैन्ड की लड़ाई में जर्मन सेना कमाल की चतुराई और बड़ी दिलेरी के साथ लड़ी। ब्रिटेन को भारी नुकसान तो हुआ, लेकिन खास बात यह थी कि जर्मन आक्रमण ब्रिटेन की नौशक्ति को बर्बाद करने में सफल नहीं हो सका। बाद में, जर्मन नौसेना अपने अड्डे पर वापस लौट गई और साल के बचे हुए दिनों में अपने घरेलू बन्दरगाहों से बाहर नहीं निकल सकी।

1.5.1.9 1917, पश्चिमी मोर्चा

ईप्रे और पैशनडेल की तीसरी लड़ाई में ब्रिटेन जर्मन सेना पर हल्की बढ़त हासिल करने में सफल रहा। यह लड़ाई दलदली भूमि पर लड़ी गई थी, इसलिए टैंक यहाँ बेकार हो गए थे।

टैंक फ्रांस की कैम्ब्राई की लड़ाई में खाईं–युद्ध का गतिरोध तोड़ने में सफल रहे। इसके बाद 1918 की लड़ाइयों में कैम्ब्राई मॉडल बन गया। दूसरी तरफ, कीपोरेटो की लड़ाई में जर्मनी और आष्ट्रियाई फौजों ने इटली को हरा दिया। अप्रैल 1917 में युद्ध में एक नया मोड़ तब आया जब अमरीका लड़ाई में कूद पड़ा और युद्ध में इटली से भिड़ गया। इसी साल मित्र राष्ट्रों की संयुक्त युद्धकमान भी स्थापित की गई थी।

1.5.1.10 पूर्वी मोर्चाः

घटनाक्रम में एक और बदलाव तब हुआ जब रूस युद्ध से अलग हो गया। रूसी समाज दो क्रान्तियों से गुजर चुका था। नवम्बर 1917 में बोल्शेविक सत्ता सँभाल चुके थे और उन्होंने शान्ति के पक्ष में निर्णय करते हुए ब्रेस्ट–लिटोव्स्क संधि पर हस्ताक्षर कर दिए। इस बीच ब्रिटेन ने तुर्की से बगदाद और जेरूशलम छीन लिया और इस तरह उन्हें तेल के विशाल भन्डारों पर उसे नियन्त्रण हासिल हो गया।

जर्मन सेना की पनडुब्बियों का अनवरत विध्वंसः जर्मनी के पनडुब्बी अभियान ने तीन महीने में अंग्रेजों के 400 से ज्यादा जहाजों को समुद्र में डुबो दिया था। उसने मित्र शक्तियों को आपूर्ति से वंचित करके समर्पण कराने लिए एटलांटिक में गुजरने वाले जहाजों को शत्रु या तटस्थ व्यापारी जहाज में बाँट दिया था। लेकिन उसकी यह रणनीति उलटी पड़ गई, और अमरीका युद्ध में कूद पड़ा।

1.5.1.11 मित्र खेमे में अमरीका

युद्ध में अमरीकी प्रवेश का आधार जर्मनी के विध्वंसक पनडुब्बी आक्रमण, और उसका यह आकलन था कि, जर्मनी अमरीका पर आक्रमण के लिए मैक्सिको को उकसा रहा है, और बदले में उसे एरिज़ोना, टेक्सास और न्यू मेक्सिको देने का वादा कर चुका है। अमरीका रूसी ज़ार के साथ खड़ा होने में हिचक रहा था, लेकिन बोल्शेविकों ने जार की सत्ता उखाड़कर यह बाधा भी दूर कर दी थी। वैसे भी, रसद आपूर्ति, कर्ज और अपने व्यापारी जहाजों के जरिए मित्र राष्ट्रों के पक्ष में अमरीकी योगदान काफी महत्वपूर्ण था, लेकिन उसके युद्ध में सीधे शरीक होने की घटना मित्र शक्तियों का मनोबल बढ़ाने वाली साबित हुई। अमरीकी राष्ट्रपति वुडरो विलसन ने अपनी घोषणा करते हुए कहा था, ''दुनिया में लोकतन्त्र को सुरक्षित बनाने के लिए अमरीका युद्ध में शामिल हो रहा है।''

1.5.1.12 युद्धविराम की अपील

जर्मनी के चान्सलर ने अमरीकी राष्ट्रपति विलसन से युद्धविराम करने की अपील की। जवाब में विलसन ने कहा कि ऐसे किसी प्रस्ताव पर विचार करने के पहले जर्मनी की तानाशाह सरकार को हटना होगा। जर्मनी ने कुछ राजनीतिक सुधार किए तो थे, लेकिन वे देर से किए गए थे और बेहद मामूली थे। जर्मनी में भी भारी बदलाव हो रहा था, उसके विभिन्न प्रान्तों में क्रान्तिकारी उबाल दिख रहा था, जिसने कैसर को सत्ता त्यागने और जर्मनी को गणतन्त्र घोषित करने के लिए मजबूर कर दिया।

जर्मनी के मित्रों की भी हालत तब तक खस्ता हो चुकी थी। 30 सितम्बर 1918 को बल्गारिया ने आत्मसमर्पण कर दिया; एक महीने बाद तुर्की ने भी घुटने टेक दिए; आष्ट्रिया ने 3 नवम्बर को इटली के साथ युद्धबन्दी की घोषणा कर दी, जिसके 9 दिन बाद हैप्सबर्ग साम्राज्य का पतन हो गया। 11 नवम्बर 1918 को, पेरिस के उत्तर

स्थित कॉम्पीन के जंगल में, मार्शल फॉश के युद्धबन्दी दस्तावेज पर जर्मनी के दो प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर कर दिए।

अभ्यासः सही / गलत चिन्हित करें

क. 1914 में फ्रांस के खिलाफ अभियान की जर्मन योजना जर्मन जनरल स्टाफ के भूतपूर्व प्रमुख काउन्ट अल्फ्रेड श्लीफेन द्वारा तैयार की गई थी।

ख. ईप्रे की तीसरी लड़ाई या पाशनडेल की लड़ाई में जर्मनी पर ब्रिटेन ने मामूली बढ़त हासिल की थी।

ग. अमरीकी राष्ट्रपति विलसन ने घोषित किया था कि, अमरीका ''दुनिया में लोकतन्त्र को सुरक्षित बनाने के लिए'' युद्ध में कूद रहा है

घ. रूस युद्ध से अलग हो गया और उसने न्यूइली की सन्धि पर हस्ताक्षर के जरिए शान्ति समझौता कर लिया।

उत्तर क. सही ख. सही ग. सही घ. गलत

1.6 विश्वयुद्ध के परिणाम

प्रथम विश्वयुद्ध के साथ दुनिया में बहुतेरे बदलाव हुए, जिनकी चर्चा हम यहाँ करेंगे–

1.6.1 शक्ति संतुलन में बदलाव

राजनीतिक, आर्थिक और सैनिक सत्ता का वैश्विक केन्द्र यूरोप से हटकर अमरीका हो गया, जो इस युद्ध का सबसे बड़ा और गौरतलब बदलाव है। युद्ध की समाप्ति पर आष्ट्रिया–हंगरी साम्राज्य अपना अस्तित्व खो चुका था, रूस क्रान्ति की उथल–पुथल में घिरा था, जर्मनी अराजकता से त्रस्त था। यूरोप में ब्रिटेन, फ्रांस और इटली ही महाशक्तियों के बतौर शेष बचे थे, लेकिन ये तीनों भी काफी थक–घिस चुके थे।

यूरोपीय शक्तियों के इस ह्रास के विपरीत अमरीका और जापान के रूप में दो गैर–यूरोपीय शक्तियाँ काफी ताकतवर हो चुकी थीं। अमरीका ने मित्र राष्ट्रों की रक्षा के लिए भोजन और धन उपलब्ध कराया था, साथ में उसने हथियार और आयुध भी उपलब्ध कराए थे। अमरीका के इन कर्जों नें मित्र राष्ट्रों को अमरीकी सरकार के बड़े कर्जदारों में और अमरीका को एक कर्जदाता देश में बदल दिया था।

1.6.2 राष्ट्रवाद और स्व–निर्धारण के सिद्धान्तों को स्थापना

अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक विरासत वाले स्वतन्त्र राष्ट्र युद्ध के बाद अस्तित्व में आ गए। पुराने रूसी साम्राज्य से अलग होकर फिनलैन्ड, एस्टोनिया, लाटविया और लिथुआनिया विश्व मानचित्र में नए राष्ट्रों के बतौर उपस्थित हुए। आष्ट्रिया–हंगरी साम्राज्य के विघटन से युगोस्लाविया और चेकोस्लाविया ने स्वतन्त्रता हासिल की। इसके अलावा राष्ट्रवाद की लहर चीन, तुर्की, मिश्र और आयरलैन्ड में भी जोर मारने लगी थी।

1.6.3 लोकतन्त्र का विस्तार

यूरोप में आष्ट्रिया–हंगरी के हैब्सबर्ग, जर्मनी के होहेनज़ॉलर्न्स और रूस के रोमानोव जैसे तानाशाह परिवारों की जगह संवैधानिक सरकारों की स्थापना हुई। चेकोस्लोवाकिया, पोलैन्ड, लिथुआनिया, लाटविया गणतन्त्र बन गए और सुलतान और खलीफा राज खत्म करके तुर्की गणतन्त्र बन गया।

1.6.4 लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना

युद्ध की भयावहता भावी युद्धों की रोकथाम के लिए वैश्विक नेताओं को नई संस्थाओं के गठन के सवाल पर सोचने के लिए बाध्य करने में सफल रही, ताकि दुनिया युद्ध की विभीषिका से बच सके और अन्तराष्ट्रीय शान्ति और सहयोग कायम हो। इन प्रयासों का परिणाम लीग ऑफ नेशन्स के गठन में दिखाई दिया।

1.6.5 वैज्ञानिक प्रगति

युद्ध के दौरान हथियारों और अन्य साजो—सामान विकसित करने के लिए विभिन्न नवाचार और खोजें हुईं। युद्ध के बाद विज्ञान की यह प्रगति कृषि और औद्योगिक विकास लाने में मददगार साबित हुई।

1.6.6 औरतों की उन्नतिः

युद्धों में बड़े पैमाने पर पुरुष मारे गए थे, जिसके कारण महिलाओं को मजदूरों के बतौर फैक्ट्रियों में जाना पड़ा था। बाद में वे वहाँ नियमित श्रमिकों बदल गईं। अनेक देशों में महिलाएँ सभी सामाजिक पेशों और राजनीति में हिस्सेदारी की माँग करने लगीं, और इस तरह सार्वजनिक जीवन में उनकी भागीदारी काफी बढ़ गई। आर्थर मारविक के अनुसार 1918 में जर्मनी की क्रुप आर्मामेन्ट्स फैक्ट्री में महिला मजदूरों की संख्या 37.6 फीसदी हो चुकी थी। ब्रिटेन के सार्वजनिक ट्रान्सपोर्ट के क्षेत्र में महिला मजदूरों की संख्या 18, 000 से बढ़कर 1, 17,000, बैंकों में 9ए500 से बढ़कर 6,37,000 और वाणिज्य के क्षेत्र में 50,5000 से बढ़कर 93,4000 हो गई थी।

1.6.7 धन—जन की भारी तबाहीः

तकरीबन साढ़े छह करोड़ लोग युद्ध में शरीक हुए थे। लगभग 6,000 लोग 1,500 दिनों तक प्रतिदिन मारे जाते रहे। धन की बर्बादी की नजर से भी यह युद्ध काफी मंहगा था, कार्नेगी एनडाउमेन्ट फॉर इन्टरनेशनल पीस के आकलन के अनुसार इस युद्ध का खर्चा 338 अरब डालर था। यूरोप के शहरों, कस्बों और गाँवों में युद्ध से विकलांग या विरूप सिपाहियों का दिखना आम बात हो गई थी। विधवाओं और अनब्याही स्त्रियों की संख्या बहुत ज्यादा थी। उत्तरी फ्रांस और बेल्जियम में मृत सैनिकों के कब्रिस्तान हर जगह मौजूद थे। मृत या विकलांग सिपाहियों के परिवारों को पेंशन के रूप में दी जाने वाली सहायता इतनी ज्यादा थी कि विभिन्न देशों के बजट बिगड़ गए थे। दूसरी ओर, बढ़ती मंहगाई और बेरोजगारी से आम जनता त्रस्त हो रही थी।

1.6.8 तानाशाहों का जन्मः

प्रथम विश्व युद्ध यूरोप के अनेक देशों में तानाशाही के उदय का भी कारण बना। जर्मनी में नाज़ीवाद और इटली में फासीवाद यूरोप में तानाशाही के नए अवतार थे, जिन्होंने प्रेस का गला घोंटा, अभिव्यक्ति पर पाबन्दी लगाई, और एक पार्टी या व्यक्ति का शासन जनता पर थोप दिया। **त. मंहगाई की मारः** 1919 में ब्रिटिश पाउन्ड स्टर्लिंग की क्रय क्षमता 1914 की तुलना में एक तिहाई रह गई थी, और 1923 में जर्मन मार्क का मूल्य औंधे मुँह गिर चुका था। युद्ध के दौरान फ्रांस में मंहगाई दोगुनी हो चुकी थी। मंहगाई की मार मध्यम वर्गीय तबकों पर सबसे तीखी थी, क्योकि मंहगाई तीन गुना होने के बावजूद उनकी आय स्थिर थी।

अभ्यास

प्रश्न 1. सही/ गलत चिन्हित करें

क. यूरोपीय महाशक्तियों के ह्रास के विपरीत प्रथम विश्व युद्ध के बाद दो गैर—यूरोपीय देशों, अमरीका और जापान, की ताकत बढ़ गई थी।

ख. प्रथम विश्व युद्ध ने राष्ट्रवाद और आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को मान्यता दे दी थी।

ग. लीग ऑफ नेशन्स का गठन युद्ध की रोकथाम और दुनिया के देशों के बीच सहयोग के अलावा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को बढ़ावा देने के लिए किया गया था।

घ. जर्मनी का नाजीवाद और इटली का फासीवाद यूरोप में अवतरित नई तानाशाही थी।

उत्तर

क. सही ख. सही ग. सही घ. सही

प्रश्न 2. अभ्यासः रिक्त स्थान भरें–

क. यूरोप की तीन तानाशाह खानदान, ...के हैब्सबर्ग, ...के होहेनज़ोलर्न्स और रूस के ....सत्ताच्युत हो गए।

ख. आष्ट्रिया–हंगरी साम्राज्य के विघटन के बाद .... और ....जैसे स्वतन्त्र देश अस्तित्व में आए।

ग. मुद्रा–लागत के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए ...... ने युद्ध की वास्तविक लागत को 338.....डालर अनुमानित किया था।

घ. ....मार्विक के अनुसार 1918 तक जर्मनी की ...... कम्पनी में महिला श्रमिकों की संख्या 37.6 फीसदी हो चुकी थी।

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मेरीमन, जॉन, ए हिस्ट्री ऑफ माडर्न यूरोप, नॉर्टन एन्ड कम्पनी, न्यूयार्क/लंदन, 1996
2. मार्विक, आर्थर, ब्रिटेन इन द सेन्चुरी ऑफ टोटल वार, बोस्टन, 1968
3. ब्रिग्स, असा एन्ड क्लाविन, पैट्रीशिया, माडर्न यूरोप, 1789 टु प्रेजेन्ट, पियरसन एजूकेशन लिमिटेड, , दिल्ली, 2003
4. पैक्सटन, राबर्ट ओ, यूरोप इन द ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी, तृतीय संस्करण, हारकोर्ट ब्रेस एन्ड कम्पनी, फ्लोरिडा, 1997
5. नार्मन लो, मास्टरिंग माडर्न वर्ल्ड हिस्ट्री, पंचम संस्करण, मैकमिलन, 2014
6. इग्नू, यूरोपीय इतिहास की पाठ्य सामग्री

1.8 सहायक ग्रन्थ

1. हॉब्सबाम, ई.जे., एज ऑफ इक्सट्रीम्स, द शार्ट ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी, 1914–1991, (1994)
2. टेलर, ए.जे.पी, द फर्स्ट वर्ल्ड वार, द स्ट्रगल फॉर मास्टरी इन यूरोप, 1848–1918, ओयूपी, 1954
3. थॉमसन, डेविड, यूरोप सिन्स नेपोलियन, लो एन्ड ब्राइडन लिमिटेड, लंदन, 1957

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. प्रथम विश्व युद्ध के कारण बताएँ

प्रश्न 2. प्रथम विश्व युद्ध के घटनाक्रम का वर्णन करें।

प्रश्न 3. प्रथम विश्व युद्ध की विभिन्न व्याख्याओं पर एक लघु टिप्पणी लिखें

प्रश्न 4. प्रथम विश्व युद्ध के परिणामों का वर्णन करें

इकाई दो– रूसी क्रान्ति, साम्यवाद, नयी आर्थिक नीति, कृषि का सामुदायीकरण और नियोजित विकास

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 रूस में क्रान्ति से पूर्वकी पृष्ठभूमि

- 2.2.1 राजनीतिक परिदृश्य
- 2.2.2 किसानों की दशा
- 2.2.3 मजदूरों में असंतोष
- 2.2.4 बौद्धिक चेतना
- 2.2.5 रूस में समाजवादी विचारों का प्रभाव
- 2.2.6 1905 की क्रान्ति
- 2.2.7 प्रथम विश्व युद्ध तथा सेना में असंतोष

2.3 फरवरी/मार्च 1917 की क्रान्ति का प्रारंभ

- 2.3.1 अस्थायी सरकार का निर्माण
- 3.3.2 अस्थायी सरकार की घोषणाएं
- 2.3.3 अस्थायी सरकार की कठिनाइयां
- 3.3.4 अखिल रूसी सोवियत कांग्रेस

2.4 अक्टूबर क्रान्ति का प्रारंभ

- 2.4.1 ब्रेस्ट लिटवोस्क की संधि
- 3.4.2 गृह युद्ध
- 3.4.3 सारांश

2.5 साम्यवाद

- 2.5.1 किसानों से बलपूर्वक अनाज अधिग्रहण की नीति
- 3.5.2 उद्योगों का राष्ट्रीयकरण
- 2.5.3 परिणाम

2.6 लेनिन की नई आर्थिक नीति एवं प्रमुख कार्यक्रम

- 2.6.1 कृषि नीति
- 3.6.2 निजी व्यापार
- 2.6.3 बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण तथा लघु उद्योगों के प्रति नीति
- 3.6.4 मुद्रा सुधार
- 2.6.5 श्रम और मजदूर संघ नीति
- 3.6.6 सारांश

2.7 कृषि का सामुदायीकरण

2.8 नियोजित विकास

- 2.8.1 प्रथम पंचवर्षीय योजना
- 2.8.2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना
- 2.8.3 तृतीय पंचवर्षीय योजना
- 2.8.4 पंचवर्षीय योजनाओं का मूल्यांकन

2.9 रूसी क्रान्ति का मूल्यांकन

2.10 रूसी क्रान्ति तथा इतिहास लेखन

2.11 तकनीकी शब्दावली

2.12 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

2.13 सहायक संदर्भ ग्रंथ

2.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.15 निबंधात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

1917 की रूसी क्रान्ति बीसवीं सदी की उन महत्वपूर्ण घटनाओं में से है, जिन्होंने विश्व को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया। इसने सिर्फ राजनीतिक अर्थों में ही नहीं सामाजिक-सांस्कृतिक और वैचारिक रूप में भी वैश्विक स्तर पर बदलाव की एक नई प्रक्रिया शुरू की और विश्व को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। 1789 की फ्रांस की राज्यक्रान्ति के बाद यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। 1917 में (1905 के प्रदर्शनों के बाद) रूस में दो क्रान्तियां हुईं। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि एक ही क्रान्ति दो चरणों में पूर्ण हुई। फरवरी-मार्च में हुई राजनैतिक क्रान्ति के द्वारा रूस में जारशाही का अंत हुआ और अक्टूबर-नवंबर में हुई सामाजिक क्रान्ति से सर्वहारा गणतंत्र की स्थापना हुई। इसके कारण जानने के लिए आपको उन विभिन्न परिस्थितियों का अध्ययन करना पड़ेगा, जिन्होने इस क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार करने में योगदान दिया।

2.1 उद्देश्य

• इस अध्ययन में आप समझ पाएंगे कि इतिहास के अध्येता के रूप में किसी भी क्रान्ति या ऐतिहासिक परिघटना के अध्ययन और गहन विश्लेषण के लिए उससे संबन्धित विभिन्न दृष्टिकोणों को समझने और तत्पश्चात उनके वस्तुपरक पुनर्मूल्यांकन के आधार पर आप किसी देश या काल विशेष के बारे में तथ्यपरक व्याख्या प्रस्तुत कर सकते हैं।

• इस अध्ययन से आप यह भी समझ पाएंगे कि क्रान्ति के द्वारा उत्पादन के साधनों पर कुछ प्रभावशाली लोगों के स्वामित्व के स्थान पर सबके स्वामित्व और समानता पर आधारित समाज /अर्थव्यवस्था के निर्माण का विचार प्रस्तुत किया गया।

2.2 रूस में क्रान्ति की पृष्ठभूमि

रूस यूरोप के सबसे पिछड़े देशों में था। पश्चिमी यूरोप के राजनीतिक जीवन के विकास क्रम में शासक वर्ग की प्रभुता बनी हुई थी। धीरे-धीरे अधिक लोगों की भागीदारी शासन में बढ़ रही थी। फ्रांस की क्रान्ति के प्रभाव से उदार शासन व्यवस्था के लिए शासक मजबूर हुए, पर रूस में 20वीं शताब्दी के प्रारंभ तक यथास्थिति बनी हुई थी। फ्रांस के समान ही रूस में क्रान्ति से पूर्व उच्च तथा निम्न वर्ग के बीच अत्यधिक सामाजिक और आर्थिक विषमता थी। राज्य के अधिकांश महत्वपूर्ण सरकारी पदों तथा भूमि पर कुलीनों/पूंजीपतियों का ही अधिकार था। किसानों की स्थिति अर्द्धदासों (Serfs)के समान थी। देश का 20 प्रतिशत भाग भी कृषि योग्य नहीं था। दक्षिणी कृषि योग्य भाग में अधिकांश भू -स्वामी सामंत थे, जिन्हें कृषि में रुचि नहीं थी। कुटीर उद्योगों में स्थानीय या राजधानी की आवश्यकता की वस्तुओं का निर्माण होता था। निर्यात की अपेक्षा आयात बहुत अधिक था। 19 वीं शताब्दी के अंत में पश्चिमी रूस में उद्योगों का आरंभ होने के बाद भी मजदूरों की स्थिति पर ध्यान नहीं दिया गया। औद्योगिक विकास में गतिरोध के साथ-साथ मजदूरों में भी असंतोष बढ़ने लगा। निरंतर युद्धों पर किए जाने वाले व्यय से भी आर्थिक दशा पर असर पड़ा।

2.2.1 राजनीतिक परिदृश्य

सत्रहवीं शताब्दी के अंत में रूस के जार पीटर महान ने सीमाओं के विस्तार के साथ ही रूस के आधुनिकीकरण/पश्चिमीकरण के प्रयास किए। 19वीं शताब्दी के आरंभिक पूर्वार्द्ध में जार अलेक्जेंडर प्रथम तथा निकोलस प्रथम ने प्रतिक्रियावादी नीति अपनाई। अलेक्जेंडर द्वितीय ने कुछ सुधार किए, जैसे शिक्षा और प्रेस पर लगे प्रतिबंध हटाना, स्थानीय स्वशासन की स्थापना, न्याय प्रणाली को आधुनिक बनाने का प्रयास, 1861 के मुक्ति अधिनियम द्वारा किसानों को दास प्रथा से मुक्त करना आदि, पर 1866 में दिमित्री काराजोव द्वारा जार की हत्या के असफल प्रयास के बाद उसने पुनः प्रतिक्रियावादी परिवर्तन किए। 1881 में नरोदनिकों को जार की हत्या में सफलता मिली। अलेक्जेंडर तृतीय ने भी क्रान्तिकारी आन्दोलन का दमन करने के लिए प्रेस पर प्रतिबंध लगाए

तथा गैर रूसी लोगों पर रूसी भाषा, धर्म और सभ्यता लादने का प्रयास किया। निकोलस द्वितीय की नीतियों पर प्रतिक्रियावादी पोबिदोनोस्तेव का प्रभाव था। 1904-5 के रूस-जापान युद्ध में रूस की पराजय के बाद स्पष्ट हो गया कि रूस में सुधारों की अत्यधिक आवश्यकता थी। 1905 की क्रान्ति के बाद ड्यूमा की स्थापना द्वारा प्रजातंत्रीय शासन का आरंभ हुआ, परंतु निकोलस द्वितीय ने पुनः पीटर स्टॉपलिन जैसे कट्टर प्रतिक्रियावादी मंत्रियों की सहायता से धीरे-धीरे ड्यूमा के अधिकारों में कमी करके उसे निर्बल और केवल एक परामर्शदात्री सभा बना दिया। 1906 से 1916 तक ड्यूमा का लगातार ह्रास होता गया। जार के प्लेहवे जैसे निरंकुशता और दमन के समर्थक पदाधिकारी जनता को किसी भी प्रकार की राजनीतिक स्वतंत्रता देने के विरोधी, रूसीकरण के घोर समर्थक तथा कुलीन वर्ग के विशेषाधिकारों के पक्षधर थे। जार रूस में रहने वाली अनेक अल्पसंख्यक जातियों का रूसीकरण करना चाहता था,उन्होंने भी जार के विरुद्ध आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। राजपरिवार, विशेषकर जारीना पर एक रहस्यवादी भिक्षुक रासपुतिन(ग्रेगोरी एफीमोविच नोविख,जो स्वयं को दैवी शक्तियों से सम्पन्न बताता था) का बढ़ता हुआ प्रभाव भी हानिकारक हुआ। वह शीघ्र ही राजमहल के षडयंत्रों और राज्य कार्यों में प्रभावशाली हो गया और नियुक्तियों, पदोन्नति, पदमुक्ति तथा शासन के अन्य कार्यों में हस्तक्षेप करने लगा। 30 दिसंबर 1916 को रासपुतिन की हत्या कर दिए जाने के बाद जार अधिक प्रतिक्रियावादी नीति अपनाई।

2.2.2 किसानों की दशा

क्रान्ति से पूर्व रूस के 4/5 नागरिक कृषि पर निर्भर थे। कृषि का उत्पादन स्तर तथा कृषि भूमि का क्षेत्रफल काफी कम था। एक-तिहाई किसान लगभग भूमिहीन थे। तकनीकी स्तर पर भी पिछड़ापन था। इसके विपरीत कुलीनों, शासक वर्ग तथा ऑर्थोडॉक्स चर्च के स्वामित्व में बड़े भूखण्ड थे। किसानों द्वारा भू- स्वामियों को दिए जाने वाले करों का बोझ काफी अधिक था। कृषि दासों(सर्फ्स) का मुक्ति अधिनियम (1861) भी सभी प्रान्तों में लागू नहीं किया गया था। इससे किसानों के असंतोष में लगातार वृद्धि हुई। 1902 में हारकोव और पोल्टावा तथा 1905 में यूक्रेन के दक्षिण-पश्चिमी भाग, काकेशस, पोलैण्ड एवं वोल्गा नदी के क्षेत्र में कृषक विद्रोह हुए। 1905 में समस्त किसान प्रतिनिधियों के मास्को में हुए सम्मेलन में रूसी कृषक संघ बनाने का निर्णय लिया गया। 1906 के कानून में प्रत्येक कृषक को 'कम्यून' छोड़कर अलग कृषि करने तथा 1910 में हुए भूमि अधिनियम द्वारा अपनी भूमि का समेकीकरण (कंसोलिडेशन) करने का अधिकार दिया, पर ये सुधार भी भूमिहीनों की समस्या को न सुलझा सके। 1906 से 1915 तक नौ लाख किसान परिवार अपनी जमीनों से अलग हो गए। किसान आन्दोलनों में वृद्धि हुई। कम लगान और दासता में कटौती और फिर उनकी समाप्ति की मांगें तेजी से बढ़ती गईं। किसानों का नारा था कि भू-स्वामियों का स्वामित्व हरण करके उनकी भूमि का वितरण किसानों में किया जाए। जुलाई 1914 से दिसंबर 1916 तक 557 किसान विद्रोह हुए।

2.2.3 मजदूरों में असंतोष

रूस में औद्योगिक उत्पादन अन्य राष्ट्रों से काफी पीछे था, पर यहां औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव दिखाई देने लगा था। लाखों भूमिहीन श्रमिक कारखानों में काम करने के लिए गांव छोड़कर शहरों में आ गए थे, जिसका लाभ पूंजीपतियों ने न्यूनतम मजदूरी पर अधिक श्रम द्वारा उठाया। मजदूरों के पक्ष में कोई कानून नहीं था। उद्योगों में एक ही स्थान पर जमाव की प्रवृत्ति अधिक थी। सेंट पीटर्सबर्ग और मास्को प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र थे। 1878 में सेंट पीटर्सबर्ग में मजदूरों की यूनियन बनी, जो उनकी हड़तालों का नेतृत्व करती थी। 1885 के बाद कुछ श्रमिक कानून बनाए गए, लेकिन मजदूरों की स्थिति में विशेष अंतर नहीं आया। न्यूनतम मजदूरी तथा काम के घंटे निर्धारित करने के लिए सरकार बड़े कारखानों के निरीक्षण की व्यवस्था करती थी, पर फैक्टरी निरीक्षक नियमों को टूटने से नहीं रोक पाते थे। हस्तशिल्प इकाइयों तथा छोटे कारखानों में कभी-कभी काम के घंटे फैक्टरियों के दस से बारह घंटे की तुलना में पन्द्रह घंटे तक हो जाते थे। उनके निवास स्थान बहुत छोटे और अस्वास्थ्यकर थे। उन्हें बहुत लंबे समय के लिए कम वेतन पर कार्य करना पड़ता था। गोर्की के उपन्यास 'माँ'को पढ़ना आरंभ

करते हुए आप मजदूरों की मार्मिक स्थिति से परिचित होते हैं : ''.......दिन को तो फैक्टरी निगल गई थी, उसकी मशीनों ने जी भर कर मजदूरों की शक्ति को चूस लिया था। दिन का अंत हो गया था, उसका एक चिह्न भी बाकी नहीं रहा था और मनुष्य अपनी कब्र के एक कदम और निकट पहुंच गया था.....''।

1908 में एक आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि साठ प्रतिशत मजदूर एक कमरे में रह रहे थे जिसमें दो या दो से भी अधिक परिवार रहते थे। 1914 तक फैक्टरी मजदूरों का 31 प्रतिशत भाग महिलाएं थीं, पर पुरुषों की अपेक्षा उनको कम वेतन दिया जाता था। कुछ मजदूरों ने बेरोजगारी और संकटकाल में सदस्यों की सहायता के लिए संगठन बना लिए थे, पर इनकी संख्या कम थी। विभाजित होने के बावजूद भी काम की स्थितियों अथवा बर्खास्तगी के मसलों पर हड़ताल करने या काम रोकने के लिए एकमत हो जाते थे। सरकार मजदूर संघों की संयुक्त कार्यवाही के विरुद्ध कठोर नियम जारी करती रही, फिर भी इनकी संख्या तेजी से बढ़ती गई। क्रान्तिकारी समाजवादी दल ने मजदूरों के असंतोष का लाभ उठाकर उनमें समाजवादी सिद्धान्तों का प्रचार किया। ''इस साम्यवादी प्रचार ने देश के मजदूरों में जारशाही के प्रति घोर असंतोष एवं घृणा उत्पन्न कर दी, जिसके कारण लोग जार के शासन का अंत करने के लिए क्रान्तिकारियों का साथ देने लगे'' (फिशर)। 1902-03 से ही मजदूरों की हड़तालें होने लगीं, इस समय श्रमिक दुर्घटना क्षतिपूर्ति व्यवस्था आरंभ हुई। । 1905 की क्रान्ति के बाद 1912 में स्वास्थ्य बीमा तथा दुर्घटना बीमा अधिनियम लागू हुए, पर ये सुधार पर्याप्त न थे।

2.2.4 बौद्धिक चेतना

शिक्षा का विकास हो जाने के फलस्वरूप पश्चिमी पुस्तकों का रूसी में अनुवाद हुआ। तोल्सतोय, तुर्गनेव तथा दोस्तोवस्की के उपन्यासों ने रूसी जनता को बहुत प्रभावित किया। इनमें रूस के सामाजिक जीवन में व्याप्त गतिरोध से बाहर निकलने का मार्ग ढूंढने की कोशिश की गई। इसी प्रकार मार्क्स, मैक्सिम गोर्की तथा बाकुनिन के समाजवादी विचारों ने रूसी समाज में क्रान्ति के पक्ष में माहौल तैयार किया। रूस में मार्क्स के अनुयायी बढ़ रहे थे और उन्होंने मजदूरों के बीच काम करना शुरू कर दिया था और छोटी-छोटी समितियों के माध्यम से संगठन का निर्माण हो रहा था। गोर्की के उपन्यास 'माँ' को पढ़ते हुए आपउस दौर में संघर्ष की वैचारिक तैयारियों को समझ सकते हैं। विभिन्न दलों द्वारा प्रकाशित समाचार पत्र/पत्रिकाओं ने भी जनता में चेतना का संचार किया। दिसंबर 1900 में लेनिन ने अपने साथियों के सहयोग से 'इस्क्रा'(चिंगारी) का पहला अंक प्रकाशित किया। 'प्रावदा' के माध्यम से 1912 के बाद बोल्शेविकों ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। 1892 से 1917 तक जर्मन साम्यवादी नेत्री क्लारा जेटकिन के निर्देशन में प्रकाशित होने वाली स्त्री कामगारों की पत्रिका 'ग्लीचहीट'ने स्त्रीवादी चिंतन को प्रभावित किया। लेनिन की पत्नी नादेज्दा क्रूप्सकाया, इनेस्सा आरमा आदि कुछ महिलाओं के संपादन में 'राबोत्नित्सा'(1914) नामक समाचार पत्र ने स्त्री मजदूरों के प्रश्नों को उठाया।

2.2.5 रूस में समाजवादी विचारों का प्रसार

1860 के बाद कुछ मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों अलेक्जेंडर हर्जेन तथा चर्नीशेव्स्की द्वारा समाजवादी विचारधारा के आधार पर एक आन्दोलन प्रारंभ किया गया , जिनके समर्थकों को 'नरोदनिक' या 'पॉपुलिस्ट' कहा जाता था। उन्होंने मजदूरों के हितों के लिए उन्हें संगठित करना शुरू किया। उनका मत था कि रूस के कृषकों को भूमि का स्वामी माना जाए और ग्राम सभाओं के माध्यम से भूमि का वितरण किया जाए। इसके अलावा 1883 में प्लेखनेव ने श्रमिक मुक्ति दल की स्थापना की और रूस में मार्क्सवाद के सिद्धांतों का प्रचार किया।

19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में रूस में मुख्य रूप से दो प्रकार की विचारधाराओं का प्रभाव था– 1.क्रान्तिकारी समाजवादी– इनमें पॉपुलिस्ट और मार्क्सवादी दोनों सम्मिलित थे। ये क्रान्ति द्वारा निरंकुश सत्ता का अंत करना चाहते थे। इनके पुनः दो दल बन गए– (क) सोशियल डेमोक्रेटिक दल (ख) रिवोल्यूशनरी सोशियलिस्ट (क्रान्तिकारी समाजवादी)।

क्रान्तिकारी समाजवादियों का कहना था कि भूमि पर व्यक्ति का नहीं समाज का अधिकार हो और इस दल ने किसानों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया तथा सामंतों के अधीन भूमि को किसानों को हस्तांतरित किए जाने की मांग की। । सबसे शक्तिशाली दल सोशियल डेमोक्रेट्स का था, जो मार्क्सवादी था और मजदूरों के राज्य की कल्पना करता था। 1903 में इस दल में कार्यनीति को लेकर मेन्शेविक और बोल्शेविक(रूसी सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी)में विभाजन हो गया। बोल्शेविक दल का नेता लेनिन तथा मेन्शेविक नेता प्लेखनेव था। प्रारंभ में बोल्शेविक अल्पमत में तथा मेन्शेविक बहुमत में थे। मेन्शेविक विकास में विश्वास करते हुए परिवर्तन चाहते थे, बोल्शेविक क्रान्ति के पक्ष में थे और सर्वहारा वर्ग का प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे।

स्थानीय शासन की संस्थाओं 'जेम्स्तोव'(Zemstovs) में उदारवादियों का प्रभाव अधिक था। एक दल रूस में शांतिमय तरीके से संवैधानिक परिवर्तन चाहता था, जिसमें अधिक नरम लोग ऑक्टोबरिस्ट(Octoberist) कहलाते थे।इनका नेता गुश्कोव था। इसमें सामंतों की प्रमुखता थी। दूसरा दल, जिसमें स्ट्रूव, रोडीशैफ, मिल्यूकोव, नाबाकोव आदि नेता थे, इंग्लैण्ड की तरह संवैधानिक राजतंत्र के पक्ष में था। इनको संवैधानिक जनतंत्रवादी या केडेट कहा जाता था। इसमें मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की प्रमुखता थी। बोल्शेविक और मेन्शेविक से भिन्न ट्राट्स्की का एक दल 'मेजरायोन्त्सि' था, (जो बोल्शेविक और मेन्शेविकों के बीच की लाइन पर काम करता था) जो 1917 में बोल्शेविक में सम्मिलित हो गया। इसके अलावा पेट्रोग्राद की मजदूरों और सैनिकों की सोवियत ने 1917 की क्रान्ति में प्रमुख भूमिका निभाई।

2.2.6 1905 की क्रान्ति

1904 का वर्ष रूसी श्रमिकों के लिए प्रतिकूल था। आवश्यक वस्तुओं के दाम इतनी तेजी से बढ़े कि वास्तविक मजदूरी 20 प्रतिशत तक घट गई। श्रमिक संगठनों की सदस्यता बढ़ने लगी।दिसंबर 1904 में बाकू में मजदूरों की बड़ी और संगठित हड़ताल हुई। जनवरी 1905 में जब रूसी श्रमिकों की एसेंबली के चार सदस्यों को पुतिलोव आयरन वर्क्स (Putilov) में बर्खास्त कर दिया गया तो अगले कुछ ही दिनों में सेंट पीटर्सबर्ग में दस हजार से अधिक मजदूर काम के घंटों को घटाकर आठ करने तथा मजदूरी में वृद्धि की मांग को लेकर हड़ताल पर चले गए। 9 जनवरी(22 जनवरी) 1905 को रविवार के दिन लगभग डेढ़ लाख मजदूरों नेपादरी गैपों के नेतृत्व में जार के समक्ष अपनी मांगें प्रस्तुत करने के लिए शान्तिपूर्ण प्रदर्शन किया , पर जार के सैनिकों द्वारा निहत्थे लोगों पर गोली चलाए जाने सेअनेक मजदूर मारे गए औरघायल हुए। 1905 के इस खूनी रविवार की घटना के बाद रूस के सुधार आन्दोलन में औद्योगिक सर्वहारा वर्ग का प्रवेश हुआ। अगले कुछ हफ्तों में अनेक हड़तालें हुईं। इस क्रान्ति से रूसी जनता भी राजनैतिक अधिकारों से परिचित हो गई और प्रजातंत्र तथा मताधिकार का महत्व समझने लगी। ड्यूमा की स्थापना की गई, पर जार निकोलस ने उसके प्रभाव को हर प्रकार से कम करने की कोशिश की। उसने बार-बार ड्यूमा को भंग किया। इसके अतिरिक्त मताधिकार को अत्यधिक संकुचित बनाकर तृतीय ड्यूमा में निरंकुशवादियों को भर दिया। इन सब कारणों से जनता का रोष बढ़ता चला गया और उसने अपनी मांगों की पूर्ति के लिए आंदोलन करना प्रारंभ कर दिया। 1906 और 1907 की हड़तालों में मजदूरों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। पेट्रोग्राद की मजदूर प्रतिनिधियों की परिषद (सोवियत)1905 की क्रान्ति के दौर में गठित सबसे महत्वपूर्ण संस्था थी।

2.2.7 प्रथम विश्व युद्ध तथा सेना में असंतोष

1914 में प्रथम विश्व युद्ध आरंभ होने पर 1 अगस्त 1914 को जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया।रूस, ब्रिटेन और फ्रांस एक गुट में तथा जर्मनी, ऑस्ट्रिया और इटली दूसरे गुट में थे। इस अवधि में रूस में अंध राष्ट्रवाद बढ़ने लगा। पूंजीपति अपने उत्पादों के लिए नए उपनिवेश व बाजारों के लालच में युद्ध के पक्ष में थे, साथ ही वे जमींदारोंकी ही भांति क्रान्ति से भी भयभीत थे। अधिकतर समाजवादी गुट तथा द्वितीय इंटरनेशनल भी युद्ध के समर्थन में थी। बोल्शेविक युद्ध के पक्ष में नहीं थे। आर्थिक पिछड़ेपन के कारण रूस शत्रुओं का कड़ा मुकाबला

करने में सक्षम नहीं था। 1916 का अंत होते-होते रूस में अनाज की कमी हो गई,जिसका सीधा असर किसानों पर पडा। लोहे और कोयले की कमी के कारण कारखानों के बंद होने की स्थिति में उत्पादन घटा और मजदूर भी बेकार होने लगे। 1917 में सकल औद्योगिक उत्पाद 1914 के 36 प्रतिशत से भी कम हो गया। शरद ऋतु तक यूराल, डोनबास तथा अन्य औद्योगिक केन्द्रों के सभी उपक्रमों में से 50 प्रतिशत बन्द हो गए। अक्टूबर 1917 में रूस का राष्ट्रीय ऋण बढ़कर 50 बिलियन रूबल हो गया। यातायात के साधनों के अस्त-व्यस्त होने के कारण सीमाओं पर सेना, सैनिक सामग्री और खाद्य पदार्थ उपयुक्त मात्रा में तेजी से नहीं पहुंच सकते थे। व्यापार के लिए अनाज का आवागमन ढीला पड़ गया। शहरों की जनसंख्या को भी खाद्यान्न और ईंधन मुश्किल से उपलब्ध हो रहे थे। सेना के लिए लाखों किसान गांवों से लाकर भर्ती किए जाने के फलस्वरूप उत्पादन कम हो गया और सैनिकों की न्यूनतम आवश्यकताएं पूर्ण होना कठिन हो गया। सेना के लिए रसद,हथियार व गोला बारूद का भी अभाव था। अब उसमें न लड़ने का उत्साह था और न युद्ध की उपयोगिता में विश्वास। इस प्रकार शासन का मुख्य आधार सेना ही अराजक स्थिति में थी। बोल्शेविक दलअसंतुष्ट सैनिकों में राजनीतिक चेतना का संचार कर रहा था।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) क्रान्ति से पूर्व किसानों की स्थिति के बारे में बताइए।
   (ख) क्रान्ति से पूर्व रूस में मजदूरों की दशा के बारे में आप क्या जानते हैं?
   (ग) क्रान्ति के समय रूस के प्रमुख राजनीतिक दलों का उल्लेख कीजिए।
   (घ)1905 की घटनाओं के बारे में बताइए।
2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए
   (क) 'माँ' गोर्की का प्रसिद्ध उपन्यास है।
   (ख) 'प्रावदा' मेन्शेविकों का प्रमुख समाचार पत्र था।
   (ग) बोल्शेविकों का नेता लेनिन था।
   (घ) प्रथम विश्व युद्ध में रूस जर्मनी के गुट में सम्मिलित था।

2.3 फरवरी (मार्च)1917 की क्रान्ति का प्रारंभ

9 जनवरी को पेत्रोग्राद, मास्को, बाकू सहित कई शहरों में हड़ताल व प्रदर्शन हुए। 18 फरवरी को पेत्रोग्राद के पुतिलोव कारखाने में हड़ताल शुरू हो गई। क्रान्ति का तात्कालिक कारण खाद्य सामग्री की कमी पर जनता का असंतोष था। क्रान्ति की शुरुआत रोटी की मांग से हुई। डबलरोटी और कोयले की कमी के कारण प्रदर्शन बहुत तीव्र हो गए। 23 फरवरी(8 मार्च– अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस) 1917 को पेट्रोग्राद (पुराना नाम सेंट पीटर्सबर्ग) के कपड़े के कारखाने में काम करने वाली स्त्रियों द्वारा शुरू किए गए विरोध ने आम हड़ताल का रूप धारण कर लिया। सड़कों पर 'रोटी दो', 'युद्ध बंद करो', 'अत्याचारी शासन का नाश हो' जैसे नारे सुनाई देने लगे। 24 फरवरी तक दो लाख मजदूर हड़ताल पर चले गए और 26 फरवरी तक हड़ताल ने विद्रोह का रूप ले लिया।26 फरवरी को पेट्रोग्राद स्थित बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने अपने घोषणापत्र में जनता से संघर्ष जारी रखने तथा अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार बनाने की अपील की। सेना की एक बटालियन से भीड़ पर गोली चलाने के लिए कहे जाने पर सेना ने भी विद्रोह कर दिया। 'सैनिकों एवं मजदूरों के प्रतिनिधियों की सोवियत'(परिषद) का गठन किया गया। राजधानी पर मजदूरों और सैनिकों का कब्जा हो गया। लोगों की भीड़ ने श्लसेलबर्ग (Schlusselburg) के किले पर जो रूस का बास्तील था, आक्रमण कर राजनीतिक कैदियों को मुक्त किया, जार के मंत्रियों को बंदी बना लिया। ''रूस की इस क्रान्ति में पेट्रोग्राद का वही स्थान था जो फ्रांस की राज्यक्रान्ति में पेरिस का था'' (ई. लिप्सन)।

2.3.1 अस्थायी सरकार का गठन

क्रान्तिकारी परिषद और ड्यूमा के सदस्यों की एक समिति ने मिलकर 'अस्थायी सरकार का गठन किया, जिसका नेता प्रिंस ल्वोव को बनाया गया। इसमें अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति थे–संवैधानिक गणतंत्रवादी मिल्यूकोव (विदेशमंत्री), अक्टूबरिस्ट नेता गुश्कोव(युद्ध एवं नौसेना मंत्री) तथा क्रान्तिकारी समाजवादी दल के नेता अलेक्जेंडर करेंस्की (न्याय मंत्री)। दूसरी ओर मजदूर सोवियतों के प्रतिनिधि थे, जिनमें मेन्शेविकों का बहुमत था। स्थिति को बिगड़ते देखकर 2 मार्च (15 मार्च) 1917 को जार ने अपने भाई माइकेल के पक्ष में सिंहासन का परित्याग कर दिया।

2.3..2 अस्थायी सरकार की घोषणाएं

इस कार्यवाहक सरकार का चरित्र पूर्णतया मध्यवर्गीय था और उसका स्पष्ट लक्ष्य था एक संवैधानिक सरकार की स्थापना। वह युद्ध जारी रखने के पक्ष में थी। इस सरकार को प्रमुख पूंजीवादी देशों– अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली और जापान ने शीघ्रता से मान्यता दी। सरकार ने निम्न घोषणाएं कीं–

राजनीतिक– जार के शासन काल के राजनीतिक बन्दियों की रिहाई / देश से निष्कासित लोगों को पुनः रूस आने की अनुमति / पोलैण्ड को स्वायत्त शासन का वचन/ फिनलैण्ड के वैध अधिकारों को मान्यता / नवीन संविधान निर्माण के लिए शीघ्र ही पुरुष वयस्क मताधिकार पर एक संविधान सभा के निर्माण की घोषणा।

स्वतंत्रता संबंधी– जार के शासन के दौरान प्रेस, भाषण, लेखन आदि पर लगे प्रतिबंधों की समाप्ति/ मजदूरों को संघ बनाने का अधिकार/ग्रीक चर्च के विशेषाधिकारों की समाप्ति/ यहूदियों के विरुद्ध लागू कानूनों को निरस्त करना।

न्यायिक घोषणाएँ– मृत्युदण्ड की समाप्ति/पुलिस के अधिकारों में कमी ताकि वह किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से बंदी न बना सके।

2.3..3 अस्थायी सरकार की कठिनाइयां

पेट्रोग्राद की सोवियत मजदूरों और सैनिकों का प्रतिनिधित्व करती थी और इस सरकार की प्रतिद्वन्द्वी थी। मध्य और उच्च श्रेणी के लोग अस्थायी सरकार का समर्थन कर रहे थे। ल्वोव, मिल्यूकोव, गुश्कोव और अन्य प्रभावशाली मंत्री क्रान्ति के प्रभाव को रोककर संवैधानिक राजतंत्र की पुनः स्थापना और मजदूरों पर पुनः औद्योगिक अनुशासन लागू करना चाहते थे। सैनिकों की दृष्टि में क्रान्ति का प्रमुख लक्ष्य युद्ध की समाप्ति था,पर सरकार युद्ध जारी रखना चाहती थी। वह व्यक्तिगत सम्पत्ति की पक्षधर थी तो मजदूरोंऔरसैनिकों की सोवियत का विचार था कि जमींदारों को मुआवजा दिए बिना ही किसानों को भूमि दे दी जाय तथा उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाए। लेकिन भूमि पर जमींदारों का स्वामित्व यथावत रहा। श्रमिकों ,मजदूरों तथा सैनिक प्रतिनिधियों ने सुदूर गांवों में जाकर अस्थायी सरकार के विरोध में प्रचार आरंभ कर दिया और युद्ध के विरोध तथा सारी सत्ता सोवियतों को देने के संदर्भ में नारे लगाए। स्थान-स्थान पर सोवियतें(संगठन) बना दी गईं और इन्होंने सरकार से संबंधित कार्यों को करना शुरू कर दिया। युद्ध की घोषणा होने पर जनता के दबाव में मिल्यूकोव और गुश्कोव को त्यागपत्र देना पड़ाऔर करेंस्की को युद्धमंत्री बनाया गया।

2.3..4 अखिल रूसी सोवियत कांग्रेस

पेट्रोग्राद की क्रान्तिकारी सोवियत ने अपना एक आज्ञापत्र 15 मार्च 1917 को घोषित किया, जिसके अनुसार जल व थल सेना उन्हीं कार्यों को करेगी जिन मामलों में अस्थायी सरकार और सोवियत के विचार आपस में न टकराते हों। अस्थायी सरकार द्वारा विरोध करने पर जून 1917 में पेट्रोग्राद सोवियत ने 'अखिल रूसी सोवियत कांग्रेस' का अधिवेशन बुलवाया, जिसमें क्रांतिकारी समाजवादी, मेन्शेविक और बोल्शेविक दल के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इस कांग्रेस ने घोषित किया कि ''केवल राजनीतिक क्रान्ति से काम नहीं चलेगा। सामाजिक एवं आर्थिक क्रांति भी जरूरी है।'' सम्मेलन में 300 सदस्यों की 'अखिल रूसी सोवियत कार्यकारिणी समिति' एवं 20 सदस्यों की एक प्रेसीडियम बनाई गई। वास्तविक कार्यकारिणी शक्ति प्रेसीडियम को दी गई, जिसमें क्रान्तिकारी समाजवादी तथा

मेन्शेविक दल के सदस्य सम्मिलित थे। बोल्शेविकों ने इसका विरोध किया। 1 जुलाई 1917 को पेट्रोग्राद सोवियत ने मजदूरों का प्रदर्शन अपने समर्थन के लिए किया था, किन्तु मजदूरों ने 'युद्ध बंद करो', पूंजीवादी दस मंत्रियों को हटाओ', 'सारी सत्ता सोवियतों को दो' आदि नारे लगाए। बोल्शेविकों को राजधानी के मजदूरों और अधिकतर सैनिकों का समर्थन प्राप्त था, लेकिन प्रान्तों में मेन्शेविकों का प्रभुत्व अधिक था। लेनिन और ट्राट्स्की का विश्वास था कि प्रांतों में भी बोल्शेविकों को शीघ्र ही बहुमत प्राप्त हो जाएगा। 16 जुलाई को क्रान्तिकारी सैनिकों , नौसैनिकों और लोगों की भीड़ ने बोल्शेविकों के साथ मिलकर प्रदर्शन किया। सरकार ने दमन नीति अपनाई। बोल्शेविक आन्दोलन को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया और उसके नेता गिरफ्तार किए गए। इनमें ट्राट्स्की भी था। लेनिन और जिनोविएव को रूस छोड़कर भागना पड़ा। 20 जुलाई को राजकुमार ल्वोव ने त्यागपत्र दे दिया और समाजवादी क्रान्तिकारियों के नेता करेन्स्की ने अपना मंत्रिमण्डल बनाया। बोल्शेविक संतुष्ट नहीं थे और मेन्शेविक भी मन्त्रिमण्डल से अलग हो गए।

2.3..5 जनरल कोर्निलोव द्वारा प्रतिक्रान्ति का प्रयास

12 अगस्त को मास्को में अस्थायी सरकार के राज्य सम्मेलन में जनरल कोर्निलोव ने क्रान्ति का दमन करने की योजना बनाई। लाल रक्षक दलों के प्रभाव से कोर्निलोव के सैनिकों ने उसके आदेशों को मानने से इन्कार कर दिया और शासन पर अधिकार करने और सोवियतों का दमन करने का उसकाप्रयत्न विफल हो गया। 30 अगस्त(12 सितंबर) कोउसे गिरफ्तार कर लिया गया। इस घटना से जनता में जारशाही के लौटने की संभावना का भय उत्पन्न हुआ और यह भी प्रचार हुआ कि करेन्स्की भी इस षडयंत्र में शामिल था। इसके परिणामस्वरूप बोल्शेविकों का प्रभाव बढ़ने लगा। केडेटों, मेन्शेविकों और समाजवादी क्रान्तिकारियों के मंत्रियों ने संघ सरकार से अपना त्यागपत्र दे दिया। एक महीने तक किसी नियमित सरकार की स्थापना नहीं की गई। 1 सितंबर(14 सितंबर) को करेंस्की ने एक कार्यकारिणी समिति (डायरेक्टरी) की स्थापना की।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) फरवरी (मार्च) 1917 की क्रान्ति
   (ख) अस्थायी सरकार
   (ग) अखिल रूसी सोवियत कांग्रेस का सम्मेलन

2.4 अक्टूबर क्रान्ति

31 अगस्त(13 सितंबर) को बोल्शेविकों को पहली बार पेट्रोग्राद सोवियत में बहुमत मिला। ट्राट्स्की के जमानत पर जेल से बाहर आने के बाद उसे सोवियत का अध्यक्ष चुना गया। इसके बाद बोल्शेविकों को मास्को की सोवियत और फिर अधिकतर प्रांतीय सोवियतों में बहुमत मिला । इस बहुमत को देखते हुए लेनिन ने फिनलैण्ड में (अपने छुपने के स्थान) निष्कर्ष निकाला कि अब दल को अपने हाथों में सशस्त्र क्रान्ति द्वारा सत्ता ले लेनी चाहिए।(जुलाई में करेंस्की सरकार द्वारा बोल्शेविकों को गिरफ्तार किए जाने के कारण लेनिन ने फिनलैण्ड जाकर वहीं से बोल्शेविकों को पत्र लिखकर अपनी नीतियों से अवगत करना जारी रखा था)।7 अक्टूबर को वह गुप्त रूप से फिनलैण्ड से पेत्रोग्राद आ गए। योजना को कार्यान्वित करने के लिए पोलित ब्यूरो की नियुक्ति हुई तथा ट्राट्स्की ने पेट्रोग्राद सोवियत की ''सैनिक क्रान्तिकारी समिति'' नियुक्त की। गुप्त रूप से सारी तैयारी पूरी कर ली गई। यद्यपि जिनोवियेव आदि पार्टी के कुछ सदस्य सशस्त्र क्रान्ति के पक्ष में नहीं थे। एडवर्ड रीस विलियम्स (जॉन रीड के साथ ही अक्टूबर क्रान्ति के साक्षी) ने लिखा है कि ''बोल्शेविक दल ने अस्थायी सरकार का तख्ता पलटने और सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व अर्थात राज्य के शासन की बागडोर अपने हाथ में लेने की तैयारियां शुरू कर दीं।'' क्रान्तिकारी समाजवादी तथा मेन्शेविक दल करेंस्की सरकार के मंत्रिमण्डल से अलग हो चुके थे। उसने कार्यालय को मॉस्को ले जाने की योजना बनाई, पर बोल्शेविकों का अनुमान था कि उसके बाद

क्रान्ति का दमन करने के लिए पेत्रोग्राद को जर्मनी के सुपुर्द कर दिया जाएगा। अतः उन्होंने करेंस्की को पेत्रोग्राद में ही बंधक बनाए रखा। बोल्शेविक नेताओं ने क्रान्ति की योजना को 25 अक्टूबर (7 नवंबर) को होने वाले ' अखिल रूसी सोवियत कांग्रेस ' से पूर्व कार्यान्वित करने का फैसला किया। अस्थायी सरकार द्वारा युद्ध के मोर्चे से सेना पेत्रोग्राद बुला ली गईं।23 अक्टूबर(5 नवंबर) 1917 को करेंस्की ने सभी बोल्शेविक अखबारों को जब्त करने तथा जमानत पर छोड़े गए बोल्शेविक नेताओं को बन्दी बनाने का आदेश जारी किया। उसके द्वारा भेजी हथियारबंद गाड़ियों को स्तालिन और उसके लाल रक्षक दस्ते ने खदेड़ दिया।24 अक्टूबर की रात को लेनिन ने स्मोल्नी आकर क्रान्ति के संचालन का भार संभाला। स्मोल्नी क्रान्ति का मुख्यालय बन गया। 25 अक्टूबर (7 नवंबर)लाल रक्षकों (रेड गाड्र्स) और क्रान्तिकारी सैनिकों ने विंटर पैलेस, टेलीफोन केन्द्र, पोस्ट ऑफिस, रेलवे स्टेशनों, राष्ट्रीय बैंक, बिजली घरों और अन्य सामरिक स्थानों पर अधिकार कर लिया। विंटर पैलेस में शरण ली हुई अस्थायी सरकार को गिरफ्तार कर लिया गया। पेट्रोग्राद की सेना का सेना का सहयोग प्राप्त होने से लाल रक्षकों की शक्ति अत्यधिक बढ़ गई थी। 25 अक्टूबर(7 नवंबर) को करेंस्की राजधानी छोड़कर भाग गया। अस्थायी सरकार के सभी मंत्री बंदी बना लिए गए। राजधानी के प्रमुख स्थानों पर लगाए गए पोस्टरों में घोषणा की गई– ''अस्थायी सरकार को समाप्त कर दिया गया है और उसके स्थान पर सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी समिति तथा पेट्रोग्राद के गैरीसन ने सत्ता ग्रहण कर ली है।'' मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस ने रूस को 'सोवियत समाजवादी जनतंत्र' घोषित किया। पेट्रोग्राद सोवियत के सम्मुख अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए ट्राट्स्की ने कहा ''इतिहास में हमें किसी अन्य क्रान्तिकारी आन्दोलन का उदाहरण नहीं मिलेगा, जहां इतने लोग हों और जहां रूस के समान इतनी बड़ी क्रान्ति बिना रक्त बहाए सफल हो गई हो।''मास्को में कई दिन तक संघर्ष चलने के बाद सोवियतों को सत्ता प्राप्त हुई। अक्टूबर 1917 से फरवरी 1918 तक अधिकांश राज्यों की सत्ता सोवियतों के हाथ में आ गई।

लेनिन की अध्यक्षता में सोवियत मंत्रिमण्डल का निर्वाचन हुआ। 25 अक्टूबर(7 नवंबर)1917 को सोवियतों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस की बैठक में बोल्शेविकों को भारी बहुमत मिला।मेन्शेविक और समाजवादी क्रान्तिकारी कांग्रेस छोड़कर चले गए। दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए गए– 1. युद्धरत राष्ट्रों से युद्ध बंद करके शान्ति वार्ता आरंभ करने की अपील की गई। 2. भूमि संबन्धी आज्ञापत्र जारी किया गया, जिसमें कहा गया कि सोवियत सरकार बिना किसी मुआवजे के जमीनों का हस्तांतरण सुनिश्चित करेगी। लेनिन के अधीन एक मंत्रिमण्डल ''काउंसिल ऑफ पीपुल्स कमिसार्स'' का गठन हुआ, जिसमें स्टालिन, ट्राट्स्की, राइकोव तथा मिल्यूतीन को सम्मिलित किया गया। लेनिन ने कई आदेश जारी करके नवनिर्मित सरकार के कार्यक्रम की घोषणा की और अखिल रूसी सोवियत कांग्रेस का उद्घाटन करते हुए कहा ''साथियों! अब हमेंसमाजवादी राज्य की रचना का काम अपने हाथ में ले लेना चाहिए।''

इस सरकार के समक्ष अनेक समस्याएं थीं, जिनमें प्रमुख रूस में शांति स्थापित करना, साम्यवादी सिद्धांतों के आधार पर रूस की सामाजिक एवं आर्थिक दशा में परिवर्तन करना तथा रूस में बाह्य शक्तियों के हस्तक्षेप को रोकना था। इसके प्रमुख कार्यक्रम थे– 1.युद्ध की समाप्ति के लिए जर्मनी से शान्ति संधि 2. बिना क्षतिपूर्ति दिए समस्त व्यक्तिगत भूमि पर सरकार का अधिकार 3. श्रमिकों को कारखानों में स्वामित्व 4. पूंजीपतियों को राजनीतिक अधिकारों से वंचित किया जाना 5. बैंकों का राष्ट्रीयकरण 6. मुक्त व्यापार प्रणाली की समाप्ति 7. उत्पादन पर राष्ट्र का नियंत्रण 8. समस्त स्वतंत्र व्यावसायिक कम्पनियों को सिंडीकेट का अनिवार्य रूप से सदस्य बनाना

जनवरी 1918 में संविधान सभा को आमन्त्रित किया गया और चुनाव की घोषणा की गई, पर इसमें बोल्शेविकों को बहुमत नहीं मिला। लेनिन ने संविधान सभा को भंग कर दिया। नये संविधान को 1918 की ग्रीष्म ऋतु से लागू किया गया। इसके द्वारा रूस के सभी वयस्कों को मताधिकार प्रदान किया गया। शासन की समस्त शक्ति अखिल रूसी कांग्रेस में निहित हो गई। कानूनों को पारित करने के लिए एक समिति का गठन किया गया।

2.4.1 ब्रेस्ट लिटवोस्क की संधि

क्रान्ति के तुरंत बाद ही लेनिन ने अपनी सरकार द्वारा शांति स्थापित करने की घोषणा की। मित्र राष्ट्रों ने शांति प्रस्तावों पर ध्यान नहीं दिया। जर्मनी की आपत्तिजनक शर्तों पर विदेशी कमिसार ट्राट्स्की तथा कुछ अन्य नेताओं का कहना था कि ''हमें न युद्ध चाहिए और न शांति। जर्मन सेनाएं पुनः रूस में आगे बढ़ने लगीं, पर लेनिन के प्रयत्नों से 3 मार्च 1918 को जर्मनी के साथ ब्रेस्ट लिटवोस्क की संधि हो गई। लेनिन को रूस में साम्यवादी शासन समाप्त होने की आशंका थी, क्योंकि इस समय सोवियत सरकार जर्मनी का सामना नहीं कर सकती थी। संधि के अनुसार रूस ने यूक्रेन, फिनलैण्ड, लिथुआनिया और लाटविया से अपने अधिकार त्याग दिए। यूक्रेन से अपनी सेनाएं हटा लीं। ट्रांसकाकेशस का कुछ भाग तुर्की को सौंपा गया। जर्मनी को तीन करोड़ पौण्ड युद्ध का हर्जाना देने का वचन दिया। इस संधि से रूस युद्ध से अलग हो गया और आन्तरिक समस्याओं की ओर अपना ध्यान दे सका।

2.4.2 गृह युद्ध

रूस की क्रान्ति के बाद गृह युद्ध प्रारंभ हो गया, जिसमें काफी क्षति हुई। नवंबर 1917 से 1919 के आरंभ तक लगभग तीन वर्ष तक क्रान्ति के समर्थकों और विरोधियों में संघर्ष चलता रहा। रोमानोव वंश के समर्थक जारशाही को पुनः स्थापित करना चाहते थे। लोकतंत्रवादी रूस में फ्रांस और अमेरिका की भांति लोकतंत्र की स्थापना, संविधान सभा का निर्वाचन तथा लोकमत को देखते हुए नए शासन विधान का निर्माण करने के पक्ष में थे। इसके अलावा बोल्शेविक दल के वे सदस्य थे, जो साम्यवादी थे, पर क्रान्तिकारी उपायों से आर्थिक संगठन को एकदम बदलना उचित नहीं समझते थे। विरोधियों को इंग्लैण्ड, फ्रांस और अमेरिका का समर्थन भी प्राप्त था। इस प्रकार आप देखेंगे कि एक ही देश की विभिन्न विचारधाराओं के लोग परस्पर संघर्षरत थे। गृह युद्ध का परिणाम यह हुआ कि एक दौर में बोल्शेविक सत्ता व्यावहारिक तौर पर पेट्रोग्राद और मास्को तथा निकटवर्ती प्रान्तों तक ही सीमित रह गई थी। मजदूर कारखानों का तत्काल समुचित प्रबंध नहीं कर सके। किसान 'राष्ट्र की भूमि' का अर्थ न समझ पाने से कृषि में रुचि नहीं ले सके। वितरण व्यवस्था पर असर पड़ा। महंगाई और बेरोजगारी बढ़ी। जुलाई 1918 में जार निकोलस के परिवार के सदस्यों की हत्या कर दी गई। मित्र राष्ट्रों ने रूस का आर्थिक बहिष्कार करके उसकी समस्याएं और बढ़ा दी थीं। उस समय रूस को एक भयंकर अकाल का सामना करना पड़ा। बोल्शेविकों ने विद्रोही सेनापतियों को पराजित किया और आन्तरिक विद्रोह का दमन भी किया। विरोधियों का दमन करने के लिए हिंसात्मक साधनों का प्रयोग भी किया गया। 'चेका' नामक एक विशेष न्यायालय की स्थापना द्वारा लगभग दस हजार विरोधियों को दण्डित किया गया।

2..4.3 सारांश

मार्क फेरो मार्क फेरो(द रशियन रिवॉल्यूशन ऑफ फरवरी 1917)व ई.एच. कार ने रूसी क्रान्ति पर लिखी अपनी पुस्तकों में तथ्यों के साथ स्पष्ट किया है कि 'प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व ही रूस में स्थितियां ऐसी हो गई थीं कि क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। जार के पतन और अस्थायी सरकार की स्थापना को ही पेट्रोग्राद की जनता ने सार्वभौम स्वतंत्रता, समानता और प्रत्यक्ष लोकतंत्र की घोषणा मान लिया। अक्टूबर की रूसी क्रान्ति ने दुनिया भर को यह संकेत दिया कि अब समय आ चुका है कि पूंजीवाद की जगह समाजवाद को स्थापित किया जाए। लेनिन और उनके बोल्शेविक साथियों ने जनता द्वारा लगाए जा रहे 'रोटी', 'शांति' और 'जमीन' के नारों के निहितार्थों को भली प्रकार समझा और उसी के अनुरूप अपनी नीतियों और कार्यवाहियों में जरूरी बदलाव भी किए।'1905 से 1917 ई. तक के समय में जारशाही की नीतियों में कोई परिवर्तन न देखकर जनता का यह विचार बन चुका था कि इसका अंत करके ही देश में व्यवस्था कायम की जा सकती है। अब तक के अध्ययन में आपने जाना कि रूस में क्रान्ति क्यों और कैसे हुई और इसके बाद बोल्शेविकों के नेतृत्व में जो नया शासन स्थापित हुआ, उसका लक्ष्य राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में आधारभूत परिवर्तन करना था। 1918

में रूस का नया संविधान बना और सोवियत समाजवादी गणतंत्र की स्थापना हुई। रूस संघीय प्रणाली का राज्य बना, जिसमें विभिन्न राष्ट्रीयताओं के लोग अलग-अलग राज्यों में संगठित होकर सोवियत संघ के सदस्य बने। राज्य में केवल साम्यवादी दल को मान्यता दी गई, क्योंकि उसे सर्वहारा के हितों का पोषक माना गया।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) अक्टूबर क्रान्ति
   (ख) ब्रेस्ट लिटवोस्क की संधि
2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए
   (क) अक्टूबर क्रान्ति के बाद लेनिन की अध्यक्षता में सरकार का गठन हुआ।
   (ख) ब्रेस्ट लिटवोस्क की संधि रूस और फ्रांस के बीच हुई।
   (ग) दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस में बोल्शेविक अल्पमत में थे।
   (घ) श्रम के शोषण का अंत करने के लिए उत्पादन के साधनों पर राज्य के अधिकार का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया।

2.5 साम्यवाद(जुलाई 1918-1921)

रूस में गृह युद्ध प्रारंभ होने से अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी।1920 में एच. जी.वेल्स द्वारा रूस की यात्रा के बाद लिखी गई अपनी पुस्तक 'अंधकारग्रस्त रूस' के विवरण के अनुसार महायुद्ध और गृहयुद्ध के वर्षों में आबादी में दो करोड़ की कमी हो गई थी। 1920 में भारी उद्योगों , सूती कपड़ों, कच्चे लोहे आदि का उत्पादन बहुत कम हो गया था। परिवहन व्यवस्था अस्त-व्यस्त तथा कृषि उत्पादन आधा रह गया था। आवश्यक वस्तुओं की भारी कमी थी। ऐसी कठिन परिस्थितियों में लेनिन के कुशल नेतृत्व में देश के पुनर्निर्माण का कार्य आरंभ किया गया। इस नई व्यवस्था का लक्ष्य था शोषण का अंत। इसके लिए जरूरी था, उत्पादन के साधनों पर राज्य का अधिकार हो। इसलिए जमीन, कल-कारखाने, बैंक आदि का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। अतः सरकार ने साम्यवाद की नीति को अपनाया। इसके अंतर्गत निम्न कार्य किए गए :

2.5.1 किसानों से बलपूर्वक अनाज का अधिग्रहण

नई नीति के अनुसार सर्वप्रथम भूमि को जमींदारों से छीनकर राज्य की भूमि घोषित करके किसानों में वितरण किया गया। सरकार को यह अधिकार था कि वह किसान के पास उसके खाने लायक अनाज छोड़कर बाकी अनाज उससे प्राप्त कर सके। सरकार लगान अनाज के रूप में प्राप्त करती थी। किसानों को सरकार को अपना अनाज बेचने में रुचि नहीं थी, क्योंकि सरकार उन्हें कम मूल्य देती थी। अनाज की कालाबाजारी को रोकने के लिए सरकार श्रमजीवियों की सशस्त्र टुकड़ियों को किसानों का अनाज जब्त करने के लिए भेजने लगी। अनाज का संग्रह करने वालों को कठोर सजा दी गई। गरीब किसानों की समितियों को छुपे हुए अनाज के बारे में सरकार को सूचना देनी थी। इससे अमीर (कुलक)और गरीब किसानों (मुजहिक) के बीच संघर्ष हो गया और कई किसान विद्रोह हुए। मार्च 1921 में नई कर प्रणाली लागू की गई, जिसके अनुसार कर निर्धारण सम्पत्ति के आधार पर किया जाता था।

गृह युद्ध के कारण हजारों एकड़ भूमि पर खेती नहीं की जा सकती थी। बलपूर्वक अनाज अधिग्रहण की नीति के प्रति किसानों के विरोध के कारण भी उत्पादन कम हुआ। 1916 की तुलना में 1917 में अनाज उत्पादन में कमी हुई तथा 1920-21 में सूखा पड़ने एवं 1921 में दक्षिण पूर्वी भाग में फसल बिल्कुल न होने से भयंकर अकाल पड़ा, जिसमें 50 लाख व्यक्ति मारे गए।

2.5.2 उद्योगों का राष्ट्रीयकरण

1920 ई. के एक आदेश द्वारा वे समस्त कारखाने जिनमें 5 मजदूरों से अधिक काम करते थे तथा जो यांत्रिक शक्ति का प्रयोग नहीं करते थे और वे कारखाने जो यांत्रिक शक्ति का प्रयोग करते थे, परंतु जिनमें दस मजदूरों से अधिक काम करते थे, सरकार के नियंत्रण में ले लिए गए। कारखानों पर से पूंजीपतियों का प्रतिनिधित्व समाप्त करके उनका संचालन मजदूरों की प्रबंध समिति को सौंपने का निर्णय लिया गया। ये समितियां माल की उत्पत्ति, कच्चे माल का क्रय, तैयार माल की बिक्री और धन के प्रबंध जैसे सभी कार्य करती थीं। इन समितियों का निर्वाचन कारखानों में काम करने वाले मजदूर करते थे। जिन पूंजीपतियों कोमुआवजे के तौर पर कुछ भी नहीं दिया गया। जनता के काम में आने वाली समस्त वस्तुएं, मकान, सवारी आदि कार्डों पर मिलने लगीं। निजी व्यापार को समाप्त करने के लिए बहुत कठोर कदम उठाए। राज्य के कार्यों में विशेष रूप से पूंजी का कोई महत्व नहीं रहा। 1919-20 में मजदूरों को वेतन के रूप में अनाज दिया जाता था और राशन के लिए उन्हें रूबल नहीं देने होते थे। 1920 तक सरकार ने प्रयत्न किया कि बजट का प्रबंध भी बिना पूंजी के किया जाय। औद्योगिक मजदूरों के असंतोष का कारण उन्हें पर्याप्त मात्रा में ईंधन और पदार्थ न मिल पाना, स्वतंत्र बाजार से खाद्य पदार्थ खरीदने से रोक, मिलने वाले राशन का अपर्याप्त होना आदि थे। मजदूरों को व्यापार संघों में भी विश्वास नहीं रहा। क्योंकि उनसे अपेक्षा की जाती थी कि श्रमजीवियों से पहले वे सरकार के हितों का ध्यान रखें। सरकार अनुशासन लाने के लिए व्यापार संघों पर पार्टी के नियंत्रण को स्थापित करना चाहती थी।

2.5.3 परिणाम

इस व्यवस्था से प्रारंभ में बहुत सी कठिनाइयां उत्पन्न हुईं। कामगारों को न अनुभव था और न व्यापक स्तर पर उनमें समन्वय था। परिणाम यह हुआ कि उत्पादन कम होते-होते कहीं रुक सा गया। यातायात के साधनों का ठीक से संचालन न होने के कारण बहुत सी वस्तुएं अपने गंतव्य तक पहुंच ही नहीं पाती थीं। जिन क्षेत्रों में राजनीतिक गतिविधि तेज नहीं थी, वहां के किसान भूमि छोड़ने और सहकारी खेती या उत्पादन को राज्य के सुपुर्द कर देने जैसी बातों के लिए तैयार नहीं थे। कहीं-कहीं विरोध भी हुआ। उत्पादन घटने लगा। 1920 में खेती योग्य 29 प्रतिशत जमीन पर खेती नहीं की गई। करोड़ों लोगों के सामने जीवन-मरण का प्रश्न आ गया। राजकीय और विदेशी सहायता के बावजूद कहीं-कहीं तो भुखमरी की स्थिति पैदा हो गई। क्रांति विरोधी नारे भी सुनाई देने लगे। लेनिन ने भी इस परिस्थिति के बारे में कहा था –''यह आर्थिक संकट और समस्याओं का परिणाम था, किसी सिद्धांत का नहीं। आवश्यकतावश एक ऐसी नीति का पालन करना पड़ा था जो पूंजीवाद के समाज से संक्रमण से पूर्णतया प्रतिकूल थी।'' 1921 में खानों और कारखानों का उत्पादन युद्ध पूर्व स्थिति का केवल 20 प्रतिशत रह गया और खेती वाली भूमि युद्ध पूर्व स्तर के मुकाबले केवल 62 प्रतिशत रह गई और उत्पादन केवल 37 प्रतिशत रह गया।

मार्च 1921 के आरंभ में क्रोन्स्ताद्त(Cronstsdt) में, जहां पहले बोल्शेविकों का प्रभाव था, साम्यवादी प्रशासन के विरुद्ध नौसैनिकों ने विद्रोह कर दिया। उनकी कई मांगों में से कुछ अनाज पर सरकार के एकाधिकार को समाप्त करने तथा नई सरकार की स्थापना नए सोवियत चुनावों के आधार पर किए जाने से संबन्धित थीं। इस विद्रोह का दमन कर दिया गया। लेनिन और उसके सहयोगियों ने विद्रोह को बढ़ते हुए असंतोष और विरोध का लक्षण मानते हुए इसके कारणों का समाधान करने और विरोधी आन्दोलनों के प्रति कठोर नीति अपनाने का निर्णय लिया। मार्च 1921 में लेनिन ने नई आर्थिक नीति की नींव रखी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) साम्यवाद के अन्तर्गत किसानों से अनाज अधिग्रहण की नीति
   (ख) उद्योगों का राष्ट्रीयकरण
   (ग) क्रोन्स्ताद्तका विद्रोह

2.6 लेनिन की नई आर्थिक नीति(1921-1928) एवं प्रमुख कार्यक्रम

लेनिन ने देखा कि तत्काल पूरी तरह साम्यवादी व्यवस्था लागू करना संभव नहीं है। अतः 1921 में नई आर्थिक नीति (नेप) की घोषणा की। यह समाजवाद के दूरगामी हितों को देखते हुए कुछ समय के लिए पीछे हटने की नीति थी। इसका मुख्य उद्देश्य मजदूरों और किसानों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना, देश में रहने वाले श्रमजीवियों को रूस की अर्थव्यवस्था की उन्नति करने के लिए प्रोत्साहन देना तथा अर्थव्यवस्था के प्रमुख सूत्रों को शासन के अधिकार में रखते हुए आंशिक रूप से पूंजीवादी व्यवस्था को कार्य करने अर्थात सीमित रूप से उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व की अनुमति प्रदान करना था। लेनिन ने स्वयं ही अपनी आर्थिक नीति के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि ''वास्तव में मजदूर वर्ग और किसानों के संबन्धों पर और उनके संघर्ष व समझौते पर ही हमारी क्रान्ति के भाग्य का निर्णय होगा। मजदूर वर्ग और किसानों के हित अलग-अलग हैं।'' इस नीति में साम्यवादी दल ने सम्पूर्ण नियंत्रण अपने हाथ में रखा। .रूस में मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्थापना के लिए सीमित राष्ट्रीयकरण की नीति अपनाई गई।

2.6.1 कृषि नीति

इसके अन्तर्गत किसानों से अनिवार्य रूप से ली जाने वाली अतिरिक्त उपज की नीति (आवश्यक अधिग्रहण की नीति) को समाप्त करके एक निश्चित मात्रा में अनाज के रूप में कर लेना आरंभ किया। सरकार के कानून के अनुसार बचे हुए अनाज को किसान स्थानीय बाजार में बेच सकते थे। कर की मात्रा अमीर किसानों पर अधिक और गरीब किसानों पर कम रखी गई। कर निर्धारण के समय देखा गया कि जितना अनाज पहले एकत्र किया जाता था, उसका लगभग आधा भाग अब एकत्र हो सके। मुद्रा के स्थिरीकरण के लिए अनाज और अन्य दुर्लभ उपभोक्ता सामग्रियों की राशनिंग की व्यवस्था समाप्त कर दी गई और सीमित मात्रा में लाभ के लिए उपभोक्ता सामग्रियों के उत्पादन और वितरण की इजाजत दे दी गई। 1924 में मुद्रा में स्थायित्व आने के बाद अनाज के स्थान पर नकद (रूबल) में कर लेना प्रारंभ किया गया। 1921 में अकाल के दौरान सरकार ने किसानों का सहयोग किया। 1922-23 में फसलें अच्छी होने से स्थिति में सुधार हुआ। कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए मशीनों तथा उपकरणों का आयात किया गया। 1921 की तुलना में 1927 तक रूस में कृषि क्षेत्र डेढ़ गुना हो गया। यद्यपि यह सिद्धांत कायम रखा गया कि जमीन राज्य की है, फिर भी व्यवहार में जमीन किसान की हो गई। बाद में उसे वेतनभोगी श्रमिक रखने की सुविधा भी प्रदान की गई। कृषिसहकारिता (Co-operative Farming) को भी प्रोत्साहित किया गया।

2.6.2 निजी व्यापार

विदेशी व्यापार राज्य के अधिकार में रहा और देश के अंदर निजी तौर पर व्यापार करना कानूनी बनाया गया। वस्तुओं के स्वतंत्र विनिमय की मांग अधिक होने से निजी व्यापार बढ़ता गया, जबकि सरकार का विचार था कि प्रारंभ में वह इस व्यापार को नियंत्रित कर सकेगी। व्यक्तिगत लाभ की प्रवृत्ति बढ़ने से सहकारी और राजकीय व्यवसाय को प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ा। 1923 के बाद राजकीय और सहकारी व्यापार को प्रोत्साहित किया गया। किसानों के निजी तौर पर व्यापार करने से नारकोम्प्रॉड (Narcomprod Commissarlot of Supplies) या पूर्ति मण्डल का कृषि पदार्थों को एकत्रित और वितरित करने का एकाधिकार उससे छिन गया। सहकारी संस्थाओं को इससे अलग करके उनकी व्यापारिक स्वायत्तता वापस लौटा दी गई।

2.6.3 बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण तथा लघु उद्योगों के प्रति नीति

पूर्व में आपने पढ़ा कि कारखानों का संचालन मजदूरों की प्रबंध समिति को सौंप दिया गया था, पर ये उद्योगों का सफलतापूर्वक संचालन न कर सकीं। 1921 में औद्योगिक उत्पादन युद्ध पूर्व उत्पादन का केवल 14 प्रतिशत ही रह

गया था। बहुत से कारखाने बंद हो गए थे। नई आर्थिक नीति द्वारा सरकार ने बड़े उद्योगों को सरकार के अधीन रखा, किन्तु उनकी व्यवस्था में अनेक परिवर्तन किए। बीस या बीस से कम कर्मचारियों वाले उद्योगों को व्यक्तिगत रूप से चलाने का अधिकार मिल गया। उद्योगों का विकेन्द्रीकरण कर दिया गया। 1922 में चार हजार छोटे उद्योगों को लाइसेंस जारी किए गए। विदेशी कम्पनियों को भी कई रियायतें देकर उद्योग लगाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। बहुत से छोटे व्यवसाय व्यक्तिगत अधिकार में थे। इन निजी कारखानों में औसत 2 व्यक्ति काम करते थे और कुल उत्पादन का पांच प्रतिशत भाग ही निर्मित होता था। निर्णय और क्रियान्वयन के बारे में विभिन्न इकाइयों को काफी छूट दी गई। व्यवसाय का संचालन करने के लिए प्रत्येक औद्योगिक इकाई में सरकारी प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। एक ही व्यवसाय के कारखानों को एक सूत्र में संगठित किया गया। इस केन्द्रीय व्यवस्था को सिंडीकेट या ट्रस्ट कहते थे। इस सिंडीकेट की ओर से प्रत्येक मिल को उसे दिए जाने वाली वस्तु और वस्तु की कीमत, मजदूरों की मजदूरी तथा तैयार किए जाने वाले माल के बारे में सूचित किया जाता था। विभिन्न सिंडीकेटों को मिलाकर एक केन्द्रीय व्यवसाय संस्थान की रचना की गई, ताकि विविध व्यवसाय सहयोग से अपना विकास कर सकें। केन्द्रीय सांख्यिकी विभाग की 1923 की जांच के अनुसार सभी उद्यमों में जितने लोग काम करते थे, उनमें से केवल 12.5 प्रतिशत ऐसे थे, जो निजी कारखानों में काम करते थे। लगभग सभी उद्योग बहुत छोटे थे। बड़े उद्योग लगाने के लिए विदेशी पूंजी भी सीमित तौर पर आमन्त्रित की गई। कारखानों को जो लाभ होता था, उसका निश्चित भाग सरकार प्राप्त करती थी। एक भाग कारखाने के अपने रिजर्व फण्ड में जाता था और शेष मजदूरों की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य कल्याणकारी कार्यों के लिए व्यय किया जाता था। औद्योगिक उन्नति के लिए साम्यवादी दल की एक शाखा प्रत्येक कारखाने में स्थापित की गई। व्यवसायों के लिए धन की व्यवस्था तीन साधनों द्वारा की जाती थी– 1.मुनाफे में जो रकम रिजर्व फण्ड में डाली जाती थी, उसे व्यवसाय की उन्नति के लिए प्रयोग में लाया जा सकता था। 2. सरकारी बैंक से कर्ज कारखानों को दिया जा सकता था। 3. राज्य की ओर से सहायता देने की व्यवस्था भी की गई थी।

2.6.4 मुद्रा सुधार

रूबल की स्थिति लगातार गिरने के कारण जुलाई 1922 में शेवोनेत्स(दस स्वर्ण रूबल के बराबर) नामक एक मुद्रा प्रारंभ की गई, जिसे सोने द्वारा सुरक्षित किया गया था। लेकिन सोना खरीदने या बेचने का अधिकार नहीं था। लगभग दो वर्ष तक रूबल और शेवोनेत्स दोनों का प्रयोग होता रहा। 1924 में एक और मुद्रा प्रचलित करके रूबल की विनिमय दर स्थिर बना दी गई।

2.6.5 श्रम और मजदूर संघ नीति

1922 की श्रमिक संहिता द्वारा मजदूरों को कई लाभ प्रदान किए गए, जैसे प्रतिदिन काम के घंटे आठ करना, दो सप्ताह की वेतन सहित छुट्टी, राजकीय एजेंसी द्वारा जीवन बीमा, जिसमें बीमारी के दौरान वेतन और चिकित्सा लाभ शामिल थे। श्रमिकों की नियुक्ति के लिए रोजगार कार्यालयों की स्थापना की गई। 1922 की ग्यारहवीं पार्टी कांग्रेस ने व्यापार संघों से कहा कि वे उत्पादन बढ़ाने के लिए कार्य करें, लेकिन उद्यमों के प्रशासन में हस्तक्षेप न करें। इसके अलावा विभिन्न स्तरों पर बैंक खोले गए। ट्रेड यूनियन की अनिवार्य सदस्यता समाप्त कर दी गई।

2.7 सारांश

इस प्रकार शुद्ध समाजवाद के स्थान पर एक मिश्रित अर्थव्यवस्था, जिसे लेनिन ने राजकीय पूंजीवाद की संज्ञा भी दी थी, लागू की गई और लाभ की प्रवृत्ति जो पूंजीवादी व्यवस्था का मूल आधार है, पूरी तरह समाप्त नहीं की गई। व्यक्तिगत सम्पत्ति भी समाप्त नहीं हुई। उत्पादन और वितरण पर अधिकांशतः राज्य का ही नियंत्रण रहा,

फिर भी कृषि, उद्योग और व्यवसाय में एक सीमा तक व्यक्ति को छूट दी गई। ''साम्यवादियों के मूल सिद्धान्त ' हर व्यक्ति को उसकी जरूरत के अनुसार', 'हर व्यक्ति को उसकी मेहनत के अनुसार' में परिवर्तित कर दिया गया''(लैंगसम)। '' यह एक समझौता था और इसकी आलोचना की जाती है। लेकिन यह भी सोचना चाहिए कि 1921 में रूस की जो स्थिति थी उससे बिना किसी समझौते के छुटकारा नहीं हो सकता था। इन व्यावहारिक कदमों से रूस का अर्थतंत्र पूरी तरह संभल गया और बाद की समाजवादी योजना की शुरूआत हो सकी''(लालबहादुर वर्मा)। इस नीति के सर्वाधिक नाटकीय और दूरगामी प्रभावों में सबसे महत्वपूर्ण यह था कि आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप रूस का पुनर्निर्माण संभव हुआ'' (डेविड थॉम्पसन)।

1924 में लेनिन की मृत्यु हो गई। लेनिन की आर्थिक नीति 1928 तक चलती रही। बोल्शेविक दल ने 1929 में औपचारिक तौर पर इसका परित्याग कर दिया। कुल मिलाकर नई आर्थिक नीति ने प्रथम विश्व युद्ध और क्रान्ति के समय तथा गृहयुद्ध की अवधि में हुए विनाश से रूस की अर्थव्यवस्था को सुधारने में योगदान किया। लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ, पर कुछ समस्याएं भी उत्पन्न हुईं। समृद्ध किसानों (कुलक) और छोटे व्यवसायियों का प्रभाव बढ़ने लगा और एक नए बुर्जुवा सामाजिक समूह का विकास हुआ, जिसे 'नेपमेन' कहा जाता था।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) नई आर्थिक नीति
2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए
   (क) नई आर्थिक नीति द्वारा रूस में मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्थापना की गई।
   (ख) आर्थिक नीति के अन्तर्गत कृषि की आवश्यक अधिग्रहण की नीति को जारी रखा गया।
   (ग) इस व्यवस्था द्वारा उत्पादन के साधनों पर पूर्णतः निजी स्वामित्व प्रदान कर दिया गया।

(घ) 1922 की श्रमिक संहिता द्वारा मजदूरों के हित में अनेक नियम बनाए गए।

2.8 कृषि का सामुदायीकरण/सामूहिकीकरण

दिसंबर 1927 में साम्यवादी दल की पन्द्रहवीं अखिल संघीय कांग्रेस में स्टालिन को विजय प्राप्त हुई, जिसने अगले 25 वर्षों तक सोवियत संघ का निर्देशन किया। कृषि के क्षेत्र में स्टालिन सरकार का लक्ष्य दुगना उत्पादन करना और समस्त व्यक्तिगत खेतों के पांचवें हिस्से को सामूहिक आधार पर ले आना था। सरकार ने कृषि के सामुदायीकरण की घोषणा की और व्यक्तिगत खेतों के स्थान पर दो प्रकार के – सरकारी और सामुदायिक फार्म बनाए जाने लगे। सरकारी फार्म का मुख्य उद्देश्य था, देश की विस्तृत वीरान या ऊसर भूमि को खेती के काम में लाने का प्रबंध सरकार की ओर से किया जाए। सामुदायिक फार्मों का निर्माण कई किसानों के खेतों को एक में मिलाकर किया गया। सामुदायिक फार्म तीन प्रकार के थे–

1.टोज– जिनमें किसान अपनी जमीन सम्मिलित करके खेती करते थे और उपज को आपस में बांट लेते थे। भूमि सबकी होती थी, पर हल,पशु आदि किसानों के अपने होते थे। ऐसे फार्मों में केवल भूमि और श्रम का सामुदायीकरण हुआ।

2. आर्टेल– इस प्रकार के फार्मों में भूमि और श्रम के साथ पूंजी का भी सामुदायीकरण हुआ। इसमें सब लोग अपने-अपने खेतों को (इसमें पशु, हल ,खेती संबंधी मकान आदि भी शामिल थे) सम्मिलित करके मिलकर काम करते थे। केवल रहने का मकान, सब्जी की क्यारियां, गाय, भेड़ें, बकरियां, मुर्गियां आदि उनके अपने होते थे।

3. कम्यून– इस प्रकार के फार्मों में सभी वस्तुओं का सामुदायीकरण कर दिया गया और किसानों की कोई निजी वस्तु नहीं होती थी। इनमें उत्पादन के साथ साथ वितरण का भी सामाजीकरण हो गया। मकान, पशु आदि सभी

सम्मिलित सम्पत्ति माने जाते थे। भोजन भी सब साथ करते थे और प्रत्येक व्यक्ति सम्मिलित भण्डार से अपनी आवश्यकता की वस्तुएं प्राप्त करता था।

इन तीनों में दूसरे प्रकार के फार्मों (आर्टेल) का ही अधिक प्रचार था।

देश में औद्योगीकरण को बढ़ाने के लिए किसानों से जबरदस्ती अनाज का अधिग्रहण कर धन जुटाया गया।अधिशेष उत्पादन उपयुक्त मात्रा में न मिलने परसरकार ने समृद्ध किसानों पर और कर लगाए। सामुदायीकरण के कार्य को तीव्रता से आगे बढाने के लिए निर्देश जारी किए। अधिकारियों को अधिक शक्ति प्रदान की गई और किसानों से जबरदस्ती अनाज छीनना कानूनी ठहराया गया। इसके अलावा निजी तौर लाए-ले जाए जाने वाले अनाज के यातायात को जबरदस्ती रोकना और किसानों को उनके अनाज या मुश्किल से मिलने वाले पदार्थों के बदले में 'बौण्ड प्रमाणपत्र' जारी करना आदि तरीकों से भी दबाव डाला गया। निश्चित मात्रा में उत्पादन अधिशेष सरकार को न देने वाले परिवारों पर जुर्माना या जेल में कैद के दण्ड दिए जाने, आवश्यकता पड़ने पर उनकी सम्पत्ति का अधिग्रहण किए जाने का प्रावधान किया गया। अपनी भूमि तथा कृषि के समस्त औजार छिन जाने से किसान, विशेषकर धनी किसान बहुत असंतुष्ट हुए। किन्तु सरकार ने निर्दयता से उनका दमन किया। मजदूरों औरकिसानों के विरोध प्रदर्शन पर रोक लगा दी गई। भारी संख्या में लोगों को लेबर कैम्पों में ले जाया गया। नवंबर 1929 को केन्द्रीय समिति ने निर्णय लिया कि टोज प्रकार के फार्म उपयुक्त मात्रा में सामुदायिक नहीं हैं, बल्कि उन्नत किस्म का सामुदायीकरण होने के कारण आर्टेल उपयुक्त हैं। इसके बाद सरकार ने स्थानीय संस्थाओं को उनके उद्देश्य के बारे में स्पष्ट कर दिया कि काम करने वाले पशुओं का 100 प्रतिशत,सुअरों का 80 प्रतिशत, भेड़ बकरियों, मुर्गे-मुर्गियों का 60 प्रतिशत सामुदायीकरण हो। सामुदायिक फार्मों में से 25 प्रतिशत कम्यून होने चाहिए। फरवरी 1930 के निर्देश के अनुसार कुलकों को तीन श्रेणियों में बांटा गया– 1. सचेत रूप से संग्रहकरण कार्यक्रम के विरोधीकिसानों को राजनीतिक पुलिस के हवाले करके शिविरों (लेबर कैम्प) में भेजा जाना था। इनके परिवारों को उत्तर के सुदूर क्षेत्रों, साइबेरिया तथा सुदूर पश्चिम में निर्वासित कर दिया गया। 2. आर्थिक दृष्टि से समृद्ध किसान परिवार, जिन्हें अपने निवास स्थान से दूर भेजा जाना था। 3. तीसरी श्रेणी के किसानों को अपने इलाकों में रहने की अनुमति थी और उन्हें सबसे खराब किस्म की भूमि दी जाती थी। पहली दो श्रेणी के किसानों की पूरी सम्पत्ति का अधिग्रहण किया जाना था और तृतीय श्रेणी के किसानों को कुछ आवश्यक यंत्र रखने का अधिकार दिया गया। उनके लिए उत्पादन अधिशेष और करों की मात्रा उनकी आमदनी के 70 प्रतिशत भाग पर सुनिश्चित की गई।

यह कार्य इतनी तीव्र गति से हुआ कि 1929-30 के भीतर ही आधे से अधिक खेतों का सामुदायीकरण हो गया। एक घोषणा की गई कि 20 फरवरी 1930 तक 50 प्रतिशत किसानों ने सामुदायिक फार्मों, जिनमें अधिकतर आर्टेल या कम्यून थे, की सदस्यता ले ली है। टोज को अधिकतर किसानों ने त्याग दिया।एक ओर किसान विद्रोही हो गए और दूसरी ओर सरकार इतने सामुदायिक फार्मों के लिए आवश्यक संख्या में मशीनें उपलब्ध नहीं करा सकी। 2 मार्च 1930 को प्रावदा में अपने एक लेख में स्टालिन ने ज्यादतियों के लिए स्थानीय कर्मचारियों को दोषी ठहराया और सलाह दी कि यंत्र तथा बलप्रयोग के स्थान पर ऐच्छिक रूप से कोलखोज का विस्तार किया जाए। इस प्रकार उसने एक बार जबरदस्ती और बलप्रयोग से पीछे हटने की नीति अपनाई , जिससे कुछ ही सप्ताहों में सामुदायिक फार्म 50 प्रतिशत से 23 प्रतिशत रह गए। 1930 में फसल अच्छी हुई। धीरे-धीरे किसानों को फिर से समझाकर, जबरदस्ती और कर लगाकर सामुदायिक फार्मों में भेजा गया। 1933 में जो अनाज पहले जबरदस्ती लिया जाता था, उसके स्थान पर एक सुव्यवस्थित तरीका निकाला गया, जो उपजाऊ भूमि के क्षेत्रफल पर निर्भर करता था। कृषि का उत्पादन 1933 में अपने न्यूनतम स्तर पर पहुंचा। नीति को प्रभावी बनाने के लिए सरकार ने क्रान्ति विरोधियों , कुलकों और जान-बूझकर तोड-फोड़ करने वालों को निर्वासित किया। इसके अलावा अपने कर्तव्यों को ठीक से न निभाने वाले पार्टी सदस्यों को पार्टी से निकाला गया। 1934 में जो 90 लाख किसान अभी

सामुदायीकरण के बाहर थे। स्टालिन ने आदेश दिया कि सामुदायीकरण के अन्तर्गत न आने वाले किसानों पर करों को कठोर किया जाए। इस सब का परिणाम यह हुआ कि किसानों ने समाजवादी सम्पत्ति को लूटना और विनाश करना आरंभ कर दिया, जिसे रोकने के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना समाप्त होने तक (1932) एक करोड़ चालीस लाख किसान परिवारों ने कोलखोज व्यवस्था को स्वीकार कर लिया। एक अनुमान के अनुसार संपूर्ण उपजाऊ भूमि का 68 प्रतिशत कोलखोज में और 10 प्रतिशत सोवखोज कृषि में था। केवल 22 प्रतिशत भूमि स्वतंत्र रूप से व्यक्तिगत लाभ के लिए कृषि करने वाले किसानों के लिए बची। सरकार ने देखा कि किसानों को संतुष्ट किए बिना उत्पादन बढ़ाना संभव नहीं है, अतः 1935 के अधिनियम द्वारा किसान परिवार की व्यक्तिगत भूमि 1/4 से 1/2 हेक्टेयर को मान्यता दी। पशुओं में वे एक गाय और बछड़ा, एक सुअर और उसके बच्चे , चार भेड़ और इच्छानुसार खरगोश और मुर्गे -मुर्गी रख सकते थे। 1937 तक 92 प्रतिशत खेत, जो दो करोड़ बीस लाख कृषक परिवारों के अधिकार में थे, शामिल करके ढाई लाख सामुदायिक (कोलखोज) फार्म बना दिए गए। द्वितीय विश्व युद्ध के पहले सामुदायीकरण का कार्य लगभग समाप्त हो गया।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) कृषि के सामुदायीकरण की नीति
   (ख) विभिन्न कृषि फार्मों के प्रकार
2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए
   (क) कृषि के सामुदायीकरण की नीति को किसानों ने आसानी से स्वीकार कर लिया।
   (ख) आर्टेल व कम्यून सामुदायिक प्रकार के फार्म थे।

2.9 नियोजित विकास

1925 में देश के आर्थिक विकास के लिए योजना आयोग (गॉसप्लान)(State Planning Commission known as Gosplan) का गठन किया गया। 1928 में पंचवर्षीय योजना पर कार्य आरंभ हुआ। इसके उद्देश्य थे –

2.9.1 प्रथम पंचवर्षीय योजना

1928 में प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू की गई। ''यह एक विशद एवं विवरणपूर्ण योजना थी, जिसको एक विशेषज्ञ मण्डल ने सावधानी से तैयार किया था और एक ठोस योजना आर्थिक विकास कार्य के लिए बनाई थी''(हेजन)। योजना में सबसे अधिक महत्व भारी उद्योगों को, जिसमें मशीन निर्माण भी सम्मिलित था, दिया गया। इसके उपरान्त उपभोक्ता पदार्थों तथा कृषि को महत्व दिया गया। 1500 से अधिक कारखानों की स्थापना की गई। निर्यात पर जोर देकर विदेशी मुद्रा अर्जित की गई, ताकि आवश्यक मशीनें खरीदने और विदेशी विशेषज्ञों का सहयोग प्राप्त करने में सहयोग मिल सके। तकनीकी शिक्षा का कार्यक्रम बड़े पैमाने पर लागू किया गया। तुर्किस्तान-साइबेरिया रेलवे लाइन और बड़े जलविद्युतगृह समय से पहले तैयार हो गए। निर्जन और वीरान इलाकों में नए शहरों का निर्माण हुआ। इसके अलावा कृषि के विकास के लिए सामुदायिक खेती व राजकीय फार्मों की संख्या में वृद्धि तथा उनका सामाजीकरण करना, हर जगह कृषि संबन्धी मशीनें पहुंचाना, समस्त बालक-बालिकाओं के लिए पाठशालाएं खोलना और बेकारी को दूर करना भी इसका लक्ष्य रखा गया। रूस में आधुनिक तकनीक का उपयोग, विदेशी प्रभाव से रूस को मुक्त करके एक औद्योगिक शक्ति में बदलना, पूंजीवादी प्रवृत्तियों को समाप्त करना, भारी उद्योगों का विकास, कृषि को सामूहिक पद्धति में विकसित करना तथा रूस को सुरक्षा के संबन्ध में आत्मनिर्भर बनाना था। सामुदायिक कृषि के संदर्भ में आप विस्तार से इस अध्याय के खण्ड 2.

7 में पढ़ चुके हैं। सरकारी रूप से प्रथम पंचवर्षीय योजना को बड़ी सफलता बताया गया। इस योजना में कुछ कमियां भी रहीं, वस्तुओं का निर्माण अधिक मात्रा में करने के लक्ष्य में कई बार गुणवत्ता पर भी असर पड़ा।

2.9.2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना(1933-37)

इसमें सामान्य रूप से प्रथम योजना के उद्देश्यों और तरीकों को लागू रखा गया, पर उसके अनुभव से सीख लेते हुए उत्पादन को संतुलित करने का लक्ष्य रखा गया। श्रम की उत्पादकता में वृद्धि और उत्पादन व्यय में कमी, 'तकनीकी निपुणता' की ओर विशेष ध्यान दिया गया। प्रथम योजना से थोड़ा अधिक महत्व उपभोक्ता पदार्थों को दिया गया। सैनिक आवश्यकताओं में वृद्धि हुई। लाल सेना के शस्त्रीकरण और उसकी शक्ति बढ़ाने का कार्य किया गया। आवास-विकास पर ध्यान दिया गया। 1935 में खाद्यान्न और अन्य पदार्थों की राशनिंग व्यवस्था समाप्त कर दी गई और दूकानों में जरूरत की चीजें उपलब्ध होने लगीं। केवल पांच प्रतिशत उत्पादन व्यक्तिगत क्षेत्र में बचा और रूस पूरी तरह एक समाजवादी देश बन गया। सोवियत सूचनाओं के अनुसार 1937 में सोवियत रूस विश्व के उत्पादन का 13.7 प्रतिशत उत्पादन करता था, जो 1929 में 3.7 प्रतिशत और 1913 में केवल 2.6 प्रतिशत था।

2.9.3 तृतीय पंचवर्षीय योजना(1938-41)

1938 में तृतीय योजना शुरू की गई, लेकिन महायुद्ध शुरू होते ही उसे युद्ध के अनुरूप ढालना पड़ा और सैनिक आवश्यकताएं और अधिक महत्वपूर्ण हो गईं।युद्ध प्रारंभ होने के बाद राष्ट्रीय आय का काफी बड़ा भाग सुरक्षा के कार्यों में लगाया गया। इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कई अन्य पदार्थों में कटौती की गई। जून 1941 में जर्मनी के आक्रमण के कारण तृतीय योजना में रुकावट आ गई।

2.9.4 मूल्यांकन

स्टालिन द्वारा लागू पंचवर्षीय योजनाओं व इनके क्रियान्वयन से रूस की आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुआ। इस अवधि में रूस में अनेक औद्योगिक, कृषि संबन्धी व जल विद्युत कारखाने , बांध, श्रमिकों के लिए आवास आदि बनाए गए। इससे रूस द्वारा अन्य देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का भय भी दूर हुआ। योजनाओं के अन्तर्गत रूस की सफलता के प्रमुख कारण थे– रूस के प्रचुर और विविध प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया गया। साम्यवादी दल की आर्थिक नीति के अन्तर्गत सभी प्रमुख आर्थिक विषयों पर राज्य का नियंत्रण था। सोवियत संघ में प्रति व्यक्ति उत्पादन पश्चिम के मुकाबले कम था और सैनिक सामग्री को छोड़कर बाकी सब पदार्थों में गुणात्मक सुधार हुए, पर वह अभी भी पश्चिम के वह राष्ट्रीय आय का 1/4 भाग थी। सरकार इतनी अधिक मात्रा में आन्तरिक पूंजी इसलिए एकत्र कर सकी , क्योंकि श्रमजीवियों से कठोर अनुशासन में काम लिया गया,पर लोगों के रहन-सहन का स्तर और गिर गया। इसके साथ-साथ सामुदायीकरण की नीति से भी पूंजी उपलब्ध हो रही थी। पश्चिम से तकनीकी कौशल और सामग्री का आयात किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विदेश व्यापार विशेष रूप से कृषि मशीनरी, मशीन औजार और इंजीनियरिंग के उपकरणों को काफी बढ़ाया गया। इनके लिए पूंजी या तो छोटे समय के विदेशी ऋणों से उपलब्ध होती थी या अपने निर्यातों को बढ़ाकर। अनाज, तेल, फर और इमारती लकडी का विशेष रूप से निर्यात किया गया। द्वितीय और तृतीय योजनाओं में आयातों पर सोवियत निर्भरता कम हो गई। विदेशी तकनीकी कौशल के कारण औद्योगिक विकास में बहुत सहायता मिली। सोवियत टैकनीशियनों को विदेशों में प्रशिक्षण के लिए भेजा गया। विदेशी विशेषज्ञों की भी निर्माण कार्य में सहायता ली गई। ये पंचवर्षीय योजनाएं, विशेष रूप से भारी उद्योगों में काफी सफल रहीं । औद्योगीकरण का अधितर कार्य रूस के लोगों ने स्वयं किया, यद्यपि उसे पश्चिमी विशेषज्ञों और थोड़े समय के लिए विदेशी ऋणों की सहायता लेनी पड़ी। प्रारंभ में यह सहायता अधिक मात्रा में थी और धीरे-धीरे कम होती गई। पंचवर्षीय योजनाओं में नए औद्योगिक केन्द्रों के विकास के साथ-साथ पुराने औद्योगिक

केन्द्रों के उत्पादन को भी बढ़ाया गया। काकेशस और यूक्रेन अभी भी 1914 की तरह तेल, कोयला लोहा, इस्पात और मैंगनीज के सबसे बड़े उत्पादक थे। उन उद्योगों का उत्पादन भी बढ़ा जो पहले नहीं थे या बहुत छोटे स्तर के थे। उद्योगों की दस नई शाखाओं में दिन-रात काम के परिणामस्वरूप 1940 तक वे देश की संपूर्ण या अधिकतर आवश्यकता का उत्पादन करने लगे। ये थे–सिंथेटिक रबड़, कृत्रिम खाद्य, कृषि मशीनरी, भारवाहक मोटरवाहन, बिजली का सामान, मशीन यंत्र, एल्यूमिनियम और लोहे के अलावा अन्य धातुएं। इसके अलावा लाल सेना हवाई जहाजों, टैंकों, बंदूकों और अन्य सामग्री में आत्मनिर्भर हो गई। सरकार ने खनिज पदार्थों के विकास के लिए नए इलाकों में भूगर्भ अनुसंधान के लिए कार्य भी किए और उत्पादन में वृद्धि हुई।

योजनाओं को कार्यान्वित करने में कुछ त्रुटियां भी रहीं। उत्पादन की गति को तीव्र करने से उत्पादन बढ़ा ,परंतु वस्तुएं हल्की और खराब बनीं। बड़ी-बड़ी बहुमूल्य मशीनों को अनुभवहीन और अशिक्षित मजदूरों तथा किसानों के हाथों में देने से बड़ी हानि हुई। इन स्वाभाविक त्रुटियों का दोष सरकार ने मध्यवर्गीय मनोवृत्ति के इंजीनियरों को दिया, जो उसके विचार में क्रान्ति को असफल बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। द्वितीय विश्व युद्ध में रूस को भारी नुकसान उठाना पड़ा।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) प्रथम पंचवर्षीय योजना
   (ख) द्वितीय तथा तृतीय पंचवर्षीय योजनाएं
2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए
   (क) पंचवर्षीय योजनाओं पर कार्य 1928 में स्टालिन के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ।
   (ख) प्रथम पंचवर्षीय योजना में सर्वाधिक महत्व कृषि को दिया गया।

2.10 रूसी क्रान्ति का मूल्यांकन

एरिक हॉब्सबॉम के अनुसार ''1917 की रूसी क्रान्ति ने आधुनिक इतिहास में सर्वाधिक संगठित क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात किया।''यह क्रान्ति दो चरणों में पूर्ण हुई। प्रथम चरण में जारशाही की निरंकुशता के अंत के साथ ही एक उदारवादी सरकार का गठन हुआ तो दूसरे चरण में समाजवादी सिद्धांतों के आधार पर राज्य में नीति-निर्धारण किया गया, जो इस क्रान्ति की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। युद्ध की स्थिति में विशेष रूप से साधन सम्पन्न जर्मनी के विरोध में पिछड़ा हुआ रूस टिक न सका, जिसका परिणाम यह हुआ कि समाजवादियों को अवसर मिला। यद्यपि जर्मनी से संधि के बाद युद्ध से अलग होकर रूस देश की आर्थिक व्यवस्था एवं पुनर्निर्माण की ओर ध्यान दे पाया। साम्यवादी सिद्धांतों/नीतियों को लागू किए जाने के दौर में सरकार के समक्ष विभिन्न समस्याएं भी आईं, जिनके कारण सरकार ने समय-समय पर योजनाओं में परिवर्तन और सुधार किए। उसकी नीतियों में परिस्थितियों के अनुरूपविचलन भी दिखाई दिए, जिन्हें आप साम्यवाद, लेनिन की नई आर्थिक नीति और स्टालिन द्वारा लागू सामुदायीकरण की नीति एवं पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत किए गए कार्यों का तुलनात्मक विश्लेषण करके भली प्रकार समझ पाएंगे। साम्यवादी सरकार ने पूंजीवाद का विरोध करते हुए उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया। जमींदारों व पूंजीपतियों के प्रभुत्व का अंत किया गया। ''क्रान्ति ने किसानों को जमीन की उपलब्धता सुनिश्चित की''(एरिक हॉब्सबॉम)।इस क्रान्ति के द्वारा सर्वहारा वर्ग की सरकार की स्थापना हुई, जिसने रूस में एक नए प्रकार का समाजवादी ढांचा तैयार किया और वर्ग भेद समाप्त करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया।रूसी क्रान्ति की महान उपलब्धि लेनिन का उदय भी थी, जिसने रूस की भावी स्थिति को एक नई दिशा दी।

आर्थिक सुधारों के साथ ही शिक्षा में भी सुधार किया गया। शिक्षा को चर्च से अलग किया गया। गांवों तथा नगरों में जनशिक्षा परिषद, पुस्तकालय, विश्वविद्यालय आदि की स्थापना द्वारा निरक्षरता दूर करने के प्रयास किए गए। लेनिन ने लिखा था ''कम्युनिस्ट समाज निरक्षर देश में नहीं बनाया जा सकता''। 1917 से 1920 की अवधि में लगभग 70 लाख लोग,जिनमें 40 लाख स्त्रियां थीं, साक्षर हुए। 1930 तक प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य घोषित कर दिया गया। 1929 से 1939 के बीच 8 करोड़ 70 लाख से अधिक निरक्षर या अल्प साक्षर लोगों को पूर्ण साक्षरता प्रदान की गई। चौथे दशक के अंत तक देश में निरक्षरता का पूर्ण उन्मूलन हो चुका था। विश्वविद्यालय और उच्च शिक्षण संस्थाओं को सबके लिए सुलभ बनाया गया। 1940-41 तक देश में उच्च शिक्षा के संस्थानों की संख्या क्रान्ति पूर्व की 91 से बढ़कर 317 हो गई। लेनिन की पत्नी नादेज्दा क्रूप्स्काया कोंस्तांतिनोवा ने शिक्षा के क्षेत्र में सतत कार्य किया।

स्त्रियों की दशा में भी सुधार हुआ। स्त्रियों को पुरुषों के समान मताधिकार और शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया। सरकार द्वारा महिलाओं की सुविधा के लिए कारखानों, सामुदायिक खेतों और अन्य कार्यस्थलों पर शिशुपालनघरों और सामुदायिक पाकशालाओं की व्यवस्था की गई। इस क्रान्ति ने पूरे विश्व में स्त्री मुक्ति आन्दोलनों को प्रभावित किया। स्त्रियों को पुरुषों के साथ बराबरी का दर्जा न केवल कानूनी तौर पर दिया,, बल्कि आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक तौर पर उसे संभव भी बनाया। 1918 के लेबर कोड के अन्तर्गत छोटे बच्चों की मां स्त्री मजदूरों को हर तीन घंटे के अन्तराल पर बच्चे को दूध पिलाने के लिए 30 मिनट का अवकाश दिया जाने लगा, जिसे काम के घंटों में ही गिना जाता था। गर्भवती स्त्रियों और छोटे बच्चों की माताओं को रात की पाली में काम करने से छूट, मातृत्व बीमा कार्यक्रम (1918), मां और नवजात सुरक्षा आयोग की स्थापना, रजोनिवृत्ति के दिनों में स्त्री मजदूरों को श्रम से सवैतनिक अवकाश(1920 और 30 के दशकों के दौरान), गर्भपात के लिए आपराधिक दण्ड के प्रावधान की समाप्ति (1920), फैमिली कोड(1926), जिसके द्वारा तलाक की प्रक्रिया को और सुगम बनाया गया, (यद्यपि 1936 और 1944 के फैमिली कोड में इससे कुछ विचलन भी दिखाई दिए) आदि महत्वपूर्ण कदम थे।

''विकासोन्मुख मानव समाज की यात्रा में यह क्रान्ति एक निर्णायक मोड़ थी, जिसमें सामंती शक्तियों पर बुर्जुवा शक्तियों ने तथा मध्ययुग पर आधुनिकता ने विजय प्राप्त की। लेकिन यह भी सच है कि यह क्रान्ति अपूर्ण रह गई, भटक गई और समाज के एक छोटे से वर्ग के हित को ही पूरा कर सकी। इसने राजनीतिक परिवर्तन किए , लेकिन उसके आर्थिक आधार और सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित नहीं कर सकी। रूस की क्रान्ति मानव समाज के इतिहास में पहला प्रयास थी, जब बाहरी परिवर्तनों के स्थान पर सामाजिक संरचना की नई व्याख्या की गई। (लालबहादुर वर्मा)

2.11 अक्टूबर क्रान्ति तथा इतिहास लेखन

अक्टूबर क्रान्ति, जिसे बोल्शेविक क्रान्ति के नाम से भी जाना जाता है, के स्वरूप के संदर्भ में इतिहासकारों के बीच विभिन्न दृष्टिकोण हैं—

सोवियत दृष्टिकोण के इतिहासकार 1917 की क्रान्ति को लेनिन के नेतृत्व में किए गए एक जन-आन्दोलन के रूप में व्याख्यायित करते हुए बोल्शेविक दल के केन्द्रीय नेतृत्व की भूमिका को मानकर चलते हैं। उनके अनुसार बोल्शेविक विजय अपरिहार्य थी और मार्क्स द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक सिद्धान्तों के अनुरूप थी। यह लेनिन के कुशल नेतृत्व, पार्टी के अंदर सख्त अनुशासन एवं रूसी श्रमिकों, किसानों तथा सैनिकों के क्रान्तिकारी जनसमर्थन के परिणामस्वरूप हुई। लेनिन ने रूस की जनता को एक भ्रष्ट बुर्जुआजी शासन के खिलाफ संगठित किया। यद्यपि 1991 तक कुछ परिवर्तनों के साथ सोवियत इतिहास लेखन का स्वरूप यथावत रहा। स्टालिन की मृत्यु के बाद ई. एन. बुर्द्जलोव (E.N. Burdzhalov) तथा पी. वी. वोलोब्यूव (P.V.Volobuev) के ऐतिहासिक शोधों में

पार्टी लाइन से थोड़ा विचलन दिखाई देता है। ग्लासनोस्त और पेरेस्त्रोइका के दौर में जो शोध हुए, वे मार्क्सवाद-लेनिनवाद के पहलुओं से अलग हटकर थे, यद्यपि कट्टर सोवियत विचारधारा की कुछ विशेषताएं बनी रहीं। सी. हिल और जॉन रीड जैसे पश्चिमी इतिहासकारों ने भी मार्क्सवादी और वामपंथी तथा अधिकतर सकारात्मक दृष्टिकोण से बोल्शेविक क्रान्ति एवं लेनिन के प्रभाव पर लिखा है। शीत युद्ध के दौरान अक्टूबर क्रान्ति के उदारवादी इतिहास लेखकों का विचार सामने आया। उदारवादी इतिहासकार जैसे रिचर्ड पाइप्स आदि अक्टूबर क्रान्ति को तख्ता पलट (Coup d' etat) की परिघटना ('एक सुसंगठित छोटे समूह द्वारा समाज के एक बड़े हिस्से के समर्थन के बिना सत्ता को हस्तगत करना')। के रूप में देखते हैं, जिसके द्वारा बोल्शेविकों ने एकदलीय अधिनायकवाद की स्थापना की। उन्होंने इसे आकस्मिक घटनाओं का परिणाम बताया। रूसी क्रान्ति के दूरगामी प्रभावों के बारे में इन इतिहासकारों ने बोल्शेविक दल के संगठन को आद्य अधिनायकवादी माना है, जो किसी एक खास विचारधारा के आधार पर राज्य की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक संस्थाओं पर राज्य का संपूर्ण नियंत्रण का समर्थन करते हैं। इस दृष्टिकोण के इतिहासकारों की परंपरा क्रान्ति के स्वरूप तथा प्रभावों के संदर्भ में इतिहास को 'ऊपर से' व्याख्यायित करने की रही, जिसे मुख्य व्यक्तियों/चरित्रों की भूमिका पर केन्द्रित किया गया। इन इतिहासकारों में आर.पाइप्स, जे.एच.कीप,एल. शेपिरो, एम.लिंच,डी.वोल्कोगोनोव आदि प्रमुख हैं। सोवियत और उदारवादी दोनों से अलग हटकर संशोधनवादी इतिहासकारों के विचार में रूसी क्रान्ति निश्चित रूप से एक अधिक जटिल परिघटना है। उनका मानना है कि अक्टूबर 1917 में लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविकों को सत्ता प्राप्ति में एक लोकप्रिय जन समर्थन प्राप्त था। रूसी जनता में क्रान्ति की चेतना बढ़ रही थी, समाज का वर्गों में ध्रुवीकरण बढ़ा और लेनिन का नारा 'सोवियतों को समस्त शक्ति/सत्ता' लोकप्रिय हुआ। वियतनाम युद्ध के दौरान 'नव वाम' लेखकों के दृष्टिकोण का विकास हुआ, जिन्होंने सोवियत तथा उदारवादी दोनों के तर्कों को खारिज किया। इन्होंने क्रान्ति के कारणों में जनसमुदाय की भूमिका को प्रमुख माना। एडवर्ड एक्टन का तर्क है कि जिन लक्ष्यों के लिए जनता ने संघर्ष किया , वे उनके अपने थे। ब्रिटिश मार्क्सवादी इतिहासकारों जैसे एरिक हॉब्सबॉम, क्रिस्टोफर हिल,जॉन सैविले, ई. पी. थॉम्प्सन आदि ने जन इतिहास को आधार बनाते हुए सामाजिक इतिहास लेखन की विधा पर बल दिया, जिसे 'हिस्ट्री फ्रॉम बिलो' के रूप में व्याख्यायित किया गया।

2.12 तकनीकी शब्दावली

फरवरी/मार्च क्रान्ति तथा अक्टूबर/नवंबर क्रान्ति –रूस में जूलियन कलेंडर प्रचलित था, जो ग्रेगोरियन कलेंडर से 13 दिन पीछे था। इस कारण रूसी इतिहास में 1/14 फरवरी तक तिथियां दोनों कलेंडरों के अनुसार मिलती हैं।

जार– रूस के शासक की उपाधि

नरोदनिक– (नरोदनाया वोल्या) 1871 के दशक के अंत में रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन में सबसे महत्वपूर्ण धारा। इसके कार्यक्रम में निरंकुशतंत्र का उन्मूलन, जनवादी स्वतंत्रताओं की मांग तथा किसानों को भूमि हस्तांतरित करना शामिल था।

सर्वहारा–मजदूर वर्ग

बुर्जुवाजी–जमींदार और पूंजीपति

ड्यूमा–एक प्रतिनिधि संस्था, जिसे 1905 की क्रान्तिकारी घटनाओं के बाद बुलाने पर सरकार को मजबूर होना पड़ा। औपचारिक रूप से ड्यूमा एक विधान बनाने वाला निकाय था, किन्तु उसे कोई ववास्तविक अधिकार प्राप्त नहीं थे। ड्यूमा के लिए चुनाव न तो प्रत्यक्ष थे, न समान और सार्वभौम। बोल्शेविकों ने तीसरी और चौथी ड्यूमा के चुनावों में भाग लिया, ताकि वहां अपने प्रतिनिधि भेज सकें। ड्यूमा नाममात्र के लिए 1917 तक अस्तित्व में रही।

जेम्स्त्वो–स्थानीय स्वशासन की इकाइयां

केडेट–संवैधानिक जनवादी, रूस में 1905-17 में उदार राजतंत्रवादी पूंजीपति वर्ग की मुख्य पार्टी के सदस्य। प्रथम विश्व युद्ध में जार की नीतियों का समर्थन, अस्थायी सरकार और अक्टूबर क्रान्ति के बाद प्रतिक्रान्तिकारी नीति। सोवियत सरकार द्वारा गैरकानूनी घोषित।

टोज ,आर्टेल ,कम्यून–देखें खण्ड 3.7

कोलखोज– सामुदायिक अर्थनीति या फार्म। सभी सदस्य उसके मालिक होते थे। उन्हें सरकार द्वारा निश्चित सरकारी हिस्से को अदा करना पड़ता था। सरकार ने कोलखोजों को गांवों में अपनी कृषि नीति कर आधार बनाना अधिक सुविधाजनक समझा।

सोवखोज – कृषि कारखाना, जिसका स्वामित्व राज्य के हाथों में था और किसान उसमें भाड़े पर काम करते थे। अपनी संख्या के अनुपात से कहीं ज्यादा ये सोवियत अर्थनीति के लिए लाभदायक सिद्ध हुए।

रेड गाड्र्स (लाल रक्षक)– ये सशस्त्र फैक्टरी मजदूर थे। सफेद गार्ड प्रतिक्रान्तिकारी फौजों को कहा गया, जिन्होंने सोवियत सरकार के खिलाफ विदेशी हस्तक्षेपकारियों का साथ दिया। लाल सेना ने उनका सफाया किया।

2.13 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

खण्ड2.2 के उत्तर

1. (क) देखें 2.2.2 (ख) देखें 2.2.3 (ग) देखें 2.2.5 (घ) देखें 2.2.6

2. (ख) देखें 2.2.4 (ख) देखें 2.2.4 (ग) देखें 2.2.5 (घ) देखें 2.2.7

खण्ड2.3 के उत्तर

1. (क) देखें 2.3 (ख) देखें 2.3.1.4

खण्ड2.4 के उत्तर

1. (क) देखें 2.4 (ख) देखें 2.4.1

2. (ख) देखें 2.4 (सही) (ख) देखें 2.4.1(गलत) (ग) देखें 2.4 (गलत) (घ) देखें 2.4.3 (सही)

खण्ड2.5 के उत्तर

1. (क) देखें 2.5.1 (ख) देखें 2.5.2 (ग) देखें 2.5.3

खण्ड2.6 के उत्तर

1. (क) देखें 2.6

2. (ख) देखें 2.6 (सही) (ख) देखें 2.6.1 (गलत) (ग) देखें 2.6 (गलत) (घ) देखें 2.6.4(गलत)

खण्ड2.7 के उत्तर

1. (क) देखें 2.7

2. (क) देखें 2.7 (गलत) (ख) देखें 2.7 (सही)

खण्ड2.8 के उत्तर

1. (क) देखें 2.8 (ख) देखें 2.8.2 व 2.8.3

2. (क) देखें 2.8. (सही) (ख)2.8.1 (गलत)

2.14 सहायक संदर्भ ग्रन्थ

1. ई.एच.कार, द बोल्शेविक रिवॉल्यूशन 1917–1923 (पेंग्विन 1971)
2. ई.एच.कार, द रशियन रिवॉल्यूशन फ्रॉम लेनिन टु स्टालिन 1917–1929 (मैकमिलन 1979)
3. एडवर्ड रीस विलियम्स, लेनिन और अक्टूबर क्रान्ति के बारे में (प्रगति प्रकाशन, मॉस्को 1975, पुनर्प्रकाशित लखनऊ,1998)

4. जॉन रीड, टैन डेज दैट शुक द वर्ल्ड (लंदन 1919), अनुवाद–दस दिन जब दुनिया हिल उठी(प्रगति प्रकाशन मॉस्को 1967)
5. एरिक हॉब्सबॉम, द एज ऑफ एक्सट्रीम्स, द शॉर्ट ट्वेन्टिएथ सेंचुरीज,1914–1991 (विंटेज बुक्स, यू.के. 1994)
6. एडवर्ड एक्टन, क्रिटिकल कम्पेनियन टु द रशियन रिवॉल्यूशन (1997)
7. नाजेद्दा क्रूप्स्काया कोंस्तांतिनोव्ना, द अक्टूबर डेज, रेमिनिसेंसेज ऑफ लेनिन (मॉस्को 1930)
8. रिचर्ड पाइप्स, थ्री व्हाइज ऑफ द रशियन रिवॉल्यूशन (विंटेज बुक्स)
9. लियोन ट्राट्स्की, द हिस्ट्री ऑफ द रशियन रिवॉल्यूशन, भाग 3 –अनुवाद मैक्स ईस्टमैन(लंदन 1932)

2.15 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सी.डी. एम. केटलबी , हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न टाइम्स फ्रॉम 1789 (लंदन 1958)
2. सी.डी. हेजन, यूरोप का इतिहास, अनुवाद, 1993
3. डेविड थॉम्प्सन, यूरोप सिंस नेपोलियन (1958), (पेंग्विन 1978)
4. ई. लिप्सन, यूरोप इन द नाइंटीन्थ एंड ट्वेन्टिएथ सेंचुरीज (लंदन 1949)
5. ग्रांट एंड टेम्परले, यूरोप इन द नाइंटीन्थ एंड ट्वेन्टिएथ सेंचुरीज (लौंगमैन ,1984)
6. एच.ए.एल. फिशर, ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप,1946
7. वी.सी.लैंगसैम, द वर्ल्ड सिंस 1914 (न्यूयॉर्क 1959)
8. पार्थसारथि गुप्ता (संपादक), यूरोप का इतिहास, दिल्ली 1993
9. ब्र.न.मेहता, आधुनिक यूरोप 1871–1956 ई.(आगरा 1952)
10. जैन.माथुर, आधुनिक विश्व इतिहास 1500 से 2000 तक (जयपुर2006)
11. लाल बहादुर वर्मा , यूरोप का इतिहास, भाग 2 (इतिहास बोध प्रकाशन इलाहाबाद, 1980)
12. क्रिस हरमन, पीपुल्स हिस्ट्री ऑफ द वर्ल्ड (विश्व का जन इतिहास ,अनुवाद, लाल बहादुर वर्मा, संवाद प्रकाशन, मेरठ,2009)

2.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. रूस में क्रान्ति के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों का विवरण दीजिए।
2. रूसी क्रान्ति के विभिन्न चरणों की समीक्षा कीजिए।
3. लेनिन की नई आर्थिक नीति का मूल्यांकन कीजिए।
4. रूस में स्टालिन के अधीन नियोजित विकास के बारे में बताइए।

इकाई तीन : प्रथम विश्व युद्ध– आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाव, पेरिस संधि (1919)

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 प्रथम विश्व युद्ध के आर्थिक और सामाजिक प्रभाव

3.4 पेरिस शान्ति सम्मेलन (1919) की मुश्किलें

3.5 वर्साई संधि के प्रावधान

3.6 वर्साई सन्धि की आलोचना

3.7 वर्साई सन्धि पर इतिहासकारों के मत

3.8 लघु शान्ति सन्धियाँ

3.9 लीग ऑफ नेशन्स

3.9.1 लीग ऑफ नेशन्स की उत्पत्ति

3.9.2 लीग ऑफ नेशन्स की संस्थाएँ

3.9.3 लीग ऑफ नेशन्स की असफलता के कारण

3.10 मैन्डेट प्रणाली

3.11 ग्रन्थ सूची

3.12 पुस्तकीय सुझाव

3.13 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्ध इतिहास का सबसे विनाशकारी युद्ध था, जिससे जन–धन का अभूतपूर्व नुकसान हुआ था। अनगिनत लोगों के जीवन और सपने युद्ध ने मटियामेट कर दिए और युद्ध पश्चात की बदहाली, गरीबी और निराशा ने उनका जीना दूभर कर दिया था।

जल–थल–नभ में चला प्रथम विश्व युद्ध सवा चार साल लम्बा चला, जिसमें 70 लाख लोगों की जानें गईं, तकरीबन 1 करोड़ तीस लाख लोग घायल हुए और बेहिसाब धन–दौलत इसकी आग में स्वाहा हो गई। युद्ध का समापन मित्र राष्ट्रों के संघ व पराजित राष्ट्रों के बीच हस्ताक्षरित वर्साई व चार अन्य लघु संधियों के जरिए हुआ था।

वर्तमान इकाई में हम प्रथम विश्व युद्ध के सामाजिक और आर्थिक प्रभावों की चर्चा करेंगे और युद्ध से लोगों पर आने वाली आर्थिक मुसीबतों और उनके सामाजिक दुष्परिणामों पर गौर करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के निम्न उद्देश्य हैं :

- प्रथम विश्व युद्ध के आर्थिक और सामाजिक प्रभाव को समझना
- 1919 की पेरिस सन्धि के प्रावधानों को भलीभाँति जानना
- पेरिस सन्धि की शर्तों की समीक्षा करने में सक्षम होना
- लीग ऑफ नेशन्स की उत्पत्ति के सन्दर्भ को जानना
- लीग ऑफ नेशन्स की असफलताओं के कारणों को समझना

3.3 प्रथम विश्व युद्ध के आर्थिक और सामाजिक प्रभाव

क. **जन–धन का भयानक नुकसानः** 6 करोड़ 50 लाख लोग इस महायुद्ध में शरीक हुए थे, और 1,500 ज्यादा दिनों तक औसतन हरेक दिन लगभग 6,000 लोग इस युद्ध में मारे गए थे। कार्नेगी एनडाउमेन्ट फॉर इन्टरनेशनल पीस ने इस युद्ध से हुई आर्थिक क्षति का आकलन 338 अरब डालर किया है। युद्ध के बाद यूरोप के हरेक शहर, कस्बे और गाँवों में जंग के विकलांग सिपाइयों दृष्य आम हो गया था। विधवाओं और अविवाहित महिलाओं की संख्या बेहिसाब बढ़ गई थी। उत्तरी फ्रांस से बेल्जियम तक फैले इलाके में युद्ध में मृत सिपाहियों के कब्रिस्तान देखे जा सकते थे। मृत या घायल सैनिकों के परिवारों की सहायता पेंशन विभिन्न देशों का बजट बिगाड़ रहा था। इसके अलावा बढ़ती बेरोजगारी और मंहगाई ने आम लोगों को बेजार कर दिया था।

ख. **मंहगाई की मार–** 1919 में, ब्रिटेन के एक पाउन्ड स्टर्लिंग की क्रय क्षमता 1914 की तुलना में घटकर एक तिहाई रह गई थी, जबकि जर्मन मार्क का मूल्य 1923 तक औंधे मुँह गिर चुका था। मध्यवर्ग बढ़ती मंहगाई से सर्वाधिक पीड़ित था, क्योंकि वस्तुओं के दाम दोगुना–तीनगुना होते जाने के बीच उनकी आमदनी स्थिर बनी हुई थी।

ग. **विज्ञान की छलांग–** युद्ध के दौरान सैन्य हथियारों और साजो–सामान में धार लाने के लिए विभिन्न देशों में तरह–तरह की खोजें की गईं थीं। युद्ध के बाद विज्ञान की ये खोजें कृषि और उद्योगों की प्रगति में सहायक बनीं।

घ. **महिलाओं के जीवन में सुधार–** युद्ध में पुरुष भारी संख्या में मरे थे, जिसके कारण महिलाओं को श्रमिक के बतौर फैक्ट्रियों में लगाया गया। बाद में, उन्हें नियमित कामगारों का दर्जा भी मिल गया। इसके बाद कई देशों में महिलाएँ सभी सामाजिक पेशों और राजनीति में हिस्सेदारी की माँग करने लगीं, और अन्ततः उन्हें कामयाबी भी हासिल हुई।

3.4 पेरिस शान्ति सम्मेलन (1919) की मुश्किलें

क. **युद्ध के अनिश्चित उद्देश्य–** शुरुआत में, युद्ध में भागीदारी करने वाले किसी भी देश के पास उद्देश्यों की स्पष्टता नहीं थी। जर्मनी और आष्ट्रिया हैब्सबर्ग साम्राज्य को सुरक्षित करने के लिए चिन्तित थे, जिस के लिए उन्हें सर्बिया का वजूद समाप्त करना जरूरी लगा था। बाद के दिनों में ब्रिटेन ने अपने युद्ध उद्देश्यों का एक खाका पेश किया था; जनवरी 1918 में लार्ड जार्ज ने अपने एक वक्तव्य में लोकतन्त्र की रक्षा, फ्रास पर हुए 1871 के अन्याय के निराकरण, बेल्जियम और सर्बिया की सार्वभौमिकता की पुनर्स्थापना, स्वाधीन पोलैन्ड, आष्ट्रिया–हंगरी के लोगों के लिए लोकतान्त्रिक स्वशासन, जर्मन उपनिवेशों को आत्मनिर्णय का अधिकार और युद्ध की रोकथाम के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना को अपना मकसद बताया था।

ख. विलसन के प्रसिद्ध चौदह सूत्र

1. गुप्त कूटनीति का खात्मा
2. युद्ध व शान्तिकाल में सभी देशों को समुद्री आवाजाही की आजादी
3. राष्ट्रों के बीच आर्थिक नाकेबन्दियों का खात्मा
4. सैन्य हथियारों में कमी
5. औपनिवेशिक दावों का उनकी जनता के हित में निष्पक्ष समायोजन
6. रूसी सीमाक्षेत्र से बाह्य शक्तियों की वापसी
7. बेल्जियम की सम्प्रभुता की बहाली
8. फ्रांस की मुक्ति और उसके भू–क्षेत्र में अलसेस–लोरेन की वापसी
9. राष्ट्रीयता के आधार पर इटली की सीमाओं की फिर से शिनाख्त
10. आष्ट्रिया–हंगरी के लोगों को स्वशासन का अधिकार
11. रूमानिया, सर्बिया और मोन्टेनेग्रो को खाली करके सर्बिया को समद्री रास्ता उपलब्ध कराना
12. तुर्की साम्राज्य के गैर–तुर्की लोगों के लिए आत्मनिर्णय का अधिकार और डार्डनेले को स्थाई रूप से खोलना
13. स्वाधीन पोलैन्ड और उसके लिए समुद्रतट की पहुँच सुरक्षित करना
14. शान्ति की गारन्टी करने वाले राष्ट्रों के संघ की स्थापना

ग. पराजित शक्तियों के साथ बर्ताव को लेकर मतभेद

• ब्रिटेन का प्रतिनिधित्व लॉयड जार्ज कर रहे थे, जो अपने अवसरवाद और धूर्तता के लिए विख्यात थे। चुनावों के दौरान बहुमत जुटाने के लिए उसने ''कैसर को फाँसी देने'' और ''जर्मनों को त्राहि–त्राहि करने तक निचोड़ने'' का वादा किया था। वह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापना के लिए सत्य और न्याय को विदेश नीति का आधार बनाने के लिए राजी तो था, लेकिन तभी जबकि वे इंगलैन्ड के हित सुरक्षित करते हों।

•   फ्रांस का प्रतिनिधित्व क्लेमनसॉ कर रहे थे, जो अपने व्यावहारिकतावादी रवैए के लिए जाने जाते थे। वे 1871 की उस फ्रांसीसी संसद के इकलौते जीवित सांसद थे, जिसने अलसेस–लोरेन के इलाकों के छिनने का विरोध किया था। फ्रांसीसी सुरक्षा की गारन्टी करना उनकी सर्वोपरि इच्छा थी। इसलिए, वे जर्मनी पर ऐसी कठोर सन्धि की फाँस डालना चाहते थे, जिससे वह सैनिक और आर्थिक तौर पर बर्बाद हो जाए और भविष्य में कभी फ्रांस के लिए खतरा उपस्थित न कर सके। उसे ही जुर्माना, क्षतिपूर्ति और गारन्टियों के फार्मूले का जनक कहा जाता है।

•   अमरीकी राष्ट्रपति अपने आदर्शवाद के लिए चर्चित थे। शुरुआत में वे जर्मनी के प्रति नरम रवैया के हिमायती थे, लेकिन जर्मनी द्वारा उनके प्रस्तावित 14 सूत्रों को नकारने और रूस के साथ ब्रेस्ट–लिटोव्स्क की कठोर सन्धि करने के बाद वे जर्मनी को दन्डित किए जाने के पक्ष में हो गए, और जर्मनी को निशस्त्र करने और हरजाना भरने के लिए मजबूर किए जाने का समर्थन करने लगे। इस मामले में लैंगसम का यह दावा बिलकुल सही है कि, ''विलसन का आदर्शवाद सम्मेलन के भौतिकतावाद से सीधे टकरा गया, और इस स्थिति में मोटे तौर पर भौतिकवाद विजयी रहा।

•   ऑरलैन्डो के नेतृत्व में इटली अपने भौगोलिक हितों की रक्षा करने के लिए ज्यादा चिन्तित था। लेकिन सम्मेलन में इटली को मनचाही भूमिका नहीं मिली जिसके कारण वह निराश होकर सम्मेलन से चले गए।

पाँच सन्धियाँ– शान्ति समझौते के दौरान पाँच सन्धियों पर हस्ताक्षर किए गए–

क. जर्मनी के साथ की गई 28 जून, 1919 की वर्साई सन्धि;

ख. आष्ट्रिया के साथ 10 सितम्बर, 1919 को सम्पन्न सेन्ट जर्मेन सन्धि;

ग. बुलगारिया के साथ 27 नवम्बर, 1919 की नोएली सन्धि;

घ. हंगरी के साथ की गई 4 जून, 1920 की ट्रायनन सन्धि;

च. और तुर्की के साथ 1 अगस्त 1920 को सम्पन्न सर्व की सन्धि। सर्व की सन्धि लुसाने सम्मेलन में संशोधित किए जाने के बाद 6 अगस्त 1924 लागू हुई।

अभ्यासः सही या गलत चिन्हित करें

क. जनवरी 1918 में जारी विलसन के प्रसिद्ध 14 सूत्रों में 'गुप्त कूटनीति के खात्मे' की बात शामिल नहीं थी।

ख. लॉयड जार्ज उन चुनावों में शानदार तौर पर सफल रहा, जिसमें उसने ''कैसर को फाँसी पर लटकाने'' और ''जर्मनों को त्राहि–त्राहि करने तक निचोड़ने'' का वादा किया था।

ग. अमरीका के राष्ट्रपति अपने आदर्शवाद के लिए जाने जाते थे।

घ. जनवरी 1918 में जारी विलसन के चौदह सूत्रों में 'फ्रांस की मुक्ति और उसे अलसेस–लोरेन के क्षेत्र वापस किए जाने' की बात शामिल नहीं थी।

उत्तर   क. गलत   ख. सही   ग. सही   घ. गलत

3.5 वर्साई संधि के प्रावधान

28 जून, 1919 को, मित्र शक्तियों और जर्मनी के बीच, वर्साई की सन्धि पर हस्ताक्षर हए थे। इसके पहले, 7 मई, 1919 को, तीन हफ्ते के अल्टीमेटम के साथ एक मसौदा दस्तावेज जर्मनी को सौंपा गया था, और आपत्तियाँ माँगी गई थीं। जर्मनी ने सन्धि के मसौदा दस्तावेज के खिलाफ आपत्तियों का एक भारी–भरकम पुलिन्दा पेश किया था। उसके बाद, मूल दस्तावेज में चन्द तब्दीलियाँ करके संशोधित दस्तावेज जर्मनों को दोबारा सौंपा गया, और उसे दस्तखत के लिए पाँच दिन का वक्त देते हुए इन्कार करने की सूरत पर आक्रमण की धमकी दी गई थी। जर्मनी को युद्ध–दोषी बताने और युद्ध अपराधियों को समर्पित करने के प्रस्ताव को जर्मन संसद ने मानने से इन्कार कर दिया। लेकिन मित्र शक्तियों द्वारा बिना शर्त हस्ताक्षर की माँग की गई, जिसके दबाव में जर्मनी ने 28 जून 1919 की उसी तिथि को हस्ताक्षर कर दिए, जिस दिन, पाँच वर्ष पहले, आष्ट्रिया के आर्कड्यूक फ्रान्ज फर्डीनान्ड की हत्या हुई थी। विडम्बना तो यह थी, कि वर्साई सन्धि पर वर्साई किले के उसी हाल ऑफ मिरर्स में हस्ताक्षरित हुए, जहाँ, 18 जनवरी 1871 को, जर्मनी के सम्राट के बतौर विलियम प्रथम की ताजपोशी का समारोह हुआ था।

वर्साई की सन्धि के 15 हिस्से थे, और उसमें 439 अनुच्छेद शामिल थे। सुविधा के लिए सन्धि की विभिन्न शर्तों को हमने निम्न वर्गों में बाँटकर समझने की कोशिश की है–

सीमा क्षेत्र सम्बन्धी अनुच्छेद– इस सन्धि में राष्ट्रों की सीमाओं में काफी बदलाव किए गए थे। जर्मनी से लेकर अलसेस–लोरेन के इलाके फ्रांस, यूपेन, मैलमेडी और मोरिस्नेट के इलाके बेल्जियम, मेमेल का इलाका लिथुआनिया को दे दिए गए; पोलैन्ड एक स्वाधीन राष्ट्र बन गया, प्रूशियन पोलैन्ड कहलाने वाला पोसेन और पश्चिमी प्रशिया का इलाका एक जनमत संग्रह के जरिए पोलैन्ड को दे दिए गए, इसमें शामिल डैन्ज़िग के एक हिस्से को जर्मनी से काटकर लीग ऑफ नेशन्स के प्रशासन के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र शहर बना दिया गया; जनमतसंग्रह के बाद उत्तरी शेलेसविग डेनमार्क का हिस्सा बना दिया गया; समुद्री तट मुहैय्या कराने के लिए पोलैन्ड को एक 260 मील लम्बा और 80 मील चौड़ा इलाका दे दिया गया और उसे पोलिश कॉरिडोर कहा गया; सिलेशिया में जनमतसंग्रह के बाद उसके एक हिस्से को जर्मनी, दूसरे को पोलैन्ड और बाकी हिस्से को चेकोस्लोवाकिया में मिला दिया गया।

सार घाटी को लीग ऑफ नेशन्स के नियन्त्रण में करते हुए घाटी की कोयला खदानों के उपभोग का सर्वाधिकार फ्रांस को मिल गया। यह भी कहा गया कि 15 वर्षों बाद जनमतसंग्रह कराकर सुनिश्चित किया जाएगा कि यह इलाका जर्मनी अथवा फ्रांस के अधीन रहेगा।

जर्मनी के सारे विदेशी अधिकार क्षेत्र और उपनिवेश लीग ऑफ नेशन्स को सौंप देने थे। इन इलाकों को लीग के निर्देशों के तहत विक्टोरियाई शक्तियों में बाँट दिया गया, यानी इन इलाकों की 'देखभाल' लीग के सदस्य देशों को दे दी गई थी। इस तरह, कियाचाओ जापान को पट्टे पर मिल गया, समोआ द्वीप के जर्मन इलाके न्यूजीलैन्ड को, जर्मन न्यू गिनी आष्ट्रेलिया को, टोगोलैन्ड और तंगनिका (आधुनिक तंजानिया) ब्रिटेन, कैमरून फ्रांस को और जर्मनी के कब्जे वाला दक्षिण–पश्चिमी अफ्रीका दक्षिण अफ्रीकी संघ को मिल गया।

ब्रेस्ट–लिटोव्स्क सन्धि के जरिए जर्मनी द्वारा रूस से हासिल किए गए एस्टोनिया, लाटविया और लिथुआनिया स्वतन्त्र राष्ट्र बना दिए गए, और इसे जनता के आत्मनिर्णय के सिद्धान्त का एक व्यावहारिक उदाहरण कहा गया।

सैन्य कारण— जर्मनी की जबरदस्त सैन्य ताकत को खत्म करने की कोशिश की गई। उसकी सेना की अधिकतम सीमा एक लाख तय कर दी गई और अनिवार्य सैनिक भर्तियों पर पाबन्दी जड़ दी गई। नए नियमों के तहत जर्मन नौसेना अब केवल छह युद्धपोत, 12 टॉरपीडोयुक्त नावें, बारह विध्वंसक और छह लाइट क्रूजर रख सकता था, किसी तरह के टैंक, बख्तरबन्द गाड़ियाँ, युद्धक विमान या पनडुब्बियाँ रखने की इजाजत उसे नहीं दी गई थी। राइनलैन्ड को विसैन्यीकृत क्षेत्र घोषित किया गया, और किसी तरह की सैन्य तैनाती या किलेबन्दी वहाँ पाबन्द कर दी गई। हेलिगोलैन्ड और डूने द्वीपों के बन्दरगाह भी विसैन्यीकृत कर दिए गए और वहाँ की समस्त किलेबन्दी ध्वस्त कर दी गई।

आर्थिक कारण— युद्ध से हुई क्षति के लिए जर्मनी को कसूरवार ठहराया गया। अब जर्मनी मित्र राष्ट्रों को युद्ध का जुर्माना भरने के लिए मजबूर था, और जुर्माने की रकम निर्धारित करने के लिए 1921 में एक क्षतिपूर्ति कमीशन का गठन किया गया, जिसमें ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और जापान सदस्य के बतौर शामिल थे। इस कमीशन के द्वारा जर्मनी पर 6, 600 मिलियन डालर की युद्ध देनदारी निर्धारित की गई। एल्बी, ओडर और राइनी जैसी जर्मनी की सभी नदियों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। युद्ध के हरजाने के बतौर जर्मन खदानों के लोहा व कोयले की आपूर्ति मित्र शक्तियों को की जानी थी।

कानूनी कारण— जर्मनी और उसके युद्ध–सहयोगियों को युद्ध का दोषी घोषित किया गया था। जर्मनी के शासक कैसर विलियम द्वितीय को एक युद्ध अपराधी घोषित किया गया और उस पर मुकदमा चलाने व दन्डित करने के लिए एक ट्रिबुनल का गठन किया गया था। हालाँकि कैसर न्यूजीलैन्ड भाग गया और इसलिए उस पर मुकदमा नहीं चलाया जा सका। अन्ततः केवल 12 लोगों पर जर्मन न्यायालयों में मुकदमा चलाया जा सका, जिसके बाद उन्हें हल्की सजाएँ सुनाई गईं।

यह भी तय किया गया था कि फ्रैंको–जर्मन युद्ध या अन्तिम युद्ध के दौरान जर्मन सेनाओं द्वारा लूटी गई ट्रॉफियाँ, स्मारिकाएँ या अन्य कला वस्तुएँ फ्रांस को लौटा दी जायेंगी।

राजनीतिक कारण— वर्साई की सन्धि ने पोलैन्ड और चेकोस्लोवाकिया को स्वतन्त्र राष्ट्र बना दिया था। वहीं, आष्ट्रिया के साथ अपने संघ को पुनर्जीवित करने से जर्मनी को रोक दिया गया था। ब्रिजहेड समेत राइन नदी के पश्चिम के जर्मन क्षेत्र मित्र शक्तियों को पन्द्रह वर्षों के लिए दे दिए गए थे। हालाँकि यह कहा गया था कि जर्मनी द्वारा सन्धि की शर्तों का अनुपालन किए जाने पर कोलोन का ब्रिजहेड 5 वर्ष में, कॉबलेन्ज़ का 10 वर्षों में और मेन्ज़ को 15 वर्षों में खाली कर दिया जाएगा। हालाँकि, ऐसा हुआ नहीं और 1930 में जाकर ही इन जर्मन क्षेत्रों से बाहरी सेनाओं की वापसी हो सकी थी।

लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना— लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना अन्तराष्ट्रीय शान्ति स्थापना के महत्वपूर्ण मकसद से की गई थी। इसके तहत, हेग में स्थाई तौर पर एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना की गई थी। सन्धि में एक अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ (आईएलओ)के गठन का भी प्रावधान किया गया था।

अभ्यासः सही या गलत बताएँ

क. सन्धि 14 हिस्सों में विभाजित थी और उसमें 431 अनुच्छेद शामिल थे।

ख. जर्मनी और उसके युद्ध सहयोगियों को 'युद्ध के लिए दोषी' माना गया था और जर्मनी के शासक काइजर विलियम द्वितीय को युद्ध अपराधी घाषित किया गया था।

ग. लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना करना था।

घ. सन्धि ने पोलैन्ड और चेकोस्लोवाकिया को स्वतन्त्र राष्ट्र की मान्यता देते हुए आष्ट्रिया के साथ जर्मनी के संघ बनाने को सहमति प्रदान की थी।

उत्तरः

क. गलत ख. सही ग. सही घ. गलत

3.6 वर्साई सन्धि की आलोचना

वर्साई सन्धि की आलोचना अनेक कारणों से की जाती है। कुल मिलाकर, इसे एक अवास्तविक और कठोर सन्धि कहा जाता है, जिसकी शर्तें और कानूनी प्रावधान अपनी कठोरता में अकल्पनीय थे।

1. **एक थोपी गई शान्ति**– सन्धि का पहला मसौदा तैयार किए जाने वाले तीन महीनों में जर्मनी से किसी तरह की वार्ता नहीं की गई थी। उसकी आपत्तियों को भी पूरी तरह अनसुना कर दिया गया था। सन्धि पर जर्मन प्रतिनिधि ने हस्ताक्षर तो किए लेकिन उसे बन्दूक की नोक पर लिया गया हस्ताक्षर कहा जा सकता है, क्योंकि इन्कार करने की सूरत में आक्रमण की तलवार उनके सर पर लटका दी दी गई थी। ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री लॉयड जार्ज ने कहा था, ''ये शर्तें शहीद नायकों के खून से लिखी गई हैं। हमें ईश्वर की आज्ञा का पालन करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि यह अपराध करने वाले भविष्य में फिर इसे दोहराने की जुर्रत न कर सकें। जर्मन कह रहे हैं कि वे सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे। उनके अखबार कह रहे हैं कि वे हस्ताक्षर नहीं करेंगे। उनके नेता भी यही बात कह रहे हैं। हम कहते हैं, भलेमानुस, हस्ताक्षर तो आपको करने ही होंगे। अगर आप वर्साई में नहीं करेंगे, तो फिर यह काम आप बर्लिन में करेंगे।'' यह कथन दबाव के उस माहौल का परिचायक है, जिसमें जर्मन जनता पर वर्साई की सन्धि थोपी गई थी।
   इतिहासकार ईएच कार कहते हैं कि, ''वर्साई की सन्धि में जिस कदर जर्मनी की बाँह मरोड़ी गई थी वैसा, उसके पहले, आधुनिक युग की किसी भी सन्धि में नहीं हुआ था।''

   दूसरी तरफ, यह भी कहा जा सकता है कि जर्मनी को किसी बेहतर बर्ताव की उम्मीद भी नहीं करनी चाहिए थी, क्योंकि वह खुद ब्रेस्ट–लिटोव्स्क जैसी कठोर सन्धि रूस पर और बुखारेस्ट की सन्धि रोमानिया पर थोप चुका था।

2. **बदले की भावना**– सन्धि का आधार–सिद्धान्त था, ''लूट का माल विजेता को और मित्र शक्तियाँ विजेता हैं''। जर्मनी पर जो हरजाने, विसैन्यीकरण और हथियारों की कटौती के प्रावधान, युद्ध दोषी बताने वाला खन्ड, और सीमा–क्षेत्रों के अधिग्रहण थोपे गए थे, वे बदले की भावना से ओतप्रोत थे।
3. **विलसन के चौदह सूत्रों की अनदेखी** – जर्मनी ने आरोप लगाते हुए कहा था कि वर्साई सन्धि विलसन के 14 सूत्रों से हटकर है और इसलिए उसका भरोसा तोड़ने वाली है।
   दूसरी तरफ, यह कहा जा सकता है कि विलसन के चौदह सूत्र किसी भी सम्बन्धित देश ने अपनी औपचारिक घोषणा में शामिल नहीं किए थे। यही नहीं, ब्रेष्ट–लिटोव्स्क और बुखारेस्ट की कठोर सन्धियों में खुद जर्मनी ने उन्हें नजरअन्दाज किया था। बाद के दौर में तो खुद विलसल भी जर्मन हठधर्मिता से खिन्न होकर जर्मनी पर दो अतिरिक्त शर्तें लादने के इच्छुक हो गए थे, जिनमें जनता के नुकसान का जुर्माना भरने और जर्मनी को 'वाकई शक्तिहीन' करने या विसैन्यीकृत करने की बात शामिल थी। युद्धविराम के लिए राजी होते समय ही इन बातों का एहसास जर्मनी को हो चुका था।

4. **युद्ध अपराध की शर्त–व्यावहारिक नहीं**–खुद को युद्ध–दोषी बताने के प्रावधान के लिए जर्मनी को बलात मनवाना व्यावहारिक नहीं था। डेविड थामसन के शब्दों में, ''इसे ऐसे दस्तावेज में शामिल करके, जिस पर हस्ताक्षर के लिए जर्मन प्रतिनिधि मजबूर थे, नैतिक जिम्मेदारी का भाव पैदा करना असम्भव था।''
   मित्र शक्तियाँ इस प्रावधान को शामिल करवाने पर सिर्फ इसलिए अड़े थे, क्योंकि उन्हें जर्मनी से हरजाने के बतौर रकम वसूलने की चिन्ता थी।

5. **अवास्तविक मुआवजे की वसूली**– मुआवजे के बतौर माँगी गई 6,600 मिलियन डालर की राशि उस वक्त अकल्पनीय थी, खासकर तब जबकि जर्मनी खुद बर्बादी की कगार पर था। अन्ततः, मित्र शक्तियों ने अपनी भूल का एहसास किया और 1929 की युंग योजना के तहत उन्होंने मुआवजे की रकम घटाकर 2,000 मिलियन डालर कर दी। ब्रिटिश प्रतिनिधिमन्डल के सदस्य के बतौर शान्ति सम्मेलन में उपस्थित प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जे.एम. कीन्स इतनी रकम का ही प्रस्ताव पहले रख चुके थे। यही नहीं, जर्मनी केवल 1,000 मिलियन डालर अदा कर पाया और आगे की किश्तें अदा करने से इन्कार कर दिया।
6. **आत्म निर्णय के अधिकार और राष्ट्रवाद के सिद्धान्तों का उल्लंघन**– एक राष्ट्रीयता और संस्कृति के लोगों को इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर स्वतन्त्र और अलग राष्ट्र के बतौर आजादी का अधिकार मिला था। यूगोस्लाविया और चेकोस्लोवाकिया के मामलों में तो इन सिद्धान्तों पर अमल किया गया, लेकिन पोजेन और पश्चिमी प्रशिया में बसे जर्मनों की भारी संख्या नवगठित पोलैन्ड में रहने के लिए मजबूर कर दी गई थी। इसी तरह, डालमेशिया के अच्छी–खासी जनसंख्या वाले स्लावों को इटली के अधीन और जर्मन जनसंख्या को बोहेमिया के स्लावों के अधीन रहने के लिए छोड़ दिया गया था। जर्मन बहुसंख्या वाले डेन्ज़िंग शहर को लीग ऑफ नेशन्स के अधीन किया जाना इस सिद्धान्त का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन था। इसी तरह, जर्मनी और आष्ट्रिया के संघ को बनने से मित्र शक्तियों ने रोक दिया था। मित्र शक्तियों की इस नीतिगत गलती के कारण अल्पसंख्यकों की समस्या यूरोप का प्लेग बन गई और भविष्य में उसे सालती रही ।
7. **निशस्त्रीकरण का एकतरफापन** – जर्मन थल, वायु और नौसेना अपने पुराने शक्तिशाली स्वरूप की छाया में बदल दी गई थी। जर्मन लोगों को इस बात का भारी मलाल था कि किसी मित्र राष्ट्र ने खुद को निशस्त्र नहीं किया, जबकि विलसन के चौथे सूत्र में 'शस्त्रों में चौतरफा कटौती' की बात कही गई थी।
8. **जर्मन उपनिवेशों पर अन्यायपूर्ण कब्जा**– जर्मनी के अफ्रीकी उपनिवेशों को अन्यायपूर्ण ढंग से हड़प लिया गया। 'मैन्डेट प्रणाली' का कपटता के साथ, औपचारिक ढंग से स्वीकार किए बगैर, जर्मन उपनिवेशों के अधिग्रहण के लिए मित्र शक्तियों द्वारा इस्तेमाल किया गया।
9. **सम्मेलन या दन्ड न्यायालय**– फ्रांसीसी प्रधानमन्त्री क्लेमनसाउ ने दावा किया था कि सम्मेलन में ''सभी सम्बन्धित पक्ष'' शरीक थे, और ''जिसको भी कुछ कहना था, उसकी बात सुनी गई थी''। लेकिन यह सन्धि जर्मनी पर पूरी तरह थोपी गई थी। मसौदा तैयार करने के क्रम में जर्मनी को शामिल न करना उसकी आपत्तियों को नकारना, पाँच दिन में हस्ताक्षर करने का अल्टीमेटम पूरा न होने पर आक्रमण की धमकी की घटनाओं के कारण सम्मेलन को सम्मेलन न कहकर ट्रिब्यूनल कहना उचित होगा।
10. **द्वितीय विश्वयुद्ध की परिणति में वर्साई सन्धि का योगदान**– अनेक आलोचक कह चुके हैं कि द्वितीय विश्व युद्ध के बीज वर्साई सन्धि ने बो दिए थे। वर्साई सन्धि में जर्मनी के साथ जिस तरह की कठोरता बरती गई थी, और, उसके बाद भी, मित्र देशों, खासकर, फ्रांस ने जिस तरह का व्यवहार जर्मनी के साथ किया था, उसकी वजह से जर्मनी में किसी गणतान्त्रिक सत्ता के उदय की सम्भावनाएँ खत्म हो गईं और हिटलर के अभ्युदय का रास्ता साफ हो गया, जो मित्र राष्ट्रों के व्यवहार के खिलाफ राष्ट्रीय भावनाएँ जगाने और उनका समर्थन हासिल करने में निपुण साबित हुआ।

एक अन्य मत में, दोनों विश्वयुद्धों के अन्तरिम काल को वर्साई सन्धि के उल्लंघन की नजर से देखा गया है। 1926 में, जर्मनी को लीग ऑफ नेशन्स में शामिल कराने के लिए वर्साई सन्धि को संशोधित किया गया। 1935 में जर्मनी ने थल, नभ और नौसेना सम्बन्धी सन्धि की पाबन्दियों का उल्लंघन किया। समय के साथ युद्ध का मुआवजा भी काफी घटा दिया गया। मित्र शक्तियों ने सन्धि की शर्तों को कभी सख्ती से लागू नहीं किया, इसलिए उसका उल्लंघन समय–समय पर होता रहा। मित्र शक्तियों में वर्साई सन्धि की शर्तों को मनवाने की इच्छाशक्ति के इसी अभाव का उपयोग जर्मनी ने सन्धि का उल्लंघन करने, और इस उल्लंघन को जर्मन राष्ट्रवाद भड़काने व राष्ट्रीय अभ्युदय के लिए युद्ध की अपरिहार्यता सिद्ध करने में किया।

वर्साई सन्धि के पक्षधरों, उसके पक्ष में तर्क खोजने वालों और आलोचकों की कमी नहीं है। लेकिन हमें पेरिस के शान्तिनिर्माता जिन टकराहटों और जटिलताओं से रूबरू थे, उन्हें भूलना नहीं चाहिए। यही नहीं, मित्र राष्टों के सामने पराजित देशों पर जर्मनी द्वारा थोपी गई ब्रेष्ट–लिटोव्स्क और बुखारेस्ट की कठोर सन्धियाँ मिसाल के तौर पर मौजूद थीं, जिनसे उनका प्रभावित होना लाजिमी था।

3.7 वर्साई सन्धि पर इतिहासकारों के मत

कुछ इतिहासकारों के अनुसार जर्मनी के साथ किया गया व्यवहार जरूरत से ज्यादा कठोर नहीं था। पहली बात तो यह कि, उसके भू–क्षेत्र की हानि उन बदलावों के मुकाबले कुछ भी नहीं थी, जो विजेता जर्मनी के द्वारा किए जाते। एफ. फिशर के अनुसार युद्ध का जर्मन उद्देश्य पूर्वी यूरोप के कोर्टलैन्ड, लिवोनिया, एस्टोनिया, लिथुआनिया और पोलैन्ड, बालकन क्षेत्र के रोमानिया, तुर्की और बुलगारिया पर नियन्त्रण स्थापित करना; बेल्जियम, फ्रांस और हालैन्ड पर आर्थिक दबदबा कायम करना; समूचे पूर्वी मेडीटेरेनियन क्षेत्र पर वर्चस्व, आष्ट्रिया के साथ एकीकरण के जरिए वृहत्तर जर्मनी की स्थापना और एक विघटित रूस पर नियन्त्रण कायम करना था। इस योजना की तुलना में मित्र शक्तियों ने काफी संयम का परिचय देते हुए केवल उन क्षेत्रों को आजाद कराया जिनके बाशिन्दे जर्मन राइक में शामिल किए जाने के कारण त्रस्त थे। दूसरी बात यह कि, युद्ध का हरजाना मित्र शक्तियों द्वारा झेले गए भारी नुकसान का स्वाभाविक परिणाम था। युद्ध में जर्मनी के उद्योगों को कोई नुकसान नहीं पहुँचा था, क्योंकि राइनलैन्ड और रूर क्षेत्रों पर मित्र शक्तियों के कोई अभियान संचालित नहीं किए गए थे। तीसरी बात यह कि, वर्साई सन्धि के तहत बेल्जियम और फ्रांस को दिए गए मुआवजे से जर्मनी बर्बाद नहीं हुआ, यह अब निर्णायक ढंग से सिद्ध हो चुका है। जर्मनी इस मुआवजे को अगर नहीं दे सका तो सिर्फ इसलिए क्योंकि मुआवजा देने की उसकी कोई मंशा ही नहीं थी। करारोपण में आम वृद्धि करने के बजाए जर्मनी ने कागज के नोट छापने का रास्ता अख्तियार किया, जिसके कारण मंहगाई बहुत बढ़ गई थी।

अभ्यासः सही या गलत बताएँ

क. वर्साई की सन्धि जबरन थोपी गई शान्ति नहीं थी।

ख. सन्धि का आधारभूत सिद्धान्त था, '' लूट का सारा माल विजेता का, और विजेता मित्र शक्तियाँ थीं।

ग. सन्धि में जर्मनी के लिए तय की गई मुआवजे की रकम अव्यावहारिक थी

घ. वर्साई की सन्धि द्वितीय विश्व युद्ध के लिए कत्तई जिम्मेदार नहीं थी।

उत्तरः क. गलत ख. सही ग. सही घ. गलत

3.8 लघु शान्ति सन्धियाँ

जर्मनी के युद्ध सहयोगियों के साथ भी शान्ति सन्धियाँ की गई थीं। इन यहाँ पर इन सन्धियों पर संक्षेप में नजर डालेंगें

1. **सेंट जर्मेन सन्धिः** यह सन्धि 10 सितम्बर 1919 को आष्ट्रिया के साथ की गई थी। सन्धि के अन्तर्गत आष्ट्रिया के बोहेमिया और मोराविया प्रान्त नवगठित राष्ट्र चेकोस्लोवाकिया को मिल गए; डालमेशिया, बोसनिया एन्ड हर्जेगोविना सर्बिया को मिले, जिसने मोन्टेनेग्रो के साथ मिलकर यूगोस्लाविया का गठन कर लिया; गालशिया पुनर्गठित पोलैन्ड को दे दिया गया। आष्ट्रिया और हंगरी को मिलकर एक संघ बनाने से रोक दिया गया था, साथ में आष्ट्रिया और हंगरी की थल व नौसेना का आकार घटा दिया गया था। सीमाक्षेत्रों की इस वितरण के बाद आष्ट्रिया की जनसंख्या 2 करोड़ 20 लाख से घटकर मात्र 65 लाख रह गई थी।
2. **नेउली की सन्धिः** यह सन्धि (27 नवम्बर, 1919) बुलगारिया के साथ की गई थी। बुलगारिया का पश्चिमी हिस्सा यूगोस्लाविया को दे दिया गया, जबकि उसके पश्चिमी थ्रेस और ईजियन तट का इलाका ग्रीस को मिल गया। उसकी थल सेना छोटी कर दी गई और नौ सेना तो व्यावहारिक लिहाज से खत्म ही कर दी गई थी।
3. **ट्रायनन की सन्धिः** 20 जून, 1920 की इस सन्धि (का ताल्लुक हंगरी से था। क्रोएशिया और स्लोवेनिया यूगोस्लाविया को दे दिए गए थे; स्लोवाकिया और रूथेनिया चेकोस्लोवाकिया को मिल गए; ट्रान्सेलवीनिया और टेमेस्वर के बनात क्षेत्र रूमानिया को दे दिए गए। सन्धि के बाद हंगरी की जनसंख्या 2 करोड़ 1 लाख से घटकर 75 लाख रह गई थी।
4. **सेवरे की सन्धि** (10 अगस्त, 1920) तुर्की के साथ की गई थी। सन्धि की शर्तों के अनुसार तुर्की के पूर्वी थ्रेस, अनेक ईजियन द्वीप और स्मिर्ना ग्रीस को दिए जाने थे जबकि उसके अदालिया और रोड्स द्वीप इटली को दिए जाने थे, उसे अपने स्ट्रेट्स (डार्डानेल, सी ऑफ मारमरा और बॉसफोरस) के समुद्री रास्ते को नौपरिवहन के लिए खुला रखना था। सीरिया फ्रांस और फिलिस्तीन, ईराक और ट्रान्स–जार्डन ब्रिटेन के अधिकार क्षेत्र में स्थानान्तरित कर दिए गए। बाद में, कमाल पाशा के नेतृत्व में तुर्की ने इस सन्धि को खारिज कर दिया और स्मिर्ना से ग्रीक को बाहर खदेड़ दिया। 1 नवम्बर, 1922 को सल्तनत भंग कर दी गई और 20 नवम्बर 1922 को लुसाने वार्ताएँ शुरू हुईं। 1923 की लुसाने सन्धि की शर्तों के अनुसार कान्स्टेन्टिनोपल और स्मिर्ना समेत पूर्वी थ्रेस के इलाके तुर्की के पास लौट गए, लेकिन ट्रान्स–जार्डन, ईराक, सीरिया, फिलिस्तीन और हेराज के इलाके छोड़ने के लिए उसे राजी होना पड़ा। सन्धि के अन्तर्गत तुर्की की थल या नौसेना के पर किसी तरह की पाबन्दी नहीं लगाई गई थी।

इन सन्धियों को हम शान्ति का सफल समाधान नहीं मान सकते। यूरोप के सभी देश इन सन्धियों के पालन के लिए भीतर से तैयार नहीं थे, और इन देशों में सवयं जर्मनी सबसे अग्रणी था। अमरीका ने वर्साई की सन्धि को अनुमोदित नहीं किया और वह लीग ऑफ नेशन्स में भी शरीक नहीं हुआ। उधर, इटली भी खुद को ठगा महसूस कर रहा था, क्योंकि 1915 में जिन इलाकों को उसे देने का वादा किया गया था, वे उसे नहीं मिल सके थे। दूसरी ओर रूस को भी इन सन्धियों में मोटे तौर पर नजरअन्दाज ही किया गया था।

3.9 लीग ऑफ नेशन्स

लीग ऑफ नेशन्स का गठन 28 जून 1919 की वर्साई सन्धि के तहत किया गया था। 10 जनवरी, 1919 को वर्साई सन्धि के लागू होने के साथ ही लीग अस्तित्व में आ गई थी। उसका मुख्यालय स्विटजरलैन्ड के जेनेवा शहर को बनाया गया था, और युद्ध की सम्पूर्ण रोकथाम के जरिए अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, सहयोग, और सुरक्षा सुनिश्चित करना उसका घोषित लक्ष्य था।

3.9.1 लीग ऑफ नेशन्स की उत्पत्ति

लीग ऑफ नेशन्स अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति और वार्ताओं के वास्ते एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बनाने की पहली पहलकदमी नहीं थी। 1814 और 1914 के दरमियान ऐसे ही लक्ष्यों को लेकर अनेक कांग्रेसों, सम्मेलनों का आयोजन हो चुका था। 1899 और 1907 के दरमियान आयोजित हेग सम्मेलन भी इस दिशा में अन्तर्राष्ट्रीय पहलकदमियाँ लिए जाने के सबसे ताजा नमूने थे। अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बनाए जाने के मुखर समर्थक अमरीकी राष्ट्रपति विलसन के अलावा, ब्रिटेन के लार्ड राबर्ट सेसिल, दक्षिण अफ्रीका के जान स्मट्स, और फ्रांस के लिओन बुर्जुआ ने इस किस्म की संस्था की विस्तृत रूपरेखा पेश की थी। विभिन्न शान्ति सन्धियों में लीग के अनुबंध (लीग संचालन की नियमावली) को शामिल कराया जाना विलसन का विशिष्ट योगदान था। लीग के अनुबंध एक अन्तर्राष्ट्रीय समिति द्वारा तय किए थे, जिसमें विलसन, स्मट्स, बुर्जुआ और सेसिल शामिल थे।

लीग के दो उद्देश्य थे– पहला, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देना ताकि सामाजिक और आर्थिक मामले हल किए जा सकें, दूसरा, सामूहिक सुरक्षा के जरिए शान्ति स्थापना को अंजाम देना। तय किया गया था कि अगर कोई देश किसी अन्य देश पर हमला करेगा तो लीग कार्यवाही करेगी, और आक्रान्ता राष्ट्र को सामूहिक पहल के जरिए, जरूरी सैनिक कार्यवाही या आर्थिक प्रतिबन्ध लगाकर नियन्त्रित करेगी।

3.9.2 लीग ऑफ नेशन्स की संस्थाएँ

1. **आमसभा–** इसका गठन लीग के सदस्य देशों के प्रतिनिधियों को लेकर किया गया था। असेम्बली के हरेक सदस्य को आम सभा में 'एक मत, एक वोट' की बराबरी हासिल थी, और उसके सभी निर्णय सर्वानुमति से किए जाने थे। सभा आर्थिक और राजनीतिक महत्व के सभी ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर चर्चा करती थी जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए खतरा उपस्थित कर सकते थे। सभा को शान्ति सन्धियों में उन संशोधनों पर विचार करने का भी हक था, जो समय और परिस्थितियों में बदलाव के चलते जरूरी हो गए थे। सभा को सचिवालय द्वारा पेश बजट को संशोधित करने का अधिकार था, और वह काउन्सिल के कामकाज के पर्यवेक्षण के लिए भी उत्तरदायी थी।
2. **काउन्सिल–** यह सभा की तुलना में काफी छोटी आकार वाली संस्था थी, और लीग ऑफ नेशन्स की कार्यकारिणी की भूमिका निभाती थी। इसमें चार स्थाई (पाँचवाँ सदस्य अमरीका को होना था लेकिन उसने लीग में शामिल होने से ही इन्कार कर दिया था) और तीन साल के कार्यकाल वाले चार अस्थाई सदस्य थे (अस्थाई सदस्यों की संख्या भी 1926 में 9 कर दी गई थी)। यह काउन्सिल विशेष राजनीतिक विवादों पर गौर करती थी और अपने फैसले सर्वानुमति से लेती थी। निशस्त्रीकरण का प्रोत्साहन, औपनिवेशिक मैन्डेट वाले राष्ट्रों की वार्षिक रपटों पर विचार–विमर्श और किसी राष्ट्र को आक्रमण से सुरक्षित करने के विशिष्ट उपाय तैयार करने जैसी बातें इसके विशिष्ट कार्यों में शामिल थे। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उठने वाले सभी आपातकालीन घटनाक्रमों से निपटना भी उसके उत्तरदायित्वों में शामिल था। अगर कोई मामला युद्ध का

कारण बन रहा हो तो शिकायत प्राप्ति से छह माह की अवधि के भीतर काउन्सिल को उस मामले पर अपनी रपट देना अनिवार्य था।

3. **सचिवालय**– इसका मुख्यालय जेनेवा था, और इसे लीग की सभी लिखित कार्यवाहियों को सम्भालने की जिम्मेदारी मिली थी। लीग के सभी सदस्य देशों के बीच होने वाली सन्धियों को सचिवालय में रजिस्टर्ड कराना अनिवार्य था। सचिवालय के 15 विभाग थे, जो मैन्डेट के तहत आने वाले राष्ट्रों की रूटीन कार्यवाहियों के अलावा नस्लीय अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के अलावा निशस्त्रीकरण और स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को देखता था। सदस्य देशों को एक आनुपातिक तरीके से सचिवालय का खर्च वहन करना होता था। यह लीग की दैनिक गतिविधियों का रिकार्ड रखने, एजेन्डा तैयार करने, लीग के निर्णयों को लागू करने के लिए प्रस्ताव और रपटें लिखने जैसे कार्यो के कारण वर्ष पर्यन्त सक्रिय रहता था।

   लीग की दो अन्य महत्वपूर्ण संस्थाएँ थीं– अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय और अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन

4. **स्थाई अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय**–का मुख्यालय हालैन्ड के हेग शहर को बनाया गया था। इसकी स्थापना 15 फरवरी 1922 को की गई और अक्टूबर 1945 तक यह सक्रिय रहा, जब मौजूदा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने इसका स्थान ले लिया था। इस न्यायालय में विभिन्न राष्ट्रीयताओं के 15 जज थे, जिनका निर्वाचन लीग की आमसभा और काउन्सिल करती थी। न्यायालय के बजट का नियन्त्रण लीग की आमसभा के पास था। न्यायालय को "अन्तर्राष्ट्रीय न्याय के किसी विवादित बिन्दु की व्याख्या करने के अलावा सन्धि की शर्तों के उल्लंघन सम्बन्धी विवादों का फैसला करना होता था।" जरूरी होने पर लीग की आमसभा और काउन्सिल अपनी सलाह अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को प्रेषित कर सकते थे। ऐसे सभी विषय जो विभिन्न पक्षों द्वारा उसके पास प्रस्तुत किए गए हों, अथवा सन्धियों और कन्वेन्शन में के विशिष्ट विषयों की सूची में शामिल हों, न्यायालय के न्यायक्षेत्र में आते थे। न्यायालय के निर्णय केवल विवाद के सम्बन्धित पक्षों व विशिष्ट विवादों पर लागू होते थे।

5. **अन्तर्राष्ट्रीय लेबर ऑफिस (आईएलओ)**

   तकनीकी तौर पर आईएलओ लीग के सांगठनिक ढाँचे का अंग नहीं था, क्योकि वह वर्साई सन्धि की उपज था। इसकी स्थापना इन्टरनेशनल लेबर लेजिस्लेशन के लिए गठित आयोग के जरिए की गई थी। एक विशिष्ट निकाय के बतौर यह कार्य करता था और अपने कामकाज में इसे पर्याप्त स्वायत्तता हासिल थी। अमरीका भी इसका सदस्य था और द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका के दौरान भी यह अपना अस्तित्व बनाए रखने में कामयाब रहा। यह श्रम विधेयकों के बारे में सूचना एकत्रित और प्रकाशित करने के काम करता रहा। विधेयकों का मसौदा तैयार करने के अलावा यह विशेष अनुसंधान और जाँच पड़ताल भी करता था। दूसरे शब्दों में स्त्री–पुरुष मजदूरों के लिए न्यायपूर्ण व मानवीय परिस्थितियों की गारन्टी करने की जिम्मेदारी ही इस संस्था का दायित्व था।

अन्य कमीशन और कमेटियाँ

मुख्य आयोगों का ताल्लुक सैन्य मामलों, निशस्त्रीकरण, मैन्डेट्स, और अल्पसंख्यक समूहों से था, जबकि आर्थिक और वित्तीय संगठन, महिला अधिकारों, स्वास्थ्य, मादक पदार्थों की समस्या, बाल कल्याण और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम जैसे विषय विभिन्न कमेटियों के जरिए देखे जा रहे थे।

3.9.3 लीग ऑफ नेशन्स की असफलता के कारण

द्वितीय विश्व युद्ध के भड़कने के साथ लीग ऑफ नेशन्स का जीवन समाप्त हो गया। 1939 के बाद वह अपना कामकाज नहीं चला पाई और 1946 में इसका औपचारिक समापन हो गया।

1. लीग विजेताओं का संगठन था, जिसका समूचा अस्तित्व ही वर्साई सन्धि से जुड़ा था। जर्मनी और अन्य पराजित राष्ट्रों का इससे अलग रखा जाना विजेता देशों की बदले की भावना का परिचायक था। यही नहीं, लीग को शान्ति समझौते का पक्षपोषण करना था, लेकिन वह निर्भूल निष्पक्षता से कोसों दूर था।
2. लीग ऑफ नेशन्स में शामिल होने से अमरीकी सीनेट के इनकार के बाद वह ऐसे देश के समर्थन से वंचित हो गई थी, जो अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में खासा असरदार था। वैसे भी, अमरीका जैसे शक्तिशाली देश की उपस्थिति वित्तीय और मनोवैज्ञानिक तौर पर उसे खासा शक्तिशाली बना सकती थी। अमरीका के लीग में न शामिल होने का कारण खुद को खेमेबन्दियों से अलगाव में रखने और किसी अन्य युद्ध में लिप्त न होने की उसकी अपनी नीति थी। सीनेट में बहुमत रखने वाले रिपब्लिकन सदस्यों का डेमोक्रेटिक राष्ट्रपति वुडरो विलसन के प्रति राजनीतिक विरोध भी इसकी एक वजह थी। अमरीका के अलावा, शुरुआती दौर में, जर्मनी और रूस की लीग से अनुपस्थिति के कारण उसके नेतृत्व का जिम्मा फ्रांस और ब्रिटेन के कन्धों पर था, जो लीग के सार्वजनिक और अपने खुद के हितों के द्वन्द्व में फँसे हुए थे।
3. पित्र राष्ट्रों ने जर्मनी को लीग का सदस्य तक नहीं बनने दिया। हालाँकि बाद में, 1926 में, उन्होंने जर्मनी को लीग का सदस्य बनने दिया, लेकिन शान्ति वार्ताओं के दौरान जिस तरह जर्मनी को अपमानित और फिर सदस्यता से वंचित किया गया, उसके कारण हिटलर लीग को वर्साई हुक्मनामा बताकर लोगों को अपने पक्ष में करता रहा। 1933 में जर्मनी द्वारा लीग छोड़ने का कारण भी यही था। इस तरह, अपने अस्तित्व के शुरुआती दौर में ही लीग दुनिया की तीन शीर्षस्थ ताकतों के सहयोग को नहीं हासिल कर सकी थी। इसी तरह, रूस को भी लीग से बाहर रखा गया था, इस तर्क पर कि रूस ने खुद को युद्ध से अलग कर लिया था और अब कम्युनिस्ट देश बन गया है। रूस को 'विश्वासघाती' बताकर उसे जर्मनी से भी ज्यादा खतरनाक घोषित कर दिया गया। दूसरी तरफ, रूस को लगता था कि लीग दुनिया के पहले कम्युनिस्ट राष्ट्र को बर्बाद करने पर आमादा है। उसकी यह धारणा तब पुष्ट हो गई जब 1939 में लीग ने बड़े उत्साह से निष्कासित कर दिया।
4. लीग की नियमावली भी उसके पतन के लिए कम जिम्मेदार नहीं थी। वहाँ सर्वानुमति से किसी निर्णय पर पहुँचना काफी मुश्किल था। इस नियमावली को संशोधित करने के कई प्रयास हुए लेकिन वे सफल नहीं रह, क्योंकि इस प्रश्न पर कोई सर्वानुमति हासिल नहीं थी। 1924 में ब्रिटेन के लेबर प्रधान मन्त्री रैमजे मैकडोनाल्ड ने जेनेवा प्रोटोकॉल नाम का एक प्रस्ताव पेश किया, जिसके तहत सदस्य देश पंचाट की प्रक्रिया और अकारण आक्रमण के शिकार देश को समर्थन देने पर सहमत हो गए। बाद में, मैकडोनाल्ड सरकार की जगह सत्तारूढ़ होने वाली ब्रिटेन की नई सरकार ने इस प्रोटोकॉल को मानने से इन्कार कर दिया, क्योंकि वह 1919 के सभी मोर्चों पर ब्रिटेन और अपने डोमीनियन इलाकों को झोंकने के लिए तैयार नहीं था।

   इसके अलावा, लीग की अपनी कोई सेना नहीं थी। दूसरी ओर, महाशक्तियाँ यथास्थिति बनाए रखने की पक्षधर थीं, जबकि जर्मनी, जापान और इटली जैसे अन्य ऐसे देश जो शक्तिशाली बनना चाहते थे, यथास्थिति कायम रखने के विरोधी थे। हालाँकि, लीग की अपनी सेना होती भी, तो भी, शक्तिशाली देशों के खिलाफ उसे नियुक्त करना खासा मुश्किल होता।
5. राजदूतों के पेरिस सम्मेलन ने लीग के लिए शर्मिन्दगी ही पेश की, और उसके कारण लीग का प्राधिकार कमजोर हुआ। राजदूतों के सम्मेलन को लीग की संस्थागत कार्यवाहियों की शुरुआत होने तक ही सक्रिय रहना था लेकिन वह उसके बाद भी सक्रिय बना रहा और बार–बार लीग के निर्णयों को अमान्य करता रहा। 1920 में लीग ने पोलैन्ड द्वारा हथियाए गए विलना पर लिथुआनिया का दावा मान लिया, लेकिन बाद में वह

राजदूतों के निर्णय के अनुसार वह उसे पोलैन्ड को दिए जाने के लिए राजी हो गई। इसी तरह कोर्फू की घटना के दौरान भी राजदूतों का सम्मेलन लीग पर हावी रहा।

6. 1929 का आर्थिक संकट जिस तरह दुनिया की अर्थव्यवस्था पर कहर बनकर आया, वह भी लीग के पराभव का एक कारण बन गया। आर्थिक संकट के कारण अधिकांश देशों में मंहगाई, बेरोजगारी और जीवन स्तर में गिरावट आ गई और जापान, जर्मनी और इटली तानाशाह सरकारों की गिरफ्त में आ गए। इन सरकारों ने लीग के नियम–कानून ठेंगे पर रख दिए और उनकी तमाम कार्यवाहियों ने लीग की कमजोरियाँ उजागर कर दीं।

3.10 मैन्डेट प्रणाली

लीग ऑफ नेशन्स की नियमावली के अनुसार पराजित राष्ट्रों के औपनिवेशिक व पारसमुद्रीय क्षेत्रों को पहले की तरह सीधे विजेता राष्ट्रों को नहीं सौंपा जाना था, उन्हें लीग के संरक्षण या 'अधिकार' में रखा जाना था, क्योंकि वे ''अभी आधुनिक दुनिया की कठोर परिस्थियों में अपने पाँव पर खड़े रहने लायक नहीं हैं''(अनुच्छेद 22)। लीग ऑफ नेशन्स के मैन्डेट के तहत उस देश का 'संरक्षण' किसी 'विकसित' या शक्तिशाली राष्ट्र को दिया जाना था, और इस मैन्डेटशुदा राष्ट्र को हरेक वर्ष अनिवार्यतया उसके बारे में एक रपट लीग के सामने पेश करना था। इन सीमा क्षेत्रों को ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, दक्षिण अफ्रीकी संघ, बेल्जियम, आष्ट्रेलिया और न्यूजीलैन्ड जैसे विजेता राष्ट्रों को मैन्डेट के बतौर दे दिया गया था। लीग की काउन्सिल एक स्थाई मैन्डेट कमीशन के सहयोग से इन सीमाक्षेत्रों के हालात का पर्यवेक्षण करती थी। जर्मनी के युद्धपूर्व अफ्रीकी उपनिवेश, तुर्की के युद्धपूर्व सीमा क्षेत्र और पैसिफिक के निर्भर क्षेत्र क, ख और ग की तीन श्रेणियों में बाँटे गए थे। मैन्डेट वाले क्षेत्रों का यह त्रिस्तरीय बँटवारा यूरोपीय देशों की इस अवधारणा पर आधारित था कि किस क्षेत्र में खुद के स्वतन्त्र अस्तित्व की कितनी सम्भावना है। वर्ग 'कः में अभी आजाद हुए ओटोमन साम्राज्य के गैर–तुर्की इलाके शामिल किए गए थे। वर्ग 'ख' में जर्मनी के ऐसे भूतपूर्व उपनिवेश थे, निकट भविष्य में जिनके बाशिन्दों के स्वतन्त्र होने की सम्भावना बहुत कम थी, लेकिन शान्तिसन्धि के प्रणेता उन्हें तत्कालीन अफ्रीकी सम्राज्यों के साथ विलीन नहीं करने के लिए राजी नहीं थे। तंगनिका यानी आधुनिक तंजानिया मैन्डेट के तहत ब्रिटेन को सौंप दिया गया था, जबकि कांगो के करीबी हिस्सों का प्रशासन बेल्जियम को मिला था। टोगो और कैमरून जैसे जर्मनी के पश्चिमी अफ्रीकी उपनिवेश फ्रांस और ब्रिटेन में बाँट दिए गए थे। तीसरे वर्ग 'ग' में ऐसे सीमा क्षेत्र थे जो मैन्डेट के तहत सीधे तौर पर किसी राष्ट्र को मिल गए थे। दक्षिण पश्चिमी अफ्रीका के पूर्व जर्मन उपनिवेश इस नियम के तहत दक्षिण अफ्रीका ने ले लिए थे। यह व्यवस्था 1990 में नामीबिया के नाम से इस इलाके के आजाद होने तक जारी रही। जर्मनी के प्रशान्तमहासागरीय क्षेत्र, मसलन कियाचाओ, जापान को मिल गए, जबकि भूमध्य रेखा के दक्षिणी इलाके न्यूजीलैन्ड और आष्ट्रेलिया के पास चले गए। न्यूजीलैन्ड को समोआ द्वीप का जर्मन हिस्सा मिल गया, जबकि जर्मन न्यूगिनी का प्रशासन आष्ट्रेलिया को मिल गया।

लीग ऑफ नेशन्स के औपचारिक स्वामित्व के तहत इन क्षेत्रों को बनाए रखने के प्रावधानों के बावजूद मैन्डेटशुदा राष्ट्र वर्ग 'ख' और 'ग' के इलाकों को अपने मौजूदा औपनिवेशिक ढाँचे के तहत शोषण करने की कोशिश करते रहे। वर्ग 'क' में शामिल किए गए कोई भी इलाके 20 साल बाद द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने तक आजाद नहीं हुए थे, हालाँकि ब्रिटेन ने ईराक को 1932 में काफी हद तक सम्प्रभु बना दिया था।

इस व्यवस्था के तहत जर्मनी को अपने 90 लाख वर्ग मील के इलाके से हाथ धोना पड़ा था। यही नहीं, मित्र शक्तियों ने उपनिवेशों पर अपने शासन को जायज ठहराने के लिए इस तर्क का सहारा लिया कि जर्मनी का अपने उपनिवेशों की जनता के प्रति बर्ताव मनमाना और कठोर था।

निष्कर्षतया, हम कह सकते हैं कि लीग की पृष्ठभूमि संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माण में सहायक रही। लार्ड सेसिल ने कहा था, 'लीग के प्रयोग के बगैर संयुक्त राष्ट्र संघ का अस्तित्व में आना मुश्किल था'। कई लिहाज से, संयुक्त राष्ट्र संघ लीग के अनुभवों का परिणाम है।

3.11 ग्रन्थ सूची

1. मेरीमैन, जॉन, अ हिस्ट्री ऑफ माडर्न यूरोप, नार्टन एन्ड कम्पनी, न्यू यार्क/लंदन
2. मारविक, आर्थर, ब्रिटेन इन द सेन्चुरी ऑफ टोटल वार, बोस्टन, 1968
3. ब्रिग्स, असा एन्ड क्लैविन, पैट्रीशिया, माडर्न यूरोप 1789 से अद्यतन, पियरसन एजूकेशन लिमिटेड, दिल्ली, 2003
4. पैक्सटन, राबर्ट ओ, यूरोप इन द ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी, तृतीय संस्करण, मैकमिलन, 2014
5. नार्मन लाउ, मास्टरिंग माडर्न वर्ल्ड हिस्ट्री, पंचम संस्करण, मैकमिलन, 2014
6. इग्नू पाठ्य सामग्री, यूरोप का इतिहास

3.12 पुस्तकीय सुझाव

1. हाब्सबाम, ईजे, द एज ऑफ एक्सट्रीम्सः द शार्ट ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी, 1914–1991 (1994)
2. टेलर, ए.जे.पी., द फर्स्ट वर्ल्ड वारः द स्ट्रगल फॉर मास्टरी इन यूरोपः 1848–1918, ओयूपी, 1954
3. थॉमसन, डेविड, यूरोप सिन्स नेपालियन, लाउ एन्ड ब्राइडन लिमिटेड, लंदन, 1957

3.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रथम विश्व युद्ध के सामाजिक–आर्थिक प्रभावों की चर्चा कीजिए।
2. 1919 के पेरिस शान्ति सम्मेलन की मुश्किलों पर एक संक्षिप्त नोट लिखें
3. वर्साई सन्धि के मुख्य प्रावधान क्या थे?
4. वर्साई सन्धि की समीक्षा करें।
5. लीग ऑफ नेशन्स के अंगों का वर्णन करें।
6. मैन्डेट प्रणाली पर एक संक्षिप्त नोट लिखें।

इकाई एकः विश्वव्यापी आर्थिक मंदी (1929–39)

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 आर्थिक मंदी के कारण

1.3.1 अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय पूँजी के परिसंचलन का स्वरूप (1920 के दशक में)

1.4 परिणाम

1.5 समाधान

1.5.1 अवस्फीति का उपयोग

1.5.2 बजटीय प्रावधान

1.5.3 सरकार का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप

1.6 सारांश

1.7 संदर्भ ग्रंथ

1.8 प्रस्तावित पठनीय सामग्री

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत आर्थिक त्रासदी इसके आंतरिक विरोधाभाष में निहित है। व्यापार चक्र (Business Cycle) के उतराव एवं चढ़ाव का दौर एक ऐसी प्रक्रिया है जो सभी पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं को संचालित करती है एवं इसका प्रभाव इतना व्यापक होता है कि ये परस्पर निर्भर एवं सहसंबद्ध होती है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में किसी भी प्रकार के उठा–पटक, उतार–चढ़ाव का असर इसके अंर्तसंबंद्ध एवं पारस्परिकता के कारण तीव्रता से विश्व के सभी भागों पर होता है। इस संदर्भ में 1920 के दशक में वैश्विक उत्पादन प्रक्रिया में आर्थिक प्रबंधन अत्यधिक साख आधरित होता चला गया अर्थात् भविष्य में अदायगी के आश्वासन को इसका आधार बना लिया गया। इसका अभिप्राय यह होता था कि यह व्यवस्था आपसी विश्वास एवं पारस्परिक लेन–देन के आधार पर टिकी हुई थी। इस व्यवस्था के अंतर्गत ऋणदाता या निवेशक इस आश्वासन पर कि उसे बाद में उसका पैसा वापस मिल जाएगा, कर्जदार भविष्य में अपने कर्ज की आदायगी कर देगा एवं उद्योग बाजार में माल की आपूर्ति भविष्य में माल बिक्री के उपरांत उनका लागत एवं मुनाफा वसूल होने के आश्वासन पर टिका हुआ था। इस तरह इस व्यवस्था में शृंखलाबद्ध प्रभाव जो अनगिनत चक्र पर टिका हुआ था। इस तरह आधारित था कि उसका प्रभाव वैश्विक स्तर पर होता था एवं ये अधिक से अधिक मुनाफा कमाने की भूख पर आधरित एक ऐसी प्रक्रिया को जन्म दिया जो चार्ल्स डूहिग्ग के शब्दों में ''यह बीसवीं शताब्दी की सबसे लम्बी, सबसे गहरी और सबसे ज्यादा व्यापक आर्थिक मंदी थी।''

''संघ के इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि संयुक्त राज्य की कांग्रेस कभी भी ऐसी सुखद संभावनाओं के साथ नहीं एकत्र हुई जो वर्तमान समय में दिखाई दे रही हैं.... हमारे उद्योगों और उद्योगों ने जिस विशाल धनराशि का निर्माण किया है और हमारे अर्थ–तंत्र ने जिस विशाल धनराशि का निर्माण किया है और हमारे अर्थ–तंत्र ने जिसकी बचत की है, वह निरंतर धरा की भांति विश्व के कल्याण–कार्यों और व्यापार के काम आने में प्रवाहित हो रही है। अस्तित्व की आवश्यकताएँ अपरिहार्यता से निकल कर विलास के क्षेत्र में जा पहुँची हैं, बढ़ा हुआ उत्पादन घरेलू उपभोग और विदेशों में व्यापार की बढ़ी हुई जरूरतों को पूरा कर रहा है। राष्ट्र अपने वर्तमान को संतुष्टि के साथ देख सकता है। और आशाओं के साथ भविष्य की प्रतीक्षा कर सकता है। एरिक हॉव्सबाम ने ''अतिरेकों का युग'' में राष्ट्रपति केलविन कूलिल, के कांग्रेस के नाम संदेश, 4 दिसंबर, 1928 को उद्धृत किया है।

उपरोक्त कथन संयुक्त राज्य अमेरिका के अर्थव्यवस्था के सूक्ष्म पहलू , घरेलू उपभोग के बढ़ते स्तर एवं विलासिता पर जोर को इंगित कर रहा है। ''वस्तुतः गर्वीला सं॰रा॰ अमेरिका तक जो अब तक कम भाग्यशाली महाद्वीपों की उलट–फेर से सुरक्षित स्वर्ग की तरह बचा हुआ था, आर्थिक इतिहासकारों के रिक्टर पैमाने पर नापे गए अब तक के सबसे बड़े भूमंडलीय भूकंप का केन्द्र बना... यह था, युद्धों के बीच की मंदी।''

1.2 उद्देश्य

- विश्व परिदृश्य में प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त जो आर्थिक संकट उपस्थित हुआ उसे समझना
- आर्थिक संकट का आर्थिक मंदी में तब्दिल होने की प्रक्रिया
- आर्थिक मंदी के वैश्विक परिदृश्य में होने के कारणों को समझना
- आर्थिक मंदी के परिणाम
- आर्थिक मंदी से निपटने के उपाय

1.3 आर्थिक मंदी के कारण

विश्व आर्थिक मंदी के कारण एक नहीं अपितु कई थे। अर्थशास्त्रियों के अनुसार प्रथम विश्वयुद्ध से उत्पन्न परिस्थितियाँ ही इस मंदी का कारण बनीं। युद्ध आधारित अर्थव्यवस्था ने सैन्य सामग्री की माँग में तीव्र वृद्धि से उद्योगों के उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई, रोजगार की उपलब्धता में वृद्धि मुनाफा में वृद्धि हुई। युद्धोपरांत यूरोपीय राज्यों के पुनर्निर्माण से व्यापार वाणिज्य एवं औद्योगिक विकास हुआ। जिस गति से उत्पादन प्रक्रिया में वृद्धि युद्धकाल में हुई वो निरंतर बनी रही, इससे ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई जो सर्वप्रथम खाद्यान्न के मूल्य के गिरावट के रूप में सामने आयी। इससे कृषकों की आमदनी कम हो गई। औद्योगिक वस्तुओं की आपूर्ति मांग से अत्याधिक होने से माल की बिक्री एक गंभीर समस्या बन गई। उद्योगों ने उत्पादन घटा दिया, श्रमिकों की छँटनी प्रारंभ हुई। इस तरह कृषकों एवं श्रमिकों दोनों की क्रयक्षमता घटती चली गई और इस प्रक्रिया ने एक दुश्चक्र का रूप ले लिया। गहन आर्थिक संकट की वजह से ही आर्थिक संस्थाओं, आर्थिक नीतियाँ और आर्थिक सिद्धांतों में मूलभूत परिवर्तन आया।''

अर्थशास्त्री कॉडलिपफ ने माना कि विश्व के सभी भागों में कृषि–उत्पादन और खाद्यान्नों के मूल्य की विकृति, 1929–34 के आर्थिक संकटों के महत्वपूर्ण कारणों में से एक थी।

आर्थिक महामंदी ने विश्व के अधिकांश देशों को प्रभावित किया चाहे वो औद्योगिक रूप से विकसित हो या अल्प विकसित या अविकसित प्राथमिक उत्पादक देश हों। सभी देशों में गिरते हुए मूल्यों के कारण आर्थिक संकट गहराता गया।

जान मेरिमैन के अनुसार 1929 ई॰ में आर्थिक संकट आने से पूर्व ही, यूरोपीय कृषि मंदी का सामना कर रही थी। युद्ध काल में कृषि उत्पादन में यूरोप में अत्यधिक वृद्धि हुई। आस्ट्रेलिया न्यूजीलैंड, अर्जेटीना, कनाडा एवं स॰ रा॰ अमेरिका से कृषि उत्पादों को यूरोप में आयात किया गया जिससे स्थानीय स्तर पर यूरोप में कृषि उत्पादों की कीमतों में अत्यंत गिरावट आयी। कृषि क्षेत्र में निम्न आय और कामगारों के उद्योगों से छँटनी के परिणामस्वरूप विनिर्मित उत्पादों की माँग में भारी गिरावट आ गयी। ऐसी स्थिति में यूरोपीय राष्ट्रों द्वारा अपने आंतरिक बाजारों को कृषि उत्पादों के लिए सुरक्षित रखने के लिए संरक्षणात्मक नीति अपनायी गयी। पूर्वी यूरोप एवं बाल्कन राष्ट्र अपनी निम्न आय के कारण युद्धकालीन ऋणों को वापस करने में अक्षम रहे। युद्ध के बाद ऑस्ट्रिया, हंगरी के साम्राज्य का विघटन एवं जर्मनी की पराजय तथा रूस की साम्यवादी क्रांति से गुजरने के कारण, इन सभी बड़े–बड़े व्यापारिक साझेदारों की स्थिति अत्यंत खराब हो गई। कृषकीय संकट एवं कृषिगत उत्पादनों की कीमतों में गिरावट ने मैक्रो अर्थव्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित किया। इस प्रकार कृषि क्षेत्र की निम्न आय की स्थिति ने औद्योगिक क्षेत्र पर भी नकारात्मक प्रभाव डाला और महामंदी की स्थिति को पैदा किया।

विश्व स्तर पर कच्चे मालों की कीमतों में अप्रत्याशित कमी ने अफ्रीका, एशिया व लैटिन अमेरिका जैसे राष्ट्रों जो कच्चे माल के निर्यात पर टिके थे, का भूगतान संतुलन बिगड़ गया। कृषि उत्पादों का मूल्य कम लोचशील होने से स्थितियाँ और बदत्तर हो गई। कृषि क्षेत्र, उर्वरकों के नव प्रयोग से एवं मानव श्रम के मजदूरी में कमी आने से कृषि उत्पादों के उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई जो विश्व बाजार में कृषिगत उत्पादों के मूल्यों में कमी का एक विशेष कारण बनी। 1925–29 के दौरान कृषि उत्पादों के मूल्य में 30 प्रतिशत गिरावट आ गई। जर्मनी में भी कृषि स्थिति दयनीय बनी हुई थी।वहीं सं॰ रा॰ अमेरिका में भी 1920 के दशक में कृषि की स्थिति असंतोषजनक बनी रही। आरंभिक दौर में कृषि क्षेत्र में ही व्यक्ति दिवालिया होने प्रारंभ हुए।

आर्थिक संकट के परिणामस्वरूप सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक स्तर पर मनुष्य जीवन प्रभावित हुआ, वहीं इसने राज्यों को संवैधानिक लोकतंत्र से सर्वसत्ततावाद (Totalitarianism) की ओर उन्मुख कर दिया। यूरोपीय राष्ट्रों में सैन्यवाद व राष्ट्रवाद की आँधी चलने लगी। इस आर्थिक महामंदी के आने से श्रमिकों की बढ़ी हुई मजदूरी दर और काम के कम होते घंटों से उत्पादन प्रक्रिया महंगी हो जाने का भय था। 1920 में कीमतों के अप्रत्याशित रूप से गिरने से श्रमिकों की शक्ति कम हो गई। हॉब्सबॉम के अनुसार 1920 में ब्रिटेन में बेरोजगारी दस प्रतिशत से कम कभी नहीं रही और अगले बारह वर्षों में श्रम–संगठनों की सदस्य संख्या आधी रह गई.... इस तरह संतुलन नियोक्ता के पक्ष में फिर से हो गया, किंतु संपन्नता फिर भी दूर की कौड़ी बनी रही। उद्योगपतियों को काफी लाभ हुआ लेकिन श्रमिकों को इसका कोई लाभ नहीं मिला। 1923 से 1929 ई॰ तक औद्योगिक मजदूरों की औसत मजदूरी मात्रा 8 प्रतिशत बढ़ी जबकि इस समयावधि में औद्योगिक क्षेत्र का लाभ 72 प्रतिशत बढ़ा। इस प्रकार स्पष्ट था कि बाजार की इस तेजी को संभाले रखने के लिए जिस रूप में जनसामान्य की क्रयक्षमता बढ़नी चाहिए थी वो हो न सका और इसे सिर्फ साख के माध्यम से 1929 ई॰ तक बनाये रखा गया। इसके उपरान्त न तो उद्योगपति कीमतों को घटाने को तैयार थे और न ही मजदूरी को बढ़ाने के लिए। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता वस्तुओं की बाजार में ढेर लग गई। सभी राष्ट्रों द्वारा संरक्षणवादी नीति लागू किये जाने से वैश्विक व्यापार में निरंतर गिरावट आने लगी। यूरोपीय देश अमेरिकी माल खरीदने के लिए तैयार नहीं थे वहीं अमेरिका ने यूरोपीय माल पर अत्यधिक सीमा शुल्क लगा रखा था। संकुचित आर्थिक राष्ट्रीयता ने आर्थिक संकट को गहरा दिया। ऐसी स्थिति में अमेरिका द्वारा योरोपीय माल न खरीदने से यूरोप के डॉलर भंडार में निरंतर कमी आने लगी। जिसके कारण यूरोपीय राष्ट्र अमेरिका का ऋण चुकाने में असमर्थ थे। ब्रिटेन जैसा राष्ट्र जो मुक्त व्यापार का समर्थक था उसने भी संरक्षणवादी नीति अपना ली। सोवियत रूस में साम्यवादी सरकार के गठन होने से एवं एशियाई देशों में स्वदेशी आंदोलन के कारण पश्चिमी यूरोपीय राष्ट्र अपना एक विस्तृत बाजार खो चुके थे। ऐसी स्थिति में ऐसे राष्ट्र जिनको युद्ध–ऋण अथवा क्षतिपूर्ति का भुगतान करना था उनके लिए सबसे ज्यादा मुश्किल स्थिति हो गई।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों में स्वर्ण के विषम विभाजन को भी आर्थिक मंदी का प्रमुख कारण माना जाता है। युद्धकाल में बहुत सी अर्थव्यवस्थाओं को स्वर्णमान को हटाना पड़ा। 1924 से 1929 ई॰ के मध्य कई यूरोपीय राष्ट्रों ने पुनः स्वर्णमान अपना लिया और बाद में स्वर्णभंडार का आवश्यक मान बनाए नहीं रख सके क्योंकि उन्हें युद्ध क्षतिपूर्ति एवं युद्ध ऋण की अदायगी करनी थी। इससे अमेरिका, फ्रांस व इंग्लैंड के पास स्वर्ण भंडार बढ़ते रहे और एक समय विश्व का 60 प्रतिशत सोना अमेरिका और फ्रांस के पास आ गया। इस कारण कई राष्ट्रों के पास स्वर्ण का अभाव हो गया, जिससे विभिन्न राज्यों के स्वर्ण सिक्कों का मूल्य बढ़ गया एवं वस्तुओं की कीमत काफी गिर गई।

प्रो॰ फॉकनर ने 1927ई॰ में सट्टेबाजी की बढ़ती प्रवृति को आर्थिक मंदी का कारण माना वहीं पॉल एलेक्स ने दो कारणों को इसके लिए जिम्मेदार माना। 1920 के दशक में असमान धन का वितरण एवं दूसरा इसी दशक के उत्तरार्द्ध में स्टॉक बाजार में बढ़ते सट्टेबाजी के स्तर को।

अमेरिका में युद्धोपरांत जो आर्थिक समृद्धि का दौर आया उस समय पूँजीपति अतिरिक्त पूँजी को सट्टे में लगाने लगे। इस प्रकार शेयरों की खरीद की होड़ खड़ी हो गई। शेयरों की कीमत वास्तविक मूल्य से तीन गुणा से बीस गुणा तक बढ़ गई। 1929 ई॰ आते–आते स्थितियाँ विस्फोटक हो गई वॉलस्ट्रीट क्रैश ने अमेरिका ही नहीं बल्कि विश्वस्तर पर शेयर मार्केटों की विश्वसनीयता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया, अक्टूबर माह के अंत आते–आते शेयरों पर 16 अरब डॉलर की हानि हुई, ऋण सरलता से उपलब्ध था और अपर्याप्त अचल संपत्ति के आधार पर कंपनियाँ ने बहुत अधिक स्टॉक शेयर जारी किया। अमीर लोग बहुत अनिश्चतता वाले (Highly speculative)

शेयरों में निवेश कर रहे थे। शीघ्र लाभ के लोभ में लोग लापरवाही से शेयरों में निवेश कर रहे थे। साधारण लोग भी जिनके पास धन की कमी थी वो भी अपनी बचत को शेयर में लगा रहे थे और यहाँ तक कि ऋण लेकर भी शेयरों में निवेश किया गया। शेयर ब्रोकरों ने ऋण पर शेयरों को बेच दिया। बैंकों ने अपना काफी जमा धन शेयरों में निवेश किया। इस तरह से शेयरों में निवेश, जुए से कम नहीं था। समृद्धि का जो दौर चल रहा था वो लोगों को विश्वास था कि आगे भी इसी तरह निरंतर चलता रहेगा। यह स्थिति 1929 तक चलती रही, किंतु अब इसके संकेत मिलने शुरू हो गए थे कि स्थितियाँ आर्थिक रूप से अस्थिर हो रही हैं। पहले तो माल की बिक्री में कमी ने मंदी का रूप लिया वहीं कंपनियों के लाभ में उतनी तेजी से वृद्धि नहीं हो रही थी जितनी तेजी से शेयरों के मूल्य में वृद्धि हो रही थी। ऐसी स्थिति में मार्केट के विशेषज्ञ, निवेशक शेयरों की बिक्री की चेष्टा करने लगे, ऐसा करने से निवेशक शेयरों के मूल्यों में अक्टूबर, 1929 तक आश्चर्यजनक ढंग से गिरावट दर्ज हो गयी। 24 अक्टूबर, 1929 को तेरह मिलियन शेयर मुँह के बल औंधे गिर गए और अपने न्यूनतम मूल्य पर आ गये। इसे काला मंगलवार (Black Tuesday) की संज्ञा दी गई। 1930 में शेयरों के मूल्य अपने शीर्ष स्तर से मात्र एक चौथाई पर रह गए और 1931 आते–आते शेयरों की कीमत धूल चाटने लगी, इस प्रकार अमरीका पूरी तरह महामंदी के चक्र में फंस गया।

1.3.1 अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय पूँजी के परिसंचलन का स्वरूप (1920 के दशक में)

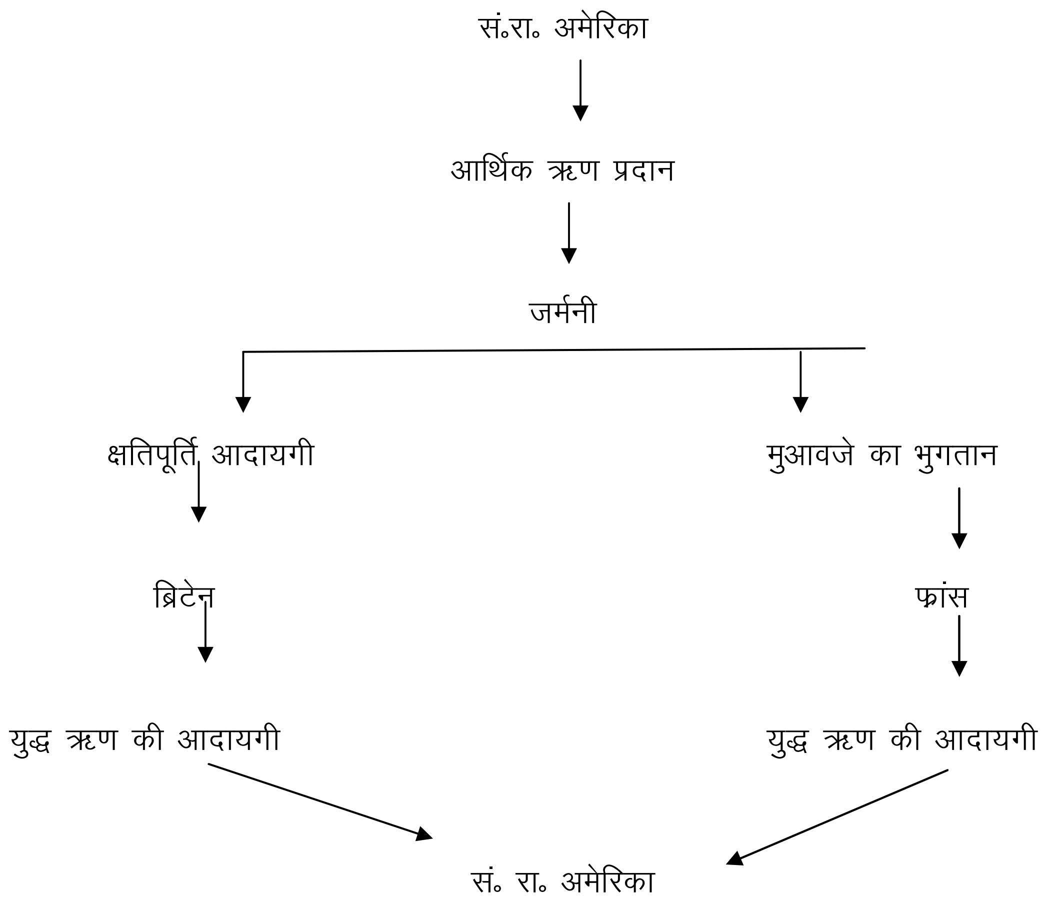

अमेरिका में ब्लैक टियुजडे' की घटना और बाल स्ट्रीट क्रैश से वैश्विक स्तर पर आर्थिक अस्थिरता उत्पन्न हो गई, क्योंकि अमेरिका उस समय तक विश्व के प्रमुखतम औद्योगिक राष्ट्रों में था। इसी के साथ–साथ विश्व का सबसे बड़ा ऋणदाता राष्ट्र था।

जर्मनी को डेविस योजना(1924) के माध्यम से आर्थिक ऋण एवं सहायता अमेरिका के द्वारा दी जा रही थी। आरंभिक दौर में इससे काफी लाभ भी जर्मनी को हुआ। 1929 में 'यंग प्लान' के माध्यम से जर्मनी की धन अदायगी की योजना को संशोधित किया गया। क्षतिपूर्ति की समस्या विकट थी, क्योंकि जो रकम थोपी गई थी, वो काफी अधिक थी और जर्मनी एवं अन्य पराजित राष्ट्रों के लिए असंभव सी प्रतीत हो रही थी। वहीं युद्ध के समय जो कर्ज अमेरिका के द्वारा मित्र राष्ट्रों इंग्लैंड एवं फ्रांस एवं अन्य सहयोगियों को दिया गया उसकी भी आपूर्ति मुश्किल हो रही थी। अमेरिका का ब्रिटेन पर ऋण उसकी राष्ट्रीय आय की आधी राशि के बराबर था। फ्रांस के ऊपर अमेरिका एवं ब्रिटेन का कुल 7 बिलियन डॉलर का कर्ज था। इस प्रकार अमेरिका सहयोगी राष्ट्रों में सबसे बड़ा ऋणदाता राष्ट्र था। जान मेनार्ड केन्स जो ब्रिटेन के प्रमुख अर्थशास्त्री थे, उन्होंने यह पेशकश की कि सभी ऋण बर्खास्त कर दिये जायें, किंतु सं॰ रा॰ अमेरिका को ये प्रस्ताव मंजूर नहीं थे। अमेरिका ने इस बात पर जोर दिया कि मित्र राष्ट्रों का यह विधिक दायित्व है कि वो ऋण की अदायगी करें। हालांकि समय के साथ अमेरिका अपनी ऋणों की मांग में छूट भी देने लगा उदाहरणार्थ उसने फ्रांस एवं बेल्जियम के ऋण को 30 % कम एवं इटली के 80 प्रतिशत ऋण कमी की घोषणा की। उसने ऋण अदायगी की शर्तों को भी काफी लचीला बनाया जैसे ऋण अदायगी की अवधि को बढ़ा कर 60 वर्ष कर दिया। जिससे ऋण लौटाने में परेशानी न हो। ऋण पर ब्याज की दर को भी काफी कम कर दिया ताकि ऋण वापसी आसानी से सहयोगी राष्ट्र कर सके।

प्रमुख ब्रिटिश अर्थशास्त्री कीन्स ने अपने लेख 'द इकोनॉमिक कन्सिक्वेसेज ऑफ द पीस (1920) में कहा कि जर्मन अर्थव्यवस्था की पुनः बहाली के बिना यूरोप में एक स्थायी, उदार समाज और अर्थव्यवस्था को फिर से लाना असंभव होगा। वहीं क्षतिपूर्ति की अदायगी भी महत्वपूर्ण प्रश्न था। इसमें अमेरिका की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण थी। जो राष्ट्र जर्मनी को कमजोर बनाये रखना चाहते थे, वे जर्मनी से निर्यातित उत्पाद के स्थान पर नकद वसूली करना चाहते थे, क्योंकि वो अगर जर्मनी के विनिर्मित वस्तु का आयात करेंगे तो जर्मनी की अर्थव्यवस्था को मजबूत मिलेगी।

इस प्रकार जर्मनी उनके क्षतिपूर्ति की रकम भी अमेरिकी ऋण से देता रहा और उसपर ऋण का बोझ बढ़ता गया। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोप एवं जर्मनी दोनों ही अमेरिकी ऋण में धंसते चले गए। 1929 के पूर्व से ही स्थितियाँ खराब थी और आर्थिक महामंदी के दौरान क्षतिपूर्ति की रकम अदा करना एवं ऋण चक्र, दोनों ही व्यवस्था पूरी तरह चरमरा गयी।

1.4 परिणाम

आर्थिक मंदी ने वॉल स्ट्रीट क्रैस (न्यूयार्क) को जन्म दिया और अमेरिकी अर्थव्यवस्था में भूचाल ला दिया। सं॰ रा॰ अमेरिका में हजारों बैंक दिवालिया हो गए, लाखों लोग बेरोजगार एवं दिवालिया हो गए, बेकारी एवं भूखमरी हर ओर व्याप्त हो गयी। अमरीकी औद्योगिक उत्पादन 1929 से 1931 के बीच लगभग एक–तिहाई कम हो गया। ऐसी स्थिति में यूरोप को अमेरिका से ऋण मिलना पूरी तरह बंद हो गया। अमेरिका में आर्थिक मंदी ने अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं को भी बुरी तरह प्रभावित किया। ब्रिटेन में 1932 में बेकार लोगों की संख्या 32 लाख तक पहुंच गयी थी। मंदी के चरम काल (1932–33) में बेरोजगारी की दर ब्रिटेन व बेल्जियम में 22–23 प्रतिशत, स्वीडन में 24 प्रतिशत, अमेरिका में 27 प्रतिशत, डेनमार्क में 32 प्रतिशत एवं जर्मनी में 44 प्रतिशत लोग बेरोजगार हो गए।

यही स्थितियाँ 1930 के दशक में अर्थव्यवस्था में सुधार के बावजूद रहीं, हालांकि उसमें आंशिक बदलाव हुए, परन्तु वो बहुत अपर्याप्त थे। 1929 से 1932 के बीच विश्व व्यापार में 60 प्रतिशत की गिरावट आयी ऐसे स्थिति में सभी राष्ट्र संरक्षणवादी नीति अपनाने लगे। राष्ट्रीय बाजार एवं मुद्रा की सुरक्षा सबसे महत्वूर्ण विषय बन गया। कई तरह के आर्थिक एवं व्यापारिक प्रतिबंध लगाये जाने लगे। वस्तुओं की आपूर्ति उपभोक्ताओं की मांग से काफी अधिक हो गई, जिसने मंदी को अनिवार्य बना दिया।

आर्थिक मंदी के परिणामस्वरूप 1932 में ऑस्ट्रिया का सबसे मजबूत समझा जाने वाला बैंक क्रेडिट अंस्टाल्ट दिवालिया हो गया वहीं उसके दो महीने बाद ही जुलाई, 1932 में जर्मन बैंक डर्मस्डटर जुलाई से अगस्त 1932 के बीच लंदन के विदेशी निवेशकों ने 200 मिलियन पाउंड बैकों से निकाल लिये। बैंकिग व्यवस्था के पतन ने अवस्फीति की प्रक्रिया को जन्म दिया जिससे अमेरिका यूरोप एवं अन्य विश्व के भागों में आर्थिक मंदी और गहरा गई।

आर्थिक महामंदी के दौर में केवल दो यूरोपीय राष्ट्र इससे अप्रभावित रहे। फ्रांस जिसके पास पर्याप्त स्वर्ण जमा था, वो अमेरिका के बाद इस मामले में दूसरे नम्बर पर था, 1931 तक अपनी अर्थव्यवस्था में मंदी को नियंत्रित कर सका, लेकिन उसके उपरांत वो सफल नहीं रहा। वहीं सोवियत संघ दूसरा यूरोपीय राष्ट्र था, जो आर्थिक संकट से अप्रभावित रहा। साम्यवादी अर्थव्यवस्था के मॉडल को अपना कर सोवियत संघ ने अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से अपने को पृथक कर रखा था। सोवियत संघ ने कृषि के सामूहीकरण के माध्यम से उत्पादन के साधनों को राज्य के नियंत्रण में ले लिया। सोवियत संघ ने पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा औद्योगीकरण पर भी ध्यान केन्द्रित किया। इस प्रकार सोवियत संघ अपने को पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था से अलग कर उसके व्यापारिक उतराव–चढ़ाव के चक्र से बचा रहा।

आर्थिक मंदी के कारण अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। महामंदी के कारण बेकारी एवं भूखमरी से जनमानस को गुजरना पड़ा, जिससे निराशा, अस्थिरता एवं असुरक्षा में वृद्धि हुयी। लोकतांत्रिक सरकारें आर्थिक महामंदी के काल में उत्पन्न हुई गंभीर समस्याओं का सही ढ़ग से निराकरण नहीं कर पाई जिसके फलस्वरूप जनता का लोकतांत्रिक पद्धति में विश्वास कम होता चला गया। लोकतंत्र एवं उदार पूँजीवाद उस समय जन सामान्य में एक अवधारणा के रूप में अपनी जगह बना चुके थे और राष्ट्रीय विकास के लिए आवश्यक माने जाने लगे थे। परंतु, आर्थिक संकट के इस दौर में लोगों की आस्था लोकतांत्रिक व्यवस्था एवं उदार पूँजीवाद पर कम होने लगी। कई राष्ट्रों में लोकप्रिय लोकतांत्रिक सत्तासीन दलों को जनता ने सत्ता से बाहर कर दिया, सरकारे गिरा दी गईं। यूरोपीय राजनीति में निम्न वर्ग एवं मध्यम वर्ग अब फासीवाद एवं साम्यवाद की ओर उन्मुख हुए।

महामंदी के एक महत्वपूर्ण परिणाम के रूप में जर्मनी में राष्ट्रीय समाजवाद के आकष्मिक विकास एवं लोकप्रियता में इसने महत्वपूर्ण योगदान दिया। आरंभिक दौर में और खासकर 1929 ई॰ तक हिटलर एवं उसके नाजी दल की राजनीतिक शक्ति अत्यंत सीमित थी। नात्सीदल एवं हिटलर ने आर्थिक संकट से उत्पन्न विषम परिस्थितियों का ज्यादा से ज्यादा लाभ उठाने की कोशिश की। जर्मनी क्षतिपूर्त्ति की रकम चूकाने में अक्षम है और यंग योजना का विरोध करते हुए जर्मनी को वर्साय की संधि से मुक्त करने का प्रचार नात्सीदल के द्वारा उसके जन लोकप्रियता का आधार बना। जर्मनी की सरकार ने जब आर्थिक संकट का सामना करने के लिए सरकारी खर्च में भारी कमी एवं अतिरिक्त कर लगाने की घोषणा की तो संसद में ब्रुनिंग का विरोध बढ़ता चला गया। रिखस्टैग की अवहेलना कर आपातकालीन आज्ञाओं द्वारा शासन को चलाने के लिए उसे विवश होना पड़ा। नात्सी दल ने इसे सरकार की कमी बताकर एवं बढ़ती बेकारी एवं तीव्र असंतोष का फायदा उठाकर गणराज्य को हिटलर ने कटघरे

में खड़ा कर दिया। इस प्रकार हिटलर एवं नात्सी दल की अधिनायकवादी शासन व्यवस्था के लिए स्थितियां अनुकूल हो गई।

महामंदी ने विभिन्न देशों में प्रशासकीय नियंत्रण को बढ़ावा दिया। लगातार गिरते हुए दामों एवं मूल उत्पादकों की बढ़ती निर्धनता एवं दयनीय अवस्था के कारण राज्यों को कई प्रशासनिक कानून एवं व्यवस्थायें बनानी पड़ी। सीमा शूल्क के माध्यम से आर्थिक मंदी से निपटना संभव नहीं था, अतः विपणन, मूल्य–नियंत्रण, पूँजी के विकास एवं वितरण पर नियंत्रण स्थापित करना पड़ा। ब्रिटेन में कृषि में एग्रीकल्चरल मार्केटिंग एक्ट द्वारा वस्तुओं के विपणन की व्यवस्था की गई।

महामंदी ने 'आर्थिक राष्ट्रवाद' की भावना को प्रबल बना दिया। जब अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अत्यंत सीमित होता चला गया तो राष्ट्रों को अपने उद्योगों एवं बाजार को विदेशी आधिपत्य से बचाने के लिए आयात शूल्क की दरों को ऊँचा करना पड़ा। कुछ वस्तुओं का आयात कोटा निश्चित करना पड़ा और कई राष्ट्रों के खिलाफ आर्थिक प्रतिबंध की घोषणा करनी पड़ी। इस स्थिति ने अंतर्राष्ट्रीय सहयोग एवं सौहार्द्र की भावना जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उभरे आर्थिक संकट के समाधान के लिए आवश्यक थी, को पूरी तरह हतोत्साहित किया।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सैन्यवाद का विकास भी आर्थिक मंदी का एक महत्वपूर्ण परिणाम था। जापान के द्वारा 1931 ई॰ में मंचूरिया पर आधिपत्य इसी का नतीजा था। वहीं जर्मनी एवं इंटली ने भी जापानी सैन्यवाद से प्रभावित होकर विस्तारवादी नीति को अपनाया और द्वितीय विश्वयुद्ध का ये एक महत्वपूर्ण कारण बना।

प्रो॰ बेन्स ने इसे स्पष्ट करते हुए मत दिया कि ''अपनी आंतरिक आर्थिक कठिनाइयों के समाधन में व्यस्त होने के कारण, प्रजातंत्रीय राज्यों के नेता, अग्रघर्षी राज्यों की आक्रमक कार्यवाही, जो वास्तव में विश्वयद्ध की भूमिका थी, की प्रारंभिक अवस्था को रोकने के लिए कोई प्रभावशाली कदम उठाने में झिझकते रहे।''

इस स्थिति में प्रजातंत्रीय राज्यों की ढुलमुल नीति एवं शिथलता ने सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था की खामियों को सबके समक्ष प्रकट कर दिया। राष्ट्रसंघ की निर्बलता एवं उसमें निर्णय लेने की क्षमता के खत्म हो जाने से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संकट और गहरा गया।

अभ्यास : सत्य या असत्य कथन की पहचान करें –

1.ब्लैक ट्यूजडे की घटना को विश्व आर्थिक मंदी की शुरुआत माना जाता है।

2. विश्व आर्थिक मंदी का प्रभाव सिर्फ स.रा. अमेरिका तक सीमित रहा।

3. स.रा. अमेरिका के राष्ट्रपति के रूप में फ्रैंकलिन रुजवेल्ट ने तीन बार लगातार 1933 से 1945 ई. तक राष्ट्रपति का अपना कार्यकाल पूरा किया।

4. प्रो. फॉकनेर ने सट्टेबाजी की बढ़ती प्रवृति को आर्थिक मंदी का सबसे प्रमुख कारण माना।

5. पॉल एलकेस ने 1920 के दशक में समान धन के वितरण को विश्व आर्थिक मंदी का प्रमुख कारण माना।

6. राष्ट्रपति रुजवेल्ट विश्व आर्थिक मंदी के दौरान जनता को रेडियो पर संबोध्ति करते थे, उसे 'फायर साइट चैट्स' के नाम से जाना जाता था।

7. अर्थशास्त्राी कॉडलिफ ने विश्व के सभी भागों में कृषि उत्पादन और खाद्यान्नों के मूल्य की विकृति (1929–34) को आर्थिक महामंदी का मुख्य कारण माना।

8. विश्व आर्थिक मंदी (1929–34) ने जर्मनी एवं इटली जैसे राष्ट्रों कों संवैधानिक लोकतंत्र से सर्वसत्तावाद (Totaletoriarism) की ओर उन्मुख नहीं किया।

उत्तरः

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. सत्य 7. सत्य 8. असत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. स.रा. अमेरिका में न्यूयार्क के शेयर मार्केट में 24 अक्टूबर 1929 को शेयर मॉर्केट औंधे मुंह गिर पड़ा जिसे हम ––––––––––क्रैश के रूप में जानते हैं।
2. स.रा. अमेरिका का औद्योगिक उत्पादन 1929 ई. से 1931 के बीच लगभग –––––––––––कम हो गया था।
3. 1929 से 1932 के बीच विश्व व्यापार में ––––––– प्रतिशत कमी आयी।
4. आर्थिक महामंदी की चपेट में आकर ऑस्ट्रिया का सबसे मजबूत समझा जाने वाला बैंक ––––––––––दिवालिया घोषित हो गया।
5. विश्व आर्थिक मंदी से एकमात्र यूरोपीय राष्ट्र जो पूरी तरह अप्रभावित रहा वो था –––––––––––।
6. सोवियत संघ ने ––––––––––योजनाओं के माध्यम से औद्योगिकरण पर ध्यान केंद्रित किया।
7. –––––––––(1924) स.रा. अमेरिका द्वारा जर्मनी की आर्थिक सहायता के लिए चलाया गया।
8. 'द इकोनॉमिक कन्सिक्वेंसेज ऑफ पीस' (1920) के लेखक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री –––––––––– हैं।

उत्तर

1. बॉल स्ट्रीट 2. एक तिहाई 3. 60 4. क्रेडिट अंस्टाल्ट 5. सोवियत संघ 6. पंचवर्षीय 7. डेविस योजन 8. कीन्स

1.5 समाधान

बेकारी, मुद्रा के मूल्यों में गिरावट, कारखानों की बंदी, माल की कीमतों में गिरावट, राज्यों द्वारा संरक्षण नीति का अनुसरण जैसी समस्यायें 1933 तक विश्व के राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति को बद से बदत्तर कर रही थीं। इन समस्याओं के संदर्भ में 1932 के लाउसेन सम्मेलन ने भुगतान को समाप्त करने के उपाय के रूप में रखा। 1933 ई॰ में इसी संदर्भ में सभी राष्ट्रों ने मिलकर लंदन सम्मेलन का आयोजन किया। इसमें 64 राष्ट्रों ने भाग लिया एवं आर्थिक संकट दूर करने हेतु दो उपाय सुझाये गए:

1. विभिन्न देशों के उत्पादों की निकासी के लिए संरक्षण की नीति का बहिष्कार करने का सुझाव दिया गया ताकि सभी राष्ट्र व्यापार में पारस्परिक सहयोग की नीति को अपनाये।

2. कीमतों को ऊँचा उठाने और उद्योगों के सही ढंग से संचालन के लिए प्रत्येक मुद्रा का प्रसार ज्यादा से ज्यादा हो, इस बात पर बल दिया गया।

लंदन सम्मेलन में इन सुझावों पर विचार हुआ लेकिन प्रतिभागी देश किसी फैसले तक नहीं पहुँच पाये। इस प्रकार यह सम्मेलन अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो पाया।

इन उपायों के अलावा अन्य तीन तकनीकों को भी यूरोपीय राष्ट्रों ने अपनाया, जो महत्वपूर्ण है–

1.5.1 अवस्फीति का उपयोग

जर्मनी ने 1932 तक एवं फ्रांस ने 1934 तक वेतन को काफी कम कर दिया एवं सार्वजनिक व्यय को कम कर दिया। ये दोनों उपाय कारगर साबित नहीं हुए।

1.5.2 बजटीय प्रावधान

इसके तहत घरेलू उपभोक्ताओं की मांग का पुनःबदलाव था, जिससे उन उद्योगों को बढ़ावा दिया जाए, जिनको 1920 के दशक में महत्व नहीं मिला। इस कारण भवन–निर्माण एवं मोटर उद्योग को प्रोत्साहन मिला। हांलांकि ये भी आंशिक रूप से ही सफल रहा। ब्रिटेन में इसे अपनाया गया ,लेकिन सफल नहीं रहा।

1.5.3 सरकार का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप

प्रमुख ब्रिटिश अर्थशास्त्री कींस ने अपनी पुस्तक ''जनरल थ्योरी ऑफ इंपलॉयमेंट इंट्रेस्ट एंड मनी'' में 1936 में सुझाया कि सरकारी खर्चों में वृद्धि, कर में कमी और मुद्रा में विस्तार करके संकट का सामना किया जा सकता था।

आर्थिक संकट के प्रारंभ होने के समय अमेरिका में रिपब्लिक राष्ट्रपति हर्बर्ट हूवर थे, जो आर्थिक मामलों में सरकारी हस्तक्षेप के पक्ष में नहीं थे। उनकी सोच के अनुसार मंदी नियमित अर्थचक्र का एक चरण था एवं इसके अवसान के परिणामस्वरूप तेजी का चरण अनिवार्य था। ऐसा हुआ नहीं और आर्थिक स्थिति बदतर होती चली गई। 1932 ई. में राष्ट्रपति चुनाव में अमेरिका में ड्रेमोक्रेट राष्ट्रपति चुने गए। नए राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रुजवेल्ट (1933–45) ने सूझबूझ से काम लेते हुए बेकारों को तत्काल राहत पहुंचाने के लिए एवं अर्थव्यवस्था को एक नई दिशा देने के लिए कई तरह के काम एक साथ शुरू किये। उन सारे कार्यक्रमों को एक साथ मिलाकर 'न्यू डील' (New Deal) कहा जाता है। इसे 1933 ई. में प्रारंभ किया गया।

राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने बेकारी की समस्या को देखते हुए अनेक तरह के निर्माण कार्य प्रारंभ कर बेकारों को काम प्रदान किया गया। उदाहरणार्थ कार्य प्रगति प्रशासन (Work Progress Administration-WPA) के तहत भवन निर्माण के कार्य में रोजगार सृजन किया गया। मुद्रा–संकट रोकने के लिए बैंकों को कुछ समय के लिए बंद कर दिया गया। बैंकों को कठोर अधीक्षण में खुलने की अनुमति दी गई। मुद्रास्फीति पर नियंत्रण पाने के लिए उसे स्वर्णमान (Gold Standard) से विच्छिन्न कर दिया गया एवं उसका अवमूल्यन भी किया गया। इसके फलस्वरूप अमेरिकी कृषि उत्पादों को विदेशी बाजारों में प्रतिस्पर्धा करने में सहायता मिली। कृषि उत्पादन कम करने के लिए काश्तकारों को वित्तीय अनुदान भी दिया गया। कृषि सामंजस्य प्रशासन (Agricultural Adjustment Administration-AAA) ने किसानों को वृहद पैमाने पर भुगतान किया। इसके तहत गोदामों में जमा माल एवं फालतू मवेशियों को विनष्ट करने के लिए वित्तीय सहायता दी गई। इसका उद्देश्य यह रखा गया कि अत्यधिक कृषि उत्पादन होने तथा उत्पादकों द्वारा उसको बिक्री न कर सकने की स्थिति में इस समस्या से उन्हें निजात दिलाई जाए। सरकार दीर्घकालिक रूप से अमेरिकी कृषि की समस्याओं को सुलझाना चाहती थी। इन उपायों के माध्यम से करीब 30 लाख नौजवानों को कृषि कार्य में लगाया जा सका।

नेशनल रिकवरी ऐडमिनिस्ट्रेशन (National Recovery Administration) की स्थापना औद्योगिक क्षेत्र से मंदी को निपटने के लिए किया गया। व्यावसायिक संस्थाओं को स्वस्थ प्रतियोगिता के लिए स्वतः आचरण मान (Code of Conduct) निर्मित करने एवं उस पर अमल करने के लिए उत्पादन की मात्रा एवं मूल्य निर्धरण करने को प्रोत्साहित किया गया।

इसका मुख्य उद्देश्य लोगों की क्रय क्षमता बढ़ाना एवं निजी उद्योग एवं व्यवसाय को पुनः बहाल करना था। सरकार इसके लिए कर्ज लेकर व्यय की बड़ी–बड़ी योजनाएं चला रही थी। 'घाटे का बजट' (Deficit Budgetting) इस आर्थिक महामंदी से निकलने का एक मात्र उपाय सिद्ध हुआ।

अमेरिका में राष्ट्रपति रुजवेल्ट तत्कालिक एवं दीर्घकालिक दोनों ही तरह के उपाय ला रहे थे। 'सिक्युरिटीज एंड एक्सचेंज कमीशन' (Security And Exchange Commission) की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य गैर जिम्मेवार सट्टेबाजी को शेयरों में रोकना, जिसका आर्थिक जगत में फिर से कोई ऐसा संकट खड़ा न हो सके। बैंकों में जमा बचत की गारंटी संघ सरकार ने ले ली। इससे जमाकर्ता को आजीवन अपनी कमाई खोने का खतरा नहीं रहा। बाढ़–नियंत्राण, क्षेत्रीय विकास योजना तथा सस्ती दर पर उर्जा उत्पादन की एक समग्र योजना 'टेनेसी वैली ऑथॉरिटी', 1933 (Tenaessee Valley Authority) के रूप में की गई।

1935 ई. तक ठोस आर्थिक पुनरुत्थान नहीं हो सका था, अभी भी 50 लाख से ज्यादा लोग अमेरिका में बेरोजगार थे। इसलिए अब नियमन एवं सुधार पर अत्यधिक जोर दिया गया। नेशनल रिकवरी एडमिनिस्ट्रेशन (National Recovery Administration) के कार्य से न तो उद्योगपति संतुष्ट थे और न ही श्रमिक क्योंकि इससे बड़े व्यवसायिक संस्थानों को ही लाभ पहुंचा था। इससे बड़े व्यावसायिक संस्थानों के हाथ में संपदा का अधिक से अधिक संकेन्द्रण हुआ।

'न्यू डील' को आरंभिक सफलताएं मिली, लेकिन 1935 ई. में अमेरिकी उच्चतम न्यायालय ने तकनीकी आधार पर गैरकानूनी घोषित करके रद्द करना प्रारंभ किया। व्यवसायी आरंभ में सरकारी हस्तक्षेप का स्वागत कर रहे थे लेकिन बाद में सरकारी हस्तक्षेप का विरोध करने लगे। इन सबके बावजूद 'न्यू डील' तीव्रता से अपने उद्देश्यों की पूर्ति में लगा रहा। अल्पवित्त आम आदमी एवं श्रमिक के हितों के संरक्षण का कार्य तेजी से चलाया गया।

1935 ई. में नेशनल सिक्युरिटी एक्ट पारित करके बेकार, वृद्ध एवं बीमार या विकलांग लोगों को राहत एवं पुनर्वास की व्यवस्था को और अधिक चुस्त किया गया। अमेरिका में समाज कल्याण के नाम पर बहुत कम कानून थे। अतः इसके तहत नेशनल लेबर रिलेशंस ऐक्ट (National Labour Relations Act) पास करके अमेरिका में औद्योगिक जगत में आमूल–चूल परिवर्तन कर दिया गया। पहली बार अमेरिकी श्रमिक संघों को पता चला कि सरकार किसी भी संघर्ष की स्थिति में उनका समर्थन करेगी। इसके तहत श्रमिकों को अपना संघ बनाने की स्वतंत्रता दी गयी। अब नया संगठन कांग्रेस ऑफ इंडस्ट्रियल ऑर्गेनाइजेशन (Congress of Industrial Organisation) के तहत श्रमिकों को उनके उद्योग–धंधे या व्यवसाय के अनुरूप संगठित किया गया। यहां तक कि अप्रशिक्षित कामगारों को भी संगठित किया गया।

फेयर लेबर स्टैण्डर्ड ऐक्ट (Fair Labour Standard Act) के तहत एक सप्ताह में 40 घंटे काम करने के घंटे बनाये गये एवं प्रति घंटा उचित पारिश्रमिक निर्धारित करने की व्यवस्था की गयी थी। बच्चों को काम में लगाए जाने पर रोक लगा दी गई। स्लम क्षेत्र के विकास के लिए भी सफाई एवं कम लागत के गृह निर्माण पर जोर दिया गया। इस प्रकार 1938 में सरकार द्वारा भारी व्यय करने के उपरांत द्वितीय विश्व युद्ध के आरंभ होने पर जाकर आर्थिक महामंदी खत्म हुई।

'न्यू डील' में कई कमियां होने के बावजूद एवं कई बातों पर इसकी आलोचना करने के बावजूद अमेरिकी गणराज्य एवं उसकी अर्थव्यवस्था के सबसे बड़े संकट का सामना करने के संदर्भ में यह एक साहसपूर्ण एवं मानवतावादी तरीका था।

आर्थिक संकट से निकलने के प्रयास में कई राष्ट्र अधिनायकवाद की ओर चले गए और इसी कारणों से अंततः द्वितीय विश्वयुद्ध आवश्यंभावी हो गया।

अभ्यास : सत्य या असत्य कथन की पहचान करें–

1. लंदन सम्मेलन (1933) में विश्व आर्थिक मंदी से बाहर आने के लिए सभी राष्ट्रों को संरक्षणवादी नीति का अपनाने का सुझाव दिया गया।

2. अवस्फीति की नीति के तहत जर्मनी ने 1932 में और फ्रांस ने 1934 में वेतन में काफी कमी की एवं सार्वजनिक व्यय को कम कर दिया।

3. प्रमुख अर्थशास्त्री कीन्स का मत था कि सरकारी खर्चों में वृद्धि, कर में कमी और मुद्रा में विस्तार करके आर्थिक संकट का सामना किया जा सकता था।

4. राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने सं.रा. अमेरिका को आर्थिक संकट से निकालने के लिए 'न्यू विल' कार्यक्रम चलाया।

5. वर्क प्रोग्रेस एडमिनिस्ट्रेशन (WPA) के तहत भवन निर्माण के माध्यम से रोजगार सृजन करने का प्रयास किया गया।

6. स.रा. अमेरिका में दीर्घकालिक रूप से कृषि समस्याओं को दूर करने के लिए कार्यक्रम को कृषि सामंजस्य प्रशासक (Agricultural Adjustment Administration) नाम से जाना जाता है।

7. नेशनल रिकवरी एडमिनिस्ट्रेशन औद्योगिक क्षेत्र में मंदी से निपटने के लिए चलाया गया कार्यक्रम था।

8. टेनिसी वैली ऑथॉरिटी शेयर मार्केट में सं.रा. अमेरिका में आयी गिरावट को दूर करने हेतु प्रयास था।

उत्तर–

1.असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. सत्य 6. सत्य 7. सत्य 8. असत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. ऐसे बजट को जिसमें सरकार कर्ज लेकर आय से ज्यादा व्यय करती है —————————— कहते हैं।

2. शेयर बाजार में गैर जिम्मेदार सट्टेबाजी को रोकने के लिए सं.रा. अमेरिका में राष्ट्पति रुजवेल्ट के द्वारा ————————————की स्थापना की गई।

3. ————————————के द्वारा सं.रा. अमेरिका में बेकार, वृद्ध एवं बीमार या विकलांग लोगों के राहत एवं पुनर्वास की व्यवस्था की गई।

4. फेयर लेबर स्टैण्डर्ड एक्ट के तहत एक सप्ताह में कार्य के घटों को श्रमिकों के लिए ——————घंटे निर्धारित किया गया।

5. टेनिसी वैली ऑथरिटी का गठन —————— वर्ष में किया गया।

6. नेशनल लेबर रिलेशंस एक्ट के तहत..................बनाने की स्वतंत्रता संरा. अमेरिका में श्रमिकों को दी गई।

7. एग्रीकल्चरल एडजस्टमेंट एडमिनिस्ट्रेशन (AAA) के तहत कृषि उत्पादकों को अत्यधिक उत्पादन होने पर ——————नियंत्रण के लिए कृषि उत्पादों को नष्ट करने हेतु आर्थिक सहायता दी गई।

8. जॉन मेनार्ड कीन्स जो प्रमुख ब्रिटिश अर्थशास्त्री थे, उनकी 1936 ई. में प्रकाशित प्रसिद्ध पुस्तक का नाम ——————————————————————है।

उत्तरः

1.घाटे का बजट 2.सिक्युरिटीज एंड एक्सचेंज कमीशन 3.नेशनल सिक्युरिटी एक्ट ;1935 4. 40

5.1933

6.श्रमिक संघ

7.मूल्य

8.'जनरल थ्योरी ऑपफ इंपलायमेंट इंट्रेस्ट एंड मनी'

1.6 सारांश

यह आर्थिक मंदी संयुक्त राज्य अमेरिका में उद्भूत हुई जो 4 सितम्बर, 1929 को स्टॉक कीमतों में आयी भारी गिरावट के परिणामस्वरूप शुरू हुई यह वैश्विक स्तर पर 29 अक्टूबर, 1929 को 'ब्लैक टयुजडे' (Black Tuesday) के स्टॉक मार्केट क्रैश के रूप सामने आयी। अमेरिका के वॉलस्ट्रीट शेयर बाजार में शेयरों की कीमत के औंधे मुँह गिर पड़ने से वैश्विक स्तर पर एवं विशेष कर यूरोप में आर्थिक संकट का ऐसा दौर उपस्थित हुआ

जिसने वहाँ के जन–जीवन को त्रासद स्थिति में ला खड़ा किया। जापान एवं लैटिन अमेरिका में इसका प्रभाव मध्यम रहा।

यह आर्थिक संकट 1929 ई॰ से शुरू होकर 1931 तक अपने चरम सीमा पर पहुँचा और 1934 तक इसका प्रभाव बना रहा हालांकि पूर्णरूप से 1939 ई॰ में द्वितीय विश्वयुद्ध के शुरूआत के उपरांत ही यह प्रभावी रूप से खत्म हुआ।

1.7 संदर्भ ग्रंथ

1. रोजर लावेनस्टीन, ''हिस्ट्री रिपीटिंग'', वॉल स्ट्रीट जनरल, 2015
2. इरिक हाब्सबॉम, 'एज ऑफ एक्सट्रीम : दि सार्ट टुवेनटींथ सेंचुरी 1914–1991', संवाद प्रकाशन, 2009
3. इरिक हाब्सबॉम– पूर्वोक्त
4. क्रिस्टीना डी. रोमर, इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, 2003
5. स्टीफन जे. ली, एस्पेक्टस ऑफ यूरोपियन हिस्ट्री 1789–1980, रुटलेज, लंदन, 1982
6. पूर्वोक्त
7. पूर्वोक्त
8. पूर्वोक्त
9. जॉन मेनार्ड कींस, ''जनरल थ्योरी ऑफ इंम्पलॉयमेंट इंट्रेस्ट एंड मनी'', 1936
10. नार्मल लॉ–मास्टरिंग वर्ल्ड हिस्ट्री, ii. एडिशन, मैक्सिलन, लंदन, 1988
11. रॉबर्ट ओ पैक्स्टन : यूरोप इन द टवेनटींथ सेंचुरी, iii. एडिशन, हार्कोट ब्रेस एंड कंपनी, फ्लोरिडा, 1977.
12. स्टीफन जे. ली : एस्पेक्टस ऑफ यूरोपियन हिस्ट्री 1789–1980, रुटलेज लंदन, 1982

1.8 प्रस्तावित पठनीय सामग्री

जॉन मेरीमैन– 'ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न यूरोप', वल्यूम ii, नॉर्टन एंड कंपनी न्यूयॉर्क। लंदन, 1996

डेविड थॉमसन : यूरोप सिन्स नेपोलियन, लोवे एंड ब्रेयडॉन लि., लंदन, 1957

जन केनेथ गौलब्रेथ–द ग्रेट क्रैश, 1929–हॉगटॉन मफिन हार्कोट, 1997

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. आर्थिक महामंदी से प्रभावित विभिन्न देशों ने उससे उबरने के लिए किन नीतियों को अपनाया, वर्णन करें?
2. 1929 के आर्थिक मंदी को विश्व आर्थिक मंदी कहना कहां तक उचित है?
3. विश्व आर्थिक मंदी (1929-39) से क्या अभिप्राय है और इसके लिए कौन–कौन से कारक उत्तरदायी थे? इसने किस प्रकार विभिन्न राष्ट्रों को प्रभावित किया?
4. 1929–1939 ई. तक जो आर्थिक संकट वैश्विक परिदृश्य में व्याप्त रहा उसके कारणों एवं परिणाम का आलोचनात्मक विवरण दें?
5. आर्थिक संकट से निपटने के लिए किये गए प्रयासों में 'न्यू डील' की प्रासंगिकता एवं इसके तहत उठाये गए कदमों एवं इसके परिणाम का उल्लेख करें?
6. आर्थिक मंदी (1929-39) का विश्व के विभिन्न हिस्सों पर अलग–अलग प्रभाव पड़ा, ऐसा क्यों?
7. आर्थिक संकट 1929-39 ने किस प्रकार लोकतांत्रिक प्रक्रिया को विभिन्न राष्ट्रों में प्रभावित किया एवं अधिनायकवाद की ओर जर्मनी एवं इटली के बढ़ने में इसकी क्या भूमिका थी?

इकाई दो : फासीवाद, नाज़ीवाद और सैन्यवाद

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 फासीवाद : इटली

2.3.1 फासीवाद : इसका अर्थ

2.3.2 इटली के फासीवाद पर इतिहासकारों की राय

2.4 नाज़ीवाद

2.4.1 नाज़ियों की लोकप्रियता के कारण

2.4.2 नाज़ीवाद और फासीवाद

2.5 सिनेमा : इटली और जर्मनी में फासीवादी और नाज़ीवादी प्रचार–कार्य

2.6 सैन्यवाद

2.7 संदर्भ ग्रंथ

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इस यूनिट में फासीवाद, नाज़ीवाद और सैन्यवाद से जुड़े महत्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा की जाएगी। फासीवाद, नाज़ीवाद और सैन्यवाद जैसे क्रान्ति–विरोधी आन्दोलनों की पृष्टभूमि और उदय के बारे में भी आपको अवगत कराया जाएगा। इससे आप इतिहास के भावी रुख पर प्रभाव डालने वाले इन आन्दोलनों के स्वरूप और विशेषताओं को समझ सकेंगें और इनका विश्लेषण कर सकेंगे।

इसके अलावा, विद्यार्थियों को मुसोलिनी तथा हिटलर की रणनीतियों और इन आन्दालनों को लोकप्रिय बनाने में उनके योगदान के बारे में बताया जाएगा। इस अवधि के दौरान के उथल–पुथल भरे वर्षों ने भी फासीवाद और नाजीवाद के उत्थान में मदद की। साथ ही इस आन्दोलन से जुड़ी सैद्धान्तिक प्रवृत्तियों को समझने के लिए फासीवाद और नाजीवाद से जुड़ी ऐतिहासिकता पर भी चर्चा की जाएगी। इस यूनिट में, भावी घटनाक्रमों को बदलने में इन आन्दोलनों के महत्व को भी स्पष्ट किया गया है।

2.2 उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन के बाद आप :–

1. इटली में फासीवाद, जर्मनी में नाजीवाद और जापान में सैन्यवाद के उदय के कारणों को समझ सकेंगे।
2. फासीवाद / नाजीवाद / सैन्यवाद की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेंगे।
3. इटली के फासीवाद और जर्मनी के नाजीवाद के बीच समानताओं और अन्तर को जान जाएंगे।
4. फासीवाद से संबंधित ऐतिहासिकता को समझ सकेंगे।
5. इनके उद्देश्यों को बढ़ावा देने में प्रचार माध्यमों विशेष रूप से सिनेमा की भूमिका को समझ सकेंगे।

2.3 फासीवाद : इटली

बेनितो मुसोलिनी (1883–1945) ने 1919 में नेशनल फासिस्ट पार्टी की नींव रखी। वर्साय की संधि से असंतुष्ट अनेक इटलीवासी नाराज थे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद उनके आर्थिक और सामाजिक तनावों ने सरकार को अस्थिर बना दिया था। इन हालातों में, 1919–22 की अवधि को बेनिओरोसो (रक्तिम वर्ष) के रूप में देखा जा सकता है। फासीवादियों के वर्दीधारी दस्तों ने मजदूरों और बटाईदार किसानों के खिलाफ जमींदारों और कारोबारियों की मदद की। मुसोलिनी की अपनी एक निजी सेना थी और उसने अपने फायदे के लिए परिस्थितियों का उपयोग किया। 1921 के चुनाव में, मुसोलिनी ने 35 सीटें हासिल की। उसे इटली की संसद के लिए चुन लिया गया और अब वह न केवल अपने वक्तव्य कौशल का लाभ उठा रहा था बल्कि उस पर कोई अभियोग भी नहीं चलाया जा सकता था। अक्तूबर 1922 में मुसोलिनी ने रोम का रूख किया और सम्राट विक्टर इमेन्युल III (शासनकाल 1900–1946) ने उसे सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। 29 अक्टूबर, 1922 में, मुसोलिनी इटली का प्रधानमंत्री बन गया। अपनी शातिर चाल–बाजियों और बल प्रयोग के जरिए धीरे–धीरे वह इटली के तानाशाह के रूप में स्थापित हो गया।

जॉन मेरीमैन की दलील है कि मुसोलिनी के लिए फासीवाद सशक्त विरोध के सिद्धान्त, राजनीतिक ताकत हासिल करने और इसे बनाए रखने का एक साधन था। फासीवाद एक ऐसे राज्य का समर्थन करता था जो मजबूत, सैन्य प्रभुत्व वाला राज्य हो, जिसे हर इटलीवासी अपनी पहचान इस रूप में बनाए कि "सब कुछ राज्य के लिए है, राज्य के नियंत्रण के बाहर कुछ भी नहीं है राज्य के खिलाफ कुछ भी नहीं है"[1] मुसोलिनी ने भी ऐसा ही सोचा था।

मुसोलिनी ने प्रचार–प्रसार के आधुनिक साधनों का कारगर तरीके से इस्तेमाल किया। उसने उन सभी फिल्मों जो उसकी उपलब्धियों का बखान करते हो; जिन्होंने उसकी उपब्लधियों, अप्रासंगिक, भाषणों और अनेक आत्मकथाओं को प्रसारित किया हो, राजकोष से सहायता दी। 18 वर्ष की उम्र वाले हर इटलीवासी को यह शपथ लेनी होती थी कि वे मुसोलिनी की आज्ञा मानेंगे और इटली के अखबारों के एजेंट देश में और विदेश में मुसोलिनी की छवि निखारेंगे।

2.3.1 फासीवाद : इसका अर्थ

फासीवाद ने अपनी यात्रा इटली से शुरू की थी। इसे बाद में हिटलर, जनरल फ्रान्कों (स्पेन), सालाज़ार (पुर्तगाल) और पैरों (अर्जेंटीना) ने भी अंगीकार कर लिया। वर्तमान में, वामपंथी विचारक, दक्षिण पंथी सोच वाले हर व्यक्ति को फासीवादी सोच से जोड़ देते हैं। मुसोलिनी तो बस सत्ता हथियाना चाहता था और ऐसा लगता है कि उसने हालात को देखते हुए अपने नजरिए में सुधार किया था। फासीवाद की कुछ विशेषताएं इस प्रकार है :–

- **स्थिर और निरंकुश सरकार** : फासीवाद का उदय उन स्थितियों में हुआ था जब हालात उथल–पुथल भरे थे। फासीवाद ने निरंकुश और स्थिर सरकार देना अपना लक्ष्य बनाया। इसका लक्ष्य मानव–जीवन के हर सम्भव पहलू को नियंत्रित करना था। इसका एक उदाहरण ''कारेपोरेट स्टेट'' था। इसमें अर्थव्यवस्था की हर शाखा में कामगारों और नियोक्ताओं की भागीदारी का हिस्सा निर्धारित किया गया था। प्रत्येक कारपोरेशन में सरकार का एक अधिकारी नियुक्त किया गया था। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो, यह कामगारों को नियंत्रित करने का एक साधन था।
- **चरम राष्ट्रवाद** : पिछले कई वर्षों से राष्ट्रीय भावना का क्षरण हो रहा था। अतः राष्ट्र का पुनरोद्धार, राष्ट्र के विगत गौरव को फिर से हासिल करना।
- **राज्य में केवल एक ही पार्टी होनी चाहिए** : किसी अन्य पार्टी के लिए कोई जगह नहीं थी। फासीवादी व्यवस्था में इटली के नागरिकों को सुनहरे भविष्य का आश्वासन दिया गया। महान करिश्भाई नेता की भक्ति का भी प्रचार–प्रसार किया गया। मुसोलिनी ने इल ड्यूक (महान नेता) की उपाधि धारण की।
- **साम्यवाद का विरोध** : फासीवादी साम्यवाद के धुर विरोधी थे और इसके चलते कारोबारी घराने और समाज के समृद्ध वर्ग उन्हें पसंद करते थे।
- **आर्थिक आत्म–निर्भरता (ऑटार्की)** : राज्य को अर्थव्यवस्था पर इस प्रकार नियंत्रण करना चाहिए कि वह आत्म–निर्भरता की ओर बढ़े। इससे राष्ट्र को अपेक्षित शक्ति मिलेगी।
- **प्रचार के आधुनिक साधनों का उपयोग** : यह दिखाने के लिए पुरानी और पारंपरिक पार्टियों का नया विकल्प ऊर्जावान फासीवाद हैं, वर्दीधारी फासीवादी दस्तों के मार्च, संगीत और गीत जैसे तरीकों को इस्तेमाल किया गया। करिश्भाई नेता की छवि निखारने के लिए रेडियो और फिल्मों का उपयोग किया गया।
- **सैन्य वर्चस्व और बल प्रयोग** : फासीवादी बल प्रयोग पर विश्वास करते थे और उन्होंने बल प्रयोग के द्वारा अनेक राजनीतिक विरोधियों की हत्या की। उन्होंने ऐसा जताया कि वे आक्रामक विदेश नीति अपनाएंगे। अबसीनिया पर आक्रमण उनकी विस्तारवादी नीति का ही उदाहरण था।

अभ्यास : सही या गलत

1. बेनितो मुसोलिनी (1883–1945) ने मार्च 1919 में इंटरनेशनल फासिस्ट पार्टी का गठन किया।
2. अक्टूबर, 1922 में, मुसोलिनी ने रोम का रूख किया और सम्राट विक्टर इमैन्युल I (शासनकाल 1900–1946) ने उसे सरकार बनाने का आमंत्रण दिया।
3. 29 अक्टूबर, 1922 को मुसोलिनी इटली का राष्ट्रपति बना।
4. मुसोलिनी ने इल ड्यूस (महान नेता) की उपधि धारण की।

उत्तर : 1. गलत, 2. गलत, 3.गलत, 4.सही

2.3.2 इटली के फासीवाद पर इतिहासकारों की राय

नॉर्मन लॉन का कहना है कि फासीवादी अवधि की दो व्याख्याएं हैं :

- प्रथम, इटली के इतिहास में यह संक्रमणकालीन विचलन था, इसका पूरा श्रेय मुसोलिनी को जाता है।

- द्वितीय, तर्क के नजरिये से देखा जाए तो इटली के इतिहास से फासीवाद का विकास हुआ था, आस–पास के क्षेत्र और परिस्थितियों ने फासीवाद के उत्थान और विजय को नया स्वरूप दिया, न कि इसके विपरीत।

  रेन्जो दे फेलिस की दलील है कि फासीवाद मुख्यतया एक नए उभरते मध्यम वर्ग का आन्दोलन था, जो उदारवादी पारम्परिक शासक वर्ग को सत्ता से हटाना चाहता था।

हालिया वर्षों में इटली के कुछ इतिहासकार इतिहास में संशोधन की बात कर रहे है। वे मुसोलिनी को एक ऐसे प्रेरणादायी नेता के रूप में दिखाते हैं जिसने विश्व युद्ध में शामिल होने की घातक गलती के अलावा अपने नेतृत्वकाल में कुछ भी गलत नहीं किया था। ये इतिहासकार इटली के फासीवाद को सुखद स्मृति के रूप में देखते हैं।

निकोलस फैरेल का कहना है कि मुसोलिनी को एक महान हस्ती के रूप में याद किया जाना चाहिए। उसने इटली को अराजकता, अव्यवस्था और साम्यवादी बगावत से बचाया। इसके अलावा, उसकी आर्थिक नीतियों से इटली के नागरिक लाभान्वित हुए और उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ। रोमन कैथोलिक चर्च से संधि, युद्ध के बाद भी एक नए नाम से लोकप्रिय ''डोपोलावेरो'' को जारी रखना भी उसी की उपलब्धियाँ थी। इटालियन इतिहासकार बेनेदेत्तो क्रोसे ने फासीवाद को ''अल्पकालिक नैतिक संक्रमण'' का दर्जा दिया है।

रोजर ग्रिफिन, स्टेनले पाइन, जीवस्टरहैलेन्ड तथा अन्य विद्वानों की सभी कृतियों में फासीवाद से संबोधित साहित्य की प्रचुरता है। ये विद्वान फासीवाद की व्याख्या मुख्यतया इसकी विचारधारा के आधार पर करते हैं। ये लेखक फासीवादी सिद्धान्तों के बौद्धिक विकास के माध्यम से फासीवादी का वर्णन करते हैं। इन्होंने मुसोलिनी के इटली और हिटलर के जर्मनी के वास्तविक कृत्यों को कोई तरजीह नहीं दी। फासीवादी कृतियों के लेखक और विद्वानों ने फासीवादी तौर–तरीकों की बढ़–चढ़कर तारीफ की है और फासीवाद के असली स्वरूप को दर्शाने की बजाय इसे आवश्यकता से अधिक आशावादी आन्दोलन बताया है।

रोजन ग्रिफिन कहते है ''फासीवाद एक ऐसी विचारधारा की श्रेणी में आता है, जो अपने अनेक स्वरूपों के बावजूद लोकलुभावन अति–राष्ट्रवाद के किसी परिवर्तित रूप को अपना मुख्य आधार बनाता है।'' इस उलझी हुई व्याख्या में फासीवादी विचारधारा के दो बुनियादी घटकों को परस्पर जोड़ा गया है। इनमें एक घटक है किसी भी विचारधारा को ताकत प्रदान करने वाली पुनर्जीवन तथा पुनरोद्धार की आमूल परिवर्तन कल्पना, जिसे नई व्यवस्था का क्रान्तिकारी नजरियाँ'' कहा गया है और दूसरा घटक है – ''अति–राष्ट्रवाद'' के रूप में परिभाषित फासीवाद। यह अति–राष्ट्रवाद राष्ट्र प्रेम का एक ऐसा स्वरूप है जो उदारवादी संस्थानों तथा प्रबुद्धता की मानवीय विरासत को स्पष्ट रूप से खारिज करता है।

डेविड रेन्टन का कहना है कि विद्वान अपनी बहस में फासीवाद को केवल विचारधाराओं का एक पुलिन्दा बताते है जो गलत है। वह कहते हैं कि फासीवाद को एक विशेष प्रकार के जन–आन्दोलन के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसके पास सिद्धान्तों का एक बुनियादी पुलिन्दा है और जिसमें आन्दोलन और विचारधारा एक साथ चलते है। फासीवाद को मुख्यतया एक विचारधारा के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए, बल्कि इसे एक विशेष रूप के प्रतिक्रियावादी जन आन्दोलन के रूप में समझा जाना चाहिए। 1920 और 1930 के दशक में समाजवादियों की भी यही धारणा थी। मजदूर यूनियनों और फासीवाद के विरोधियों, जिनमें कई मार्क्सवादी थे, का भी यही मानना था। डेविड रेन्टन तर्क देते है कि फासीवाद के बारे में मार्क्सवादियों की केवल एक थ्यौरी नहीं थी बल्कि तीन थ्यौरी थीं। इनमें पहली फासीवाद की वामपंथी थ्यौरी है जो फासीवाद के उत्थान में परिस्थितियों के योगदान के रूप में इसको समझाता है। इस नजरिए से देखें तो पूंजीवाद के हित के लिए क्रान्ति–विरोधी कार्य करने के तौर पर फासीवाद का प्रयोजन और कार्य ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। दूसरी या फासीवाद की दक्षिण पंथी थ्यौरी में फासीवाद के उत्थान और कार्य की अनदेखी की गई है, और इसकी बजाय फासीवाद की विचारधारा तथा इस आन्दोलन के जन स्वरूप और अति सुधारवादी स्वरूप की पड़ताल की गई है। मार्क्सवादी, जिन्होंने इस व्याख्या का समर्थन

किया है, उन्होंने फासीवाद को चरम और लोक–लुभावन, बाहरी तथा पूंजीवाद के लिए खतरे के रूप में माना है। इस प्रकार, इटली और जर्मनी की समाजवादी पार्टियों ने 1920 और 1930 के दशक में, और साम्यवादी पार्टियों ने 1934 के बाद, खुद पूंजीवाद की फासीवाद के खिलाफ एक सुरक्षित, बचाव व्यवस्था के रूप में व्याख्या की और जब शासक वर्ग के सदस्य फासीवाद से जुड़ने लगे तो अचम्भित रह गए तथा कोई कदम नहीं उठा पाए। तीसरी और फासीवाद की तर्कशास्त्रीय थ्यौरी में फासीवाद को प्रतिक्रियावादी विचारधारा और जन आन्दोलन दोनों ही माना गया है। तर्क–शास्त्रीय थ्यौरी के विकास का श्रेय लियोन ट्रॉटस्की को दिया जाता है।

केविन पासमोर का तर्क है कि प्रथम विश्वयुद्ध और इसके बाद के आपदाकाल ने फासीवाद को जन्म दिया। हालांकि, फासीवाद के लक्षण 1914 के पहले से ही नजर आने लगे थे, पर इनमें से कोई भी मूर्तरूप नहीं ले सका था। ऐसा प्रतीत होता है कि अमरीकी गृहयुद्ध के बाद टैनेसी में फासीवाद के लक्षण उभरे थे। जब संघ के सैन्य–भंग अधिकारियों ने कू कक्स क्लान (के के के) का गठन किया। इसका उद्देश्य सरकार द्वारा काले लोगों को तरजीह देने की नीति के खिलाफ गोरों को संगठित करना था ताकि गोरी नस्ल के आधिपत्य की सुरक्षा की जा सके। के के के सदस्य विशेष प्रकार की पोशाक पहनते थे। अजीबोगरीब समारोहों का आयोजन करते थे, इन सबके पीछे एक ही उद्देश्य यह दिखाना था कि गोरे लोग एक विशेष समुदाय के है और ''इन्सान द्वारा बनाया गया कोई भी कानून इसका अपमान नहीं कर सकता'' नाम के एक अपने कानून के तहत इन्होंने काले लोगों की हत्या की। 1915 में यह संगठन फिर से सिर उठाने लगा। डी0 डब्ल्यू ग्रिफिथ ने ''दी बर्थ ऑफ ए नेशन'' नाम से एक मूक फिल्म बनाई थी, इसमें पिछले के के के को अमरीका के रक्षक के रूप में दिखाया गया था। के के के इसी फिल्म से प्रेरणा लेकर फिर से संगठित होने लगा था। हांलाकि के के के ने अपनी नस्लवादी विशेषता को छोड़कर फासीवाद का अनेक विशेषताओं के बारे में पूर्व–सूचना दे दी थी। लेकिन राज्य–विरोध, उदारता और लोकतांत्रिक व्यक्तिवाद के मामले में यह फासीवाद से काफी अलग था। लोकतंत्रिक व्यक्तिवाद अमरीकी चरम दक्षिणपंथी विचारधारा का हमेशा एक महत्वपूर्ण अंग बना रहा है। केविन पासमोर का कहना है कि फासीवाद के और स्पष्ट पूर्व–लक्षण खोजने के लिए यूरोप पर नजर डालनी होगी। यहाँ भी फासीवाद की महत्वपूर्ण विशेषता अर्थात् अति–राष्ट्रवाद नजर नहीं आता। फ्रांस में इसका रूख लचीला रहा। इटली और जर्मनी में इसने अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया था, लेकिन फ्रांस में फासीवाद ऐसी कोई श्रेष्ठता हासिल नहीं कर सका।

आजकल इतिहासकार अपनी सरकारी भाषा और कार्यक्रमबद्ध वक्तव्यों के जरिए विचारधारा का अध्ययन करते हैं। ये मुसोलिनी के फासीवाद के क्रान्तिकारी पहलुओं पर ज्यादा जोर देते हैं। जबकि फासीवादी व्यवस्था की नस्ली और हिंसक पहचान की असलियत पर कम ध्यान देते हैं। फासीवादियों के यदा–कदा शब्दाडम्बरों को उनकी हार्दिक प्रतिबद्धता के सबूत के रूप में देखा जाता है, जबकि फासीवाद के वास्तविक भूल आचरण जो कि मुसोलिनी के स्वार्थ साधन का सबूत है, को भूल वश किया गया कृत्य बता कर खारिज कर दिया जाता है।

अभ्यास : रिक्त स्थान भरें।

1. हाल के वर्षों में इटली के कुछ इतिहासकार इतिहास में .... की बात कर रहे है, वे मुसोलिनी को एक ऐसे .... नेता के रूप में दिखाते है, जिसने विश्वयुद्ध में शामिल होने की घातक गलती के अलावा अपने नेतृत्वकाल में कुछ भी गलत नहीं किया था।
2. .... फैरेल का कहना है कि मुसोलिनी को एक .... हस्ती के रूप में याद किया जाए।
3. इटली के इतिहासकार .... ने फासीवाद को ''अल्पकालिक .... संक्रमण'' का दर्जा दिया है।
4. डेविड .... की दलील है कि फासीवाद को केवल ....के रूप में नहीं बल्कि एक ....जन आन्दोलन के रूप में समझा जाना चाहिए।

5. .... कहते है ''फासीवाद एक ऐसी विचारधारा की श्रेणी में आता है जो अपने अनेक स्वरूपों के बावजूद लोकलुभावन .... राष्ट्रवाद के किसी .... रूप को अपना मुख्य आधार मानता है।
6. केविन .... का तर्क है कि .... गृहयुद्ध के पश्चात .... में फासीवाद के पहले लक्षण नजर आए थे।

2.4 नाज़ीवाद

नाज़ी आन्दोलन के उद्भव को म्यूनिख में तलाशा जा सकता है, जहाँ प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद जर्मन वर्कर्स पार्टी (डीएपी) की नींव रखी गई थी। हिटलर 1919 में इस पार्टी में शामिल हुआ। उसने 1920 में 25 सूत्रीय कार्यक्रम तैयार करने और 1923 में पार्टी का नाम बदल कर नेशनल सोशन्मिस्ट जर्मन वर्कर्स पार्टी (एनएसडीपी) रखने की पहल की। उसने बीयर हाल विद्रोह में म्यूनिख में सत्ता हथियाने का प्रयास किया लेकिन सफलता नहीं मिली और उसे लैण्डसबर्ग किले में कैद कर दिया गया। नौ माह पश्चात् रिहा होने के बाद, हिटलर ने पार्टी को फिर से खड़ा किया और वैधानिक तरीकों से सत्ता पर काबिज होने और व्यवस्था के शीर्ष से क्रान्ति शुरू करने को अपना ध्येय बना लिया। 1928 से पार्टी की लोकप्रियता बढ़ने लगी और 1929 की जबर्दस्त आर्थिक मंदी ने पार्टी की लोकप्रियता को पंख लगा दिए। 1930 में एनएसडीएपी ने 107 सीटें जीती थी जो 1932 के जुलाई और नवम्बर में हुए चुनावों में बढ़कर क्रमशः 230 और 196 हो गई। 1932 में हिटलर ने जर्मनी की प्रेसीडेन्सी हासिल करने की कोशिश की लेकिन हिन्डनवर्ग ने मतों के अच्छे–खासे अन्तर से हिटलर को हरा दिया। हिटलर ने भूतपूर्व चांसलर पापेन और राष्ट्रपति हिन्डनवर्ग को शामिल करके गुप–चुप तरीके से सत्ता प्राप्त करने का प्रयास किया। अन्त में, गठबंधन वाले मंत्रिमण्डल में हिटलर को चान्सलर के पद पर नियुक्त कर दिया गया। इस गठबंधन में गैर–नाजी भी शामिल थे।

राष्ट्रीय समाजवाद का अर्थ : स्टीफन जेम्स ली का तर्क है कि 1920 में तैयार किए गए 25 सूत्रीय कार्यक्रम में निहित सिद्धान्तों को राष्ट्रवादी और समाजवादी दोनों रूप में देखा जा सकता है। वृहत–जर्मनी के सभी–जर्मन लोगों का एकीकरण (आर्टिकल–1), वर्साय और सेंट जर्मन संधि को भंग करना (आर्टिकल–2) जर्मन लोगों के भरण–पोषण और उन्हें बसाने के लिए जमीन और भू–भागों पर कब्जा करना (आर्टिकल–3), जर्मन कानून के बजाय रोमन कानून लागू करना (आर्टिकल–19), पीपुल्स आर्मी की स्थापना (आर्टिकल–22) और एक मजबूत केन्द्रीय सत्ता की स्थापना करना (आर्टिकल–25) नस्ली भेद–भाव का तड़का लगा कर कार्यक्रम के राष्ट्रवादी घटक को और ज्यादा लोक–लुभावन बनाया गया। इसके लिए, यहूदियों को जर्मन राष्ट्रवाद से अलग रखना (आर्टिकल–4), गैर–जर्मन लोगों को जर्मनी में प्रवसन की इजाजत नहीं दी जाएगी (आर्टिकल–8) और गैर–जर्मन लोगों को राष्ट्रीय मीडिया को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं करने दिया जाएगा (आर्टिकल–23), सामाजिक घटक शारीरिक और मानसकि श्रम पर विशेष जोर के रूप में देखे जा सकते हैं (आर्टिकल–10), बिना मेहनत की कमाई को समाप्त करना (आर्टिकल–11), युद्ध मुनाफे का जब्त करना (आर्टिकल–12), कारोबार का पूरी तरह से राष्ट्रीयकरण (आर्टिकल–13), बड़ी औद्योगिक इकाइयों के मुनाफे में हिस्सा (आर्टिकल–14), वृद्धावस्था बीमा का विस्तार (आर्टिकल–16) और भूमि–सुधार (आर्टिकल–17)।

नॉर्मल लॉव उल्लेख करते है कि नाज़ीवाद को एक ऐसी जीवन शैली के रूप में देखा गया था, जो राष्ट्र के पुनरोद्धार के लिए समर्पित हो। जर्मनी को फिर से एक महान राष्ट्र बनाने तथा इसके विगत गौरव और सम्मान को फिर से हासिल करने के लिए समाज के प्रत्येक वर्ग को राष्ट्रीय समुदाय (फॉक्सगेमेनशाफ) के रूप में एकजुट किया जाता चाहिए। जर्मन लोगों के जीवन के प्रत्येक पहलू में दया–विहीन तथा दक्ष संगठनों के दखल पर जोर दिया गया। राष्ट्र को सर्वोच्च माना गया था और लोगों के हितों को इसके अधीन रखा गया था। इस निरंकुश शासन में प्रचार को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी थी। राज्य के सभी संगठन सेना की तर्ज पर ढलेंगे। नस्ली सिद्धान्त

आर्य और अनार्य, जिनमें जर्मन आर्य थे और श्रेष्ठ कौम थी, जिन्हें अन्य नस्लों यानि अनार्यो पर शासन का अधिकार था, को विशेष महत्व दिया गया।

स्टीफन जेम्स ली का तर्क है कि हिटलर इस कार्यक्रम के समाजवादी घटकों के प्रति कटिबद्ध नहीं था। यहाँ तक कि जर्मन वर्कर्स पार्टी भी कुछ सीमा तक गलत नाम था क्योंकि इसका उद्देश्य मोटे तौर पर एक ऐसे वर्ग–विहीन आन्दोलन को जन्म देना था जो मध्यम वर्ग को भी आकर्षित करे।

ऐसे भी इतिहासकार है जो हिटलर को नाज़ीवाद का जनक मानते हैं और ऐसे भी इतिहासकार है जो नाज़ीवाद को फासीवाद की एक शाखा मानते है। इन इतिहासकारों का कहना है कि यूरोपिय इतिहास के एक खास चरण में पूरा यूरोप मुसीबतों से घिरा हुआ था और फासीवादी प्रवृति इसी की देन थी। इन दोनों इतिहासकारों के बीच नाज़ीवाद अलग–अलग नजरियों के चलते बहस का मुद्दा बना हुआ है। ये दो प्रमुख घराने हैं – ''अभिप्रायवादी (इन्टेन्शनलिस्ट)'' और ''संरचनात्मक–विश्लेषणवादी (स्ट्रक्चरलिस्ट)''।

अभिप्रायवादी नाजी कार्यक्रम और विचारधारा के वास्तुकार के रूप में हिटलर के महत्व पर जोर देते है। उसकी अधिकांश धारणाएं ''मेन काम्फ'' और जेवाइटिसबुक (सैकिन्ड बुक) में दी गई हैं। ट्रेवर रोपर ने नाज़ीवाद के समग्र उत्थान में हिटलर के प्रभाव का विशेष उल्लेख किया है। ए बुलॉक ने फ्यूहरर (नेता) के व्यक्तिगत प्रभाव पर विशेष बल दिया है। हालांकि नेतृत्व–भक्ति सभी फासीवादी आन्दोलनों में नजर आती है। लेकिन नाजीवाद के संदर्भ में इसका विशिष्ट महत्व है क्योंकि नाजियों के विभिन्न दर्शनवादी स्वरूप की व्याख्या करने में हिटलर के विचार सर्वोपरि हैं। हिटलर ने नस्ली पवित्रता और एन्टी सेमिटिज्म (अन्य नस्लों का विरोध) के द्वारा नाजीवाद को एक अलग पहचान दी थी और ये मुद्दे इटली में नहीं थे। संरचनात्मक विश्लेषणवाद में कई अन्य जरिए शामिल हैं। इनमें से एक नाजीवाद की मार्क्सवादी व्याख्या– जो इसे पूंजीवादी व्यवस्था का संकट मानती है। पूर्वी जर्मनी के इतिहासकारों का तर्क है कि हिटलर बड़े कारोबारी घरानों का औजार था। गैर–मार्क्सवादी आर्थिक प्रभाव को तो स्वीकार करते है, पर इसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव की व्यापक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में ही देखते हैं। जर्मन लोगों के कुछ समुदाय आर्थिक कारणों के चलते एक अलग विचारधारा के प्रति संवेदी थे। मध्यम वर्ग औद्योगिक संकट से ग्रस्त था और इसकी वजह से उग्र विचार धाराएं उन्हें प्रभावित कर सकती थीं। एक–जर्मनवाद, एन्टी–सेमिटिज्म और लेबेनस्रॉम (रहने के लिए जगह) की आकांक्षा को नाजी–युग में सबसे प्रमुख दिया गया था। संरचनात्मक–विश्लेषणवादी इस तथ्य का भी विशेष उल्लेख करते हैं कि नाज़ीवाद फासीवादी मुख्यधारा का ही एक अंग था। फासीवाद सैन्य–परक और विस्तारवादी था – निरंकुशता राज्य का ध्येय–वाक्य था। स्टीफन जेम्स ली की दलील है कि नाज़ीवाद के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण, ''पूंजीवाद संकट में'' यह स्पष्ट नहीं करता कि कई देश इस संकट से गुजर रहे थे लेकिन इसके बावजूद उन्होंने लोकतंत्र को ही क्यों अपनाए रखा। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो ''पूंजीवाद लोकतांत्रिक स्वरूप ग्रहण करने में भी उतना ही माहिर था''। लेकिन संरचनात्मक विश्लेषणवाद को हमें कम करके नहीं आंकना चाहिए। जर्मनी में नाज़ीवाद का जोरदार स्वागत हुआ इसीलिए हिटलर को भी स्वीकार किया गया। उस समय के नागरिकों पर हिटलर के विचारों का प्रभाव पड़ा। इस करिश्मे का प्रभाव समझाने के लिए संरचनात्मक–विश्लेषणवादी जरूरी हैं। लेकिन इसके द्वारा यह नहीं बताया जा सकता कि इस करिश्मे को किस तरह से दर्शाया गया। क्योंकि यह काफी कुछ अन्तर्राष्ट्रीयवाद के दायरे में आता है।

हिटलर ने दिन पर दिन बिगड़ती कानून व्यवस्था का लाभ उठाया। जर्मन लोगों की आर्थिक मुसीबतों ने भी हिटलर के विचारों को जर्मनी में स्वीकार्य बनाने में मदद की। वर्साय की संधि के आर्थिक प्रावधानों ने जर्मन अर्थ–व्यवस्था की कमर तोड़ दी थी। राजनीतिक अशांति ने अर्थव्यवस्था को और ज्यादा अस्थिर कर दिया था। इन हालातों में, अमरीका के पूंजी बाजार ''वाल स्ट्रीट'' के ध्वस्त होने या 1929 की व्यापक आर्थिक मंदी ने पूरे विश्व को आर्थिक आपदा में झोंक दिया था।

अभ्यास : सही या गलत

1. नेशनल सोशलिस्ट जर्मन वर्कर्स पार्टी (एनएसडीएपी) को फासीवादी पार्टी के रूप में जाना जाता था।
2. 1923 में, हिटलर ने बीयर हाल बगावत में सत्ता हथियाने का प्रयास किया।
3. हिटलर को लैण्डसबर्ग किले में कैद रखा गया।
4. अभिप्रायवादी नाज़ी कार्यक्रम और विचारधारा के वास्तुकार के रूप में हिटलर के महत्व पर जोर देते हैं। उसकी ज्यादातर धारणाएं मेन काम्फ और जेवाइटिसबुक (सैकिन्ड बुक) में वर्णित हैं।
5. ट्रेवर रोपर ने नाजीवाद के समग्र उत्थान में हिटलर के प्रभाव का विशेष उल्लेख किया है।

उत्तर : 1. गलत, 2.गलत,3.सही, 4.सही, 5.सही

2.4.1 नाज़ियों की लोकप्रियता के कारण

उस समय की आर्थिक अस्थिरता और राजनीतिक अव्यस्था की परिस्थितियों में हिटलर और नाज़ी पार्टी ने स्वयं को एक निर्णायक विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया। नाज़ीवाद ने राष्ट्रीय एकता, समृद्धि और सभी को रोजगार का वायदा किया। उन्होंने जर्मनी की मुसीबतों के जिम्मेदार मार्क्सवादियों, येशु समाजियों, फ्रीमेशन और यहूदियों को मिटाने का भरोसा दिया। नाज़ियों ने वर्साय की संधि के खिलाफ भी वक्तव्य दिए। वर्साय की संधि को आर्थिक कारणों की वजह से ही नहीं बल्कि इस संधि में जर्मनी को युद्ध का दोषी ठहराने वाले उपबंद से भी जर्मनी के लोग इस संधि से नाराज थे। हिटलर ने एन्सक्लूस यानि जर्मनी और आस्ट्रिया के यूनियन को भी मुद्दा बनाया, जबकि वर्साय की संधि में इसकी अनुमति नहीं थी।

नाज़ी पार्टी साम्यवाद–विरोधी थी। इसके चलते पूंजीपतियों और उद्योगपतियों ने भी इसका समर्थन किया। मार्क्सवादी इतिहासकार हिटलर को पूंजीपतियों का अस्त्र मानते थे। लेकिन इतिहासकार जोएकिम फेस्ट का तर्क है कि नाज़ी पार्टी को वित्तीय सहायता का बखान शायद बढ़ा–चढ़ाकर किया गया है और हिटलर के सत्ता में आने के बाद बढ़े–बढ़े उद्योग घरानों से पार्टी के कोष में पैसा आया था।

हिटलर प्रभावशाली वक्ता था। उसने अपने विचारों को उग्रता से व्यक्त करने की अपनी कला का बड़ी कुशलता से प्रयोग किया। उसने अपने इस प्रयोजन के लिए संचार के तत्कालीन साधनों जैसे कि रेडियो और सिनेमा का उपयोग किया। बीयर हाल बगावत के बाद जेल में बिताए गए दिनों के दौरान उसने एक किताब मेन काम्फ लिखी थी। उसने इस पुस्तक में अपने लक्ष्यों और उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया था।

बढ़ती बरोजगारी और गरीबी, साम्यवाद का भय, एन्सक्लूस (आस्ट्रिया और जर्मनी के बीच यूनियन) का वायदा, लेबेनस्ट्रॉम (रहने के लिए जगह अथवा जर्मन बस्तियाँ बसाने के लिए पूर्वी यूरोप में जमीन और कॉलोनियों का अधिग्रहण) और जर्मनी के विगत सम्मान को फिर से हासिल करने जैसे वायदों ने नाजियों की लोकप्रियता में वृद्धि की।

अभ्यास : रिक्त स्थान भरें।

1. हिटलर ने ....यानि जर्मनी और .... के बीच यूनियन की बात कही जबकि वर्साय की संधि में इसकी अनुमति नहीं थी।
2. नाजी पार्टी के .... से भी उसे .... और उद्योग पतियों का समर्थन मिला।
3. .... इतिहासकार हिटलर को पूंजीपतियों का अस्त्र मानते थे।
4. .... के लक्ष्य और उद्देश्य उसकी पुस्तक मेन काम्फ (मेरा संघर्ष) नामक पुस्तक में स्पष्ट रूप से व्यक्त किए गए हैं, जिसे उसने बीयर हाल.................................. के बाद जेल में बिताए गए अपने दिनों के दौरान लिखा था।

2.4.2 नाज़ीवाद और फासीवाद

कई बार नाजीवाद और फासीवाद अपने अर्थ और व्याख्या के आधार पर भ्रम की स्थिति पैदा करते हैं। पहले, मुसोलिनी ने इटली में फासीवादी पार्टी का गठन किया था। बाद में, फासीवाद शब्द अन्य दक्षिणपंथी आंदोलनों को परिभाषित करने का जरिया बन गया तथा जर्मनी के नाजीवाद और इटली के फासीवादी में कई समानताएं थीं, लेकिन साथ ही कई विभिन्नताएं भी थी। नॉर्मन लोव ने इनमें से कुछ पर चर्चा की है।

समानताएं

- नाज़ीवाद और फासीवाद दोनों ही प्रकृति से साम्यवाद विरोधी थे।
- दोनों ही लोकतंत्र के विरोधी थे और निरंकुश शासन को पसंद करते थे। दोनों ने आम लोगों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अंकुश लगाया।
- दोनों ने देश को आत्म–निर्भर बनाने का प्रयास किया।
- दोनों ही उग्र रूप से राष्ट्रीवादी थे, दोनों ने नीतिगत मुद्दे के तौर–युद्ध को महिमा मंडित किया, और दोनों ने नेतृत्व–भक्ति पर विशेष ध्यान दिया जो देश का पुनरोद्धार करेगा।
- दोनों ने इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सभी वर्ग मिलकर काम करें, इसके लिए उनमें गहन एकता पर विशेष जोर दिया।

विभिन्नताएं :

- फासीवाद ने इटली में उतनी गहरी पैठ नहीं बना पाई जितनी कि नाज़ीवाद ने जर्मनी में।
- फासीवादी इटली में उतना निपुण नहीं रहा जितना कि नाजीवाद जर्मनी में। इटली न तो आत्म–निर्भर बन सका और न ही बरोजगारी दूर कर सका। वही दूसरी तरफ, नाज़ी बेरोजगारी दूर करने में सफल रहे, हालांकि वे पूरी तरह आत्मनिर्भरता हांसिल नहीं कर सके।
- इटालियन फासीवाद उतना निर्दयी और उग्र नहीं था जितना कि नाज़ीवाद। इटली में आम लोगों पर उतना अत्याचार नहीं किया गया जितना कि जर्मनी में।
- 1930 तक, इटली में फासीवाद यहूदी–विरोधी या नस्लवादी नहीं था। इसके बाद मुसोलिनी ने हिटलर की नकल शुरू की।
- मुसोलिनी ने 1929 में पोप के साथ एक समझौता किया था। वह धार्मिक नीतियों के मामले में हिटलर की तुलना में ज्यादा सफल था।
- दोनों के संवैधानिक पद अलग–अलग थे। हालांकि व्यावहारिक तौर पर देखा जाए तो मुसोलिनी ने सम्राट इमैन्युअल की नहीं सुनी। मुसोलिनी के शत्रु सम्राट का सम्मान देते थे, वे उसे राष्ट्र प्रमुख मानते थे। सम्राट ने 1943 में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उसने मुसोलिनी को बर्खास्त कर दिया और उसकी गिरफ्तारी का आदेश दिया। जबकि जर्मनी में हिटलर को बर्खास्त करने वाला कोई नहीं था।

2.5 सिनेमा : इटली और जर्मनी में फासीवादी और नाज़ीवादी प्रचार–कार्य

1930 के दशक के प्रारम्भ में, यूरोपियन सिनेमा में जर्मनी का वर्चस्व था। यहाँ ऊर्जावान वाम–पंथी संस्कृति भी थी, जिसने मुख्यधारा से हट कर फिल्में बनाई। बीमर गणतंत्र के दौरान सोशल डेमोक्रेटस और साम्यवादियों ने अपने–अपने साहित्य, थिएटर कि माध्यम से वैकल्पिक सांस्कृतिक नेटवर्क बनाने का प्रयास किया और सांस्कृतिक गतिविधियों को सहयोग दिया। 1933 में नाज़ी पार्टी के सत्ता में आने के बाद स्थितियाँ बदलने लगी। नाज़ियों ने अपने सिनेमा संस्थान बनाए और सिनेमा को प्रचार मंत्रालय के अधीन ला दिया। नाज़ियों का प्राथमिक कार्य लोगों की कल्पनाओं और अवधारणाओं को अपनी समझ–बूझ के अनुसार ढालना था। ज्यॉफ्री नॉवेल स्मिथ का तर्क है कि एडोल्फ हिटलर और प्रचार मंत्री जोसेफ गोयल इस तथ्य से पूरी तरह अवगत थे कि फिल्में लोगों की सोच को लाभबंद करने, जबर्दस्त दृष्टि–भ्रम पैदा करने और दर्शकों को वशीभूत करने में सक्षम

होती हैं और इसलिए इन दोनों का प्रचार संबंधी ध्येय पूरी तरह स्पष्ट था। नाज़ी पार्टी के बारे में, रेन्टस्लर का तर्क है कि :

> राष्ट्रीय समाजवाद के अत्याचारों के मद्देनजर, प्रचार मंत्रालय के तत्वाधान में बनी फिल्में, न्यूज रील, वृत्तचित्रों को अनेक टीकाकार फिल्म इतिहास का अन्धकारतम युग कहते हैं। जन–मानस को प्रभावित करने के नाम पर फिल्मों की सृजनशील शक्ति का संस्थागत दुरूपयोग राज्य का आतंक और विश्व–व्यापी विनाश कुरव्यात नाज़ी सिनेमा की कुछ यादगार उपलब्धियाँ है। प्रचार मंत्रालय फिल्मों की पटकथा की निगरानी करता था, स्टूडियों में फिल्मों के निर्माण पर नजर रखता था और सुनियोजित प्रेस प्रतिक्रियाएं जारी की जाती थीं।

डेविड वेल्स की दलील है कि तीसरी जर्मन संसद (थर्ड रीक) के दौरान ''टेन्डेजफिल्म'' के रूप में वर्गीकृत जर्मन सिनेमा से तात्पर्य उस फिल्म से था जो नाज़ीवाद की पहचान से जुड़े मजबूत विषयों और सिद्धान्तों को दिखाए और जिसे प्रचार मंत्रालय यदा–कदा अवसरों पर प्रसारित करना चाहता है। 20 मई, 1933 को, लोकप्रिय मनोरंजन और प्रचारमंत्री, जोसेफ गोएबल ने अपने एक शुरूआती भाषण में कहा था कि नाज़ी सैन्य बलों के हरावल दस्ते के रूप में जर्मन सिनेमा का यह कर्तव्य है कि विश्व पर विजय प्राप्त करे। डेविड रोबिन्सन कहते हैं कि गोएबल के मंत्रालय का सबसे महत्वपूर्ण औजार जर्मन की संसद का फिल्म चैम्बर था, जिसे फिल्मों के वित्त–पोषण का अधिकार था, जिसके जरिए वह फिल्मों की स्वतंत्रता और राज्य के फिल्म निर्माण पर पूरा नियंत्रण रखता था। यह चैम्बर फिल्म–निर्माण से पहले सभी पटकथाओं का निरीक्षण करता था और फिल्म निर्माण से जुड़े सभी कर्मियों पर नाजी पार्टी की सदस्यता थोपता था। लेनी रेफेन्स्ताल हिटलर के साथ गहरी नजदीकियों और उसके नाजी रिश्तों के चलते ''डेर ट्रम्फ डेस विलेनस'' (दी ट्रम्फ ऑफ विल, 1935) का निर्माण हुआ। जिसमें हिटलर को विशाल देवत्व स्वरूप दिया गया था। फिल्म में हिटलर को न्यूरेमबर्ग में आयोजित नाज़ी पार्टी की रैली में एक विशाल आयताकार मंच पर दिखाया गया। लेयर्ड क्लीन हिब्रान्ट का तर्क है कि यह विशाल आयताकार मंच जन–रक्षक के रूप में फ्यूहरर की छवि निखारने के लिए बनाया गया था।

सूसन सोनटैश का कथन है कि *दी ट्रम्फ ऑफ दी विल* फिल्म को वास्तविकता का चित्रण नहीं कहा जा सकता, इस फिल्म में छवि निखारने के लिए वास्तविकता गढ़ी गई है। नयूरेम्बर्ग में नाज़ी पार्टी की रैली (1934) फिल्म के लिए ही आयोजित की गई थी। दूसरे शब्दों में, फिल्म में ''वास्तविकता सच्चाई नहीं है'' आयोजकों ने फिल्मांकन में बेहद दखलंदाजी की थी। फिल्म की विषय–वस्तु में काट–छांट वास्तविकता दिखाने के लिये नहीं बल्कि कुछ प्रतीकात्मक संबंधो के साथ–साथ स्पष्ट तौर पर राजनीतिक उद्देश्यों को दर्शाने के लिए की गई थी। इस प्रकार यह फिल्म रैली के बार में दृष्टि–भ्रम पैदा करने के बजाय ''दस्तावेजी मिथक'' बन कर रह गयी है। एक और फिल्म ओलम्पिया (1938) अनन्य रूप से बर्लिन ओलम्पिक खेलों (1936) पर बनी थी। हिटलर ने इस अवसर को प्रचार के जरिए पूरी तरह भुनाने की कोशिश की थी। डेविड रॉबिन्सन की राय है कि ये दोनों ही फिल्में आश्चर्यजनक आडम्बर थीं, जिनमें नाज़ी नेता को एक भव्य देवता में बदल दिया गया था।

राज्य के दमन और उत्पीड़न की वजह से अनेक वामपंथी और यहूदी फिल्म निर्माता अन्य यूरोपीय देशों को पलायन कर गए। इनमें से कुछ अन्त में अमरीका पहुँचे। फिल्म निर्माण से जुड़े अनेक लोग जो जर्मनी में ही रह गए थे, उनकी यातना–गृहों में मौत हुई। जो थोड़े बहुत नाज़ी विरोधी कलाकार और टेक्नीशियन इस कत्ले–आम से बच गए थे, उन्होंने बाद में जर्मन फिल्म उद्योग के मनोरंजन क्षेत्र में काम किया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नाज़ीवाद और फासीवाद का जर्मन सिनेमा पर जो प्रभाव पड़ा वह उतना महत्वपूर्ण नहीं है। बल्कि इनकी वजह से 1933 में और उसके बाद 1940 में फिल्मों से जुड़ी हस्तियों का जो पलायन हुआ वह ज्यादा महत्वपूर्ण है। फिल्म उद्योग पर अत्यधिक सरकारी नियंत्रण और यहूदी विरोधी तथा साम्यवाद विरोधी प्रोपेगेन्डा की वजह से अनेक कलाकार दूसरे देशों को पलायन कर गए। इसे निश्चय ही जर्मन सिनेमा को नुक्सान पहुँचा होगा, क्योंकि यदि परिस्थितियाँ बेहतर होती तो ये कलाकार जर्मन सिनेमा को समृद्ध बनाते। जिन

देशों ने इन रिफ्यूजियों को स्वेच्छा से खुले दिल से शरण दी, उनके फिल्म उद्योग के लिए ये वरदान साबित हुए। सबसे ज्यादा फायदा हॉलीबुड को हुआ, अन्य देशों को भी उनकी किस्मत के हिसाब से लाभ पहुंचा।

बेनितो मुसोलिनी की यह उद्घोषणा कि जनमानस को प्रभावित करने वाला सबसे शक्तिशाली हथियार सिनेमा है, लेनिन के कथन की ही प्रतिध्वनि थी। 1926 में, सरकार ने न्यूजरीलों और डॉक्यूमेन्ट्री के निर्माण का राष्ट्रीयकरण करके इन्हें सरकार के प्रचार का माध्यम बना लिया। फासीवादी शासन (1922–43) के दौरान इटलियन सिनेमा को पारम्परिक तौर पर प्रचार की फिल्मों के तौर पर देखा जाता था। पीटर बोन्डानेला का तर्क है कि फासीवादी शासन के दौरान इटली में बनी फिल्मों पर शोध से यह पता चला है कि इस दौरान लगभग 700 फिल्में बनी थी लेकिन इनमें से कुछ को ही ''फासीवादी'' कहा जा सकता है, हालांकि बहुत सी फिल्मों की विषयवस्तु राष्ट्रवाद या देशभक्ति थी। यह दलील दी जाती है कि फ्रांसीवादियों ने मनोरंजन सिनेमा में बहुत कम दखल दिया। सरकार का दखल प्रथम दृष्टया आर्थिक था न कि सांस्कृतिक। इसका मुख्य उद्देश्य लड़खड़ाते फिल्म उद्योग को सहारा देना और उन्हें ऐसी फिल्में बनाने के लिए मदद देना था, जो बॉक्स ऑफिस पर हॉलीवुड की फिल्मों का मुकाबला कर सकें। ज्यॉफ्री नोवेल स्मिथ की कहते है कि फासीवादी दखल का सांस्कृतिक परिणाम तो शून्य निकला लेकिन यह सेन्शरशिप और राष्ट्र–विरोधी विचारधारा को हतोत्साहित करने के रूप में सामने आया। पीटर बोन्डानेला ने लिखा है कि फासीवादी सिनेमा विचारधारा के प्रचार–प्रसार का सिनेमा नहीं था, बल्कि इसने बॉलीवुड के मॉडल के आधार पर फलते–फूलते बॉक्स ऑफिस सिनेमा को बढ़ावा दिया, जिसमें स्टार सिस्टम, महत्वपूर्ण ऑटरडाइरेक्टर (अपनी विशिष्ट शैली के लिए निख्यात फिल्म निर्माता और निर्देशक) के समूह और शैली–प्रधान विषय–वस्तु शामिल थे। जाने–माने फिल्म समालोचक मोरोन्डो मोरान्डिनी का दावा है कि फासीवाद ने फिल्म कलाकारों और कथाकारों को सरकार की अनुमोदित नीतियों के अनुसार फिल्में बनाने के लिए राजी करने की बजाय सम–सामयिक सच्चाई से जुड़े सरकारों, जो केवल राजनेताओं का काम है, से उनका ध्यान हटाने का काम किया। हांलाकि यह सच है कि फासीवादी शासनकाल के दो दशक के दौरान केवल 5 प्रतिशत सरकारी फिल्में बनी थीं, लेकिन यह भी सच है कि अलसेन्द्रा ब्लासेत्ती और कामेरेनी जैसी हस्तियों की व्यक्तिगत फिल्मों को छोड़कर, इटालियन सिनेमा को आगे बढ़ाने का कार्य पलायनवादी फिल्मों या जैसा कि लूसिनो विस्कॉन्ती ने इन्हें ''मुर्दो का सिनेमा'' कहा है, ने किया। फिल्मों की शैली उस दौरान बनने वाली हॉलीबुड फिल्मों जैसी थी, सितारों की लोकप्रियता पर निर्भर थी, और शैली हास्यरस थी, फिल्मों में भाव–प्रवणता तथा परिधान एवं एतिहासिक विषयवस्तु की प्रधानता होती थी। कॉमेडी फिल्में आमतौर पर हल्की–फुल्की तथा अर्थहीन होती थीं इनका सच्चाई से कोई नाता नहीं होता था। इन फिल्मों के नायक ऐसे पात्र का अभिनय करते थे जिनके पास वेशुमार दौलत है, ऐशो–आराम की जिन्दगी जी रहे हैं और एक दूसरे से चमकदार ''व्हाइट टेलीफोनों'' पर बात करते हैं। ये फिल्में ''व्हाइट टेलीफोन'' शैली नाम से विख्यात हो गई थीं। इसके अलावा, प्रबुद्ध लोगों और जन–साधारण को सच्चाई से परे रखने तथा एक विशेष प्रकार की शैली वाले सिनेमा तक सीमित रखने की नीति फासीवादी राज्य के निरंकुश रवैये और सेन्सरशिप को दर्शाती है। साथ ही हम यह भी कह सकते हैं कि कितनी फिल्में बनीं यह महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि फिल्म निर्माण की सोच यानि नाज़ी आदर्शवाद के साथ विषयगत जुड़ाव ज्यादा प्रासंगिक है।

मुसोलिनी के फासीवादी शासन के अधीन बनी फिल्में सच्चाई से दूर थीं और इनका उद्देश्य इटली की एक शानदार छवि को बढ़ावा देना था। सरकार ने फिल्मों में अपराध और दुराचार के प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगाया था। ''व्हाइट लाइन'' जैसी नापसंद फिल्मों के खिलाफ प्रतिक्रिया के फलस्वरूप नव–यथार्थवादी फिल्में बनी। सुसान हैवर्ड को दलील है कि नव यथार्थवाद के उदय का कुछ श्रेय उन फिल्म निर्माताओं की जाता है जो अभिव्यक्ति की आजादी पर लगाए गए प्रतिबधों से नाखुश थे। नव–यथार्थवाद उस शैली के प्रत्युत्तर में उभरा जो कल्पना और स्वप्नलोक को तलाशती है तथा किसी भी प्रकार की सच्चाई से मीलों दूर है। यह युद्ध से पहले और फासीवादी सिनेमा की कृत्रिमता के खिलाफ एक आन्दोलन था।

अभ्यास : रिक्त स्थान भरें।

1. .... की दलील है कि एडोल्फ हिटलर और प्रचार मंत्री .... इस तथ्य से पूरी तरह वाकिफ थे कि लोगों की सोच को .... करने जबर्दस्त .... पैदा करने और दर्शकों को वशीभूत करने में सक्षम होती हैं और इसलिए इन दोनों का प्रचार संबंधी ध्येय पूरी तरह स्पष्ट था।
2. लेनी .... के हिटलर के साथ गहरी नजदीकियों और उसके नाज़ी रिश्तों के चलते ''डेर ट्रम्फ डेस विलेन्स'' (दी ट्रम्फ ऑफ बिल, 1935), जिसमें विशाल .... के जरिए हिटलर को देवत्व स्वरूप दिया गया था।
3. एक और फिल्म ....(1938) अनन्य रूप से बर्लिन खेलों (1936) पर बनी थी, हिटलर ने इस अवसर को प्रचार के जरिए पूरी तरह भुनाने की कोशिश की थी।
4. .... युद्ध से पहले और सिनेमा की कृत्रिमता के खिलाफ एक आन्दोलन था।

2.6 सैन्यवाद

प्रथम विश्व युद्ध के बाद उत्पन्न गम्भीर आर्थिक समस्याओं और सामाजिक अशांति ने न केवल इटली में फासीवाद और नाजीवाद को जन्म दिया बल्कि दुनिया के कुछ देशों में सैन्यवाद को भी जन्म दिया। जापान और पुर्तगाल ऐसे ही कुछ प्रमुख देश हैं, जहां इन ताकतों को बल मिला। नॉर्मन लोव के अनुसार एक पार्टी का निरंकुश शासन, विरोधियों को कैद में रखना और उनकी हत्या, गुप्त पुलिस और निर्दयता से दमन जैसी नाज़ीवाद और फासीवाद की कुछ विशेषताएं इन देशों में भी थी। इसके बावजूद ये शासन फासीवादी नहीं थे क्योंकि इटली और जर्मनी की एक महत्वपूर्ण विशेषता ''राष्ट्र के पुनर्जीवन के नाम पर जनता को लाभबन्द करना'' जैसा घटक यहाँ मौजूद नहीं था।

1860 के दशक से, जापान अपने विकास और आधुनिकीकरण में जुटा था। इसने चीन (1894—95) और रूस (1904—05) के साथ युद्ध में सफलता हासिल की। जापान ने 1902 में ब्रिटेन के साथ सैन्य संधि की। प्रथम विश्वयुद्ध में इसने ब्रिटेन का साथ दिया और इसने वर्साय की शान्ति संधि में भी भाग लिया। राजनीतिक रूप से, 1925 में वयस्क पुरूषों को मताधिकार देकर लोकतंत्र की ओर बढ़ने का संकेत दिया। लेकिन 1930 के दशक की शुरूआत में, सेना ने सरकार को अपने नियंत्रण में ले लिया।

जापान में सैन्य तानाशाही के कारण

- **अभिजात वर्ग लोकतंत्र के खिलाफ था** : जापान ने 1880 के दशक में लोकतंत्र की दिशा में शुरूआत की थी। सम्राट को बहुत से अधिकार प्राप्त थे और लोकतंत्र ने राजनीतिक व्यवस्था में अपनी जड़े नहीं जमाई थीं। सेना और रूढ़िवादी काफी प्रभावशाली थे और वे सरकार के आलोचक बन गए थे।
- **व्यापार में आई तेजी का अंत** : युद्ध के वर्षों के दौरान व्यापार में आई तेजी 1921 में समाप्त हो गई। बेरोजगारी और औद्योगिक अशान्ति नजर आने लगी थी। धान की जबर्दस्त पैदावार ने चावल की कीमत गिरा दी थी। जब किसानों और औद्योगिक कामगारों ने संगठित होने का प्रयास किया तो शासन ने उन्हें दबा दिया।
- **राजनीतिक भ्रष्टाचार** : अनेक राजनेता भ्रष्ट थे और कारोबारियों से घूस लेते थे। संसद की साख गिरने लगी थी।
- **1929 की जबर्दस्त आर्थिक मंदी** : 1929 में अमरीकी शेयर बाजार ''वाल स्ट्रीट'' में बेहद गिरावट के कारण जापान की अर्थव्यवस्था को गहरा झटका लगा। जापान अमरीका को भारी मात्रा में कच्चे रेशम का निर्यात करता था। आर्थिक मंदी के चलते अमरीका को कच्चे रेशम के निर्यात में काफी गिरावट आ गई। इससे

जापान के किसानों की हालत और भी खराब हो गई। सेना के बहुत से जवान किसान परिवारों से थे, इसकी वजह से सेना कमजोर संसदीय सरकार से नाराज हो गई।

- **मंचूरिया में हालात** : जापान के चीन के एक बड़े प्रान्त, मंचूरिया के साथ व्यापारिक रिश्ते थे और उसने यहाँ भारी निवेश किया था। चीन जापान के व्यापार और कारोबार को मिटाना चाहता था। अपने आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए, जापानी सेना ने सरकार से अनुमति लिए बिना 1931 में मंचूरिया पर कब्जा कर लिया। सैन्य अधिकारियों द्वारा प्रधानमंत्री इनुकी की हत्या कर दिए जाने से सैन्य बलों के हौसले और बढ़ गए। इसके बाद देश चलाने में सेना का वर्चस्व हो गया। फासीवादी इटली और नाज़ीवादी जर्मनी ने जैसी नीतियाँ अपनाई थीं, वैसी ही नीतियों का अनुसरण सेना ने किया। उन्होंने साम्यवादियों और विरोधियों का निर्दयता से दमन किया और उनकी हत्या की। शिक्षा पर सख्ती से नियंत्रण किया, अस्त्र–शस्त्र के भण्डरों में वृद्धि की और आक्रमक विदेश नीति अपनाकर जापानी सामान के निर्यात के लिए बाजारों की तलाश में भू–भागों पर कब्जा किया। 1931 में जापान का चीन पर आक्रमण और दूसरे विश्व युद्ध में सक्रिय भागीदारी इसके उदाहरण हैं।

स्पेन में, जनरल प्राइमो दे रिवेरा ने 1923 में कमजोर संसदीय सरकार का तख्ता पलट दिया। उसने एक सहृदय तानाशाह की तरह 1930 तक शासन किया। 1930 में विश्व आर्थिक मंदी के कारण उसकी सरकार का पतन हो गया। सम्राट अलफान्सो XIII ने 1931 में गद्दी छोड़ दी। एक के बाद एक गणतंत्र सरकारें स्थिति संभालने में नाकाम रहीं और 1936 में गृह युद्ध शुरू हो गया। जनरल फ्रांको के नेतृत्व में दक्षिण–पंथी राष्ट्रवादी ताकतें वामपंथी गणतंत्र के खिलाफ सफल हुई और 1939 में फ्रांको सरकार का प्रमुख बना और उसने 1975 तक शासन किया। पुर्तगाल में भी वामपंथी तानाशाही शासन था – एन्टोनिओं सालाजार ने 1932 से 1963 तक शासन किया।

अन्त में हम यह कह सकते है कि फासीवाद/नाज़ीवाद/सैन्यवाद ऐसे क्रान्ति–विरोधी आन्दोलन थे, जिन्होंने इतिहास की भावी दिशा पर अत्यधिक प्रभाव डाला। इन आन्दोलनों ने न केवल अपने देशों की नीतियों को नया स्वरूप दिया, बल्कि विश्व इतिहास के पटल पर भी अमिट गप छोड़ी।

2.7 संदर्भ ग्रंथ

- ब्रिग्स आसा एण्ड क्लेविन पैट्रिसिया : मॉडर्न यूरोप–1789–प्रेजेन्ट, पीयर्सन एजुकेशन लि0, दिल्ली, 2003।
- लोव नॉर्मन–मास्टरिंग मॉडर्न वर्ल्ड हिस्ट्री, II एडिशन, मैक्मिलन, लन्दन, 1989।
- पैक्स्टन, रॉबर्ट ओ0, यूरोप इन दी ट्वेंटियथ सेंचुरी, III एडिशन, हारकोर्ट ब्रास एन्ड कम्पनी, फ्लोरिडा, 1997।
- ली, स्टीफन जे0 – आसपैक्ट्स ऑफ यूरोपियन हिस्ट्री, 1789–1980, रुटलेग, लन्दन, 1982।
- ली0 स्टीफन जे0 – हिटलर एण्ड नाजी जर्मनी, रूटलेग, लन्दन, 1998।
- फैरेल एन0 – मुसोलिनी – ए न्यू लाइफ, फीनिक्स, 2005।
- फेलिस आर0डे0 – इन्टरप्रिटेशन्स ऑफ फासिज्म, हारवर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1977।

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- मार्विक, आर्थर, ब्रिटेन इन दी सेंचुरी ऑफ टोटल वार, बोस्टन, 1968।
- हॉब्स बॉम0ई0जे0 – दी एज ऑफ एक्सट्रीम्स, दी शार्ट ट्वेन्टीयथ सेंचुरी, 1914–1991 (1984)।
- मैरीमेन जॉन – ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न यूरोप, वॉल्यूम II, डब्ल्यू डब्ल्यू नार्टन एण्ड कम्पनी, न्यूयॉर्क/लन्दन, 1996।
- नॉवेल स्मिथ, ज्यॉफ्री ईडी – दी ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ वर्ल्ड सिनेमा, ओ0यू0पी0, न्यूयार्क, 1996।
- वेल्स0 डेविड, प्रोपेगेन्डा एण्ड जर्मन सिनेमा 1933–1945, ओयूपी, न्यूयॉर्क, 1983।

- अहलब्रांट, विलियम लेयर्ड क्लीन–ट्वेन्टियथ सेन्चुरी यूरोपीयन हिस्ट्री, वेस्ट पब्लिशिंग कम्पनी यू0एस0ए0 1993।
- नेम्स जिल ईडी – एन इल्ट्रोडक्शन टू फिल्म स्टडीज, थर्ड एडिशन, रूटलेग, लन्दन, 2003।
- रॉबिन्सन, डेविड, वर्ल्ड सिनेमा, 1895–1980, स्टीन, 1981।
- रेन्सलर, एरिक–जर्मन फिल्म एण्ड लिट्रेचर–एडाप्टशेन्स एण्ड ट्रन्सफॉर्मेशन्स, न्यूयार्क, 1986।
- बोन्डानेला, पीटर–दी फिल्म्स ऑफ रॉबेर्टो रोसेलिनी, कैम्बिज युनिवार्सिटी प्रेस, 1993।
- हैवर्ड, सुसान, की – कॉन्सेप्टस इन सिनेमा स्टडीज (फर्स्ट पब्लिश्ड बाई रूटलेग लन्दन) चेन्नई में पहला भारतीय संस्करण – 2004।
- लोर्दासी, कॉस्टेंटिन – कम्परेटिव फासिस्ट स्टडीज, न्यू पर्सपैक्टिव्ज, रूटलेग, न्यूयार्क, 2010।

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. आप फासीवाद शब्द से क्या समझते है ? इससे संबंधित ऐतिहासिक प्रवृत्ति पर चर्चा करें।
2. फासीवाद और नाजीवाद के बीच समानताएं और अंतर पर प्रकाश डालें।
3. इटली और जर्मनी में क्रमशः फासीवाद तथा नाजीवाद द्वारा प्रचार तंत्र के उपयोग पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
4. सैन्यवाद पर एक निबंध लिखे।

इकाई तीन : द्वितीय विश्व–युद्ध

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्‌देश्य

3.3 द्वितीय विश्व युद्ध के कारण

3.3.1 वसार्य की संधि

3.3.2 1930 की असमान्य आर्थिक मंदी

3.3.3 जापान में बढता सैन्यवाद

3.3.4 विचारधारा से जुड़े मुद्दे

3.3.5 युद्ध के लिए हिटलर जिम्मेदार

3.3.6 तुष्टीकरण की नीति

3.3.7 राष्ट्र संघ की नाकामी

3.3.8 प्रथम विश्व युद्ध के बाद विजेता राष्ट्रों द्वारा भू–भागों का विवेकहीन बंटवारा

3.4 ऐतिहासिक अध्ययन

3.5 दूसरे विश्व युद्ध की दिशा

3.5.1 शुरूआती चालें : सितम्बर 1939 से दिसम्बर 1940

3.5.2 धुरी राष्ट्रों ने युद्ध का दायरा बढ़ाया : 1941 से 1942 की ग्रीष्म ऋतु तक

3.5.3 आक्रमणों पर नियंत्रण : 1942 की ग्रीष्म ऋतु से 1943 की ग्रीष्म ऋतु तक

3.5.4 धुरी राष्ट्रों की पराजय : जुलाई 1943 से अगस्त 1945

3.6 युद्ध के परिणाम

3.6.1 जन–धन की अपार हानि

3.6.2 लोगों का बलपूर्वक विस्थापन

3.6.3 उपनिवेश–विरोधी राष्ट्रवादी आन्दोलनों को बल मिला

3.6.4 शक्ति–संतुलन में बदलाव

3.6.5 सर्व–निहित शांति समझौता न होना

3.6.6 अफ्रीका और मध्यपूर्व में आजादी के लिए बढ़ती मांग

3.6.7 संस्कृति पर युद्ध का प्रभाव

3.6.8 संयुक्त राष्ट्र संघ (यूएनओ) की स्थापना

3.7 संदर्भ ग्रन्थ

3.8 उपयोगी पाठ्‌य सामग्री

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

दूसरा विश्व–युद्ध 20वीं शताब्दी के सर्वाधिक विनाशकारी युद्धों में से एक था। इस युद्ध में जन–धन की अपार हानि हुई। इस युद्ध ने विश्व व्यवस्था को बदल दिया था। युद्ध के बाद दो महाशक्तियों के रूप में अमेरीका और रूस का प्रादुर्भाव हुआ और विश्व इन दो महाशक्तियों के बीच बँट गया। इस यूनिट में, हम दूसरे विश्व युद्ध से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा करने जा रहे हैं। पाठकों को इस दूसरे विश्व–युद्ध की पृष्ठभूमि तथा मूल कारणों से अवगत कराया जाएगा। इससे आप बीसवीं शाताब्दी के एक सबसे ज्यादा विनाशकारी युद्ध के विभिन्न कारणों के सापेक्ष महत्व को समझ सकेंगे और इनकी समीक्षा कर सकेंगे। इस यूनिट में, दूसरे विश्व–युद्ध के मूल कारणों से जुड़े इतिहास–लेखन पर भी परिचर्चा की गई है ताकि इतिहास–लेखन की दृष्टि से विचार–विमर्श के संदर्भ में विभिन्न प्रवृत्तियों का समझा जा सके। इसके अतिरिक्त, विद्यार्थियों को युद्ध के चरणों के बारे में भी जानकारी उपलब्ध कराई जाएगी। 1939 से 1945 तक लगातार चले इस युद्ध में अलग–अलग युद्ध स्थलों पर अनेक घटनाएं घटीं। विद्यार्थियों को इस युद्ध के तथ्यात्मक विवरणों से अवगत कराने के लिए इन घटनाओं के बारे में संक्षिप्त ब्यौरा दिया गया है।

साथ ही, इस युद्ध के निकट–गामी और दूर–गामी परिणामों पर भी विचार–विमर्श किया गया है और नजर डाली गयी है। भावी घटनाक्रमों को इस युद्ध ने किस प्रकार बदला, इस दृष्टिकोण से भी इस युद्ध के महत्व को रेखांकित किया गया है।

3.2 उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन के बाद, आप

1. दूसरे विश्व युद्ध के मूल में निहित मुद्दों और इस युद्ध के किए जिम्मेदार विभिन्न कारणों के सापेक्ष महत्व को समझ सकेंगे।
2. युद्ध के प्रारम्भ से लेकर अंत तक इसके चरणों को समझ सकेंगे। इसके लिए, युद्ध की दिशा को प्रमाणित करने वाले विभिन्न घटनाक्रमों को स्पष्ट किया गया है।
3. दूसरे विश्व युद्ध के आसन्न और दूरगामी परिणामों को भली–भाँति समझ सकेंगे और युद्ध की विभीषिका को जान पाएंगे तथा यह समझ पायेंगे कि इस युद्ध ने किस प्रकार तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य को बदल दिया था।
4. दूसरा विश्व–युद्ध शुरू करने में जर्मनी के नाज़ी तानाशाह हिटलर की भूमिका का विश्लेषण कर सकेंगे।
5. दूसरे विश्व–युद्ध से जुड़े इतिहास–लेखन को समझ सकेंगे।

3.3 द्वितीय विश्व युद्ध के कारण

दूसरे विश्व युद्ध के पीछे कोई एक कारण नहीं था। दूसरे विश्व युद्ध के मूल में अनेक कारण थे। इन कारणों पर नीचे चर्चा की गई है।

3.3.1 वसार्य की संधि

इस संधि पर प्रथम विश्व युद्ध के बाद हस्ताक्षर किए गए थे और इस संधि को दूसरे विश्वयुद्ध का कारण माना जाता है। यह कहा जाता है कि विजेता राष्ट्रों ने संधि पर हस्ताक्षर के दौरान जो दुर्व्यवहार किया था उससे जर्मनी के सम्मान को ठेस पहुँची थी। विजेता राष्ट्रों द्वारा जर्मनी के भू–भागों पर कब्जा, जर्मनी के सैन्य बल को सीमित करना और प्रथम विश्व युद्ध के लिए जर्मनी को जिम्मेदार ठहराने वाला ''अपराध संबंधी उपबंध (गिल्ट क्लोंज)'' इन सभी ने जर्मनी के लोगों में मित्र राष्ट्रों के प्रति नफरत पैदा कर दी थी। इस प्रकार, जापान और इटली का भी यह मानना था कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद मित्र सेनाओं ने उन्हें प्राप्य हक नहीं

दिया था। विभिन्न देशों के बीच शान्ति बनाए रखने के लिए, वर्साय संधि की शर्तो के अनुसार राष्ट्र संघ की स्थापना की गई थी, लेकिन यह कारगर साबित नहीं हुआ। हिटलर ने कई बार वर्साय संधि की शर्तों का उल्लंघन किया, लेकिन राष्ट्र संघ मूक दर्शक बना रहा।

3.3.2 1930 की असमान्य आर्थिक मंदी

29 अक्टूबर, 1929 को अमरीका के शेयर बाजार, वाल स्ट्रीट में बेतहाशा गिरावट आई और इसी के साथ दुनिया में आर्थिक संकट अथवा असामान्य आर्थिक मंदी का दौर शुरू हो गया था। इसे भी दूसरे विश्व युद्ध के लिए हालातों को बिगाड़ने वाला माना जाता है। वर्साय की संधि की आर्थिक शर्तों ने पहले ही जर्मन अर्थ–व्यवस्था की कमर तोड़ दी थी। युद्ध से हुए नुक्सान की भरपाई का हर्जाना तय करने वाले आयोग (1921) ने नुक्सान की भरपाई के लिए 1360 करोड़ मार्क्स (जर्मन मुद्रा) का जुर्माना तय किया था। इसने जर्मनी की आर्थिक हालत और ज्यादा खराब कर दी थी। इसके अलावा यूरोप के देशों को युद्ध हर्जाना न देने के जर्मनी के फैसले से उनके आर्थिक कार्यक्रमों को झटका लगा था। आर्थिक मंदी के कारण जर्मनी में वीमर गणतंत्र का पतन हो गया था। राजनीतिक अस्थिरता, बढ़ती बेरोजगारी, रोजगार के कम होते अवसर, लोगों की गिरती खरीद क्षमता, और कामगारों में बढ़ती अशान्ति के चलते एक मजबूत सरकार की मांग उठने लगी थी। हिटलर ने इस अवसर का फायदा उठाया और सत्ता में आ गया। उद्योगपति मजदूर संघों की शक्तियों को समाप्त करना चाहते थे और बाहरी देशों के मुकाबले से अपने–अपने उद्योगों का संरक्षण चाहते थे, इसलिए उन्होंने भी हिटलर का समर्थन किया।

3.3.3 जापान में बढता सैन्यवाद

असामान्य आर्थिक मंदी ने जापान की अर्थव्यवस्था को भी उतना ही प्रभावित किया। बढ़ती बेरोजगारी, निर्यात में गिरावट, ग्रामीण क्षेत्रों में नाराजगी ने राजनीतिक अस्थिरता का माहौल पैदा कर दिया था। असैन्य (सिविल) सरकार की नीतियों के कारण सरकार से जनता का विश्वास उठने लगा था। इसके चलते सैन्य संगठन की शक्तियाँ बढ़ गई थीं और सरकार इस पर नियंत्रण पाने में असफल रही थी। 1931 में जापान ने मंचूरिया पर कब्जा कर लिया और बाद में चीन के साथ इसका संघर्ष शुरू हो गया। दूसरे विश्व युद्ध में शामिल होकर जापान ने 7 दिसम्बर, 1941 को अमरीका के पर्ल हार्बर पर आक्रमण कर दिया।

3.3.4 विचारधारा से जुड़े मुद्दे

युद्ध के मूल के रूप में देखा जाए तो विचारधारा से जुड़े मुद्दों ने भी इसमें अहम भूमिका निभाई। जर्मनी और इटली में फ्रांसीवादी ताकतों और जापान में सैन्य ताकतों ने उनके अपने–अपने समाज का सामान्य स्वरूप ही बदल दिया था। उनका उद्देश्य अन्य राज्यों पर कब्जा करके अपना भोगौलिक विस्तार करना बन गया था। रूस में बोल्शेविक विश्व क्रान्ति और दुनिया के कामगारों को एकजुट करने का सपना देख रहे थे। इसके चलते पश्चिम के देश रूस की नीयत के प्रति आशंकित हो गए थे। फ्रांस, ब्रिटेन और इटली में 1924 में रूस को मान्यता दी और संयुक्त राज्य अमरीका ने 1933 में। दो प्रकार की तानाशाही, एक तो रूस में साम्यवाद और इटली, जर्मनी, जापान, स्पेन तथा पुर्तगाल में फासीवाद के उदय से नागरिक समाज पुनः व्यवस्थित होने लगा। इसके अलावा ब्रिटेन और फ्रांस के कुछ प्रभावशाली वर्गों का यह मानना था कि मजबूत जर्मनी साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए एक दीवार की तरह काम करेगा।

3.3.5 युद्ध के लिए हिटलर जिम्मेदार

स्टीफन जे0 ली0 ने दूसरे विश्व युद्ध के शुरूआती चरण को ''हिटलर का युद्ध'' कहा है। हिटलर जर्मनी को फिर से एक महान शक्ति बनाना और इसके खोये हुए सम्मान को वापस लाना चाहता था। और वर्साय की अपमानजनक संधि को नष्ट करके, सैन्य बलों को मजबूत बनाकर, सार तथा पोलिश गलियारे को फिर से हासिल करके, चेकोस्लोवाकिया तथा पोलैन्ड, जहाँ वर्साय की संधि के बाद भारी संख्या में जर्मन अल्पसंख्यकों को बसा दिया गया था, के भू–भागों पर कब्जा करके इन सभी जर्मनों को रीख के अधिशासन में ला कर ही ऐसा किया जा सकता था।

अधिकांश इतिहासकारों का मानना है कि ये कब्जे पूरे पोलैन्ड और चेकोस्लोवाकिया तथा यूराल पर्वतमाला के पूर्व तक रूस को हड़पने की एक बड़ी योजना की केवल शुरूआत भर थे। हिटलर इसके जरिये जीवनयापन के लिए जमीन हासिल कर लेगा, जिससे जर्मन लोगों को अनाज मिलेगा और अधिशेष जर्मन आबादी को पूर्वी यूरोप में रहने के लिए जगह मिलेगी। जबकि ए0जे0पी0 टेलर की दलील है कि हिटलर कभी भी एक बड़ा युद्ध नहीं चाहता था वह केवल पोलैन्ड तक ही युद्ध को सीमित रखना चाहता था।

हिटलर की दीर्घ कालिक मंशा कुछ भी रही हो, वह विदेश नीति के मामले में शुरूआत में सफल रहा था। जर्मनी ने विश्व निशस्त्रीकरण सम्मेलन में भाग नहीं लिया और राष्ट्र संघ का भी बहिष्कार किया। उसने पोलैन्ड के बीच अनाक्रमण संधि (1931) पर हस्ताक्षर किए। उसने जनमत संग्रह (1935) के द्वारा सार को वापस जर्मनी में मिला लिया। उसने अनिवार्य सैन्य भर्ती की फिर से शुरूआत की और वर्साय संधि में जर्मनी द्वारा रखी जाने वाली सैनिकों की संख्या से संबंधित संधि की शर्तों की अवमानना करना शुरू कर दिया। मार्च, 1936 में, हिटलर ने राइन लैंड के असैन्यीकृत क्षेत्र में सेना तैनात कर दी। बाद में 1938 में, हिटलर ने मुसोलिनी के इटली के साथ रोम–बर्लिन धुरी पर हस्ताक्षर तथा जापान के साथ एन्टी–कॉमिन्टर्न पैक्ट पर हस्ताक्षर (1937 में इटली भी इसमें शामिल हो गया) करके जर्मनी की स्थिति को और मजबूत किया। 1938 में, उसने ऑस्ट्रिया पर आक्रमण किया और ऑस्ट्रिया के साथ एन्स्क्लस (जर्मनी और ऑस्ट्रिया के बीच संयोजन को व्यक्त करने वाला एक शब्द) एक वास्तविकता बन गया। मित्र राष्ट्रों द्वारा अपनायी गयी तुष्टीकरण की नीति की वजह से भी हिटलर ने वर्साय की संधि का अनेक बार उल्लंघन किया।

3.3.6 तुष्टीकरण की नीति

ब्रिटेन और फ्रांस ने जर्मनी, इटली और जापान जैसे आक्रामक देशों के साथ युद्ध से बचने के लिए तुष्टीकरण की नीति अपनायी। इसके लिए वे उन सभी मांगों को मानने पर सहमत थे, जो बहुत ज्यादा अनुचित न हों। मंचूरिया और अबिसीनिया को हड़पना, जर्मन सशस्त्रीकरण तथा राइनलैंड पर फिर से कब्जा, कुछ ऐसी घटनाएं थीं जिन्हें मित्र राष्ट्रों ने मान लिया था। एक तरफ, न तो ब्रिटेन और ना ही फ्रांस ने स्पेन के गृह युद्ध में कोई हस्तक्षेप किया, वही दूसरी तरफ, जर्मनी और इटली ने स्पेन के जनरल फ्रांको को सक्रिय रूप से सहयोग दिया। हालांकि ब्रिटेन और फ्रांस दोनों ने जर्मनी और आस्ट्रिया के बीच संयोजन (एन्स्कलस) पर जबरदस्त विरोध (1938) जताया लेकिन ब्रिटेन में कई लोग इसे एक जर्मन समूह के दूसरे जर्मन समूह के साथ स्वाभाविक मिलन के रूप में देख रहे थे। 29 सितम्बर, 1938 को तुष्टिकरण की यह नीति तब अपने चरम पर पहुंच गई जब ब्रिटेन और फ्रांस ने युद्ध से बचने की अधीरता में सुडेटन लैंड को उपहार स्वरूप भेंट कर दिया। जर्मनी के साथ–साथ इटली, ब्रिटेन और फ्रांस ने चेकोस्लोवाकिया के शेष भू–भाग की सुरक्षा की गांरटी दी। इसके बावजूद, हिटलर की और ज्यादा जमीन हड़पने की प्यास नहीं बुझी। परिणामस्वरूप मार्च, 1939 में, उसने चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया और बचे–खुचे भू–भाग को भी हड़प लिया अपैल, 1939 में, हिटलर ने डेन्जिंग लौटाने की मांग की, पोलिश गलियारे से आवागमन के लिए रेल तथा सड़क मार्ग देने की मांग भी उठाई। हालांकि डेन्जिंग की ज्यादातर आबादी जर्मन भाषी थी, लेकिन जर्मनी की यह मांग उसके आक्रमण का

संकेत दे रही थी। इस बीच, हिटलर ने सोवियत रूस के साथ एक अनाक्रमण संधि 24 अगस्त 1939 पर हस्ताक्षर किए जिसमें पोलैन्ड के विभाजन पर सोवियत रूस और जर्मनी के बीच सहमति बनी थी। हिटलर का मानना था कि यदि रूस तटस्थ रहता है तो ब्रिटेन और फ्रांस पोलैन्ड में हस्तक्षेप का जोखिम नहीं उठायेंगे। हिटलर की फौजी टुकड़ियों ने एक सितम्बर, 1934 को पोलैन्ड पर आक्रमण किया और इंग्लैंड ने 3 सितम्बर, 1939 को जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

3.3.7 राष्ट्र संघ की नाकामी

प्रथम विश्व युद्ध के बाद विश्व में शान्ति बनाये रखने के लिये स्थापित किया गया राष्ट्र संघ अनेक मुद्दों से निपटने में नाकाम रहा। मंचूरिया पर जापान के कब्जे तथा इटली द्वारा अबिसीनिया को हड़पने और जर्मनी के चेकोस्लोवाकिया एवं आस्ट्रिया पर कब्जे को रोकने में राष्ट्र संघ असहाय साबित हुआ। विभिन्न संघर्षरत समूहों के बीच विवादों को हल करने में इस अन्तर्राष्ट्रीय निकाय की असफलता ने ऐसे हांलात पैदा कर दिए कि युद्ध अपरिहार्य हो गया।

3.3.8 प्रथम विश्व युद्ध के बाद विजेता राष्ट्रों द्वारा भू–भागों का विवेकहीन बंटवारा

दूसरे विश्व युद्ध का एक दूसरा कारण यह था कि वर्साय में विजता राष्ट्रों ने भू–भागों का इस प्रकार बंटवारा किया कि एक नस्ल और संस्कृति वाले लोगों को ऐसे देश के अधीन रखा गया, जिसकी संस्कृति इन लोगों से बिलकुल अलग थी। ये लोग अपनी नस्ल के लोगों के साथ विलय की मांग कर रहे थे। दक्षिण पूर्वी यूरोप के बाल्कानीकरण (किसी एक क्षेत्र को ऐसे छोटे–छोटे टुकड़ों में बांटना जहां एक संस्कृति और नस्ल के लोग दूसरी संस्कृति और नस्ल के खिलाफ हों) तेजी से जारी रहा और हाल ही में बनाए गए राज्यों मे जर्मन अल्पसंख्यकों को शामिल किया गया। यह एक ऐसी वजह थी जो भविष्य में जर्मनी की हठधर्मिता का कारण बनी।

3.4 ऐतिहासिक अध्ययन

युद्ध के लिए किसे दोषी ठहराया जाए ? मर्टिन गिलबर्ट की राय थी कि हिटलर का उद्देश्य प्रथम विश्व युद्ध में मिली पराजय के अपमान को धोना था और इसके लिए उसका मानना था कि किसी एक युद्ध में मिली पराजय का इलाज अगले युद्ध में विजय है। हयूज ट्रेवर रोवर की दलील है कि हिटलर ने प्रारम्भ से ही एक, बड़े युद्ध की योजना बनाई थी, वह साम्यवाद से नफरत करता था और इस पर नियंत्रण पाना चाहता था और इसे केवल एक बड़े युद्ध से हासिल किया जा सकता था तथा सोवियत रूस पर आक्रमण से पहले पोलैन्ड की तबाही एक अनिवार्यता थी। जब तक पोलैन्ड पर कब्जा नहीं हो जाता तब तक रूस को तटस्थ बनाए रखने और रूस की आशंकाओं को शांत करने के लिए ही उसने सोवियत रूस के साथ अनाक्रमण संधि की थी। इस सिद्धान्त के लिए सबूत के तौर पर हिटलर की पुस्तक मेन काम्फ (मेरा संघर्ष) तथा 1937 में आयोजित एक बैठक के बारे में हिटलर के एडजूटेन्ट कर्नल होस बैच द्वारा तैयार की गई समरी, ''होस बैच मेमोंरेन्डम'' के कथनों को प्रस्तुत किया गया है। इस बैठक में हिटलर ने अपने सैन्य अधिकारियों को अपनी रणनीति की जानकारी दी थी।

ट्रेवर रोवर का तर्क है कि ''मैन काम्फ'' में जर्मन विदेश नीति के बारे में हिटलर की योजना का विवरण दिया गया है। जे0 नोआक्स और जी0 प्रीधम का कहना है कि 1928 में हिटलर द्वारा लिखे गए लेख ''ज्यूआइटस बुक'' में जर्मनी की विदेश नीत के बारे में हिटलर की पाँच चरण वाली योजना का ब्यौरा दिया गया है। पहले चरण में उल्लेख है कि वर्साय संधि में निहित प्रतिबंधों और राइन लैंड के विसैन्यीकरण की शर्त का बहिष्कार किया जाएगा। दूसरे चरण में, पूर्वी यूरोप में गठबंधनों से संबंधित फ्रांस की योजना का अन्त

किया जाएगा और आस्ट्रिया, चेकोस्लोवाकिया तथा पोलैन्ड पर जर्मनी का नियंत्रण स्थापित किया जायेगा। तीसरे चरण में फ्रांस को जीत लिया जाएगा और चौथे चरण में रूस पर आक्रमण होगा तथा पांचवे चरण में विश्व आधिपत्य के लिए और सम्भवतः ब्रिटेन और अमरीका के खिलाफ संघर्ष किया जाएगा। जेम्स स्टीफन ली कहते है कि वास्तव में सिल–सिलेवार हुआ भी ऐसा ही। वर्साय की संधि में निहित निशस्त्रीकरण के प्रावधनों को 1934 और 1935 के बीच उलट दिया गया और 1936 में राइनलैण्ड में फिर से सेना तैनात कर दी गई। 1938 में आस्ट्रिया को छीन लिया गया तथा इसके बाद मार्च 1939 में चेकोस्लोवाकिया के सुडेटलैन्ड और बोहेमिया को हड़प लिया गया एवं सितम्बर, 1939 में पोलैन्ड पर कब्जा कर लिया गया। 1940 में फ्रांस पर आक्रमण किया गया तथा 1941 में बारबोसा अभियान शुरू किया गया और 1942 में हिटलर ने सयुंक्त राज्य अमरीका के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। ली का तर्क है कि ये घटनाक्रम ''ज्यूआइटिस बुक'' में वर्णित कार्यक्रम के अनुसार ही हैं, इसलिये पुख्ता तौर पर यह कहा जा सकता है कि यह सब कुछ पूर्व नियोजित था। अन्य इतिहासकारों की दलील है कि तुष्टिकरण की नीति युद्ध के लिये जिम्मेदार थी। एलन बुलक का तर्क है कि सफलता और प्रतिरोध की कमी ने हिटलर को आगे बढ़ने तथा और ज्यादा बड़े जोखिम उठाने का साहस दिया।

ए0जे0पी0 टेलर मानते हैं कि हिटलर की मंशा कोई बड़ा युद्ध छेड़ने की नहीं थी। उसे उम्मीद थी की ज्यादा से ज्यादा पोलेन्ड के साथ एक छोटा सा युद्ध लड़ना पड़ेगा। टेलर कहते हैं कि हिटलर एक असाधारण अवसरवादी था। उसने तुष्टिकर्ताओं की गलतियों और 1939 में चेकोस्लोवाकिया के संकट जैसे अवसरों का फायदा उठाया। चेकोस्लोवाकिया पर कब्जा किसी दीर्घकालिक अशुभ योजना का परिणााम नहीं था, यह तो स्लोवाकिया में घट रहे घटनाक्रमों का एक अप्रत्याशित प्रतिफल था। टेलर का मानना है कि हिटलर के पास विश्व पर आक्रमण करने की कोई रणनीति नहीं थी बल्कि उसका अनुमान था कि दूसरे देश अवसर देंगे और वह इसका फायदा उठाएगा। हिटलर ने तत्कालीन परिस्थितियों का गलत आकलन किया और यह मान लिया कि उसके पोलैन्ड पर आक्रमण के बाद भी ब्रिटेन और फ्रांस पोलैन्ड को सैन्य सहयोग नहीं देंगे। अतः टेलर के अनुसार, हिटलर पोलैन्ड द्वारा उसकी मंशा को भाप लिए जाने के बाद, ही लगभग संयोगवश युद्ध के लिए लालायित हुआ था।

टी0डब्ल्यू0 मेशन ने एक के बाद एक कूटनीतिक कदमों पर बहुत ज्यादा ध्यान केन्द्रित करने के लिए टेलर की आलोचना की है। स्टीफन जेम्स ली कहते हैं कि कूटनीतिक घटनाक्रमों पर ध्यान देने से दो ऐसी महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों की अनदेखी हुई है, जिन्होंने हिटलर की विदेशी नीति को प्रभावित किया था। पहली जर्मन इतिहासकारों ने एक तरफ तो हिटलर के उद्देश्यों और दूसरी तरफ दूसरे रीक तथा बीमर गणतंत्र के उद्देश्यों के बीच पर्याप्त निरन्तरता को उजागर किया है। एफ0 फिशर की दलील है कि जर्मनी तो नाज़ी काल के पहले से ही विस्तारवादी रास्ते पर चल निकला था और हिटलर ने इसे बढ़ा–चढ़ा कर लेबेनस्रॉम (समानता और उदारता) के सिद्धान्त का रूप दे दिया था। हिटलर की विदेश नीति पर दूसरा प्रभाव घरेलू अर्थव्यवस्था का पड़ा था। समकालीन इतिहासकारों का दावा है कि जर्मनी की आर्थिक परेशानियों और निष्पादन तथा यूरोप में विस्तारवादी नीति की तलाश के बीच सीधा सम्बन्ध हैं। सैबूर का तर्क है कि ''ब्लिट्जक्रीग'' (ब्रिटेन पर जर्मनी का हवाई हमला) आर्थिक के साथ–साथ सैन्य रणनीति था। इस रणनीति का उद्देश्य जर्मनी को फिर से युद्ध के साज–सामान से इस तरीके से लैस करना था कि इस कार्यवाही से उसके उपभोक्ताओं में कोई नाराजगी भी न बढ़े और सत्ताधारी वर्ग में परिवर्तन के विरोधियों को जनता का समर्थन भी न मिले।

जर्मन इतिहासकार जोएकिम फेस्ट का तर्क है कि हिटलर हालात ऐसे बना देना चाहता था कि पश्चिमी देशों की तरफ से किसी भी सुलह–समझौते की इच्छा का परिणाम शून्य निकले। उसका प्रत्येक कृत्य युद्ध की तैयारी था।

अभ्यास : सही या गलत

1. प्रथम विश्व युद्ध के बाद हस्ताक्षरित नियुली की संधि को दूसरे विश्वयुद्ध के लिए जिम्मेदार माना जाता है।

2. विश्व में शांति बनाए रखने के लिए प्रथम विश्व युद्ध के बाद स्थापित संयुक्त राष्ट्र संघ (यू0एन0ओ0) अनेक मुद्दों से निपटने में असफल रहा।

3. क्रिस्टोफर बायली का तर्क है कि हिटलर एक बड़ा युद्ध बिलकुल नहीं चाहता था और उसने केवल पोलैन्ड के खिलाफ एक सीमित युद्ध की तैयारी की थी।

4. लेवेनस्रॉम शब्द जर्मनी और आस्ट्रिया के बीच संयोजन को व्यक्त करने के लिए उपयोग किया गया था।

5. जर्मनी, इटली और जापान ने ब्रिटेन और फ्रांस जैसे आक्रामक देशों के साथ युद्ध से बचने के लिए तुष्टिकरण की नीति अपनाई थी। इसके लिए वे उन सभी मांगों को मानने पर सहमत थे, जो बहुत ज्यादा अनुचित न हों।

6. स्टीफन जे0ली0 ने दूसरे विश्व युद्ध के शुरूआती चरण को ''हिटलर का युद्ध'' कहा है।

7. जे0 नोआक्स और जी0 प्रीधम ने कहा है कि 1928 में हिटलर द्वारा लिखित लेख में हिटलर की विदेश नीति से संबंधित कार्यक्रम का पांच चरणों में वर्णन किया गया है।

8. टी0डब्ल्यू0 मेशन ने सिल–सिलेवार क्रूटनीतिक कृत्यों पर बहुत ज्यादा ध्यान केन्द्रित करने के लिए टेलर की आलोचना की है।

उत्तर :1.गलत 2.गलत 3.गलत 4.गलत 5.गलत 6.सही 7.सही 8.सही

अभ्यास : रिक्त स्थान भरें

1. विभिन्न देशों के बीच .... बनाए रखने के लिए वर्साय संधि के अन्तर्गत स्थापित .... कारगर नहीं रहा।

2. अमरीका में 29 अक्टूबर, 1929 को .... से शुरू हुए विश्व आर्थिक संकट अथवा .... को भी दूसरे विश्व युद्ध के लिए हालात भड़काने वाला माना जाता है।

3. 1931 में, जापान ने ....पर कब्जा कर लिया और बाद में .... .के साथ युद्धरत हो गया, दूसरे विश्वयुद्ध में शामिल होकर 7 दिसम्बर, 1941 को अमरीका में .... पर आक्रमण किया।

4. दो प्रकार की तानाशाही, यानी रूस में .... और इटली, जर्मनी, जापान, स्पेन और पुर्तगाल में .... के उदय से नागरिक समाज पुनःव्यवस्थित होने लगा।

5. स्टीफन जे0ली0 ने दूसरे विश्व युद्ध के शुरूआती चरण को ''........................ का युद्ध'' कहा है।

6. हिटलर ने रूस के साथ एक .... संधि पर हस्ताक्षर किए जिसमें .... और रूस के बीच पोलैन्ड के बंटवारे पर सहमति व्यक्त की गई थी (24 अगस्त, 1934)।

7. ट्रेवर रोपर का तर्क है कि जर्मन विदेश नीति से संबंधित हिटलर की योजना का ब्यौरा .... में दिया गया है।

8. फिशर का तर्क है कि जर्मनी नाजी काल के पहले से ही .... के रास्ते पर आगे बढ़ चला था और हिटलर ने इसे बढ़ा–चढ़ा कर .... के सिद्धान्त का रूप दिया था।

3.5 दूसरे विश्व युद्ध की दिशा

नॉर्मल लॉव ने इस युद्ध को स्पष्ट रूप से चार चरणों में बांटा है। इन्हें नीचे समझाया गया है।

3.5.1 शुरूआती चालें : सितम्बर 1939 से दिसम्बर 1940

जर्मनी और रूस ने 1939 के अन्त तक पोलैन्ड पर कब्जा कर लिया। उन्होंने 29 सितम्बर, 1939 को पोलैन्ड का बंटवारा (अगस्त की संधि या अनाक्रमण संधि के अनुसार) किया। युद्ध की दृष्टि से देखा जाए तो अगले पाँच महीनों में कोई खास घटना नहीं हुई। अमरीकी अखबारों ने युद्ध में इस विराम को ''छद्म युद्ध'' कहा था। अप्रैल, 1940 में जर्मनी ने डेन्मार्क और नार्वे पर कब्जा कर लिया, हॉलैन्ड, बेल्जियम और फ्रांस पर हमले किए, और इन्हें जल्दी ही हरा दिया। जर्मनी ने उत्तरी फ्रांस और अटलांटिक तट पर कब्जा कर लिया। शेष फ्रांस पर विची में मार्शल पेटिन को अपनी सरकार की इजाजत दी गई लेकिन इसे आजादी से वंचित रखा गया और इसने जर्मनों के साथ सहयोग किया तथा दुश्मनों का सामना करने के लिए ब्रिटेन को अकेला छोड़ दिया (इटली ने फ्रांस के पतन के तुरत पहले युद्ध को घोषणा की थीं)। हिटलर ने बिटेन पर बमबादी करके उसे घुटने टेकने को मजबूर करने की कोशिश की लेकिन ब्रिटेन ने युद्ध में उसके इस प्रयास को नाकाम कर दिया। यह युद्ध अगस्त से सितम्बर, 1940 तक चला था। युद्ध में यह सबसे पहला बड़ा मोड़ था जिससे जर्मनी की अभेद्यता पर लगाम लगाई थी। मुसोलिनी की सेना ने मिश्र (सितम्बर, 1940) और ग्रीस (अक्टूबर, 1940) में प्रवेश किया लेकिन जल्दी ही इस सेना को इन दोनों स्थानों से बाहर खदेड़ दिया गया। मुसोलिनी हिटेलर के लिए लज्जित करने वाला, साबित हुआ।

3.5.2 धुरी राष्ट्रों ने युद्ध का दायरा बढ़ाया : 1941 से 1942 की ग्रीष्म ऋतु तक

अब युद्ध वैश्विक संघर्ष में बदलने लगा। जर्मनी ने मिश्र पर फिर से कब्जा करने में इटली की सहायता की और ग्रीस पर कब्जा कर लिया। उसने रूस के साथ किए गए अनाक्रमण समझौते की अवमानना करते हुए 22 जून 1941 को रूस पर आक्रमण (बारबरोसा अभियान) कर दिया। कुछ इतिहासकारों का यह तर्क है कि रूस पर हमला हिटलर की सबसे बड़ी भूल थी लेकिन ह्यूज ट्रवेर रोवर का दावा है कि ''हिटलर के लिए रूसी अभियान कोई शौकिया अभियान नहीं था, यह सर्वोपरि बनने और सम्पूर्ण नाज़ीवाद के खात्मे का अभियान था, इसमें अब और देरी की गुंजाइश नहीं थी; यह अभी नहीं या कभी नहीं की स्थिति थी।''

7 सितग्तर, 1941 को जापान ने अमरीका के पर्लहार्बर (हवाई द्वीप पर) स्थित नेवल बेस पर आक्रमण किया, जापान की इस हरकत ने अमरीका को भी युद्ध में घसीट लिया। इसके बाद, जापान ने फिलिपीन्स, मलाया, सिंगापुर, हांगकांग, डच ईस्ट इंडीज, और वर्मा तथा अमरीका के कब्जे वाले गुआम तथा बेक आइलैन्ड के भू–भागों पर कब्जा कर लिया। इसके चलते हिटलर ने संयुक्त राज्य अमरीका के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यह एक भूल थी क्योंकि अमरीका, रूस और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की मिलजुली ताकत और संसाधन जर्मनों के लिए बहुत बड़ी चुनौती साबित होने वाले थे।

जापान और जर्मनी दोनों ने अपने कब्जे वाले क्षेत्र में लोगों के साथ नृशंस और अपमानजनक व्यवहार किया। नाजियों का पूर्वी–यूरोप के लोगों के साथ बर्ताव अमानवीय था, वे उन्हें जर्मन नस्ल का गुलाम बनाने लायक मानते थे। जापान भी पीछे नहीं था, और उसने भी पराजित समुदायों के साथ दुरव्यवहार किया। इससे जन–समुदाय में आक्रोश था और ये विजेता राष्ट्र जीते गए क्षेत्रों में जनसाधारण का सहयोग खो बैठे।

3.5.3 आक्रमणों पर नियंत्रण : 1942 की ग्रीष्म ऋतु से 1943 की ग्रीष्म ऋतु तक

युद्ध के तीन अलग–अलग मोर्चों पर, धुरी राष्ट्रों की सेनाओं को पराजय मिली। सबसे पहले, प्रशांत महासागर में स्थित मिडवे द्वीप में (जून 1942), अमरीकी सेनाओं ने जापान की शक्तिशाली सेना को पराजित किया। अमरीकी सेना ने जापानी सेना द्वारा रेडियो के जरिए भेजे जाने कूट संदेशों का तोड़ निकाल लिया और जापानी सेनाओं को विभक्त करके फायदा उठाया। यह मुकाबला ''आइलैण्ड होपिंग'' रणनीति के जरिए

1943 और 1944 में लम्बे समय तक लगातार चलता रहा। दूसरे, मिश्र में एल अलअमीन (1942) में, रोमेल के नेतृत्व में मिश्र की ओर बढ़ रहीं, जर्मन सेनाओं को मोंटगोमरी की आठवीं आर्मी ने रोक कर पीछे धकेल दिया और मिश्र तथा स्वेज नहर को जर्मन हाथों में जाने से बचा लिया गया और साथ ही धुरी राष्ट्रों की मध्य–पूर्व में स्थित सैन्य टुकड़ियों और यूक्रेन में स्थित टुकड़ियों के मिलन की सम्भावना भी समाप्त कर दी गई। इसके अलावा, इसका परिणाम यह हुआ कि धुरी राष्ट्रों की सेनाओं को उत्तरी अफ्रीका से पूरी तरह से बाहर कर दिया गया। तीसरा, रूसी मोर्चे पर, जर्मन सेनाएं सितम्बर, 1942 तक स्टामिनग्राड तक पहुँच गई थीं। यहां रूसी सेनाओं ने जर्मन सेनाओं का सख्ती से मुकाबला किया और नवम्बर में भीषण जवाबी हमला किया। 2 फरवरी, 1943 को, उन्होंने जर्मन कमाण्डर को आत्मसमर्पण के लिए मजबूर कर दिया। इस पराजय ने जर्मन सेनाओं के मनोबल को ध्वस्त कर दिया और रूसी सेना के मनोबल को बढ़ा दिया। अन्त में, जर्मन सेनाओं को रूस से बाहर कर दिया गया।

3.5.4 धुरी राष्ट्रों की पराजय : जुलाई 1943 से अगस्त 1945

अमरीका और रूस के विशाल संसाधनों और ब्रिटेन की जलसेना की श्रेष्ठता तथा इसके साम्राज्य के संसाधनों ने मिलकर धीरे–धीरे धुरी राष्ट्रों की सेनाओं को थका दिया। धुरी राष्ट्रों की सेनाओं के पतन में इटली की हार पहला कदम था। इटली के सम्राट ने मुसोलिनी को बर्खास्त कर दिया। मुसोलिनी के उत्तराधिकारी मार्शल बैदोग्लियों ने एक संधि पर हस्ताक्षर कर के इटली को मित्र राष्ट्रों के पक्ष में ला दिया। जर्मन सेनाओं ने रोम पर कबज कर रखा था। इस संधि के प्रत्युत्तर में, मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने जर्मन सेनाओं से युद्ध किया और जून, 1944 में रोम को मुक्त करा लिया। इटली का पतन अंतिम विजय का कारण बना। इटली ने मध्य यूरोप और बाल्कान प्रदेश में जर्मनी की सेना पर बम–बारी के लिए अपनी वायु सेना के अड्डे उपलब्ध कराए और ऐसे समय में जबकि रूस के खिलाफ प्रतिरक्षा के लिए जर्मन सैन्य टुकड़ियों की आवश्यकता थी, उन्हें इन क्षेत्रों में ही युद्ध में उलझाए रखा। 6 जून, 1944 को नॉर्मन्डी में मित्र राष्ट्रों की सेनाएं उतरने के साथ ही 6 जून, 1944 को फ्रोन्स (जिसे दूसरे मोर्चे के रूप में जाना जाता है) पर आक्रमण किया गया। कुछ सप्ताह में अधिकांश उत्तरी फ्रांस और 25 अगस्त, 1944 को पेरिस को आजाद करा लिया गया।

इसके बाद ब्रिटिश और अमरीका सेनाओं ने जर्मनी पर हमला किया। लेकिन जर्मनी ने इसका सख्त प्रतिरोध किया। बल्ज की लड़ाई में, हिटलर ने आक्रमण में सब कुछ दांव पर लगा दिया। उसे जन–धन की विशाल हानि उठानी पड़ी। इस लड़ाई में ढाई लाख लोग मारे गए और छह सौ टैंक तबाह हुए। अन्त में, अप्रैल, 1945 में जर्मन ने स्टालिन की सेनाओं के सामने घुटने टेक दिए।

अमरीका ने 6 अगस्त, 1945 को हिरोशिमा पर परमाणु बम गिराया। इस बम का नाम ''लिटिल बॉय'' रखा गया था। इस हमले में 84,000 लोग मारे गए। इसके तुरन्त बाद, अमरीका ने 9 अगस्त, 1945 को नागासाकी पर एक और परमाणु बम, जिसका नाम ''फैट मैन'' रखा गया था, गिराया, जिसमें 40,000 लोग मारे गए। इससे तत्काल भारी संख्या में लोग ही नहीं मारे गए बल्कि रेडिएशन की चपेट में आने वाले लोगों की भावी पीढ़ी को भी इसने विकलांग बना दिया। मजबूर होकर जापानी सरकार ने 14 अगस्त, 1945 आत्मसमर्पण कर दिया। राजनीतिक नेतृत्व ने इन बमों के गिराने के बारे में चाहे कुछ भी तर्क दिया हो लेकिन एक बात तो निश्चित है कि यह द्वितीय विश्व युद्ध की एक सर्वाधिक जघन्य और विवादास्पद घटना थी।

अभ्यास : सही या गलत

1. जर्मनी और इटली ने स्पेन के गृह–बुद्ध में जनरल फ्रांको का साथ दिया।

2. 7 दिसम्बर, 1943 को, जापान ने अमरीका के पर्ल हार्बर (हवाई द्वीप पर) स्थित नेवल बेस पर आक्रमण किया और उसकी इस हरफत ने अमरीका को भी युद्ध में घसीट लिया।

3. मुसोलिनी के उत्तराधिकारी मार्शल बेदोग्लियो ने एक संधि पर हस्ताक्षर किए और इसके द्वारा अब इटली मित्र राष्ट्रों की तरफ से युद्ध में शामिल हो गया।

4. मित्र राष्ट्रों की सेनाओं के नार्मण्डी में उतरने के साथ ही 6 जून, 1944 को फ्रांस (दूसरे मोर्चे के रूप में जाना जाता है) पर हमले शुरू हो गए।

5. हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराये गए दो बमों का नाम ''रेड बॉय'' और ''व्हाइट मैन'' था।

उत्तर :1.सही 2.गलत 3.सही 4.सही 5.गलत

अभ्यास : रिक्त स्थान भरें

1. जर्मन सेनाओं और .... ने सितम्बर, 1939 के अन्त तक पोलैन्ड पर कब्जा कर लिया।

2. ह्यूज ट्रेवर रोवर का दावा है कि ''...................... के लिए .... अभियान कोई शौकिया अभियान नहीं था; यह सर्वोपरि बनने और नाज़ीवाद के खात्मे का अभियान था; इसमें अब और देरी की गुंजाइश नहीं थी; यह अभी नहीं तो कभी नहीं की स्थिति थी।''

3. अमरीकी सेनाओं द्वारा जापान के .... कूट संदेशों का तोड़ तलाश लेने और .... सेनाओं को विभक्त कर देने का लाभ अमरीकी सेनाओं को मिला।

4. .... की लड़ाई में, हिटलर ने आक्रमण में सब कुछ दान पर लगा दिया और उसे ढाई लाख लोगों की मौत और .... सो टैंकों की तबाही के रूप में जन–धन का भारी नुक्सान उठाना पड़ा।

5. 6 अगस्त, 1945 को, अमरीका ने हितोशिमा पर .... नामक परामणु बम गिराया, जिसमें 84,000 लोग मारे गए और 9 अगस्त, 1945 को नागासाकी पर .... नामक परमाणु बम गिराया, जिसमें 40,000 लोगों ने अपनी जान गंवाई।

3.6 युद्ध के परिणाम

3.6.1 जन–धन की अपार हानि

इस युद्ध से पूरी दुनियाँ में जन–धन की अपार हानि हुई। नार्मन लॉव के अनुसार, इस युद्ध में लगभग तीन करोड़ लोग मारे गए इनमें आधे से अधिक रूसी थे। इसके अलावा, लगभग 2 करोड़ 10 लाख विस्थापित हुए थे (श्रमिकों के रूप में जर्मनी ले जाया गया अथवा यातन–गृहों में डाला गया) इससे उनके प्रत्यावर्तन की समस्या पैदा हुई। एक अन्य आकलन में कहा गया है कि दूसरे विश्व युद्ध में अनुमानतः 5 करोड़ से पांच करोड़ पचास लाख के बीच लोग मारे गए थे।

दूसरे विश्व युद्ध का एक विचित्र तथ्य यह भी है कि नीति–निर्माताओं द्वारा सोच–समझ कर लिए गए फैसलों के परिणामस्वरूप ज्यादातर नागरिक मारे गए थे। शहरों पर बममारी के द्वारा सुनियोजित तरीके से कत्लेआम को युद्ध रणनीति के रूप में माना गया था। प्रत्येक देश दूसरे देश के नागरिकों के प्रति संवेदनहीन था और उसने नागरिक आबादी पर बमबारी की थी।

3.6.2 लोगों का बलपूर्वक विस्थापन

पोट्सडैम सम्मेलन (1945) में तय किया गया था कि लोगों को ''व्यवस्थित और मानवीय'' तरीकों से स्थानान्तरित किया जाए। पश्चिमी पोलैन्ड, चेकोस्लोवाकिया, तथा अन्य स्थानों पर पीढ़ियों से बसे जर्मन लोगों को विस्थापन के लिए मजबूर किया गया ताकि कोई भी भावी सरकार इन क्षेत्रों पर अपना दावा न कर सके। सड़कों और रेलों में यात्रियों की इस कदर भीड़ थी, जैसी पहले कभी नहीं देखी गई थी।

सम्पत्ति को भी बेहद नुक्सान पहुचा था। बर्लिन और वार्साय शहर ध्वस्त कर दिए गए थे। कई शहरों में नागरिक बुनियादी सुविधाएं ध्वस्त कर दी गई थीं। खेतिहार जमीन परतीं भूमि में तब्दील हो गई थीं और वनों को भी नुक्सान पहुंचा था। इन क्षेत्रों में लोगों के जीवन स्तर को खतरा पैदा हो गया था।

3.6.3 उपनिवेश–विरोधी राष्ट्रवादी आन्दोलनों को बल मिला

इस युद्ध से पूरी दुनिया में उपनिवेश–विरोधी राष्ट्रवादी आन्दोलनों को प्रेरणा मिली। 1942 में, ट्यूनीशिया पर छह माह तक जर्मनी के कब्जे ने यहां फ्रांस के लगातार शासन को बाधित किया था, इससे ट्यूनीशियाई राष्ट्रवादी आन्दोलन को नई प्रेरणा मिली। दक्षिण अफ्रीका में, अफ्रीकी लोगों के युद्ध के खिलाफ प्रतिरोध ने ब्रिटिश शासन के प्रति अरूचि को और बढ़ा दिया। एशिया के विभिन्न देशों में चल रहे उपनिवेश–विरोधी आन्दोलनों को भी दूसरे विश्व युद्ध के बाद बल मिला। वर्मा ने जापानी सेना के सहयोग से अगस्त 1943 में स्वयं को आजाद घोषित कर दिया। इसी वर्ष अक्टूबर में, फिलिपीन्स ने भी जापानी सेना के सहयोग से ऐसा ही किया। भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन ने भी जोर पकड़ लिया। औपनिवेशिक ताकतें भी यह समझने लगी थी कि अब वे उपनिवेशों का दबाव बर्दाश्त नहीं कर पाएंगे और उन्होंने अपना साम्राज्य समेटने का फैसला लिया।

3.6.4 शक्ति–संतुलन में बदलाव

दूसरे विश्व युद्ध से पहले, ब्रिटेन दुनियां का सबसे शक्तिशाली देश था। लेकिन युद्ध के बाद तराजू का पलड़ा संयुक्त राज्य अमरीका और रूस की ओर झुक गया और ये दोनों देश ब्रिटेन को पदच्युत करके दुनियां के सबसे शक्तिशाली देश बन गए। रूस ने इस युद्ध में बढ़–चढ़ कर भाग लिया था और आधे यूरोप पर उसका नियंत्रण था। अमरीका ने जर्मनी की पराजय, हिरोशिमा और नागासाकी पर दो महाविनाशक बम गिरा कर जापान के आत्मसमर्पण में अच्छा–खासा योगदान दिया था और प्रशांत क्षेत्र में एक अहम समुद्री ताकत के रूप में उभरा था। इन दोनों देशों में अलग–अलग शासन प्रणाली–सोवियत यूनियन में साम्यवाद और यूएसए में पूंजीवाद ने दोनों देशों के बीच कडुवाहट पैदा कर दी थी। दोनों देश युद्ध के बाद की दुनियां की तस्वीर कैसी हो, इस पर सहमत नहीं थे। विचारों की यह भिन्नता और मतभेदों ने बाद में शीत युद्ध का रूप ले लिया। इन दो महाशक्तियों की यह प्रद्विन्द्विता 1945 से 1991 तक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की विशेष पहचान बनी रही। 1991 में सोवियत रूस का विखण्डन हुआ और कई नये देशों का जन्म हुआ। 1991 के बाद, संयुक्त राज्य अमेरिका ही दुनियां में महाशक्ति के रूप में रह गया था और दो महाशक्तियों के बीच बंटा विश्व एकल–ध्रुवीय विश्व बन गया था। यही कारण है कि अन्य ताकतवर देश अपने–अपने प्रभाव को बढ़ा कर यूएसए के साथ मुकाबले का प्रयास कर रहे हैं ताकि बहु–ध्रुवीय विश्व व्यवस्था कायम की जा सके।

3.6.5 सर्व–निहित शांति समझौता न होना

प्रथम विश्व युद्ध के बाद वर्साय में जिस प्रकार का सर्व–निहित शांति समझौता किया गया था, ऐसे किसी समझौते पर सहमति नहीं बनी। युद्ध को अन्तिम चरणों में सोवियत संघ तथा पश्चिमी ताकतों के बीच फिर शंकाएं और अधिश्वास पैदा होने के कारण कोई व्यापक सहमति नहीं बन सकी।

नॉर्मल लोव ने अनेक अलग–अलग संधियों के परिणामों का वर्णन दिया है। इटली के अफ्रीकी उपनिवेश उसके हाथ से निकल गए थे और उसने अल्बानिया तथा अबसीनिया (अब इथोपिया) पर अपना दावा बाकायदा छोड़ दिया। सोवियत संघ ने चेकोस्लोवाकिया के पूर्वी छोर, पेत्सामो जिला और फिनलैण्ड से लेक लाडोगा के आसपास का भू–भाग हासिल कर लिया तथा 1939 में कब्जाए, गए ईस्टोनिया, लातविया, लिथुआनिया और पूर्वी यूरोप को अपने पास रखा। सोवियत संघ ने रोमानिया से बेसरविया और उत्तरी बुकोदिना हथिया लिया जबकि रोमानिया ने उत्तरी ट्रान्सिलवेनिया को फिर से हासिल कर लिया। इस क्षेत्र पर हंगरी ने युद्ध के दौरान कब्जा कर किया था। इटली और युगोस्लादिया दोनों ट्रीस्टे पर दावा कर रहे थे, जबकि इसे संयुक्त राष्ट्र के संरक्षण में संरक्षित क्षेत्र घोषित किया जा चुका था। बाद में सैन फ्रान्सिस्को में (1951) जापान उन सभी क्षेत्रों

को छोड़ने के लिए तैयार हो गया, जिन पर उसने पिछले 90 वर्षों में कब्जा किया था। इसमें चीन से सैन्य वापसी भी शामिल थी।

3.6.6 अफ्रीका और मध्यपूर्व में आजादी के लिए बढ़ती मांग

जापान द्वारा यूरोपीय नियंत्रण वाले क्षेत्र जैसे फ्रैन्च इन्डो–चाइना, मलाया और सिंगापुर तथा डच ईस्ट इंडीज पर कब्जे ने यूरोपीय देशों की अपरजेयता का अन्त कर दिया था। इसके अलावा, इन क्षेत्र के लोगों ने यूरोपीय शासन से छुटकारा पाने के लिए जापान के साथ मिलकर युद्ध लड़ा था। अब उन से यह उम्मीद नहीं की जा सकती थी कि वे यूरोपीय राष्ट्रों औपनिवेशिक शासन के अधीन रहेंगे। इसके चलते अफ्रीका और मध्यपूर्व के विभिन्न देशों में आजादी की मांग बढ़ने लगी थी। इनमें से बहुत से देशों के नेता अल्जीयर्स में एक सम्मेलन (1973) में एकत्र हुए। इस सम्मेलन में उन्होंने साफ तौर पर कहा कि वे साम्यवादी और पूंजीवादी गुटों में शामिल न होकर तटस्थ रहना चाहते हैं। आम तौर पर, ये देश गरीबी से जूझ रहे थे और औद्योगिक तौर पर अल्प–विकसित थे तथा विश्व के विकसित और समृद्ध देशों पर अपनी आर्थिक निर्भरता से खुश नहीं थे।

युद्ध से सामाजिक और वैज्ञानिक विकास को प्रोत्साहन मिला : नॉर्मल लोव का तर्क है कि इस युद्ध ने ब्रिटेन के कल्याणकारी राज्य की योजना को बढ़ावा दिया। बेवरीज रिपोर्ट (1942) में दलील दी गई कि अभाव, बीमारी, ज्ञान की कमी, मलिनता और बेरोजगारी बड़ी समस्याएं हैं और इनसे पार पाने का प्रयास किया जाना चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह बीमा, बाल भत्ते, राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजना जैसे कार्यक्रम शुरू करे और सभी को रोजगार उपलब्ध कराए। विज्ञान के क्षेत्र में, मानवता का विनाश करने वाले परमाणु हथियारों के निर्माण में भी तेजी आई।

3.6.7 संस्कृति पर युद्ध का प्रभाव

अत्यंत नृशंसता और संवेदन शून्य वार्किकता ने दयालुता, मानवता और उदारता जैसे मानवीय मूल्यों को आहत किया। ज्यादातर लोग यह मानने लगे कि अतार्किकता तथा नृशंसता हमेशा बनी रहेगी और ये मानव प्रकृति तथा सामाजिक जीवन की कमी समाप्त न होने वाली विशेषताएं है। ऐसा प्रतीत होने लगा कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने ऐसी शक्तियां पैदा कर दी है जो मनुष्य के नियंत्रण से बाहर हैं। पृथ्वी से जीवन का अस्तित्व मिटा देने की क्षमता रखने वाले परमाणु हथियारों का निर्माण विध्वंसक वैज्ञानिक विकास का एक उदाहरण है।

इस संदर्भ में, दार्शनिक आन्दोलन, अस्तित्ववाद को प्रमुखता मिलने लगी। अस्तित्ववाद में जीवन की निरर्थकता को केन्द्र में रखा गया था। सैमुअल बैकेट द्वारा रचित नाटक "वेटिंग फॉर गॉडेट" काफी लोकप्रिय हुआ। "हास्य और त्रासदी वाले दो प्रहसनों" से युक्त इस नाटक से दर्शक या तो भ्रमित हो गए थे या फिर आक्रोशित। इस नाटक में अस्तित्व की निरर्थकता को दिखाया गया है। नाटक में दो आवारा व्यक्ति किसी "गॉडोट" नामक दैवीय शक्ति का इंतजार कर रहे हैं, जो नाटक की समाप्ति तक प्रकट नहीं होती। नाटक घटना–शून्य है। इसी प्रकार मानव अस्तित्व भी अर्थहीन और उद्देश्यहीन है। यह 1940 में "थिएटर ऑफ दी एब्सर्ड" के उदय का प्रतीक बन गया था। पेन्टिंग के क्षेत्र में, अमूर्त अभिव्यक्तिवाद की नई विचारधारा का उदय हुआ जिसमें कलाकारों ने बौद्धिक, सत्य के स्थान पर भावुकता की ओर रूझान दिखाया। 1950 में, पॉप कलाकारों ने कला को भद्र लोगों के शौक से हटाकर आम लोग में लोकप्रिय बनाया। वे सामान्य चीजों और लोक संस्कृति से लिए गए बिंबों का कला के रूप में उपयोग करके लोगों को अचम्भित कर देना चाहते थे। एक प्रकार से कहा जाए तो आदर्शवाद और तार्किकता से आमतौर पर विश्वास उठ गया था।

3.6.8 संयुक्त राष्ट्र संघ (यूएनओ) की स्थापना

विश्व में शान्ति बनाए रखने के प्रयास के तौर पर राष्ट्र संघ के उत्तराधिकारी के रूप में 24 अक्टूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई। 1944 में डम्बार्टन ओक्स (यूएसए) में रूस, अमेरिका, ब्रिटेन और चीन के बीच एक बैठक हुई थी। इस बैठक में किए गए प्रस्तावों के आधार पर 1945 के दौरान सैन फ्रांसिस्को में संयुक्त राष्ट्र का चार्टर तैयार किया गया। यूएनओ का उद्देश्य विश्व शान्ति बनाए रखने और पूरे विश्व में आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक विकास को बढ़ावा देकर संघर्ष के कारणों को समाप्त करना था। मानव अधिकारों के सम्मान और सम्पूर्ण मानवता की सार्वभौमिक स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करना भी इसके उद्देश्यो में शामिल था।

अन्त में, हम यह तर्क दे सकतें है कि 01 सितम्बर, 1939 को पोलैन्ड पर जर्मनी के आक्रमणों के बाद शुरु हुआ दूसरा विश्व युद्ध मानव इतिहास का सर्वाधिक विनाशकारी युद्ध था। इस संकट को हवा देने वाले बहुत से कारण थे, जिन पर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। सम्पत्ति के विनाश और असंख्य लोगों की मौत की दृष्टि से देखा जाए तो युद्धों के इतिहास में इसका कोई सानी नहीं है। इसके अलावा, भावी पीढ़ी को भी इस युद्ध से सबक लेना चाहिए कि वे इतने बड़े पैमाने पर इस तरह के कृत्य से बचें अन्यथा पूरी मानवता के अस्तित्व को खतरा पैदा हो जाएगा।

अभ्यास : सही या गलत

1. दूसरे विश्व युद्ध में, शहरों पर बमबारी के जरिए सुनियोजित नस्ली कत्लेआम को सामरिक नीति के रूप मान्यता नहीं दी गई थीं।
2. पोट्सडैम सम्मेलन में लोगों का ''अव्यवस्थित और हिंसक'' तरीके से स्थानान्तरण तय किया गया था।
3. युद्ध के बाद तराजू का पलड़ा रूस और अमरीका के पक्ष में भारी हो गया और वे महाशक्ति बन गए।
4. विश्व के विभिन्न भागों में आजादी की मांग बढ़ना दूसरे विश्व युद्ध के परिणमों में से एक था।
5. अस्तित्ववाद में जीवन की निरर्थकता को केन्द्र बिन्दु बनाया गया हैं
6. विश्व शान्ति के लिए प्रयास करने और शान्ति बनाए रखने के लिए 24 अक्टूबर, 1946 को यू.एन. ओ. की स्थापना की गई थी।

उत्तर :

1.गलत 2.गलत 3.सही 4. सही 5.सही 6.गलत

अभ्यास : रिक्त स्थान भरें

1. अगस्त 1943 में .... ने जापानी सेना के सहयोग से स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया।
2. .... रिपोर्ट (1942) में तर्क दिया गया है कि अभाव, बीमारी, ज्ञान की कमी .... और .... बड़ी समस्याएं है और इनसे पार पाया जाना चहिए।
3. सैमुअल बेकेट द्वारा रचित नाटक .... थिएटर ऑफ दी .... के रूप में बहुत लोकप्रिय हुआ।
4. पेन्टिगों के क्षेत्र में, 1940 के दशक में एक नई .... का उदय देखा गया जिसमें कलाकारों का बौद्धिक सत्य के स्थान पर .... की ओर रूझान था।
5. मुसोलिनी के उत्तराधिकारी .... ने एक संधि पर हस्ताक्षर किए और .... के मित्र राष्ट्रों की तरफ से युद्ध में शामिल किया।

6. मेन कॉम्फ (मेरा संघर्ष) .... की आत्मकथा हैं।

7. 1944 में डम्बार्टन ओक्स (यूएसए) में रूस .... ब्रिटेन और ....के बीच आयोजित बैठक में किए गए प्रस्तावों के आधार पर 1945 के दौरान .... में संयुक्त राष्ट्र का चार्टर तैयार किया गया।

3.7 संदर्भ ग्रन्थ

- ब्रिग्स, आसा एण्ड क्लैविन, पैट्रिसिया मॉडर्न यूरोप; 1789–प्रजेन्ट, पीयरसन एजूकेशन लिमिटेड, दिल्ली, 2003।
- ली, स्टीफन जे0, आस्पैक्टस ऑफ यूरोपियन हिस्ट्री; 1789–1980, रॉतलेज, लन्दन, 1982।
- ली, स्टीफन जे0, हिटलर एण्ड नाज़ी जर्मनी, रॉतलेज, लन्दन, 1998।
- लोव, नॉर्मन, मास्टरिंग मॉडर्न वर्ल्ड हिस्ट्री, दूसरा एडीशन, मैकमिलन, लन्दन, 1988।
- पैक्सटन, रॉबर्ट ओ0, यूरोप इन ट्वन्टीयथ सेन्चुरी, तीसरी एडीशन, हारकोर्ट ब्रास एण्ड कम्पनी, फ्लोरिडा, 1997।
- टेलर ए.जे.पी., दी ओरिजन ऑफ दी सेकैन्ड वर्ल्ड वार, लन्दन, 1983।

3.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

- हॉब्सबॉम, ई0जे0, दी एज ऑफ एक्स्ट्रीम्स : दी शॉर्ट, ट्वन्टीयथ सेन्चुरी, 1914–1991 (1994)।
- मारवरिक, आर्थर ब्रिटेन इन दी सेन्चुरी ऑफ टोटल वार, पास्ट एण्ड प्रजेन्ट, 1964।
- मेरीमैन, जॉन, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न यूरोप, वॉल्यूम–2 डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 नॉर्टन एण्ड कम्पनी, न्यूयॉर्क/लन्दन, 1996।
- नोआक्स जे0 एण्ड प्रीधम जी0, नाजिज्म 1919–1945 : ए डॉक्यूमेन्ट्री रीडर (एक्स्टर 1983–88)।
- थॉमसन, डेविड, यूरोप सिन्स नेपोलियन, लोन एण्ड ब्रायडन लि0, लन्दन, 1957।

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

- द्वितीय विश्व युद्ध के क्या कारण थे ?
- हिटलर द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए किस सीमा तक जिम्मेदार था ?
- द्वितीय विश्व युद्ध में तुष्टिकरण की नीति की क्या भूमिका थी ?
- द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान घटनाक्रमों का वर्णन करें ?
- दूसरे विश्व युद्ध के क्या परिणाम मिले ?